विषयानुक्रम:—

समर्पण

महाप्रभु श्रीगौराङ्ग !

चाहे और कोई जो समझे, किन्तु हम तो आपको सब कुछ समझते और आपमें सब कुछ देखते हैं।

आपने संकीर्त्तन का रङ्ग जमाया, "हरि-बोल" का बोल बाला किया, भक्ति की अपूर्व छटा दरसाई, श्रीकृष्ण-प्रेम-प्रवाह में देश को प्लावित किया और वैष्णवधर्म के झंडे को गगनचुम्बी बनाया।

आपका प्रेम सार्वजनिक था। आपने सबके प्रति समान प्रीति प्रदर्शन किया। लोक-जन-घृणित प्राणी भी आपके प्रेम का भागी हुआ। आपने कट्टर से कट्टर कुकर्मियों का कर थाम कर उन्हें कुपथ-गमन से निवारण किया, संन्यास धारण कर कितने कठोर कुत्सित जीवों का कल्याण साधन किया, जाति, पांति-विचार का बहिष्कार कर धर्म का द्वार सबके लिये उन्मुक्त कर दिया, सबको देवदर्शन, हरिभजन तथा प्रेमभक्ति का एक सा अधिकार दिया, हिन्दू मुसलमान दोनों को गोद में लिया; अछूतोंको छाती से लगाया। आप ने गिरे हुओं को उठाया और गिरते हुओं को गिरने से बचाया, पतितों का उद्धार, धर्म का सुधार और देश का सब प्रकार उपकार किया। अब चाहिये क्या ? और इस से अधिक दूसरा क्या करता ?

आप जो हों साधारण जीव हों, महान भक्त हों या मूर्तिमान भगवान हों, हमें इससे प्रयोजन नहीं, इस झगड़े से काम नहीं।

आप अपना चरित आप जानते हैं अथवा आप को तन मन धन सर्वस्व अर्पण करनेवाले आपके भक्तगण। अतएव आपकी यह चरितावली (जीवनी) आपको ही और, आपका प्रसादस्वरूप, आपके अनन्य चरणानुरागियों को ही अर्पित है। इसे स्वीकार कर

इस दीन हीन मलीनचित्त को कृतार्थ कीजिये और इसे निज अमूल्य कृपा का भाजन बनाइये।

हां! एक बात यह भी सुन लीजिये। आपका क्रीड़ा-स्थल प्रिय भारत आज सब भांति दुर्दशाग्रस्त हो रहा है। इसका हित-चिन्तन और साधन के लिये आज भी आप सरीखा एक महान पुरुष दरकार है। इस देश पर पूर्ववत दया दरसाइये। इसका पुनरुद्धार कीजिये।

शिवनन्दन सहाय।



बाबू शिवनन्दन सहाय

भूमिका ।

आज से दस बारह वर्ष पूर्व हमको जगद्विख्यात अंग्रेज़ी पत्र "अमृत बाजार पत्रिका" के जन्मदाता तथा सुप्रसिद्ध और सुयोग्य सम्पादक स्वर्गीय श्री शिशिरकुमार घोष विरचित "श्री अमिय-निमाइ-चरित" का केवल तीसरा खंड एवम् विज्ञवर प्रोफेसर और कलकत्ता-विश्वविद्यालय के वर्त्तमान वाइस चैन्सलर बाबू यदुनाथ सरकार प्रणीत "चैतन्याज् पिलग्रिमेजेज एंड टीचिंग्स" (Chaitanya's Pilgrimages and Teachings) ग्रंथ पढ़ने का सुयोग हुआ था। उनके पाठ से श्री महाप्रभु गौराङ्ग के चरण कमलों में निश्चय हमारा अनुराग जन्मा।

उसीसे प्रेरित हो कर अपने इष्ट-मित्रों तथा हिन्दी-भाषा-भाषी जनसाधारण को परम पूजनीय, प्रातःस्मरणीय महाप्रभु से परिचित कराने के लिये हमने लखनऊ से प्रकाशित "माधुरी" नाम की हिन्दी पत्रिका * में एक लेख लिखा और फिर बांकीपुर (पटना) के खड्गविलास छापेखाने से प्रकाशित "शिक्षा" + में उसीका उत्तरार्ध छपवाया। किन्तु इससे हमें सन्तोष नहीं हुआ। गौर-गुण अधिक-गान का ध्यान हमारे मन में सदा बँधा रहा। रह रह कर उसकी उत्सुकता बढ़ती गई।

इसी मध्य में हमारे परम स्नेहीचिरमित्र स्वर्गीय म० कु० बाबू रामदीन सिंह जी के द्वितीय पुत्र प्रिय शार्ङ्गधर सिंह जी एम० ए०, बी० एल, ने कोई पुस्तक लिखने के लिये हमसे अनुरोध किया।

यह सोच कर कि श्री गौराङ्ग की जीवनी हिन्दी-संसार में एक नई वस्तु होगी, इसीकी रचना की दृढ़ मनसा की गई। ग्रंथ-प्रणयन के पश्चात् अवध के श्री हनुमन्निवास स्थान के निवासी श्री जानकी शरण जी साधु महात्मा से पता लगा कि श्री गौराङ्ग-सम्बन्धी कोई ग्रंथ, दोहे और चौपाइयों में, मुंगेर के श्रीमान्

---

* वर्ष २, खंड २, सं० ४, पृ० ४४४-५१ मिति ११ मई १९२४ ई०

+ खंड २१, सं० १२ मिति १८ जून १९२५ ई०.

राजा साहब के गुरु महाराज ने बनाया है। परन्तु वह पुस्तक न उक्त साधु बाबा प्रस्तुत कर सके और न राजा साहब के पास ही से हमारी प्रार्थना पर वह प्राप्त हो सकी।

हां ! श्री राधाचरण गोस्वामी विद्यावागीश (दास) द्वारा व्रज-भाषा में पद्यबद्ध अनुवादित "श्री चैतन्यचरितामृत" का कुछ अंश अवश्य देखने में आया है। यदि पूर्वोक्त साधु बाबा कथित ग्रंथ यही हो, तब तो कोई बात ही नहीं, और यदि भिन्न हो, तो भी कुछ क्षति नहीं।

वे दोनों ग्रंथ पद्यबद्ध हैं। उनमें से एक तो स्पष्टही बंगभाषा ग्रंथ का व्रजभाषा में अनुवाद है और दूसरे का यदि पृथक अस्तित्व हो, तो वह चाहे जो कुछ हो, पर पद्यबद्ध अवश्य है। इसले जो पुस्तक इस समय पाठकों के सम्मुख उपस्थित की जाती है, उसमें नवीनता निश्चय है। यह गद्य में है और आलोचना समालोचना के साथ जीवनी की शैली में लिखी गई है। और यदि इसी रीति से लिखी गई कोई अन्य पुस्तक भी हो, जिसकी हमें खबर नहीं, तो भी पाठकवृन्द इसमें बहुत कुछ नयापन पावेंगे और विश्वास है कि इसके पाठ में आनन्द भी अनुभव करेंगे।

श्री गौराङ्ग के विषय में बंगला, अङ्गरेजी तथा हिन्दी के यावद् ग्रंथ अथवा लेख, प्राचीन वा अर्वाचीन, हमें हस्तगत हुये हैं, हमने निःसंकोच उन का उपयोग किया है एवम् उनके तथा अन्य ग्रंथों और लेखों के सहारे अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार इस को रोचक तथा उपयोगी बनाने की हमने चेष्टा की है। कृतकार्य्य हुए हैं या नहीं, यह तो न हम जान सकते और न कह सकते। इस के कहने वाले दूसरे हैं। उन्हींका कहना यथार्थ होगा और हमें भी शिरोधार्य्य होगा। त्रुटियां सुधारने को हम सदा तत्पर हैं।

ग्रंथकर्त्ता और समालोचक का विचित्र सम्बन्ध है। इन लोगों में सदा परस्पर स्नेह और सहृदयता होनी चाहिये। जब ग्रंथकर्त्ता ही नहीं तब समालोचक कहां?

बहुत से पैर हाथ टूटे, सिरफूट टाइपों ने एवम् कम्पोजिटरों की सहज करनी करतूति और प्रूफसंशोधकों के भंग की तरंग या पिनक ने समालोचकों की लेखनी का मार्ग पहले ही से बहुत कुछ परिष्कृत कर रखा है। हमने भी शुद्धाशुद्ध पत्र की टट्टी खड़ा करनी व्यर्थ समझा। हमने किसीको उसके अनुसार पुस्तक शोध कर पढ़ते नहीं देखा। प्रेमी पाठक यों ही त्रुटियां सुधार कर पढ़ते हैं। अस्तु।

अब तो पुस्तक जिस अवस्था में है, उसी में पाठकों को भेंट की जाती है। जैसी इच्छा हो वैसे पढ़ें। पर पढ़ें अवश्य और वह भी आद्योपान्त यही हमारा विनीत अनुरोध है। हम इसीमें अपने को कृतार्थ समझेंगे।

श्री गौराङ्ग ने फागुन की पूर्णिमा को जन्म ग्रहण किया और हमने होली के दिन यह भूमिका लिखी है।

हिन्दी प्रेमियों का
पुराना परिचित
शिवनन्दन सहाय

अख़्तियारपुर, आरा
प्रथम चैत, वि० सं० १९८४

प्रथम खण्ड

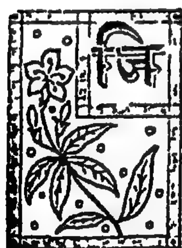


प्रथम परिच्छेद

नदिया

(छप्पै)

सुनि सुभक्त को विनय मनुज ह्वै नदिया आये।
विद्या प्रेम प्रताप जगत परत्यच्छ लखाये॥
नृत्य सँकीर्तन कृष्ण नाम कँह स्रोत बहाये।
सुजन कुजन मन ताहि माहिं सानन्द भसाये॥
संसार पार हित गौर हरि, प्रेम-पोत प्रस्तुत किये।
सिव त्यों जगजीव उधार लगि, गृहि तजि सँन्यासी भये॥



जिन परम पूजनीय प्रातःस्मरणीय प्रेमप्रसारक, सकल-जीव-उद्धारक, सर्वकल्याणकारक, महाप्रभु श्रीगौर हरि (श्रीकृष्ण चैतन्यजी) के गुणगान में उपर्युक्त छप्पै कहा गया है, उनका शुभाविर्भाव बंग देशान्तर्गत नदिया नगर में हुआ था। इस नगर से तथा इसकी प्राचीन और अर्वाचीन स्थिति से हमारे अधिकांश पाठक सम्भवतः परिचित न होंगे। अतएव पहले उसीका कुछ वृत्तान्त कहना आवश्यक बोध होता है।

पहले इसके नामकरण का कारण सुनिये। कोई कहता है कि "नवद्वीप" नाम से प्रसिद्ध एक नये टापू पर यह नगर बसाया गया।

इसीसे इसका नाम नवद्वीप (नदिया) हुआ। इस से १५ मील उत्तर " अग्रद्वीप " (अर्थात् आगे का = पहला = पुराना) टापू था। कोई कहता है कि एक योगी रात को नवद्वीप जला कर यहां योग साधन करता था; इसीसे यह स्थान इस नाम से प्रसिद्ध हुआ। एवं किसीका कथन है कि नवद्वीपों के समूह में से एक होने के कारण इसका ऐसा नाम पड़ा। नरहरि दास ने " नवद्वीप-परिक्रमा-पद्धति " में इसका विशेष वर्णन किया है।

इसी नगर के नाम से समूचा जिला नदिया कहलाने लगा। इस जिले के उत्तर में पद्मा प्रवाहित है और उसके उत्तर तट पर पवना तथा राजशाही के जिले अवस्थित हैं। उत्तर-पश्चिम दिशा में जलंगी या खरिया नदी इसे मुर्शिदाबाद से विलग करती है। पश्चिम के शेषांश में यह वर्द्धमान तथा हुगली जिले से सीमाबद्ध है एवं इसके और उन जिलाओं के मध्य भागीरथी (या हुगली) कलरव करती कल्लोल किया करती है। इसके दक्षिण चौबीस परगना, दक्षिण-पूर्व जेसोर तथा, शुद्ध पूर्व फरीदपुर के जिले वर्त्तमान हैं।

पूर्वकाल में इस जिला की पश्चिमीय सीमा पर अर्थात् आधुनिक भागीरथी के पूर्व तट पर दो भूखंड थे। इस समय इस नदी की प्रवाहगति में परिवर्तन हो जाने से वे इसके पश्चिम किनारे हो गये हैं। इन दोनों में से दक्खिनवाले ११ वर्ग मील के टुकड़े में नदिया नगर बसा है। अपनी वर्त्तमान स्थिति के कारण यह वर्द्धमान जिले में चला गया होता और ऐसा करने के लिए सर रिचार्ड टेम्पुल के शासनकाल में सरकारी आज्ञा भी हो चुकी थी। परन्तु जिस नगर के नाम से समूचा जिला विख्यात है उसका अन्य जिले में चला जाना उचित न विचार कर वह आज्ञा कार्य्य रूप में परिवर्तित न होने पायी। किन्तु दूसरा टुकड़ा "पूर्वोक्त" अग्रद्वीप अप्रैल १८८८ ई० में वर्द्धमान में सम्मिलित कर दिया गया।

ईस्वी दश शतक के अन्त में आदिसूर (वीरसेन) नामक (१) चन्द्रवंशीय राजा ने कर्नाटक देश से आकर बंगाल के पूर्वांश में अपना राज्य संस्थापित किया। इसी वंश के एक राजा ने १०६३ ई० में पुराने नवद्वीप को भागीरथी की उपयोगिता के विचार से (२) अपनी राजधानी बनायी। आईन अकबरी से जाना जाता है कि बल्लाल सेन के पुत्र लक्ष्मण सेन के समय यह स्थान बंगाल की राजधानी था। बल्लाल सेन को भी इससे अवश्य सम्बन्ध था। वर्त्तमान नवद्वीप के ठीक सामने नदी के पूर्व तट पर बामुनपूकर ग्राम में एक टोलहा और बल्लाल दिघी नामक एक तालाब उसके नाम को अब भी स्मरण कराते हैं।

पुरातन नवद्वीप का एकांश अब इसी बामुनपूकर में सम्मिलित है और शेषांश भागीरथी के गर्भ में चला गया है। अर्थात् वर्त्तमान नवद्वीप पुराना नदिया नहीं है। वह तो नदी के पूर्व तट पर अवस्थित था और वर्त्तमान नवद्वीप उस समय कुलिया के नाम से ख्यात था।

आधुनिक नदिया कलकत्ता से ७५ मील उत्तर है।

---

(१) "इन्डो एरियन" नामक पुस्तक के भाग २ में डाक्टर राजेन्द्र लाल मित्रने "पाल और सेन "वंश शीर्षक प्रबन्ध में जो सेन वंशीय राजाओं की नामावली दी है उसमें सर्वप्रथम नाम आदिसूर न देकर "बीरसेन" दिया है और कहा है कि सूर और बीर का तात्पर्य्य एकही होने से ये नामान्तर स्वरूप हैं। पर न जाने "नदिया गजेटियर" सेनवंश-संस्थापक का नाम सुमन्त सेन कैसे लिखता है। सेनवंशीय राज्य का संस्थापक तो छात्रावस्था से ही "आदिसूर" को जानते आये हैं। और उक्त तालिका में सुमंत को बीरसेन (आदिसूर) का पुत्र लिखा है और कहा है कि इसके एवं इसके पुत्र हेमंत के बारे में कोई विशेष जानने योग्य बात नहीं है। और "गजेटियर" उसे राज-संस्थापक ही बताता है। आश्चर्य्य!

(२) इन्हींने आदिसूर के बुलाये हुये पांच कन्नौजिये ब्राह्मणों और कायस्थों के वंशजों में कुलीनता की प्रथा स्थापित कर बगदेशीय आदिम ब्राह्मणों के संग उनके विवाहादि सम्बन्ध की मनाही कर दी थी। विद्या, दया, धर्म, सदाचार तीर्थाटन, पूजनादि कुलीनता के मुख्य लक्षण थे।

द्वितीय परिच्छेद

तत्कालीन राजनैतिक तथा सामाजिक स्थिति



मुसलमानी पताका तो सेनवंशीय अन्तिम राजा (१) के समय ही में इस देश और प्रान्त में फहरा चुकी थी। सौभाग्य से जो कभी कोई हिन्दू राजा हो भी जाते थे तो चिर दिन या पीढ़ी दो पीढ़ी उनका राज्य स्थिर रहने नहीं पाता था। चाहे शासन के मध्य ही में किसी मंचारी ही द्वारा राज्यच्युत वा वध कर दिये जाते या उनकी मृत्यु के अनन्तर कोई अन्य व्यक्ति उनके राज्य पर अधिकार कर बैठता।

श्रीगौराङ्ग के प्रादुर्भाव के लगभग सुबुद्धिराय गौड़ के राजा थे। हुसेन खां नामधारी उनका एक प्रिय कर्मचारी किसी काम में असावधानी के कारण दण्डित होने से ऐसा कुपित हुआ कि षड्यन्त्र करके उन्हें राज्यच्युत कर आप राजा बन बैठा।

राजगद्दी पर अधिकार करने के अनन्तर इसने स्थान स्थान पर सेना समेत एक एक क़ाज़ी नियुक्त किया। अपने दामाद चांद खां को नवद्वीप का क़ाज़ी बनाया और उसने नवद्वीप के एक भाग बेलपुखुरिया में डेरा जमाया। क़ाज़ी मलूक खां शान्तिपुर के समीप गंगा किनारे रहने लगा। पानीहाटी गांव में भी एक क़ाज़ी था।

---

(१) "तबक़ात नासरी" में अन्तिम राजा का नाम लखमनिया लिखा है। अन्य इतिहास-लेखकों ने प्रायः उसीका अनुकरण किया है। किन्तु डाक्टर राजेन्द्र लाल मित्र अन्तिम राजा का नाम अशोक सेन बताते हैं और कहते हैं कि "लखमनिया" "लाक्ष्मणेय" का अपभ्रंश है जिसका अर्थ लक्ष्मण सेन का पोता हो सकता है—देखो "इन्डोएरियन" ग्रंथ भाग २ "पाल और सेन वंश" शीर्षक प्रबन्ध।

उस समय हिन्दू राजा वा ज़मींदार भी थे। नवद्वीप में बुद्धिमन्त खां (१), काल्लना के समीप हरिपुर में गोवर्द्धन दास एवं वर्द्धमान के पास कुलीन ग्राम में मालधर वसु ज़मींदार थे। ये सभी ज़मींदार कायस्थ थे। येही क्यों? आईन अकबरी कहता है कि बंगाल के सभी ज़मींदार कायस्थ थे। क्यों नहीं? कायस्थ पुरातन काल से ही कार्य्यकुशल, हिसाब किताब में पक्के, और विद्वान होते आते हैं। नियत कर पहुंचाने में भी कलह और उत्पात नहीं करते थे। आज यदि कोई इन्हें आंख दिखावे, इनमें दूषण देखे, इनकी निन्दा करे तो यह समय का फेर कहा जायगा और कुछ नहीं।

पर उस समय ये ही राजा ज़मींदार प्रकृत शासनकर्त्ता थे। क़ाज़ियों का काम इनसे कर वसूल कर के कुछ अपने पास रखना और शेष गौड़ेश्वर के पास भेज देना था। उन्हें राजशासन बहुत करना नहीं पड़ता था। सब कुछ येही हिन्दू राजा करते थे। हां! उनके पास भी जो कोई फर्यादी होता या मामला जाता तो वे उनकी निवृत्ति कर देते थे। पर इसकी आवश्यकता कम होती थी; ऐसा अवसर कम आता था। उस समय गांव घर का मामला मोकद्दमा गांव ही वाले आपस में तय कर लेते थे। किसी को कचहरियों में दौड़ते दौड़ते जूतों का तल्ला घिसाना, घर का आटा गीला करना और आईनों के घोल धप्पड़ से चान्दी गंजा कराना नहीं पड़ता था। पूज्यवर पंडित प्रताप नारायण मिश्र ने ठीक कहा है कि कचहरी से काम पड़नेवालों का मुंडन हो जाता है। उस शब्द का

(१) "बुद्धिमन्त" के साथ "खां" का प्रयोग अपूर्व दीखता है। परन्तु इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। यह मुसलमान राजा प्रदत्त कोई उपाधि होगी। हमारे ऐसा अनुमान करने का कारण है। भारतमित्र के स्वर्गीय सम्पादक स्वर्गीय बालमुकुन्द गुप्त कलकत्ता से सम्बन्ध जोड़ने के पूर्व मुरादाबाद से उर्दू भाषा में "भारत प्रताप" नामक एक मासिक पत्र निकालते थे। उसके मालिक "आगा" उपाधिधारी एक ब्राह्मण थे। उनका नाम हमें स्मरण नहीं होता और एक बार हमारे घर में अग्निप्रकोप से उस पत्र का "फ़ाइल" भी जल गया।

अर्थ ही है कच (बाल) और हरी (हरनेवाली) अर्थात् मुंडन करनेवाली।

राज्य कर भी कमरतोड़ नहीं था। इसने कायस्थ राजे-जमीन्दार तथा उनके बन्धु बान्धव तो सुखी थे ही, वैद्यजाति के लोग भी चिकित्सा द्वारा द्रव्योपार्जन कर सुखपूर्वक स्वच्छन्द कालक्षेप करते थे। अन्य लोगों का दिन भी सुभहो से कटता था। उधर अन्न की कमी नहीं थी, इधर मिज़ाज में शौक़ीनी नहीं थी। आज सौ रुपया मासिक प्राप्ति से भी एक अच्छे परिवार का भरण पोषण सुबिधे से न होता हो, पर उस समय दस रुपया आय होने से जीविका-निर्वाह होजाता था। लोग आज की अपेक्षा हृष्ट पुष्ट भी रहते थे और बलिष्ठ भी होते थे।

कायस्थ राजे ज़मीन्दार ब्राह्मणों के प्रतिपालक थे। उनसे एवं अन्य योग्य बड़े आदमियों से पूजा प्रतिष्ठा पाते रहने से ब्राह्मण-गण सानन्द समय बिताते और चिन्तारहित हो पठन पाठन में लगे रहते थे। उन्हें कहीं नौकरी करने की प्रायः आवश्यकता नहीं होती थी। तोभी कोई कोई राज दरबार और मुसलमान सरकार में काम करते थे। नवद्वीप के कोतवालों में जगन्नाथ और माधव (जगाई और मधाई) दो ब्राह्मण थे जिनका हाल पाठकों को सविशेष आगे ज्ञात होगा।

उस समय नवद्वीप बड़ा ही समृद्धिशाली था। जनसंख्या बहुत थी। सब जाति के लोग विलग विलग पाड़ा (१) में आवासित थे। कलकल-नादिनी भागीरथी गंगा कल्लोल करती समीप हो प्रवाहित थी। खाने पीने का सुख था। लोग सानन्द स्नान, पूजा, अतिथि-

(१) शहर के मुहल्लों की तरह "पाड़ा" सदा सटा लगातार नहीं होता। उनके बीच पाव मील, आध मील, एक मील और किसी किसी के बीच इस से भी अधिक की दूरी रहती है। भागलपुर की आबादी से या गंगा के दियारे के टोलों से नवद्वीप के पाड़ाओं का अनुभव और अनुमान किया जा सकता है।

सेवा इत्यादि सुकार्य्यों में लगे रहते थे। प्रातःकाल और सन्ध्या समय गंगातट अपूर्व छटा धारण करता था। हज़ारों आदमी स्नानार्थ एकत्र होते थे। कोई मुंह धोता, कोई नहाता, कोई तैरता और कोई जलक्रीड़ा करता दीखता था। अपने अपने ढंग से कोई पूजा, कोई पाठ, कोई भजन, कोई तर्पण करता था। नरनारी द्वारा अर्पित ढेर के ढेर फूलों को अपने वक्षस्थल पर धारण किये गंगा धीमे धीमे जा रही थी और हवा उनकी सुगंध ले लेकर तटस्थ लोगों में दूर दूर तक वितरण कर रही थी। घाटों पर धूप दीप की बहार भी कम आनन्ददायिनी नहीं होती थी। नगर चारों ओर जगजगा रहा था।

जाने आने की बहुत सुविधा न होने पर भी लोग दल बांध बांध कर तीर्थाटन को निकलते थे। यह धर्म का एक मुख्य अंग और कुलीनता का प्रधान लक्षण समझा जाता था। उस समय बंग-देशीय प्रायः श्रीजगन्नाथ, रामेश्वरादि दक्षिणस्थ तीर्थों में जाया करते थे। लोग काशी और वृन्दावन भी जाते थे। परन्तु तब वृन्दावन प्रायः जङ्गलमय हो गया था।

नवद्वीप पर लक्ष्मी और सरस्वती की पूरी कृपादृष्टि थी। वरन् पहले से दूसरी की अधिक थी। श्रीयुत् यदुनाथ सरकार ने "चैतन्य का तीर्थाटन और उपदेश" नामक पुस्तक में लिखा है कि "ईस्वी १५ वीं शताब्दी में नवद्वीप वाणिज्य का बड़ा केन्द्र था" और "श्रीअमियनिमाई चरित" में लिखा है कि "नवद्वीप में वाणिज्य का तादृश सुविधा या विस्तार नहीं था।" नवद्वीप वाणिज्य का केन्द्र हो या न हो एवं मनुष्योपयोगी किसी पदार्थ का वहां व्यापार होता हो वा नहीं, परन्तु विद्या, वाणिज्य का तो वह निश्चय प्रधान स्थान था। उक्त शताब्दी में वह एक सुविख्यात विद्यापीठ था। देश देश से झुण्ड के झुण्ड विद्यार्थी बनजारे जा जा कर और गुरु सेवा रूपी मूल्य चुका कर वहां से

विद्यारूपी अलभ्यरत्न ले जाया करते थे। घर बाहर, हाट, चौहट, घाट बाट में सर्वत्र उसीकी चर्चा थी।

इसके पहले और पीछे भी यह नगर विद्या के लिए विख्यात था। ईसा के १२ वें शतक में राजा लक्ष्मण सेन की राजसभा हलायुध (१), पशुपति, शूलपाणि जैसे विद्वानों से सुशोभित थी। जगद्विख्यात श्रीजयदेव जी जिनके मनोहर काव्य "गीतगोविन्द" का अनुवाद अङ्गरेज़ी गद्य, पद्य, लैटिन और जर्मन भाषाओं में हो चुका है, इसकी शोभा वर्द्धन कर रहे थे।

ईस्वी १८ शताब्दी में नदिया के राजा कृष्णचन्द्र राय के समय में भी यहां साहित्य की उन्नति की ओर विशेष ध्यान था। श्रीराम प्रसाद तथा भारतचन्द्र इसी समय यहांकी शोभा बढ़ा रहे थे। नवद्वीपान्तर्गत हालिलपुर परगना के कुमारहट्ट मे रामप्रसाद का जन्म हुआ था। ये रामेश्वर सेन के पोते और रामराम के पुत्र थे। पिता के परलोक हो जाने से अल्प वयस में ही ये सुप्रसिद्ध दुर्गाचरण मित्र के यहां साधारण वेतन पर काम करने लगे। परन्तु इनके धर्मानुराग तथा कविताप्रेमादि से प्रसन्न होकर उन्होंने इनका ३०) मासिक पेन्शन कर के घर ही पर रह कर सरस्वती-सेवा करने की आज्ञा कर दी। इनकी सुख्याति का प्रचार होने से महाराज कृष्णचन्द्र ने दरबार में बुलाकर इन्हें "कविरञ्जन" की उपाधि एवं १०० बीघा कररहित भूमि प्रदान कर इनको सम्मानित किया। इन्होंने कालीकीर्त्तन, कृष्णकीर्त्तन, शिवकीर्त्तन आदि कई पुस्तकों की रचना की है। इनकी पदावली प्रसादी संगीत के नाम से प्रसिद्ध है। अपनी रचनाओं में ये धान, खेत, हाट, घाट, कोल्हू इत्यादि साधारण वस्तुओं से उपमाओं का संग्रह करते थे। ये श्री काली माता के परम भक्त थे। तोभी ये श्रीकृष्ण और श्री रामचन्द्र

(१) हलायुध ने "ब्राह्मणसर्वस्व", उनके भाई पशुपति ने श्राद्ध-विषयक "पशुपद्धति" और दूसरे भाई ने आह्निक पद्धति की रचना की है।

को किस दृष्टि से देखते थे, यह बात निम्नोद्धृत पद से, (१) जो इनके पद का पं० प्रताप नारायण मिश्र कृत छायानुवाद है, प्रगट होगा।

भारतचन्द्र वर्दवान के एक ज़मींदार नरेन्द्र नारायण के चतुर्थ पुत्र थे। वर्दवान नरेश ने अप्रसन्न होकर इनके पिता के इलाका का सर्वनाश कर दिया। तब यह अपने नानिहाल नवपाड़ा भाग गये। इन्होंने हुगली देवनगर के मु० रामचन्द्र कायस्थ से फ़ारसी पढ़ी थी। अनेक कष्ट झेलने के बाद ये फ्रानसीसी सरकार के दीवान इन्द्रदेव नारायण की सहायता से राजा कृष्णचन्द्र के दरबार में पहुंचे। वहां इन्हें गुणाकर की उपाधि मिली और श्रीमान् ही के आज्ञानुसार इन्होंने "अन्नदा मङ्गल" पुस्तक में उपाख्यान के मिसि "विद्यासुन्दर" की कथा कही। प्रतीत होता है कि पुराना वैर चुकाने ही के निमित्त इन्होंने वर्दवान राजघराने की उसमें निन्दा की है।

उक्त रामप्रसाद जी ने भी एक विद्यासुन्दर की रचना की है। महाराज को कदाचित यह आख्यान बहुत प्रिय था।

श्री रमेशचन्द्र दत्त महोदय कहते हैं कि भारतचन्द्र काव्य रचना में परम कुशल थे। इन्होंने बंगभाषा में जो रंग चढ़ाया है वह अकथनीय है।

(१) मोहन मुरली कहां दुराई।
कर कराल करवार बिराजति कहां हिये यह आई॥
केहि कारन बनि रहे दिगम्बर क्यों रसना लटकाई।
केहि बनमाल उतारि गरे तें मुंड माल पहिराई॥
काहे पद तल परे सदाशिव रह्यो रकत लिपटाई।
तिरछी तकनि तजी क्यों यदि छिन भए त्रिनैन कन्हाई॥
अहो कहो किम खोलि केस, क्यों लीन्हीं लट लटकाई।
मदसों छके धरत पग डगमग अजब चाल मन भाई॥ इत्यादि॥

ईस्वी १५वीं शताब्दी के अन्त तथा १६वीं के आदि भाग में श्रीगौराङ्ग महाप्रभु इस भूतल को अपने पदरज से पवित्र करते थे। उस समय की परिस्थिति का सविस्तर वर्णन आवश्यक बोध होता है। उसकी कुछ झलक ऊपर दिखायी गयी है। अब उसका पूरा दृश्य पाठकों के नेत्रों के सामने उपस्थित किया जाता है। यह तो ऊपर ही कह चुके हैं कि उस समय विद्यावाणिज्य का बाज़ार यहां बहुत गरम था। चतुर्दिक सरस्वती ही की आराधना थी। जिधर कान लगाइये उधर ही विद्या की चर्चा सुनायी देती थी। इसी १५ वें शतक में बंगला रामायण के रचयिता कृतिवास पंडित और बंगला महाभारत के प्रणेता श्री काशी राम इसी भूभाग में शोभायमान थे। प्रथम का जन्म शान्तिपुर के समीप फुलिया गांव में एवं दूसरे का नवद्वीप नगर के सामने भागीरथी के दूसरे कूल पर काटोया (१) ग्राम में हुआ था।

उस समय नवद्वीप नगर में अनगिनित "टोल" (पाठशालाएं) थे और प्रत्येक में बहुत से देशीय और विदेशीय छात्र विद्याध्ययन करते थे। सब अध्यापक विद्यानिपुण, विद्यावागीश, धुरन्धर पंडित थे। लोगों ने धनोपार्जन के निमित्त टोल स्थापित नहीं किया था। उसका एक मात्र उद्देश्य विद्याप्रचार था। शास्त्रानुसार धन लेकर पढ़ाना पाप और अधर्म समझा जाता है। विद्यादान और पठन पाठन धर्म का एक अंग और ब्राह्मणों का कर्त्तव्य है। स्कूल की हवा लगने से निस्सन्देह आज ब्राह्मण अपने स्कूल के किसी छात्र को अथवा किसी अन्य को उसके या अपने घर पर बिना वेतन पढ़ाना नहीं चाहते और नहीं पढ़ाते। परन्तु उस समय की बात दूसरी थी। छात्रों से पैसा कमाने की बात कौन कहे, उन्हें

( ) यह ग्राम अजय और भागीरथी के संगम पर बसा है। यूनान देशीय टालेमी ने इसे कोटदूमा (संस्कृत कार्द्दण) एवं अजय को "दमिस्टिस" लिखा है।

बहुत से छात्रों के असन वसन का प्रबन्ध भी अध्यापकों को अपने पास से करना या कराना पड़ता था। इसी हिसाब से पढ़ कर लोग जगद्विख्यात पण्डित होते थे। आज के समान विद्योपार्जन में व्यय नहीं होता था। छात्रों के अभिभावकों का भूस बाहर नहीं होता था। और उस पर तुर्रा यह कि बड़े बड़े "डिग्रीहोल्डर" होने पर भी अधिकांश को न यथार्थ बोध और न यथार्थ ज्ञान। "न मुहक्क़िक़ बवद, न दानिशमन्द। चारपाये बरो किताबे चन्द" (नहीं ज्ञान पाया नहीं बुद्धि पायी। पशू पीठ पोथी बहुत सी लदायी)। जो कुछ सन्देह हो तो बी० ए०, एम० ए० के पाठ्य पुस्तकों की सूची देख लीजिये। अस्तु।

उस समय व्याकरण, काव्य, अलंकार, ज्योतिष, दर्शन, वेदान्त आदि सब विषयों में शिक्षा दी जाती थी। परन्तु न्याय की शिक्षा नवद्वीप में नहीं होती थी। न्यायशास्त्र पहले उस देश में था ही नहीं। उसके अध्ययन के लिए वहां के लोग मिथिला आते थे। मिथिला न्याय के लिए सारे भारतवर्ष में प्रसिद्ध था। मिथिलावासी महान पंडितगण न्याय पढ़ाते तो थे बड़े प्रेम और चाव से, परन्तु न्याय की कोई पोथी वंगदेशीय छात्रों को साथ नहीं ले जाने देते थे। इसी से इसका कोई टोल नवद्वीप में नहीं था। सबसे पहले रामभद्र भट्टाचार्य्य ने नवद्वीप में न्याय का एक साधारण टोल स्थापित किया। उस समय के महान् पंडितों में महेश्वर विशारद, नीलाम्बर चक्रवर्ती, गंगादास, कमलाक्ष मिश्र (अद्वैत) का नाम सुना जाता है।

विशारद का घर नवद्वीप के विद्यानगर पाड़ा में था। वासुदेव और वाचस्पति उनके दो पुत्र थे। पिता ही के समान पुत्र भी कुशाग्र बुद्धि के थे। ये लोग रामचन्द्र के टोल में न्याय पढ़ने लगे। परन्तु पुस्तकाभाव से पढ़ने में असुविधा होने लगी। वासुदेव ने मिथिला आकर यहीं पाठ समाप्त करने और जिस प्रकार हो सके

न्याय की पुस्तक अपने देश में ले जाने का मन में दृढ़ संकल्प किया।

आज के समान एक विश्वविद्यालय से अन्य विश्वविद्यालय में जाने के लिए दस बीस रुपया दण्ड नहीं देना पड़ता था। वासुदेव बिना बाधा मिथिला पहुंच गये। यहां उन्होंने न्याय का पाठ समाप्त किया और साथ ही साथ न्याय का एक बड़ा ग्रंथ भी कंठस्थ कर वे देश को लौट गये। वहां जाकर उन्होंने एक अपना न्याय का टोल स्थापित किया। सारे भारतवर्ष में उनकी सुख्याति फैल गयी। निश्चय उन्होंने काम भी ऐसा ही किया था। मिथिला का बल और प्रभाव कम पड़ गया। परन्तु आज भी इसे इस थान का गौरव है कि सार्वभौम के समान जगद्विख्यात पुरुष इसीके शिष्य थे।

उनका टोल शीघ्र ही विद्यार्थियों से परिपूर्ण हो गया। उनके अनेक छात्र भी बड़े विख्यात हुए। श्रीगौराङ्ग भी कुछ दिन उनके टोल में थे। गौराङ्ग के शिक्षा-प्रकरण में उक्त टोल के सुप्रसिद्ध कई छात्रों का हाल लिखा जायगा।

कुछ दिनों के बाद उड़ीसा के स्वतंत्र राजा प्रताप रुद्र ने सार्वभौम को अपने देश में सादर ले जाकर और वृत्ति देकर उन्हें उसी देश में रखा और उनका टोल भी तब से वहीं गया।

अब दूसरे चित्रपट की ओर दृष्टि कीजिए। देखिये नवद्वीप निवासियों की धार्मिक अवस्था कैसी थी। इस विषय में इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि विद्या और धन के घमंड से लोगों का सिर भारी हो गया था। पूजा पाठ और तीर्थ व्रत तो होता था परन्तु उनमें वास्तविक धार्मिक उत्साह और सच्ची भक्ति की गन्ध नहीं थी। वेदान्ती पंडितों को "अहंब्रह्म", "सोहमस्मि" इत्यादि की धुन थी, जब अवकाश पाते वेदान्त ही की चर्चा करते। हरिभक्ति से घृणा प्रकाश करते, उसे गँवारों की क्रिया और धर्म मानते।

ब्राह्मण, कायस्थ और वैद्य सभी उच्च श्रेणी के पुरुष शाक्त थे। सभी के घर दुर्गापूजा और बलि की प्रथा थी। सभी मांस मदिरा में डूबे रहते थे। किसी को यह ध्यान नहीं था कि संसार के जीवमात्र जगज्जननी श्रीभगवती की सन्तति है। एक सन्तान के द्वारा दूसरे का वध वह कैसे सहन करेंगी। श्रीमाता के उभय पार्श्व में स्वार्थ तथा वासना का ही बलि देना उत्तम बलि है।

कुछ लोग देव और अदेवों के वश करने के लिए तन्त्र साधन करते थे। देश से वैष्णव का नाम मानों लोप सा हो गया था। कुछ रामोपासक थे पर उनकी गणना उंगलियों पर हो जाती थी। श्रीमद्भागवत के बहुत सादर पाठ करनेवाले भी श्रीकृष्ण में विश्वास नहीं करते थे।

थोड़े से जो वैष्णव थे वे तान्त्रिकों के उत्पात के भय से अपने अपने घरों का बाहरी द्वार बन्द कर अपने रीत्यानुसार भजन पूजन कर लेते थे। कहीं कुछ हो जाने पर मुसलमान कर्मचारी वैष्णवों को तंग करने के लिए अत्याचारियों का ही पक्ष लेते थे।

वैष्णवों के आश्रय और प्रधान, शान्तिपुर निवासी कमलाक्ष मिश्र, अर्थात् अद्वैताचार्य थे। इनका एक घर नदिया में भी था। ये वयोवृद्ध, महासाधु एवं महान् पंडित उच्चश्रेणी के एक ब्राह्मण थे। जब तांत्रिकों के उत्पातों से वैष्णवों का नाकों दम होने लगता था तो यही उनका आश्वासन करते, उन्हें ढाढ़स बंधाते और कहते कि यद्यपि 'शास्त्रों में इस काल में अवतार की बात नहीं है, पर भगवान् भक्तों के भक्तिभाव से निश्चय आकर्षित होकर वैष्णवधर्म तथा वैष्णवों की रक्षा करेंगे' और सदा तुलसी जल द्वारा भगवान की पूजा आराधना कर उन्हें प्रसन्न करने का प्रयत्न किया करते थे।

ये पुराने ढङ्ग के वैष्णव थे। वेदान्त के भी प्रशंसक थे और श्रीमद्भागवत का भी सर्वदा पाठ करते थे। कहते हैं कि गीता का यह श्लोक पढ़ कर:—

"सर्वतः पाणिपादंतत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च॥

(त्रयोदशाध्याय १३-१४ श्लोक)

ये वैष्णवों के व्यवहार तथा वेदान्त के निर्गुण, निराकार के भवजाल में पड़ जाते थे। दोनों के मिलान में असमर्थ होने से इन्हें सन्देह होने लगता था। तब ये भगवान् के शरणापन्न होते थे। भगवान ने कदाचित् एक बार स्वप्न (१) में दर्शन देकर इन्हें आश्वासन भी दिया था कि "धैर्य धारण करो, उपयुक्त समय आने से हम नदिया में प्रगट होंगे।"

इस ईश्वरीय वाक्य को हृदय में धारण कर अद्वैत फूले न समाते थे और प्रतिक्षण भगवान् के भूतल में प्रादुर्भाव की आशा लगाये रहते थे। इनके अगाध पाण्डित्य और भक्ति के कारण अन्य धर्मावलम्बी भी इनसे भय करते तथा इनके सामने कुछ कहने और करने का साहस नहीं करते थे। वैष्णव तो इन्हें शिव का अवतार ही मानते थे।

श्रीयुत् बलराम मलिक बी० ए० ने "हिन्दू रिव्यू" में लिखा है कि यूरप के महान धर्मसंशोधकों में जैसे विक्लिफ (२) हुए थे, वैसे ही गौराङ्ग धर्म संस्कार में श्रीअद्वैताचार्य्य हुए हैं।

(१) श्रीगौरांग की जीवनी में स्वप्न की कई बातें पाते हैं।

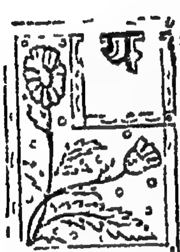
(२) यार्कशायर में १३२४ ई० में इनका जन्म हुआ था और लटर्वर्थ में १३८४ में इनका शरीरपात हुआ। ईसाई धर्म संस्कार के ये 'प्राततारा' माने जाते हैं। पादड़ियों के आचार व्यवहार को दूषणों से कलुषित देख इनका चित्त दुखित हो रहा था। इन्होंने आक्सफोर्ड में युवकों का एक दल तैयार किया था कि वे अपने आचरणों से पादड़ियों को उनके कर्त्तव्यों का उदाहरण दिखलावें एवं इन्होंने ईसाई मत के धर्म ग्रन्थ का सरल भाषा में अनुवाद कर के उसका भी प्रचार किया था। रोमन चर्च के दूषणों का उद्घाटन करने के कारण पोप ने इन्हें कई बार बेतरह फंसाना भी चाहा था किन्तु ये बराबर बेदाग निकलते गये।

Ransome's History of England और Emerson's Biographical Dictionary VII देखिये।

तृतीय परिच्छेद

अवतार

"गोपिन के अनुराग आगे आप हारे स्याम,
जान्यो यह लाल रंग कैसे आवे तन मैं;
ये तो सब गौरतनी, नख सिख बनी ठनी,
खुल्यो यां सुरंग अंग अंग रंगे बन मैं॥
स्यामताई मांझ सो ललाई हूं समाई जो हीं,
तातैं मेरे जान फिर आई यहै मन मैं;
जसोमति-सुत सोई सचीसुत गौर भए,
नए-नए चोज नाचैं निज निज गन मैं।"
(प्रियादास)


यह कवित्त श्री नाभादासकृत "भक्तमाल" की टीका में है। इसमें महाप्रभु को स्पष्ट शब्दों में कृष्ण भगवान का अवतार कहा है। आस्तिक हिन्दूमात्र अवतार में विश्वास करते हैं। गीता में अवतार का कारण बताया गया है। गोस्वामी श्रीतुलसीदास ने रामचरितमानस (रामायण) के इन छन्दों में उसीका आशय प्रगट किया है:—

"जब जब होई धरम की हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा। हरहि कृपानिधि सज्जन-पीरा॥
असुर मारि थापहिं सुरन्ह, राखहि निज श्रुति-सेतु।
जग विस्तारहि विसद जस राम-जनम कर हेतु॥"

अर्थात् संसार में धर्म की संस्थापना, अधर्म (अत्याचार) का विनाश, एवं लोकरञ्जन को स्वकर्त्तव्य-साधन में—चाहे वह परिवार, समाज, राजा, प्रजा, देश, विदेश, किसी के प्रति हो—आरूढ़ करना ही अवतार का प्रयोजन है।

इस व्याख्या से, धर्म विप्लव होने पर, सभी देशों और सभी जातियों के बीच अवतार की सम्भावना है, और विचारपूर्वक देखने से, ऐसा ही हुआ भी है। संसार में महात्मा मसीह तथा माननीय महम्मद साहब का प्रादुर्भाव ऐसे ही कठिन समयों में हुआ था, और उनके द्वारा निश्चय उन देशों से दुराचार का बहिष्कार और वहां सदाचार का प्रचार हुआ।

यह कहा जा सकता है कि न उन्होंने स्वयं अपने को कहीं अवतार कहा है, न उनके अनुयायी ही उन्हें अवतार मानते हैं। युनानी, रूमी या मुसलमानी धर्मकथाओं या दन्तकथाओं में भी अवतार की बात नहीं सुनी जाती। यह सच है; परन्तु इन महापुरुषों में से एक परमात्मा के पुत्र और दूसरे मित्र अवश्य कहे जाते हैं।

सच पूछिए तो जगत की सारी सृष्टि पर ब्रह्म का अवतार है। परन्तु सबमें उसका एक ही समान विकाश नहीं। इसीसे वेही पूर्ण, सर्वोपरि और सर्वश्रेष्ठ हैं।

हिन्दू-धर्म में सब समय जगत के कल्याणार्थ पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द का ही, और वह भी पूर्ण कला से ही, अवतार होना नहीं कहा जाता। अनेक अवतार अंशकला और विशेष विशेष शक्तियों से माने जाते हैं, एवं सबके द्वारा निर्दिष्ट कार्यसिद्ध होता गया है।

फिर भक्ति-भावनाओं में पितृभाव एवं सख्यभाव भी मुख्य हैं। अतएव वे ईश्वर के अवतार अवश्य कहे जायंगे। पुत्र पिता का अंश है ही, और मित्र से अभिन्नता होती ही है। दूसरे वे सन्त महन्त थे, और पांचवे सिक्ख गुरु कहते हैं—

'नानक साध प्रभु भेद न भाई।"

अतएव उनके अनुयायी कहें या न कहें, हम उन्हें अंशावतार निश्चय कहेंगे। उनमें ऐसी कला अवश्य थी, नहीं तो आज वे संसार में ऐसे सर्वमान्य नहीं होते।

बात यह है कि महापुरुषों के जगदुपकार के विचार से ही उन की गणना अवतारों में की जाती है, और उसी की मात्रा की विवेचना से पूर्ण वा अंश-कला का निर्णय होता है। तभी तो बुद्धदेव, जिन्हें आदि में ब्राह्मणगण आदर की दृष्टि से नहीं देखते थे, पीछे उन के गुणों पर ध्यान देने से हमारे दशावतारों में सम्मिलित किये गये।

आदि में अवतारों को अवतार स्वीकार करने में सब लोग तैयार नहीं होते। कारण कि सब में उनके पहचानने की योग्यता और क्षमता नहीं होती। और वे स्वयं भी अपने को छिपाते हैं। नहीं तो श्रीरामचन्द्र को वनवास देने का किसे साहस होता? शिशुपाल क्या इतना बढ़ चढ़ कर श्रीकृष्ण भगवान से बातें करता? या उनके दूत बनकर जाने पर दुर्योधन उन्हें नज़रबन्द करने का उद्योग करते? श्रीगुप्त, देवदत्त प्रभृति क्या बुद्धदेव के वध की चेष्टा करते? ईसा को क्या सूली दी जाती? महम्मद साहब को मक्का छोड़ कर क्या मदीना भागना पड़ता? सिक्ख गुरुओं को क्या पीड़ित होना तथा सिर देना पड़ता? क्या श्रीगौराङ्ग की ही काज़ी के पास निन्दा की जाती और उन्हें क्या अपनी वृद्धा माता, युवती पत्नी एवं धनधान्य सम्पन्न सुखद भवन त्याग कर संन्यास लेने की बारी आती?

प्रथम सब अवतार तथा महापुरुषगण साधारण दृष्टि से ही देखे जाते हैं। वे अपना काम भी साधारण ही के बीच आरम्भ कर देते हैं। कारण कि गण्यमान्य जो अपने को बुद्धिमान मान गर्वितचित्त बैठे रहते हैं उनका कथन और उपदेश[१] कान करने को उद्यत नहीं होते, वरन् उनकी कार्य्यसिद्धि में बाधा ही डालने पर उतारू हो जाते हैं। इसीसे यहूदी मंडली में अपनी बात नहीं सुनी जाने के कारण ईसा मसीह को पहले कई एक विद्याहीन को ही ईश्वरादेश सुनाना पड़ा। महम्मद साहब को भी पहले

असभ्यों अशिक्षितों में ही खुदा का पैगाम प्रचार करना हुआ। श्रीगौराङ्ग ने भी पहले सब से घृणा किये जानेवालों वैष्णवों ही की और साधारण व्यक्तियों ही को "हरिबोलाना" शुरू किया। हम यह नहीं कहते कि आदि में कोई बुद्धिमान और विद्वान इनका सहचर और भक्त हुआ ही नहीं। हुए तो श्रीवास, मुरारी पंडित, अद्वैताचार्य्य के समान महान पुरुष। परन्तु आदि में अधिकांश ऐसे ही लोगों ने इनके चरणों की शरण ली, जिन्हें देव मन्दिरों के द्वारा झांकने की भी क्षमता और आशा नहीं थी।

कार्य्य का सूत्रपात उपर्युक्त रीति ही से होता है, पर परमपुरुषों की अलौकिक प्रतिभा-प्रभा उत्तरोत्तर देदीप्यमान होकर उन्हें अवतार के आसन पर विराजमान करा देती है, और उनके संसार में न रहने पर भी संसार उनके चरणों पर नत हुआ करता है। कोई पीछे और कोई जीवन काल से ही अवतार कहलाने लगते हैं। श्रीगौराङ्ग को लोग इनके जीवन समय से ही अवतार मानने लगे थे। यह बात उनके जीवन वृत्तान्त से प्रकट होती है। और वे भी केवल साधारण जन नहीं, बड़े बड़े महान विद्वान और विद्यादिग्गज। दूसरों की बात कौन चलावे, उक्त बासुदेव सार्वभौम जिनके टोल में इन्होंने कुछ काल विद्याध्ययन किया था, जो अपने समय के अद्वितीय पंडित और वेदान्ती माने जाते थे और जिनके नाम का भारत के चतुर्पार्श्व में डंका बजता था, पीछे इन्हें इसी दृष्टि से देखने लगे थे।

श्रीगौराङ्ग का आविर्भाव साधारण समय में नहीं हुआ था। उस काल में महानद रूपी नदिया में विद्या की बाढ़ सी हो रही थी। उसमें टोल रूपी विविध विद्या शाखा के बोहित समूह शोभायमान थे, जिनके कर्णधार एक से एक दक्ष और कार्य्यकुशल पुरुष थे। तर्क की तरङ्गें ऐसी तरंगित हुआ करती थीं कि देखनेवालों और सुनने वालों की बुद्धि आश्चर्य भँवर में पड़कर

चकराने लगती थी। उन तरङ्गों में सगुण, साकार, भक्ति प्रेम की बात कौन कहे, ईश्वर का अस्तित्व भी न जाने कहां बह जाया करता था।

यह बहुत ही उपयुक्त समय था। नहीं तो आज अनेक बुद्धि-कुठार यह कहने को तैयार हो जाते कि अवतार की बात दूर कीजिये। उन्होंने तो अनपढ़ मूर्खों ही को अपने जाल में फँसा लिया था। वहां उस समय कोई विद्वान था ही कहां, जो उनका भंडा फोड़ता? पर तत्कालीन स्थिति स्मरण करने से ऐसा कहने का साहस किसीको न होगा।

चतुर्थ परिच्छेद।

पूर्वज, जन्म और शैशवकाल।



श्री गौराङ्ग के पूर्वज श्रीहट्ट (सिलहट) में वास करते थे और भरद्वाजवंशीय मिश्र थे। इनके पितामह का नाम उपेन्द्र मिश्र था। वे वैष्णव तथा सद्गुणसम्पन्न पंडित थे। खाने पीने से भी खुश थे। "चैतन्य चरितामृत" के लेखानुसार सप्त ऋषियों के सदृश उनके सात पुत्र थे। पर उस ग्रंथ में नाम केवल पांच हो का दिया हुआ है, यथा, कंसारि, परमानन्द, पद्मनाभ, सर्वेश्वर और जगन्नाथ पुरन्दर (१)। इस हिसाब से जगन्नाथ मिश्र उनके पांचवे पुत्र होते हैं। परन्तु "अमिय निमाई चरित" में इन्हें तृतीय पुत्र लिखा है।

जो हो, जगन्नाथ मिश्र विद्याध्ययन निमित्त सिलहट से नदिया आये थे और एक सुख्यात महान पण्डित होकर इन्होंने "पुरन्दर" की उपाधि प्राप्त की थी। पूर्वोक्त सार्वभौम के ये सहपाठी थे।

जैसे ही विद्वान् तद्रूप रूपवान भी थे। देखने में सौ में एक। सुप्रसिद्ध ज्योतिषी नीलाम्बर चक्रवर्ती ने इनके रूप और गुण के कारण अपनी ज्येष्ठा कन्या शची देवी का इनसे और कनिष्ठा कन्या का श्रीचन्द्रशेखर (आचार्य्य रत्न) से विवाह कर दिया।

चक्रवर्त्ती के दो लड़के भी थे यज्ञेश्वर और हिरण्य एवं वे भी सिलहट देशीय ब्राह्मण थे, नवद्वीप के बेलपुखरिया पल्ली में रहते थे। विवाह होने पर मिश्रजी अपने देश को नहीं लौट गये। वरन माया-पुर पाड़ा में जहां सिलहट देशीय अन्य लोग आवासित थे, इन्हों

---

(१) "सप्तमिश्र तार पुत्र, सप्त ऋषेश्वर। कंसारि, परमानन्द, पद्मनाभ सर्वेश्वर॥
जगन्नाथ मिश्रवर पदवी पुरन्दर। नन्द वसुदेव पूर्वे सद्गुन सागर॥"

नन्द वसुदेव की गणना करने से सात नाम होता है, परन्तु जहां तक हम समझते हैं इन्हें जगन्नाथ से सम्बन्ध है। अर्थात् वही पूर्वकाल में नन्द वसुदेव थे।

ने भी अपने रहने के लिये एक घर बना लिया और पतित-पावनी गंगा का सदा दर्शन पाते रहने की लालसा से यहीं रह गये। इन के साढ़ू का घर भी इनके घर के पास ही था।

शची देवी सरला, सुशीला, पतिपरायणा, स्नेहमयी एक आदर्श स्त्री थीं। मिश्र जी की आर्थिक अवस्था बहुत अच्छी न होने पर भी आंटा दाल की उतनी चिन्ता न थी। दम्पति का सानन्द सुखपूर्वक कालक्षेप हुआ करता था।

पूर्वसुकीर्ति के फलस्वरूप इन्हीं को श्रीगौराङ्ग के मातापिता कहलाने का परम सौभाग्य प्राप्त हुआ। गौराङ्ग इनकी दसवीं सन्तान थे। इनकी आठ बहनें शैशवावस्था में संसार से विदाई ले चुकी थीं। इनके जन्मकाल के समय एक नव दस वर्ष के भाई विश्वरूप (माता की नवीं संतति) वर्त्तमान थे।

विवाह के अनन्तर शकाब्द १४०६ (वि० सं० १५४१) में अपनी माता के इच्छानुसार जगन्नाथ मिश्र का अपनी स्त्री और पुत्र विश्वरूप के साथ सिलहट जाना हुआ था। उसी साल के माघ मास में, कदाचित् वहीं, महाप्रभु ने श्री माता शची के गर्भ में प्रवेश किया। मिश्र जी ने स्वप्न देखा था कि ज्योतिमय धाम श्रीभगवान ने उनके हृदय में प्रवेश कर फिर शची के हृदय में प्रवेश किया।

उस समय से रंग कुछ और हो दीखने लगा। शची की देह की ज्योति बढ़ने लगी। मिश्र के सम्मान में वृद्धि होने लगी। जहां तहां से लोग उन्हें प्रचुर पूजा भेंट भेजने लगे। (१) आकाश मंडल में देवगण स्तुति करते शची को दिखाई देने लगे।

---

१. श्री राम चरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास जी श्रीरामचन्द्र जी के सम्बन्ध में कहते है:—

"जा दिन तें हरि गर्भहि आये। सकल लोक सुख सम्पति छाये॥"

एवं रघुवंश के अनुसार रानियां गर्भावस्था में देखा करती थीं कि शंखचक्रादिधारी ह्रस्वकाय पुरुषगण उन की रक्षा कर रहे हैं; गरुड़ उन्हें आकाश में लेजाते हैं; लक्ष्मी उन की सेवा करती हैं, ऋषिसमूह वेदमंत्र पाठ कर उन की पूजा करते हैं। इत्यादि।

इन लोगों की तो यह दशा थी, उधर मिश्र जी की माता शोभा देवी को स्वप्न में किसी महापुरुष द्वारा यह आदेश हुआ कि तुम्हारी पुत्रवधू के गर्भ में स्वयं कृष्ण भगवान विराजमान हैं, तुम उन्हें नवद्वीप जाने की आज्ञा दो क्योंकि वहां के सिवाय ये अन्य स्थान में भूमिष्ठ न होंगे। अतएव माता की आज्ञा से, मन नहीं रहने पर भी, मिश्र जी बालबच्चे के साथ उसी साल के दसहरे में यात्रियों के संग नदिया लौट आये। सास ने शची को स्वप्न-वृत्तान्त सुना कर होनेवाली सन्तान को एक बार देखने की लालसा प्रगट की थी और शची ने उनकी आज्ञापालन करने की प्रतिज्ञा भी की थी।

एक माघ से दूसरा माघ हो गया। तौभी प्रसव की कोई सम्भावना न देखी गई। मिश्र जी ने घबड़ा कर अपने श्वशुर को बुलाया और उनसे सब हाल कहा। वे विख्यात ज्योतिषी थे, उन्हों ने गणना कर के कहा कि गर्भ से अब शीघ्र ही कोई महापुरुष जन्म ग्रहण करेंगे।

अन्ततः शकाब्द १४०७ (सं० १५४२) के फाल्गुन की पूर्णिमा को सूर्यास्त के कुछ काल पीछे नवद्वीप चन्द्र का उदय हुआ। इस कलंक रहित चन्द्र के उदय की लज्जा तथा ईर्ष्या से नभचन्द्र ने अपने मुंह पर ग्रहण का (१) बुर्का डाल लिया। उस समय आबाल-

---

१. ग्रहण के समय में विश्वमण्डल में निश्चय एक असाधारण घटना होती है। ऐसे काल में स्नान, पूजा, जप, तप, हरिनाम कीर्त्तन कोई हानि ग्लानि और मूर्खता की बात नहीं है। धर्मपरायण हिन्दू सदा से ऐसा करते चले आते हैं। उनका ऐसा करना सर्वथा उचित और उत्तम है। आज हिन्दुओं को हेय समझनेवाली यूरोप देशीय जातियों की दशा, जो कोई, पौने तीन सौ वर्ष पूर्व इस सम्बन्ध में थी, फ्रांस देशीय फ्रेंकिस वर्नियर के मुख से सुनिये। वह भारत में भ्रमण करने आये थे और १६५६ से १६६८ ई० तक यहां रहे थे। १६६६ ई० में ग्रहण के उपलक्ष में स्नानादि के लिये दिल्ली में यमुना किनारे भारी भीड़ देख उन्हें १६५४ ई० में फ्रांस के सूर्यग्रहण की बात याद आ गई थी और वह कहते हैं:—"उस समय यहां के लोगों को भय ने ऐसा दबाया था कि उन्होंने ग्रहण से बचने के लिये बहुत सी दवाइयां तथा

वृद्ध सहस्रों मनुष्यों के मुख से " हरिबोल, हरिबोल " की ध्वनि यह सूचना दे रही थी कि बस अब अल्प काल ही में उस नगर के घर घर और डगर २ में, नहीं नहीं, सारे भारत के नगर नगर में, हरिकीर्तन की ध्वनि से गगनांगन गूंजने लगेगा।

जन्म सिंहराशि तथा सिंह लग्न में और पूर्व फाल्गुनि नक्षत्र में हुआ, जैसा कि चैतन्य चरितामृत में लिखा है " सिंहराशि सिंहलग्न उच्चग्रहगण। षडवर्ग अष्टवर्ग सर्व्व शुभक्षण ॥ " इसीसे लोगों ने गौराङ्ग का जन्म पत्र भी प्रस्तुत किया है।

वही ग्रंथ कहता है कि उस समय देव गण आकाश मंडल में नृत्य गान करने लगे एवं जंगम, स्थावर सब आनन्दविह्वल हो गये। (१)

जड़ीबूटियां मोल ली थीं। बहुतेरे अंधेरे कमरों और कोठियों में छिपे हुए थे। और ठट्ट के ठट्ट नगरनिवासी गिर्जाघरों में रक्षा के लिये पहुंच गये थे। कतिपय बुद्धिमानों पर तो इतना भय छा गया था कि वे समझने लगे थे कि अब शीघ्र ही प्रलय होगा और यह ग्रहण सारे संसार को नष्ट कर देगा। "—बाबू गंगा प्रसाद गुप्त अनुवादित "बर्नियर की भारत यात्रा" भाग ३, पृ० ६९-७१.

१, श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण भगवान के जन्म काल के सम्बन्ध में कहा है.—

"जायमानेऽजने तस्मिन्ने दुदुन्दुभयो दिवि ।
जगुः किन्नरगन्धर्वास्तुष्टुवु सिद्धचारणा·
विद्याधर्यश्च ननृतुरप्सरोभि·समंतदा ॥"

श्री रामचन्द्र के जन्म समय वाल्मीकि जी कहते हैं:—

"जगु कलं च गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
देवदुन्दुभयो नेदु· पुष्पवृष्टिश्च खात्पतत् ॥ " सर्ग १८ श्लोक १७।

और श्रीतुलसी दास जी लिखते हैं :—

"सो अवसर विरञ्चि जब जाना। चले सकल सुर साज विमाना ॥
गगन विमल सकुल सुरजूथा। गावहिं गुन गंधर्व बरूथा ॥
बरषहि सुमन सुअंजलि साजी। गहगहि गगन दुंदभी बाजी ॥
अस्तुति करहि नाग मुनिदेवा। बहुबिधि लावहिं निजनिज सेवा ॥

और यथा रागः—

"नदिया उदय गिरि, पूर्णचन्द्र गौर हरि, कृपा करि हइल उदय।
पापतमो हइल नाश त्रिजगते उल्लास जग भरि हरि ध्वनि हय॥"

अद्वैत, हरिदास, आचार्यरत्न, श्रीनिवास तथा अन्य भक्तों और वैष्णवों के मन में आनन्द की लहरें उठने लगीं। सब हर्षित चित्त स्नान, दान में लग गये। परन्तु इस महान आनन्द का विशेष कारण किसीको भान नहीं हुआ। हरिदास श्री अद्वैत से कहने लगे तुम्हारा यह रंग, हमारे हृदय में प्रसन्नता की तरङ्ग,—कुछ भलाई की निश्चय सम्भावना है।

उधर श्री गौराङ्ग के आविर्भाव के दिन निताई (नित्या नन्द जी) ने अपने स्थान में सानन्द ऐसा गर्जन किया कि भागीरथी का दक्षिण तटस्थ समुच्चय राढ़ देश एक दम गूंज उठा (१) कोई कहने लगे कि यह प्रलय का गर्जन हुआ; किसीको इससे संसार में भारी अनिष्ट का भय हुआ। पर किसीको यह ध्यान नहीं हुआ कि उनके मध्य एक महापुरुष के शुभागमन का सूचक वह गर्जन हुआ था।

---

१ "मुकालिफ" साहब का "सिक्ख धर्म्म" ग्रन्थ भाग ४, पृ० ३५८—५९ में लिखा है कि श्रीगुरु गोविन्दसिंह जी के जन्म के दिन प्रातः काल भीखन शाह नामक एक खुर्रम देशीय सैय्यद ने पूर्व दिशा की ओर झुक कर सिजदा किया और अपने शिष्य वर्ग के उसका कारण पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया कि अभी पटना में दीन दुनिया के बादशाह ने जन्म ग्रहण किया है जो धर्म्म का प्रचार और दुराचार का संहार करेंगे और पटना आकर उन्होंने हठ पूर्वक शिशु गुरु गोविन्द सिंह जी का दर्शन कर उन्हें साष्टांग प्रणाम किया और उनकी पूजा भेंट की। उन्होंने एक दूध पूर्ण और दूसरा जलपूर्ण—दो घड़ों को भी बालक गुरु के आगे रखा और बालक श्री गुरु गोविन्द सिंह जी ने हसने खेलने दोनो घड़ों को अपने हाथ से छू दिया। इसका भाव शाहने यह बताया कि यदि एकही घड़ा को छूते तो भूमण्डल में कोई मुसलमान शेष नहीं रहता। अब हिन्दू मुसलमान दोनों रहेंगे और आप दोनों को अपने धर्म्म में सम्मिलित करेंगे।"

पाठक वृन्द! नित्यानन्द तथा पूर्वोक्त अन्य महाशय कौन थे, इसके जानने के लिये अभी उत्सुकता प्रकट मत कीजिये। इन लोगों का समस्त हाल आपलोगों को आगे आप ही आप ज्ञात हो जायगा।

अभी इतना जान लीजिये कि गौराङ्ग के जन्म का समाचार सुन कर अपने पराये इष्ट मित्र सब जगन्नाथ मिश्र को सहर्ष बधाई देने पहुंचे। उन्होंने सबों का आदर सत्कार, जातिक्रम विधि और जाचकों का मान दान सब व्यवहार यथोचित सम्पन्न किया।

फिर श्रीवास पंडित की पत्नी मालिनी, आचार्य्य रत्न की भार्य्या शची की भगिनी, अद्वैत की अर्धाङ्गिनी सीता देवी तथा अन्यान्य युवतीगण वस्त्राभूषण लिये बालक को देखने और दम्पति को बधाई देने आईं एवं शिशु का दर्शन पाकर तथा मिश्र द्वारा सम्मानित और पूजित हो यथा समय अपने अपने घर लौट गईं।

मिश्र जी वैदिक ब्राह्मण, महान पंडित, शान्त वैष्णव, अलोभी पुरुष थे। शुद्ध दान द्वारा और पुत्र के प्रभाव से जो कुछ पाते उसे विष्णु प्रीत्यर्थ दान कर शेष से जीवन निर्वाह करते थे।

गौराङ्ग के नाना नीलाम्बर चक्रवर्ती ने जन्म कुंडली बनाने पर लग्न और ग्रहादिक के तथा अङ्ग चिन्हों के विचार से, यह देख कर कि कुछ काल बीतने पर ये एक महान पुरुष होंगे; संसार का उद्धार करेंगे एवं विश्व भर में इनकी सुख्याति प्रसारित होगी, इनका नाम विश्वम्भर रखा। किन्तु इनका प्रसूत घर एक नीम वृक्ष के तले स्थित होने से इनकी माता इन्हें निमाई कहती थीं। और नवद्वीप भर में यही नाम प्रसिद्ध हुआ।

"अमिय-निमाई-चरित" में लिखा है कि "श्री गौराङ्ग के भूमिष्ठ होने पर धात्री को ऐसा प्रतीत हुआ मानो बालक जीवरहित है और बहुत चेष्टा करने पर निश्वास चलने लगा जिससे आनन्द

ध्वनि होने लगी। अतएव यमराज के निकट बालक को नीम जैसा कड़ुआ बनाने के लिये, इनकी माता इन्हें इस नाम से पुकारती थीं।" अर्थात् नीम को कड़ुआ समझ कर जैसे कोई नहीं खाता, नहीं पूछता, वैसे ही यमराज भी इन्हें न पूछेंगे। मित्रवर प्रोफेसर यदुनाथ सरकार का कथन है कि अनेक सन्तानों के कालकवलित हो जाने के कारण शिशुघातिनी, डांकिनी, शांकिनी की शान्ति के निमित्त इनका यह हीनता बोधक नाम निमाई-अर्थात् अल्पजीवी—(१) रखा गया था। इस विचार से तो विश्वरूप का ही ऐसा नाम होना चाहता था, क्योंकि उनका जन्म बहनों के मरने पर हुआ था। ये तो भ्राता के जीवनकाल ही में संसार में आए।

यज्ञोपवीत के समय इनका नाम "गौरहरि" पड़ा (२) प्रतिवासिनी महिलाओं को इनके सौन्दर्य के कारण इन्हें इसी नाम से पुकारना अच्छा लगता था। भक्तजन इन्हें गौराङ्ग वा गौर कहा करते थे। संन्यास लेने पर इनका गुरुप्रदत्त नाम श्रीकृष्ण चैतन्य हुआ।

गौरहरि थे तो नरबालक के ही समान, परन्तु इनकी आकृति प्रकृति में कुछ विलक्षणता अवश्य थी। वयस विचार से इनका शरीर बड़ा था। थे बड़े ही हृष्टपुष्ट और बलवान। गोद में सम्हाले नहीं जा सकते थे।

जब सात आठ महीना गर्भ में रहनेवाला बालक दुर्बल तथा सदा रोगी देखा जाता है, तब तेरह मास गर्भ में बितानेवाला बालक

१. कदाचित् प्रोफेसर साहिब ने "निमाई" शब्द को शंकरजात (hybrid) शब्द बना कर उस का अर्थ अल्पजीवी (Short-lived) किया है। "नीम" का अर्थ आधा अल्प और "आई" (आयु) का अर्थ वयस।

२. इस नाम करण का कारण उसी प्रकरण में ज्ञात होगा। इन के और नाम भी पाये जाते हैं। विष्णु सहस्र नाम के सदृश इनकी भी कोई नामावली तैयार की गई हो तो आश्चर्य नहीं।

का बलवान और रोग रहित होना स्वाभाविक है। देखिये १८ वर्ष गर्भ में रहने के कारण श्री शुक्राचार्य्य को जन्म लेते ही भागने और दौड़ने की शक्ति हो गई थी।

जीवन भर में गौराङ्ग के एक बार ज्वर ग्रस्त होने की बात कही जाती है और उसका भी लोगों ने कई भाव बताया है।

यह तो अभी कहा है कि इन्हें गोद में लेना और सम्हालना कठिन हो जाता था। पर साथ ही साथ गोद में लेते ही लेनेवाले का चित्त प्रफुल्लित तथा शरीर रोमाञ्चित होने लगता था। गोद से उतारने का जी नहीं चाहता था। यही इच्छा होती थी कि सदा अंक में लिये हृदय से लगाये रहें।

शैशवकाल में यह सदा अपनी जननी की गोद में रोया करते थे। जब इनकी माता या पड़ोस की नारियां "हरिबोल, हरिबोल" उच्चारण करतीं तब यह शान्त हो जाते थे। इससे इनके घर में और आङ्गन में सर्वदा "हरिबोल" की धूम मची रहती थी।

इनका रूप लावण्य अद्वितीय था। इनकी मूर्ति बड़ी ही सुहावनी और मनोमोहिनी थी। शरीर शुद्ध तप्त स्वर्ण के समान क्यों, उससे भी कहीं अधिक, देदीप्यमान था। जैसे व्रजबिहारी कृष्ण की साँवली सलोनी छवि आबाल वृद्ध को मोहित किए रहती थी, वैसे ही इनका सौम्य स्वरूप मनमोहक था।

एक बार श्रीवास पंडित का एक मुसलमान दरजी इनका रूप देख कर "देखा है, देखा है" कहता हुआ कई दिनों तक पागल सा हो गया था। एवम् इनका करतल अवलोकन कर विजय नामक आखरियां (सुन्दर अक्षर लिखनेवाले) की भी यही दशा हो गई थी।

इन की विश्वमोहिनी रूप छटा ही के कारण पूतिवासिनी स्त्रियों को इनका "गौर हरि" नाम प्रिय लगता था और इनका देखने के लिये वे सदा लालायित रहती थीं।

सच पूछिये तो ये श्रीकृष्ण भगवान के प्रतिरूप ही थे। केवल रङ्ग ही का भेद था। इसी से कृष्ण दास जी ने कहा हैः—

"देखिया बालक ठाम, साक्षात गोकुल कान,
वर्णमात्र देखिविपरीत।"

बस भेद यही था कि वह मरकतमणि निर्मित प्रतिमा थे तो ये स्वर्णनिर्मित, गैाराङ्ग की सौंदर्य्यमयी मूर्ति जैसी चित्ताकर्षिणी थी, वैसी ही कोकिला के समान इनकी बोली भी मीठी थी। बोली क्या थी, मानो अमृत झरता था। इनमें रोष का लेश तो था ही नहीं।

पद—

गैारहरी छवि वरनि न जाई।
लाला दाग भयो उर अन्तर, लखि पद तल अरुनाई॥
जावक जपा जलज द्युति फीकी, कैारिन रोरि विकाई।
बालरवी लाली गिनती कित, छिनही जात विलाई॥
नरगिस नैन तकत टक लाये हरिनी विपिन लुकाई।
मीन दीन जल मों डूबे हैं, खंजन चित विकलाई॥
आनन श्रोप निरखि लजि भाज्यो, नभ ससिमुख मसिलाई।
चपला घन श्रोटन सों झांकति, ह्वै न सकति समुहाई॥
तप्त स्वर्ण लों झलमल झलकत, गोरा (१) गात गुराई।
मनमोहति हांसो सुखरासी, बोलनि की मधुराई॥
कवि जस कृष्ण केर छवि भाषत, तस सब परति लखाई।
केवल कर मुरली नहि राजति, तथा बरन विलगाई॥
कृष्णनाम जग वितरन करि हैं, कीर्तन रीति सिखाई।
जाति कुजाति सकल दल तरि हैं, नौका नाम चढ़ाई॥
शिवनन्दन जौंहित निज चाहत, तजि सब मन कुटिलाई।
शरण गहहु ध्यावहु निसु वासर, कृष्ण, गैार, चितलाई॥

१. गैारांग का एक नाम है।

कुछ दिन बाद जब ये घुटनों के बल चलने लगे तब माता पिता तथा पड़ोसियों का हर्षवर्द्धन एवं इनके आंगन का शोभावर्द्धन होने लगा। जैसे सूरदास जी एवं तुलसी दास जी ने श्रीकृष्ण चन्द्र और रामचन्द्र के शैशवावस्था में आंगन में घूमने की शोभा का वर्णन किया है इनके भक्त ग्रन्थकारों ने तद्रूप उस अवस्था की छवि दरसाई है।

किन्तु इस समय इनको अधिक निरीक्षण की आवश्यकता हो गई थी। लोगों की तनिक असावधानी होने ही से यह घुटनों के बल घर से बाहर निकल सड़क अथवा गङ्गा तट की ओर चल पड़ते थे। गंगा के निकट ही इनका भवन था। बंगाल में सर्पों का आधिक्य है ही। माठों (मैदानों) में तथा घर ग्राम में दिन में भी कई बार दीख पड़ते हैं। एक दिन इन्होंने एक सर्प को पकड़ लिया था। इससे घरवाले एवं पड़ोस वाले इनसे सदा सर्वदा सावधान रहते थे।

बाल काल ही से श्री गौराङ्ग नृत्य करने में बड़ा आनन्द पाते और दर्शकों को आनन्द देते थे। इससे महल्ले की युवतियां तथा वृद्धा स्त्रियां सभी मिठाई, केला इत्यादि देकर इनके आंगन में इन्हें नित्य ही नचाया करती थीं। ये हाथों में खाद्य पदार्थ लिये दोनों हाथ ऊपर उठाये जब नाचने लगते थे तो प्रतीत होता था कि ये स्ववश नहीं हैं इन्हें कोई अलक्ष पुरुष कठपुतली के समान नचा रहा है। इनका नृत्य देख लोगों को अति आश्चर्य्य और महानन्द होता था। लोग अपने को भूल जाते थे। किसीके चित्त में भक्ति का उदय होता, किसीके नेत्रों से जलधारा प्रवाहित होने लगता, कोई प्रेमप्रवाह में बहने लगता और किसीके मन में स्वयं नृत्य करने का उमङ्ग उठता था; पर लज्जा उसे सजोर रोक लेती थी।

इसी प्रकार का नृत्य ये अपने वयस्यों के संग भी करते थे। वे भी इनके साथ नाचते और धूलि में लोट पोट करते थे। जिनमें कुछ कसर देखते, उन्हें अंक में लगाकर उनका उमङ्ग बढ़ाते थे।

यह तो ऊपर ही कहा गया है कि गर्भावस्था ही में शची को आकाशमंडल में दिव्य पुरुषगण स्तुति करते दृष्टिगोचर होते थे। गौराङ्ग के आविर्भाव के अनन्तर भी इनके माता पिता और स्वजन को कभी २ अलौकिक दृश्य देखने में आता था। बालक गौराङ्ग के सोये रहने पर कभी कोई उनके वक्षस्थल पर चान्द सा कुछ चमकता देखता था। कभी शची ज्योतिर्मयी मूर्तियों से घर भरा देख उन्हें भूत प्रेत समझ उनके निवारण का उपाय करती थीं। एक दिन देखा कि वैसी ही मूर्तियां शिशु को कुछ कर रही हैं। उन्हें जगाकर जो पास के घर में उन्हें बाप के पास भेजा तो शिशु के जाते समय मा बाप दोनों को नूपुर का शब्द सुन पड़ा, यद्यपि शिशु के पग में कोई आभरण नहीं था।

एक दिन माता पिता आंगन में चक्रादियुत चरण चिन्ह देख कर कहने लगे सम्भवतः घर के ठाकुर बाल गोपाल सशरीर आँगन में खेलते हैं, उसी समय शिशु गौराङ्ग नींद से जाग उठे और माता का स्तन पान करते उन्होंने अपने पैर में उन चिन्हों को दिखलाया। इस पर नीलाम्बर चक्रवर्त्ती को बुलाकर उनसे सब बातें कही गईं। उन्होंने उत्तर दिया कि हम ये सब पहले ही से जानते हैं। यह लड़का मनुष्य नहीं, महापुरुष है।

लिखा है कि एक दिन मिश्र ने बालक गौराङ्ग की चपलता से चिढ़ कर उन्हें भर्त्सनायुत धर्म शिक्षा देने का विचार किया। रात को उन्होंने स्वप्न में देखा कि एक ब्राह्मण कह रहा है कि "ऐसा न करना तुम अपने पुत्र का तत्त्व नहीं जानते कि वह क्या है।" परन्तु मिश्र ने उन्हें साफ २ सुना दिया कि "पुत्र कोई हो, पिता का धर्म उसे शिक्षा देने का है; हम धर्म मर्म न सिखावेंगे तो कौन सिखावेगा?" यह सुनकर वह ब्राह्मण बहुत संतुष्ट हो चुप तथा अदृश्य हो गया।

सर्वदा खेल में लगे रहने और लिखने पढ़ने की ओर एक दम ध्यान न देने के कारण मिश्र जी एक बार छटा लेकर गङ्गा की रेत पर जहां शिशु गौराङ्ग समवयस्कों के संग खेल रहे थे इन्हें मारने भी गये थे। पर पीछे से शीघ्र पहुंच कर शची ने पुत्र की रक्षा की और इनको रोते देख मिश्र जी को भी दया आ गई और इन्हें गोद में ले मुखचुम्बन द्वारा वे स्नेह प्रदर्शन करने लगे। इस समय इनकी अवस्था ५ वर्ष की होगी।

माता पिता की वृद्धावस्था में इनका जन्म होने के कारण वे लोग इनका बहुत लाड़ प्यार करते थे। अतएव ये कुछ हठी और जिद्दी हो गये थे। परन्तु पिता का भय करते थे। उन्हें प्यार भी करते थे। भाई से बहुत दबते थे, पिता से अधिक उनका सम्मान करते थे। माता सीधी साध्वी धर्मनिष्ठ सदाचारिणी थीं। उनके संग खेल कौतुक करने में और उन को चिढ़ाने में ये बहुत आनन्द अनुभव करते थे। कभी २ जितना ही स्नेह से वे इनसे बातें करतीं, उतना ही यह उनसे मुंह फेर लेते। जितना ही वे इन्हें साफ सुथरा पवित्र रखना चाहतीं, उतनाही ये देह में जूठ मलते, अपवित्र स्थानों और वस्तुओं पर जा जा कर बैठते थे। परन्तु माता के प्रति उनका स्नेह उबला पड़ता था। कभी उनकी आज्ञा का उल्लंघन करना नहीं चाहते थे।

आज तो आप ही माता पिता का आदर और प्यार नित्य प्रति ह्रास को प्राप्त होता जा रहा है, यदि ऐसे महान पुरुषगण अपने कार्य्यद्वारा माता पिता के स्नेह सम्मान की शिक्षा न दिये होते तो आज के लोग पशु पक्षियों के समान सयाना होते हो, उन्हें सर्वथा भूल ही जाया करते और सम्बन्धविच्छेद कर दिया करते।

इनके स्वदेशीय सिलहटी भी इनकी करनी करतूतों से नहीं बचते थे। कभी २ यह नौबत आ जाती थी कि वे इन्हें लाठी लेकर

मारने दौड़ते, कभी हाकिम के पास फर्याद करते। पर इनकी हंसी दिल्लगी बन्द नहीं होती थी। हाकिम दारोगा भी इनके साथ हो उनका ठट्ठा उड़ाने लगते थे। परन्तु स्वदेशीय सिलहट निवासियों के सिवाय और किसीसे ये हंसी मज़ाक नहीं करते थे।

भ्राता के संन्यासी होने के बाद से इन्होंने माता को चिढ़ाना तो प्रायः बन्द कर दिया था। पर अध्यापक का कार्य्य आरम्भ करने पर भी इन्होंने सिलहटियों और वैष्णवों के संग छेड़ छाड़ बन्द नहीं किया।



पंचम परिच्छेद

अलौकिक बातें




न समसामयिक ग्रन्थकारों ने इनकी बाल-लीलाओं के वर्णन में अनेक अलौकिक घटनाओं का उल्लेख किया है। इनका कार्य और कथन कभी कभी ऐसा होता था कि देखने सुननेवाले चित्त-चकित और बुद्धि-भ्रमित हो जाते थे। इनकी माता तो कभी कभी इनके पागल होने का भ्रम हो जाया करता था। कभी इनकी बातें सुन कर समझती थीं कि "यह कोई महा ज्ञानवान पुरुष है, इसका अबोध बालक बनना केवल बनावटी रङ्ग है।" कभी अनुमान करतीं कि "हमारा पुत्र तो स्वयं बहुत ही भला आदमी है पर इसे गांववाले नष्ट कर रहे हैं।" परन्तु सचमुच यह क्या थे, यह बात बेचारी सीधी साध्वी माता कैसे जान सकती थी। उनका हृदय वात्सल्य-प्रेम से पूर्ण था। और ये भी यद्यपि बाह्य रूप से उनकी शङ्का नहीं करते और उनको चटखाने में आनन्द मानते, पर अन्तःकरण में इन्हें माता का गाढ़ और अथाह प्रेम था। उनकी अनुमति के विरुद्ध ये जीवनपर्य्यन्त कोई काम करना नहीं चाहते थे। कठिनावस्था उपस्थित होने पर भी इन्होंने इसका परिचय दिया है।

अब इनकी लीलाएं देखिए और बातें सुनिए। एक दिन इनकी माता कटोरा में धान का लावा और गुड़ देकर घर के भीतर गयीं। कुछ देर के बाद बाहर आने पर क्या देखती हैं कि ये लावा न खाकर मिट्टी खा रहे हैं। बच्चों का चुपके मिट्टी खाना एक साधारण घटना है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। पर जब माता ने इनके मुंह से मिट्टी निकाल कर मिट्टी खाने का कारण पूछा तो इन्होंने कहा कि "तुम्हीं ने तो मिट्टी खाने को दिया। इसमें हमारा क्या दोष? जितने खाद्य पदार्थ हैं सभी

मिट्टी ही के विकार हैं। इस मिट्टी में और उनमें भेद क्या है? देह और खाद्य पदार्थ तो सब मिट्टी ही हैं।" माता ने कहा कि जिस विशेषावस्था में मिट्टी जिस विशेष कार्य के लिए उपयुक्त होगी, उससे वही काम लिया जायगा। मिट्टी के प्याले से पानी पीया जायगा, किन्तु उसकी बनी ईंट तो खायी न जायगी"। अपने को छिपाते हुए इन्होंने माता की बात मान ली और आगे ऐसा न करने की प्रतिज्ञा की।

एक रात सोने के समय ये अपनी माता की छाती पर चढ़ और उनका हाथ पकड़ कर ज़ोर से हिलने लगे। क्लेश होने से माता ने कहा, "तू पागलपना क्यों करता है?" न ऐसा करना ही और न कहना ही कोई अलौकिक घटना कहा जायगा। परन्तु आपने जो उत्तर दिया वह सुनिये। "हे माता! हम पागल नहीं हैं वरन् हमारे सिवाय संसार मात्र पागल है।"

एक दिन रसोई घर से निकाली हुई हांड़ी पर हांड़ी रख कर आप उस पर बैठे थे। माता ने यह देख कर बहुत धिक्कारते हुए कहा कि 'तू एकबारगी नष्ट हो गया. तुझे ब्राह्मण कौन कहेगा?" क्या इस घटने में भी कोई अपूर्वता है? कितने लड़के घूरे गँदोड़े पर अपवित्र स्थानों में बैठे खेला करते हैं। अलौकिकता है इनके उत्तर में। पांच वर्ष के बालक के मुंह से यह कथन! आप कहते हैं, "हे माता! पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, ये पंच, तत्व, संसार, पवित्रता, अपवित्रता आदि सब कल्पनामात्र हैं। केवल उसी परिपूर्ण अद्वैत श्रीभगवान का अनन्त ऐश्वर्य ही ब्राह्मण रूप में प्रकाशित दीखता है।' उसके सिवाय और कुछ नहीं है।" (१)

(१) मुरारि गुप्त ने अपने कड़चा में इस उत्तर का भाव इस श्लोक में दिखलाया है:—
"शृणु शुचिरशुचिर्वा कल्पनामात्रमेतत्। [illegible] जगद्धि॥
विगतविधिनिषेधः [illegible]। [illegible]॥"
मुरारिगुप्त का [illegible] स्थान [illegible] होगा।

यह बात सुन कर शची को अति आश्चर्य और विस्मय हुआ। उन्हींको कौन कहे, पांच वर्ष के बालक के मुख से निर्गत ऐसी बातें बड़े बड़े पंडितों को भी आश्चर्य में डालनेवाली हैं।

ऐसे ही पागल पुत्र का मस्तिष्क ठेकाने पर लाने का उपाय सोचने के लिए जब शची ने एक बार अपनी बहन प्रभृति को बुला कर स्त्रियों की सभा की थी, तो उन महिलाओं के यह कहने पर कि "निमाई! तुम ब्राह्मणकुलोद्भूत एक महान् पंडित के पुत्र होकर देवता को नहीं मानते", इन्होंने मुंह बना कर कहा था कि "हम किस देवता को मानेंगे? हम ही को सब मानेंगे।"

बालक गौराङ्ग का मिज़ाज ठिकाने पर लाने के लिए स्त्रियों ने षष्ठी की पूजा की सम्मति दी। शची जब पूजा की सब तैयारियां कर इनसे छुपके पूजा करने जा रही थीं, ये रास्ते में पहुंच कर सब पूजासामग्री छीन कर स्वयं भक्षण कर गये और कहने लगे कि "हमारे ही भोजन से षष्ठी सन्तुष्ट हो जायंगी।" गोवर्द्धन-पूजा से इन्द्र भी सन्तुष्ट हुए थे। पर वे देवराज थे, तुरत पूजा करने और करानेवाले से बदला लेने को उद्यत हो गये। पर बेचारी षष्ठी दुर्बल देवी होने के कारण मौन हो रहीं।

एक दिन मेघमाली नामक एक चोर (१) आभूषणों से भूषित देख, इन्हें मार कर आभरण अपहरण करने के विचार से कन्धे पर बिठा कर इनके द्वार से इन्हें ले चला। परन्तु इनके अङ्गों का स्पर्श होते ही उसके मन का भाव परिवर्तित हो गया और इन्हें

(१) श्रीकेदार नाथ दत्त भक्तिविनोद ने दो चोर लिखा है, किन्तु किसी का नाम नहीं दिया है। "श्री अमिय-निमाइ-चरित" में एक चोर लिखा है और उसका नाम भी मेघमाली दिया है।

वध करने के विचार सें उसका कलेजा कांपने लगा। ज्यों ज्यों आगे डेग रखता, इनके प्रति उसका प्रेम वर्द्धित होता। अन्त में वह इन्हें इनके घर पहुंचा कर चम्पत हुआ। इधर नगर में सर्वत्र इनकी खोज हो रही थी और कहीं पता न लगने से घरवालों और बन्धु बान्धवों के चेहरों पर उदासी छा रही थी। इतने में ये हँसते और दौड़ते आकर अपने पिता की गोद में सानन्द बैठ गये और पूछने पर कहने लगे कि एक मनुष्य उन्हें ले गया था और वही फिर यहां रख गया। उस चोर का मन उसी क्षण संसार से विरक्त होने से वह गृहत्यागी हो परम साधु हो गया। ईश्वर की कृपा एक क्षण में चोर को साधु बना देती है।

महापुरुषों की दृष्टि, स्पर्श तथा वासस्थान का ऐसा ही प्रभाव होता है। काशी में श्रीगोस्वामी तुलसीदास जी की कुटी में जब चोर चोरी करने गये थे, तो श्यामल, गौर दो पुरुषों को उनकी रक्षा करते देख, उनके दर्शन एवं उस स्थल के प्रभाव से उन लोगों का चित्त ऐसा निर्मल हो गया कि चौर्यकर्म परित्याग कर वे प्रातःकाल ही गोस्वामी जी के शरणापन्न हो साधु बन गये। इसी सम्बन्ध में एक भक्त कहते हैं:--

"अति सुन्दर रूप अनूप महा छवि कोटि मनोज लजावन हारे।
उपमा न कहूं सुखमा के सुमन्दिर मन्दिर हूं के बचावन हारे॥
दिननायक हूं निसिनायक हूं मदनायक के मदनावन हारे।
सांवरे राजकिशोर बसो चित चोरन हूं के चुरावन हारे"॥

यहां भी दस्यु इनका आभरण अपहरण नहीं कर सका, पर इन्होंने उसका चित्त निश्चय चुरा लिया।

एक बार एक यात्री ब्राह्मण आप के घर अतिथि हुए। जब वह भोजन तैयार कर ध्यानपूर्वक उसे श्रीकृष्ण भगवान् को भोग लगा रहे थे, आप चट वहां पहुंच कर स्वयं उसे भोजन कर गये। बालक गौराङ्ग की करनी पर उस विप्र को बड़ा आश्चर्य हुआ। मिश्र जी

की प्रार्थना से उसने द्वितीय बार भोजन प्रस्तुत किया, पुनः वही दशा हुई। बहुत कहने सुनने और अनुनय विनय से बाबा जी फिर भोजन बनाने लगे और उधर घरवाले निद्रा देवी के वशी हुए; तब इन्होंने कृष्ण के रूप में उन्हें दर्शन दिया और अपने इष्टदेव के दर्शन से वह ब्राह्मण देवता अलौकिक और अवर्णनीय आनन्द से आत्मविस्मृत हो गये।

गोकुल में श्रीकृष्ण भगवान् ने एक ब्राह्मण के संग ऐसी ही लीला की थी। उस घटना का वर्णन भक्तशिरोमणि श्रीसूरदास जी ने इस पद में किया है।

"पांडे नहिं भोग लगावन पावै।
करि करि पाक जबै अर्पत है तबहिं तबहिं छ्वै आवै॥
इच्छा करि मैं ब्राह्मन न्योत्यौं तू गोपाल खिझावै।
वह अपनो ठाकुरहिं जेंवावत तू ऐसे उठि धावै॥
जननी दोष देहु जनि मोको करि विधान बहु ध्यावै।
नैन मूंदि, कर जोरि, नाम लै, बारहिं बार बुलावै॥
कह अंतर क्यों होइ भक्त को जो मेरे मन भावै।
सूरदास बलि हौं ताकी जो जन्म पाय जस गावै॥"

एक बार एकादशी के दिन ये बेतरह रोने लगे। आंखों से आंसू की नदी बह चली। आज इन्हें "हरि बोल" भी शान्त नहीं कर सका। अधीर होकर शची ने कहा कि "तुम इतना क्यों रो रहे हो? जो मांगो, वह दें।" परन्तु इनका मांगना मूढ़ी लावा नहीं था। इनकी मांग ने सबोंका हवास ठिकाने लगाया। इन्होंने कहा कि "तुम्हारे पड़ोसी जगदीश पण्डित तथा हिरण्य भागवत के घर जो पूजा के लिए नैवेद्य हैं वे ही पाने से हम चुप होंगे।"

यह साधारण बात नहीं थी। दूसरे के घर की पूजा की सामग्री बिना पूजा हुए अपने बच्चे के खाने के लिए मांगने का कोई राजा बाबू भी साहस नहीं कर सकता।

इनकी बात सुन कर सबों को सकता मार दिया। यह समाचार उन विप्रों के कानों तक पहुंचा। वे कौतूहलवश तुरत इनके घर पहुंचे। उन लोगों ने सोचा कि इतने छोटे शिशु को यह कैसे ज्ञान हुआ कि आज एकादशी है और हम लोगों के घर पूजा होगी? निश्चय इस बालक के शरीर में गोपाल विराजमान हैं। बस इसी विचार से उन लोगों ने पूजा की सब सामग्री इनके पास लाकर निवेदन किया कि "तुम इसे भोग लगाओ, तुम गोपाल हो, तुम्हारे ही भोजन करने से गोपाल भी सन्तुष्ट होंगे।" इन्होंने सहर्ष कुछ खाया, कुछ पृथ्वी पर फेंका और कुछ शरीर में मल डाला।

इसी घटना से इनकी माता को इनके पागल होने का विशेष भ्रम हुआ था, और उन्होंने उपाय विचार के लिए स्त्रियों की सभा की थी जिसका वर्णन अभी ऊपर हुआ है।

मुरारि पण्डित का नाम पाठकों को स्मरण होगा। ये जगन्नाथ मिश्र के स्वदेशी और प्रतिवासी थे। दोनों में स्वाभाविक स्नेह भी था। इनकी अवस्था इस समय लगभग बीस वर्ष की थी। गौराङ्ग पांच वर्ष के थे। उपर्युक्त सब घटनाएं इनके पांच वर्ष के भीतर ही की हैं। मुरारि काम तो चिकित्सक का करते थे, पर बड़े सुयोग्य पुरुष, नामी पण्डित, दयालु चित्त, और निर्मल चरित्र के थे। नवद्वीप में इनकी सुख्याति फैली हुई थी। ये गङ्गादास पण्डित के टोल में व्याकरण का अध्ययन भी करते थे। योगवाशिष्ठ के प्रेमी थे। मत अद्वैत था। भगवद्भक्ति के विश्वासी नहीं थे।

एक दिन मुरारि अपने कई संगियों के संग हाथ सिर हिला हिला कर उन्हें योगवाशिष्ठ का भाव समझाते बुझाते चले जा रहे थे। बालक गौराङ्ग भी उनके पीछे पीछे अपने बालक सहचरों के साथ उसी प्रकार हाथों से तथा सिर और मुख से भाव बताते उनका अनुकरण करते गमन कर रहे थे। बालकों को सिवाय हंसने के

और क्या था ? उनका ठहाका सुन कर और उन्हें देख कर मुरारि ने पहले तो अपने को सम्हाला पर उनका वही रङ्ग, वरन उससे भी अधिक मस्तक हिलाना, भाव बताना, ठहाका लगाना सुन कर इनसे न रहा गया। इन्होंने सक्रोध कहा कि "तुझे अच्छा कौन कहता है, तू जगन्नाथ के कुल में कलङ्क जन्मा है।"

निमाई ने भौंहें टेढ़ी कर कहा "घर जाओ, आज भोजन के समय तुम्हें उचित शिक्षा देंगे" और उस समय उनके घर में पहुंच कर इन्होंने उनकी थाली में पेशाब कर दिया। गौराङ्ग की आंखें अग्नि के समान प्रज्वलित हो रही थीं। इन्होंने कहाः—

"हाथ नाड़ा, माथ नाड़ा, छाड़ हे मुरारि।
ज्ञान औ वक्तृता छाड़, भज हे श्रीहरि॥
जीव आर भगवाने भिन्न जे ना करे।
प्रस्राव करि आमि तार थालेर ऊपरे।"

अर्थात् हाथ और सिर हिला हिला कर तुम वक्तृता देना छोड़ दो। जो अपने और ईश्वर में भेद नहीं मानता, हम उसकी थाली में पेशाब करते हैं।

यह कह कर गौराङ्ग वहां से चम्पत हुए। मुरारि कहते हैं कि 'थोड़े ही देर में हमारी दशा बदल गयी! अङ्गों में पुलकावली छा गयी! मन आनन्द से लोट पोट होने लगा। दौड़े दौड़े मिश्र के घर जाकर बालक गौराङ्ग के चरणों में नमित हो हमने नमस्कार किया। जगन्नाथ मिश्र के यह कहने पर कि तुम्हारे इस कार्य्य से हमारे कुल का सब कल्याण होगा, हमने उत्तर दिया कि कुछ दिन बाद आपको ज्ञात होगा कि आप के घर किसने जन्म धारण किया है। हमें देख शिशु गौराङ्ग माता का वस्त्र पकड़ कर उन के पीछे छिप गये थे।"

"चरितामृत" में लिखा है कि एक वार कई कन्याएं गंगा स्नान कर पूजा कर रही थीं। । उस समय ये उनके मध्य में पहुंच कर अपने गात में स्वयं चन्दन लगा, माला पहन, नैवेद्य निकाल कर खाने लगे और सब देव देवियों को अपना दास दासी बताने लगे। उन कन्याओं के निषेध करने पर उन्हें वर देने लगे कि "तुम्हें सुन्दर पति, धन, सात सात पुत्र प्राप्त होंगे"। उनमें से जो कोई पूजा सामग्री लेकर वहां से भाग चलीं, उन्हें कहने लगे कि "यदि हमें प्रसाद न दोगी तो तुम्हें बूढ़ा वर एवं चार चार सौत होंगी।" अतएव भयभीत होकर उन सबों ने भी इन्हें फल, फूल नैवेद्य अर्पण किया।

निस्सन्देह स्त्री को सौत दुख बहुत क्लेशकर होता है। उसीको क्यों, पति को भी नित्य के कलह से कपाल पर हाथ रख कर झँखना पड़ता है। इसी सौतिडाह के कारण दशरथजी को प्राण तक गँवाना पड़ा। गँवारों और सामान्य लोगों का कौन चलावे, लिखे पढ़े लोग भी स्त्री को कोई असाध्य रोग, शारीरिक अयोग्यतादि न होने पर भी उसके जीवन काल ही में दूसरा विवाह किस सुख के लिए करते हैं यह वात हमारी समझ में नहीं आती। उन्हें अपना सुख हो तो हो, पर धर्म को साक्षी मान कर जिसका पाणिग्रहण करते हैं, उसे तो अवश्य सुख नहीं होता। इससे तो जिस जाति में तिलाक की प्रथा है वही अच्छी। उसके द्वारा दोनों को अपने अपने सुख का मार्ग ढूंढ़ने की अरोक स्वच्छन्दता प्राप्त रहती है।

एक वार ऐसे ही अवसर पर वल्लभाचार्य्य की कन्या लक्ष्मी से अपनी पूजा कराने की अभिलाषा प्रकट करने पर उसने सहर्ष इन की पूजा की और उसका फलस्वरुप कालान्तर में इनकी पत्नी बनने का उसे सौभाग्य और सुख प्राप्त हुआ।

स्मरण रहे कि कन्याओं के संग इनका यह खेल तमाशा बाल-काल में हुआ करता था। उस वयसवाले बालक और बालिकाएं साथ होकर नाना प्रकार का खेल कौतुक, हांसवाद, मारपीट आज भी किया करती हैं। युवा होने पर ये स्त्रियों की ओर दृष्टिपात भी नहीं करते थे। मार्ग में उन्हें आते जाते देख आप स्वयं हट कर एक बगल में खड़े हो जाते थे।

षष्ठ परिच्छेद

विश्वरूप का सँन्यास ग्रहण

मारे पाठकवृन्द श्रीकमलाक्ष पंडित (अद्वैत) से कुछ परिचित हैं। नवद्वीप के ततकालीन मुठ्ठी भर वैष्णवों के यही सहारा थे। कोई कष्ट होने पर लोग इन्हींके पास जाकर अपना दुःख रोते, इन्हींके घर पर बैठ कर लोग धर्मचर्चा और भजन करते। येही वैष्णवों के दुःख से विह्वल हो सर्वदा कृष्ण भगवान से उनके कष्टनिवारण के निमित्त प्रार्थना किया करते थे। भक्तों को आश्वासन देते और उन्हें भी भगवान के निकट दुःख-निवेदन के लिए उत्तेजित और उत्साहित करते। भक्तों का विश्वास है कि इन्हींके प्रेमभक्ति से मोहित और आकर्षित होकर श्रीगौराङ्ग भूतल में आविर्भूत हुए थे। इनका साधन भजन बड़े उच्च कोटि का था। इसीसे ये महाशक्तिमान भी थे। गीता, भागवत में ये उस समय अपना सानी नहीं रखते थे। अल्प वयस ही में विद्या में पारंगत हो गये थे।

ये सुप्रसिद्ध माधवेन्द्र पुरी से दीक्षित हुए थे जिन्होंने सँन्यासियों में पहले पहल कृष्णभक्ति की प्रथा प्रचलित की थी।

पाठकगण विश्वरूप को भी पहचानते हैं। ये श्रीगौराङ्ग के बड़े भाई और अपने माता की नवीं सन्तान थे। वयस में भाई से दश वर्ष बड़े थे। इस समय इनकी अवस्था सोलह वर्ष की हो गयी थी। ये पिता ही के समान रूपवान, गुणवान और बुद्धिमान थे। चौदह पन्द्रह वर्ष की ही उम्र में सर्वशास्त्रज्ञाता हो गये थे। शास्त्राध्ययन के अतिरिक्त और कुछ काम नहीं जानते थे। क्या पाठशाला में, क्या घर पर, सदा सर्वत्र उसीका ध्यान रहता था।

इन्हें भगवद्भक्ति में स्नेह था। परन्तु इनके सहपाठीगण सदैव ज्ञान, योग, तन्त्र, मायावाद आदि की चर्चा किया करते थे। वह इन्हें

रुचिकर प्रतीत नहीं होती थी। दैवात् इन्हें अद्वैत से परिचय हुआ। उनकी सभा से इन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। इन्हें देख और पाकर अद्वैत तथा अन्य सदस्यों का भी चित्त आह्लादित हुआ। वहां हरिभक्ति की आलोचना हुआ करती थी। भजन भाव भी हुआ करता था। इससे विश्वरूप अब वहां अधिक रहने लगे। पाठशाला से आने के बाद वहीं चले जाते और वहीं दिन गँवाया करते थे। यहां तक कि भोजन के लिए गौराङ्ग को जा जा कर उन्हें वहां से बुला लाना पड़ता था।

जब पहले दिन बालक गौराङ्ग भाई को बुलाने गये तो इनका रूप, लावण्य तथा प्रभा देख अद्वैतादि सब चकित हो गये। अद्वैत मन में विचारने लगे कि "यह बालक हमारा चित्त क्यों अपहरण करता है? यह कौन सा अद्भुत पदार्थ है? इसने ऐसी शक्ति कैसे और कहां पायी?" वह क्या जानते थे कि कालान्तर में निराकार साकार के विचार में "डावांडोल" और चिन्ताग्रस्त बुद्धि को यही शिशु ठिकाने लावेगा एवं उनके समान सम्मानित वयोवृद्ध लोगों को भी इशारे पर नचावेगा।

निमाई नंगे गये थे, इससे उनकी देहप्रभा और भी अधिक प्रसारित हो रही थी। आपने मधुर स्वर से कहा, "चलो मा भात खाने को बुलाती है।" विश्वरूप सानन्द और सस्नेह भाई का हाथ पकड़े और यह उनका चादर खिंचाते चले। घर आकर दोनों खाने को बैठे। विश्वरूप कहने लगे कि "तुम दूसरे के घर जाकर चोरी कर खाते हो, तुम्हारे घर क्या नहीं है? जो कहो वह ला दिया करेंगे। तुम्हारी निन्दा सुन कर हृदय में क्लेश होता है। तुमसे छोटा भाई कोई ऐसा करता और तुम उसकी निन्दा सुनते तब देखते तुम्हारे मन में कैसा दुःख होता। अब तो ऐसा नहीं करोगे?" यह "नहीं" कहना ही चाहते थे कि गला रुन्ध गया, आंखों से आंसू बहने लगा, और धीरे धीरे संज्ञाहीन हो गये। कुछ चित्त शान्त होने पर लोगों

ने इन्हें पलंग पर सुला दिया। यह भ्रातृस्नेह का प्रभाव था। स्नेहवश अपने कारण भाई का चित्त ऐसा दुखित देख इनका भी स्नेह उबल आया था और यह रूप धारण किया था।

विश्वरूप के एक ममेरे भाई भी थे। उनका नाम था लोकनाथ। दोनों समवयस्क थे। दोनों में भारी प्रीति रीति थी। पढ़ना लिखना, घूमना फिरना सब साथ साथ होता था। ये दोनों सहपाठी थे, पर लोकनाथ विश्वरूप को गुरुस्वरूप समझते थे।

विश्वरूप का समय पाठशाला, अद्वैत की सभा, भोजन, अध्ययन, में व्यतीत होता था। ये पठन-पाठन और वैराग्य कथन-मनन में व्यस्त रहते थे, बाल गौरङ्ग खेलकूद में मस्त एवं मिश्रजी परिवार-पोषण की उद्योगचिन्ता में ग्रस्त। विश्वरूप से बातचीत का उन्हें कम सुयोग और अवसर मिलता था। एक दिन सड़क पर दैवात् बाप बेटे में भेंट हो गयी। पुत्र को युवावस्था प्राप्त देख पिता को उनके विवाह की चिन्ता समाई। पत्नी से परामर्श करने लगे और पात्री के अन्वेषण में भी लगे।

इसका समाचार पाने पर विश्वरूप को और ही धुन समायी। उनका चित्त संसार से उचट गया था; वे विवाहबन्धन में पड़ कर संसार में जकड़ना नहीं चाहते थे।

एक दिन उन्होंने विनयपूर्वक माता को एक पोथी देकर निवेदन किया कि "सयाने होने पर इसे निमाई भाई को दे देना।" माता के यह कहने पर कि तुम तो स्वयं दे सकते हो, इन्होंने उत्तर दिया कि "रखो तो जो हम दे सकेंगे तो हम ही देंगे, इसमें बात क्या है।"

अनन्तर विवाह के भय से एक रात को एक पहर समय शेष रहते विश्वरूप केवल एक पुस्तक लेकर लोकनाथ के साथ घर से निकल गंगा पार हो गये और दोनों ने पश्चिम की राह ली। शीतकाल था और शीतनिवारण के लिए

उन्होंने कोई वस्त्र भी नहीं लिया। थोड़े ही दिन बाद एक साधु से सँन्यास मंत्र ग्रहण कर एवं शंकरारण्य पुरी नाम धारण कर आप सँन्यासी हो गये। उसी दम लोकनाथ भी विश्वरूप के शिष्य बन गये। अठारह वर्ष की अवस्था में विश्वरूप परलोकगामी हुए। तृतीय खंड के सप्तम परिच्छेद में इसका सविस्तर वर्णन किया गया है।

इधर प्रातःकाल यह समाचार फैलने से विश्वरूप का परिवार शोकसागर में गोता खाने लगा। हित कुटुम्ब, प्रतिवासी प्रभृति शोकाकुल हो उठे। लोग ज्ञानकथन कर वृद्ध जगन्नाथ को धैर्य बँधाने लगे। वे उन ज्ञान कथाओं को स्वयं जानते थे। पर ऐसे समय में धीरज धरना कोई सहज बात नहीं है। माता पिता के चित्त की जो अवस्था हुई होगी वह केवल अनुभवनीय है। पर बालक गौराङ्ग यह जान कर कि सदा के लिए यह भ्रातृवियोग हुआ, मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर गये। माता पिता इनके यत्न में लगे और अपना शोक दबाने की चेष्टा में प्रवृत्त हुए, जिसमें गौराङ्ग की क्लेशवृद्धि न हो।

गौराङ्ग ने इसी काल से अपना सब चाञ्चल्य परित्याग करने का सङ्कल्प किया और विह्वल होकर कहा, "हे माता! हे पिता! तुम लोग शान्ति और धैर्य अवलम्बन करो। हम तुम लोगों की सेवा शुश्रूषा करेंगे। तुमलोगों का पोषण पालन करेंगे।" यह छः वर्ष के शिशु का वाक्य है।

मिश्र जी को शोक तो असहनीय हुआ, परन्तु उन्होंने खोज कर विश्वरूप को पुनः घर लौटाने की चेष्टा नहीं की। वरन् वे ईश्वर के पादपद्मों में प्रार्थी हुए कि उनका पुत्र अपना सँन्यास धर्म पालन करने में समर्थ हो और उसे परित्याग कर पुनः घर न लौट आवे। यह मिश्र जी के आत्मबल का परिचय दे रहा है।

सप्तम परिच्छेद

श्रीगौराङ्ग का यज्ञोपवीत

इस समय गौराङ्ग की अवस्था नव वर्ष की है। आज आप का यज्ञोपवीतोत्सव है। गुरु, पुरोहित, अध्यापक, इष्टमित्र, बन्धु बान्धव, नेगी योगी, कुल कुटुम्ब और परिवार के सब लोग आमन्त्रित हुए हैं, एवं सब लोग मिश्र के सदन में उपस्थित हो उसकी शोभा बढ़ा रहे हैं।

गौराङ्ग माथ मुंड़ाये, पितवस्त्र पहने ब्रह्मचारी के रूप में अकथनीय शोभा धारण कर रहे हैं। अंजन-अंजित नयन खंजन के मद का गंजन कर रहे हैं, ओठों की आभा से बन्धूक जर्जरित और मुस्क्यान से मालती लज्जित हो रही है। पगों से मानो ईंगुर के पनारे जारी हैं। जहां पदार्पण करते हैं वहीं की भूमि लाल लहलही हो जाती है। कोमलता से गुलाब को कांटा चुभ रहा है। देह की दीप्ति भोर के दिवाकर की शोभा दबा रही है। अंग अंग के रंग ढंग को देख अनङ्ग का मानमर्दन हो रहा है। सहज सौन्दर्य पर और रंग चढ़ गया है।

पर इस रंग मंच पर आज कैसा कैसा दृश्य देखते हैं। श्री जगन्नाथ मिश्र गौराङ्ग के कान में गायत्री मंत्र प्रदान करते हैं और वे पहले हुंकार और गर्जन कर मूर्छित हो जाते हैं। शरीर रोमाञ्चित है, नेत्रों के प्रवाह भूतल को भिंगो रहे हैं। अङ्ग प्रत्यङ्ग से दैविक ज्योति स्फुटित हो रही है। लोगों के यत्न से वे होश में आते हैं। पर चेहरे में इतनी चमक और गम्भीरता है कि किसीको कुछ प्रश्न करने का साहस नहीं होता है। परस्पर विचार में लोग यही निर्णय करते हैं कि इनपर किसी देवता का आवेश है एवं वह श्रीकृष्ण भगवान हैं। इसी दिन से इनका नाम "गौरहरि" पड़ा।

फिर यज्ञोपवीत-विधि सम्पन्न होती है, लोग यथासाध्य और यथारूचि भिक्षा दे रहे हैं। एक दरिद्र ब्राह्मण एक सुपारी भिक्षा देता है। उसे आप उसी दम खा जाते हैं और खाते खाते अपनी माता को खूब ज़ोर से पुकारते हैं। उनके निकट आने पर कहते हैं कि "हे माता अब कभी एकादशी के दिन अन्न भोजन न करना।" आपका आनन चंचला के सदृश चमक रहा था। मा का पुत्रभाव भूल गया। वह "जो आज्ञा" कह कर चुप हो रहीं। मा को आपने विदा कर दिया।

आपने कुछ देर के बाद माता को फिर बुला कर कहा कि "हम अब यह देह त्याग कर जाते हैं। समय आने से फिर आवेंगे। यह देह रही; यह तुम्हारे पुत्र की देह है; इसे यत्नपूर्वक पालन करना।"

स्वस्थ होने पर और पिता के पूछने पर कि "तुमने ये सब बातें क्या कही हैं" ये चकित हो गये और कहने लगे "कब ? हमने तो कुछ नहीं कहा।"

इसीके दो वर्ष बाद, वृद्धावस्था में, जगन्नाथ मिश्र अपनी स्त्री और एकमात्र पुत्र को शोकसागर में डाल और उन्हें श्री भगवान् को सौंप कर इस संसार से बिदा हो गये। गंगा में नाभीपर्यन्त जल में खड़ा हो कर श्रीरघुनाथ का नाम लेते उन्होंने शरीर त्याग किया। जिनके पुत्र सँन्यासी हों, जिनके एक पुत्र भगवान के अवतार माने जांय उनके लिए यह कौन सी आश्चर्य की बात है।

अष्टम परिच्छेद

विद्याध्ययन


जिसके पाण्डित्य की ओर किसी समय बड़े बड़े विद्या-दिग्गजों को भी मस्तक नीचा करना पड़ा था, जिसके सामने दिग्विजयी को भी हार माननी पड़ी थी, अब उसीके विद्याध्ययन का वृत्तान्त पाठकवृन्द को सुनाना चाहते हैं।

गौराङ्ग के हाथ में खल्ली तो बहुत दिन पूर्व दी गयी थी, पर इनको पढ़ने से क्या काम? इन्हें सदा खेल कूद और दौड़ धूप में समय बिताना अच्छा लगता था। इसी कारण उस दिन इनके पिता छड़ी लेकर गंगातट पर इन्हें मारने भी गये थे।

परन्तु जबसे इनके ज्येष्ठ भ्राता संसार त्याग संन्यासी हुए थे, ये खूब मन लगाकर लिखने पढ़ने लगे थे। पिता ही के पास बैठे पढ़ते जिसमें माता को पुत्रशोक से उदासी और दुःख न होने पावे। इससे सबका समय सानन्द बीतता था।

इस बीच में एक दिन यह नैवेद्य का पान खा गये और उसी समय मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़े। रीत्यनुसार यत्न करने से इनकी मूर्छा भङ्ग हुई। तब ये माता पिता से कहने लगे कि "हमारे भाई आकर हमें ले गये थे और कहते थे कि हम उन्हींके समान सँन्यासी हो जायं। परन्तु हमने उत्तर दिया कि हम बालक सँन्यास का मर्म क्या बूझेंगे। हम मां बाप की सेवा शुश्रूषा कर भगवान् को प्रसन्न करेंगे। उस पर उन्होंने कहा अच्छा तब जावो। माता पिता के चरणों में हमारा कोटि कोटि प्रणाम कहना।"

यह बात सुनकर लोगों को भय हुआ कि कदाचित् विश्वरूप इन्हें भी घर से निकाल ले जायंगे।

मिश्र ने यह सोच कर कि एक पुत्र तो पण्डित होकर गृहत्यागी हो गया, यदि विद्याध्ययन का प्रभाव इनके भी चित्त पर वैसा ही पड़ा, तो सर्वनाश हो जायगा, इन्हें नहीं पढ़ने की शपथ दे दी।

अब क्या था? गौराङ्ग ने फिर पूर्ववत् धूम धड़का मचाना आरम्भ कर दिया। सयाना हो जाने के कारण अब एक पल्ली से दूसरी पल्ली में जा जा कर ये उपद्रव मचाने लगे। स्नान-काल में घंटों जल में तैरना, गोता लगाकर किसीका पैर खींचना, किसीकी कमर पकड़नी, किसीकी पूजा की माला आप गले में पहन लेनी, माथे पर फूल चढ़ा लेना, नैवेद्य लेकर चट मुंह में डाल देना, ये इनके नित्य के कार्य हो गये। लोग नाकों दम आकर इनके पिता के पास उलहना देने लगे। वे हाथ जोड़कर, पैर पड़कर लोगों को सन्तुष्ट कर दिया करते थे।

कभी कभी शची के पास स्त्रियां भी उलहना लाने लगीं। बूढ़ी बेचारी विनयपूर्वक उन्हें समझा बुझाकर बिदा कर दिया करती थीं।

माता के कुछ कहने पर यही कहते कि "जब हमें तुम लोग लिखने पढ़ने न दोगी, तो मूर्खता के कार्यों के सिवाय हमसे क्या आशा करोगी?" उधर पिता महाशय इन्हें पढ़ाने को सम्मत न होते थे।

एक दिन ये कई अछूत हांड़ियां एक पर एक चढ़ा कर उसके ऊपर बैठ खेल करने लगे। वह स्थान परित्याग करने के लिए माता के अनुनय विनय करने पर, इन्होंने स्पष्ट कह दिया कि "यदि तुम लोग हमें विद्योपार्जन करने नहीं दोगे, तो हम यह स्थान परित्याग नहीं करेंगे।"

जो नर और नारियां वहां खड़ी थीं वे सब नहीं पढ़ाने के कारण शची की निन्दा करने लगीं और उन्होंने पढ़ने के लिए आज्ञा करा देने की प्रतिज्ञा की।

पड़ोसियों और पत्नी के कहने सुनने से मिश्र जी ने गौराङ्ग को पुनः पढ़ने को आज्ञा दे दी। बस, अब क्या था? ये मन लगा कर पढ़ने पर दत्तचित्त हुए। दूसरे जो दस बार कहने से समझते उसे ये एक बार कहने से ही हृदयङ्गम कर लेते। इनका चाञ्चल्य और उपद्रव का सर्वथा परित्याग और बुद्धि का चमत्कार देख सब को अचम्भा होने लगा। जब और लड़के खेल कूद में लगते उस समय भी ये एकान्त में बैठे पढ़ा करते।

इसी समय इनको जनेऊ दिया गया। तब ये सुदर्शन तथा विष्णु पण्डित के पास पढ़ने लगे। (१) उन लोगों के विचार में ऐसा कुशाग्र बुद्धिवाला छात्र उस समय संसार मे नहीं था।

पति के परलोकगमन के पश्चात् शची ने पड़ोसियों की सम्मति से मयापुर के निकटवर्ती गंगानगर के टोल के अध्यापक पण्डित गंगादास के पास गौराङ्ग को ले जाकर इस विनय के साथ कि "आप इस पितृहीन बालक को अपना पुत्र समझ विद्यादान दीजिये" इन्हें उनके चरणों में अर्पण किया। ऐसा छात्र पाने से अपने को सौभाग्यवान मान वे इन्हें पढ़ाने पर सहर्ष सम्मत हुए।

अब गौराङ्ग वहीं पढ़ने लगे। उस समय अलंकार में अद्वितीय कमलाकान्त, मुरारि गुप्त (२) और कृष्णानन्द (३) भी उसी पाठशाला में विद्याध्ययन करते थे। उन लोगों की वयस इनसे बहुत अधिक—दूनी ढाई गुणी थी। थोड़े दिनों के बाद गौराङ्ग उन लोगों से शास्त्रार्थ करने पर उद्यत होने लगे। वे लोग इन्हें लड़का समझ इनसे तर्क

(१) एक जगह लिखा है कि इन्होंने एक पाठशाला में बंगभाषा अति शीघ्र ही सीख ली थी।

(२) हमें विश्वास है कि पाठक मुरारि गुप्त को भूले न होंगे। इनकी कथा उन्हें स्मरण होगी।

(३) येही "तन्त्रसार" के प्रणेता हैं। तन्त्र शास्त्र के राजा माने जाते हैं। गौराङ्ग को इन्हीं के कारण संन्यास लेना पड़ा। पाठकों को यह बात यथासमय विदित होगी।

करना स्वीकार नहीं करते थे, पर ये कब माननेवाले थे। अन्ततः एक दिन मुरारि से वाक्ययुद्ध छिड़ गया। मुरारि परास्त हो गये। सब भौचक बन गये।

गौराङ्ग ने हंसकर मुरारि के देह पर हाथ रख दिया। ऐसा करते ही उनका शरीर पुलकित हो गया; हृदय में सुखानन्द की लहरें लहराने लगीं। उन्हें वह दिन याद आ गया, जब इनके घर जाकर उन्होंने बालक गौराङ्ग को प्रणाम किया था और उस अयोग्य कार्य के लिए इनके पिता से वे नरम नरम तिरस्कृत हुए थे। वे इन के ज्योतिर्मय वदन की ओर अनिमेषलोचनों से देखने लगे और सोचने लगे "भाई, यह कौन है और क्या है?"

अब इन्हें शास्त्रार्थ की धुन समायी। जहां जायं, वहीं शास्त्रार्थ। गंगास्नान के समय अन्य पाठशालाओं के छात्रों के संग भिड़ जायं; घाट घाट पर जा कर वहां के टोलवालों से छेड़ छाड़ आरम्भ कर दें। गंगा पार जा कर कुलिया ग्राम के छात्रों से शास्त्रार्थ शुरू कर दें। पाठशाला में पढ़ें, घर पर पाठ का अभ्यास करें। इसी छात्रावस्था ही में घर पर इन्होंने व्याकरण की एक टिप्पणी तैयार की। तैयार होते ही वह छात्रों और अध्यापकों के हाथों में पहुंच गयी। सब लोग उसकी प्रशंसा और आदर करने लगे। नदिया ऐसे स्थान में, ऐसे समय जब कि वह धुरन्धर महान् पंडितों से परिपूर्ण था, एक तेरह चौदह वर्ष के छात्र की लिखी हुई टिप्पणी का इतना आदर, यह बड़े आश्चर्य की बात है। यही नहीं, नदिया की सीमा पार कर वह पुस्तक शीघ्र ही और पूर्व द्रुतवेग से जा पहुंची।

उस समय प्रेस नहीं थे। समाचार पत्र नहीं थे। सम्पादकों के द्वारा प्रशंसापूर्ण विज्ञापन छपवाने, मित्रों के द्वारा आकाश पाताल एक करनेवाली, ग्रंथकारों को आसमान पर चढ़ानेवाली, उनके सिर पर सुयश की सेहरा बांधनेवाली समालोचनाएं लिख-

वाने, और इस प्रकार किसी विशेष पुस्तक के प्रचार कराने की सुविधा नहीं थी। ऐसे काल में कोई पुस्तक तैयार होते ही, उसका महान् विद्वन्‌मंडली में ऐसा आदृत होना सचमुच उसके लेखक की विद्वत्ता, योग्यता और पांडित्य की घोषणा करता है।

वहां दो वर्ष पढ़ कर ये व्याकरण और अलंकार में पक्के हो गये। तब इन्हें न्याय पढ़ने का उत्साह हुआ। ये उक्त वासुदेव सार्वभौम के टोल में गये। उस समय रघुनाथ, (१) रघुनन्दन, (२) कृष्णानन्द, भवानन्द (१) प्रभृति उस पाठशाला में न्याय अध्ययन करते थे। ये सभी नामी छात्र थे और आगे महा प्रसिद्ध पुरुष हुए।

यहां ये थोड़े दिन रहे और अल्प वयस के थे। अतएव सार्वभौम का ध्यान इनकी ओर विशेष रूप से आकृष्ट नहीं हुआ। परन्तु इनकी प्रभा और प्रतिभा से अन्य लोगों की प्रतिभा दिन में तारों के समान मलिन होने लगी। वे इनकी बुद्धि की प्रखरता से खर्व होने लगे। उनमें से रघुनाथ का तो, जो भारतवर्ष में एक ही होने की मनसा और लालसा कर रहे थे, होश ही ठंढा हो गया। इनकी तेज़ी और बुद्धिबल देख, उनको दिन दिन अधिकतर निराशा होने लगी। जैसे इनकी योग्यता से वह भयभीत हो रहे थे वैसे ही इनके सरल स्वभाव और मधुर सम्भाषण से उनका चित्त मोहित हो रहा था। दोनों में मित्रता भी थी।

एक दिन गुरु ने रघुनाथ को कोई प्रश्न उत्तर करने के लिए दिया। इसका उत्तर सोचते उन्हें तीन पहर लग गया। तीसरे पहर

---

(१) इनकी रची "दीधितिन्याय" की प्रसिद्ध पुस्तक है। सुनते हैं कि इसके टक्कर का दूसरा ग्रन्थ नहीं है।

इन रघुनाथ के बराबरी के भवानन्द ही थे। उनके विषय में इतनाही कहना अलम् है कि वे जगदीश के गुरु थे, जिन जगदीश के नाम से बंगाल में न्याय शास्त्र ही "जागदीशी" कर के प्रसिद्ध है।

(२) इनकी प्रणीत स्मृति बंगाल में "दयाभाग" के नाम से राज कर रही है।

दिन में उसका उत्तर सुना कर वे रसोई बना रहे थे। उसी समय गौराङ्ग उनके वासस्थान पर जा पहुंचे। रसोई में विलम्ब होने का कारण पूछने पर उन्होंने सब बातें कह सुनायीं। गौराङ्ग के वह प्रश्न जानने की इच्छा प्रकट करने पर उन्होंने वह प्रश्न भी सुना दिया। सुनते ही, इन्होंने चट उसका उत्तर बता दिया। रघुनाथ बुद्धि-हत के समान इनका मुंह ताकने लगे।

उसी काल में वह "दीधिति" नाम की पुस्तक की रचना कर रहे थे और गौराङ्ग ने भी न्याय पढ़ना आरम्भ करते ही न्याय की एक टिप्पणी लिखने में हाथ लगा दिया था। यह खबर, न जानें कैसे, रघुनाथ को मिल गयी थी। अब तो उनके पेट में चूहा कूदने लगा। उनके उत्साह पर एकदम पाला पड़ने लगा। अधीर हो, उन्होंने गौराङ्ग से वह पुस्तक देखने की इच्छा प्रकट की। गौराङ्ग दूसरे दिन उसे पाठशाला में ले गये और वहां से लौटते समय नाव पर पढ़ कर उसे सुनाने लगे। दो चार पंक्तियों का पाठ सुनते ही रघुनाथ के चेहरे पर हवाई उड़ने लगी। ये ज्यों ज्यों आगे पढ़ते जाते थे, उनकी व्यग्रता बढ़ती जाती थी। यहां तक कि वे फूट फूट कर रोने लगे। उनको रोते देख गौराङ्ग बड़े चकित और अति दुःखित हुए। रोने का कारण पूछने पर वे कुछ संकुचित तथा लज्जित होकर कहने लगे "भाई! हम संसार में नाम मारने और अद्वितीय कहलाने की प्रबल इच्छा और लालसा से "दीधिति" पुस्तक की रचना कर रहे हैं। आज हमारी आशा, भङ्ग हो गयी। हमारे मनोरथ पर पानी फिर गया। तुम्हारी इस पुस्तक के सामने उसे कौन पूछेगा? जिन विषयों और बातों के समझने और स्पष्ट करने के लिए हमें पृष्ठ के पृष्ठ लिखने पड़े हैं, उन्हें तुम ने दो चार पंक्तियों में सुस्पष्ट समझा दिया है। भला इसे छोड़ हमारी पुस्तक की ओर कौन दृष्टिपात करेगा?"

गौराङ्ग तो चपल और हंसोड़ थे ही। ये बातें सुनते ही वह

हंस पड़े। उन्होंने कहा "केवल इसी तुच्छ बात के लिए तुम्हें इतना खेद और दुख हो रहा है ! यह अफल शास्त्र है; इससे हानि लाभ क्या ? लो, तुम्हारे मनोरथ पर पानी फिरने न पावेगा। हम इसे पानी में फेंक देते हैं।" यह कह कर उन्होंने उस पुस्तक को गंगा की गोद में रख दिया (१) एवं सप्रेम आश्वासन देकर और आंसू पोंछ कर उन्हें चुप तथा शान्त कराया। नहीं कह सकते रघुनाथ को इससे आनन्द हुआ या लज्जा।

संसार में दिन रात स्वार्थ और सम्मान ही के कारण महा अनर्थ हुआ करता है। इसीके कारण वह बहुमूल्य मुक्ता जो अभी सीप ही में था, नष्ट कराया गया। मिश्र देश का पुस्तकालय, बिहारान्तर्गत नालन्द का पुस्तकालय ऐसे ही कारणों से अग्नि के हवाले किये गये। यदि वे सब पुस्तकें आज वर्तमान होतीं तो उनसे जगत को कितना लाभ पहुंचता, साहित्य की कितनी सौन्दर्य-वृद्धि होती।

जो हो, उसी समय से गौराङ्ग का न्याय पढ़ना और टोल में पढ़ना दोनों बन्द हो गया। पर विद्याध्ययन नहीं छूटा। ये घर पर स्वयं विद्याभ्यास करने लगे और स्वाध्ययन द्वारा ये संस्कृत भाषा के सब अङ्गों के, विशेषतः व्याकरण और न्याय के, ऐसे ज्ञाता हुए कि बड़े

(१) कहते हैं कि एक बार हनुमान जी पत्थरों पर नख से एक रामायण लिख कर श्री रामचन्द्र जी से उसपर सही कराने को ले गये। उन्होंने कहा कि "हम वाल्मीकीय" रामायण पर सही कर चुके हैं, तुम उन्हींसे सही कराओ। वाल्मीकि जी के पास वह रामायण जाने पर उन्होंने देखा कि उसके प्रचार से उनके ग्रन्थ का गौरव सर्वथा नष्ट हो जायगा। अतएव स्तुति द्वारा हनुमान जी को प्रसन्न कर उन्होंने यह वर मांगा कि वह अपनी रामायण समुद्र में फेंक दें। हनुमान जी ने अपनी रामायण फेंक तो दी सही, पर साथ ही कलियुग में गोस्वामी तुलसी दास के मुख से भाषा रामायण कहला कर वाल्मीकीय के नष्टप्राय करा देने की बात कही। इससे प्रतीत होता है कि हनुमान जी को उसके फेंकने का कुछ खेद हुआ था। यहां गौरांग ने अपनी पुस्तक सहर्ष फेंक दी और उसके निमित्त कभी खेद नहीं प्रकट किया।

बड़े नैयायिक इनसे शास्त्रार्थ करने का साहस नहीं करते थे। घर पर पुस्तकों का अभाव था ही नहीं। पिता भ्राता की पढ़ी हुई पुस्तकें वर्त्तमान थीं। आज का समय नहीं था कि पिता को कौन कहे, बड़े भाई की पढ़ी हुई पुस्तकें, दो ही तीन सम्वत् बीतने पर, छोटे भाई के काम नहीं आतीं और पुस्तकें प्रस्तुत करने में छात्रों को प्रति वर्ष एक भारी रक़म व्यय करना पड़ती है। चाहे विशेषोपयोगी तथा गुणसम्पन्न हों या न हों "यूनिवर्सिटी" द्वारा प्रकाशित वा सम्पादित ग्रन्थ विद्यार्थियों के गले अवश्य मढ़े जायंगे। भला कोई साहबकृत संस्कृत ग्रामर पढ़े विना विद्यासागर की कौमुदी वा कोई अन्य पण्डित प्रणीत दूसरे व्याकरण के पाठ से पाठक कभी लाभ उठा सकते हैं? यूनिवर्सिटी संगृहीत पदावली (Poems) के अध्ययन विना (Palgrave's Selections) "पालग्रेव का संग्रह" कभी उनका विद्यावर्द्धन कर सकता है? पर इस विवेचना से यहां कुछ प्रयोजन नहीं।

हमें काम गौराङ्ग के अध्ययन से है, आज के विद्यापाठ की परिपाटी से नहीं। गौराङ्ग के विद्योपार्जन का काम अब समाप्त हुआ। अब से ये विद्यार्थी न रहे। सोलह ही वर्ष की अवस्था में ये अपना एक टोल खोल कर अध्यापक बन बैठे। उसके पूर्व वा पश्चात् इस वयस का अध्यापक कभी किसीको देखने में नहीं आया होगा।

हां, यहां एक बात यह कह देनी है कि श्रीकेदार नाथ विद्याविनोद ने इन्हें आठ ही वर्ष की अवस्था में गङ्गादास के टोल में भेजा है और इनके विद्यानिपुण हो जाने पर वे विश्वरूप को सँन्यास देते हैं।

टोल स्थापित करने के कुछ दिन बाद वनमाली आचार्य ने शची के पास आकर नवद्वीप ही के श्रीवल्लभाचार्य की कन्या लक्ष्मी से इनका विवाह स्थिर कराया और यथासाध्य यथोचित सब आयोजन होकर यह शुभ कार्य सम्पन्न हुआ। बारात जाने

के पूर्व पिता और भ्राता की याद आ जाने से इन्होंने कुछ अश्रुतर्पन भी किया था। पर इस भय से कि माता का चित्त इससे दुखित होगा इन्होंने धैर्य धारण किया।

लक्ष्मी देवी बड़ी सुन्दरी, सुशीला और पतिपरायणा स्त्री थी। प्रोफेसर यदुनाथ सरकार लिखते हैं कि "प्रथम दर्शन में ही ये लक्ष्मी पर आसक्त हुए थे (He had fallen in love at first sight) I" इस वाक्य के भाव पर पाठकवृन्द विचार करने की कृपा करेंगे। इस कथन से गौराङ्ग के आचार व्यवहार पर कुछ धब्बा लग सकता है या नहीं। इस प्रसंग का वर्णन चैतन्य-चरितामृत में है जिसका आशय इस ग्रन्थ के पञ्चम परिच्छेद के अन्त में प्रकट कर दिया गया है।

नवम परिच्छेद

गौराङ्ग अध्यापक



प्रिय पाठकगण एकबार उधर दृष्टि कीजिए। देखिये, कल के विद्यार्थी गौराङ्ग आज उस धनाढ्य पुरुष मुकुन्दसञ्जय के वृहत् चण्डिमंडप में अध्यापक के आसन पर विराजमान हैं। सोलह वर्ष की अवस्था; जैसे यौवन की ज्योति अङ्ग अङ्ग में जगमगा रही है, विद्या की प्रभा बात बात में झलक रही है। चन्द्रमंडल के समान मुखमंडल छात्रों के हृदय को शीतल, और नयनकमल उनके मन को प्रफुल्लित, कर रहा है। बैन से मानो मधु झर रहा है। विद्यार्थीवृन्द यथा-स्थान बैठे हैं। कोई पुस्तक का बेष्टन खोल रहा है; कोई पुस्तक का पन्ना उलट रहा है। कोई पाठ का अभ्यास करता, तो कोई सानन्द नूतन पाठ ले रहा है। चतुर्दिक गम्भीरता राज कर रही है। बड़े २ वयोवृद्ध पण्डित और अध्यापक जो वहां जाते हैं, नम्रभाव से और बड़े लेहाज से आसन ग्रहण कर सम्भाषण करते हैं।

अब अध्यापन का समय व्यतीत हुआ। पाठशाला बन्द हुई। सब अपने अपने घर गये। अध्यापक महाशय कतिपय शिष्यों के संग लड़क पर दौड़ मारते गङ्गातट पर पहुंच कर जल में गोता लगाते हैं; शिष्यों के साथ जल क्रीड़ा हो रही है; परस्पर देह पर जल उछलाते हैं; हंसी ठहाका हो रहा है। अन्य लोग, कोई व्यङ्ग वाक्य बोलते हैं; कोई निन्दा का वचन उचारते हैं; कोई कहते हैं "वाह रे अध्यापक! अध्यापकों के नाम को कलङ्कित करनेवाले!" और गाली तक देने में भी संकोच नहीं करते। पर इससे हमारे युवक अध्यापक को क्या? यह तो अपने रंग में मस्त, गंगा की तरंग में अपने मन की तरङ्ग दरसा रहे हैं। इन दुवचनों से क्या

ये क्रोधित होंगे ? राम राम, क्रोधित ? क्रोध तो इन्हें छू नहीं गया है।

सर्वकाल गाम्भीर्यनाट्य करना, उसके द्वारा शिष्यों पर रोब जमाये रहना, उनका आधा प्राण सुखाये रहना और लोगों के नेत्रों में महान् बनना तो ये नहीं चाहते थे। ये अपने शिष्यों को अपने बन्धु और परिवारवर्ग के सदृश जानते और मानते थे। पठन-पाठन काल के अनन्तर उनके संग आमोद प्रमोद में कुछ हानि नहीं समझते थे। गम्भीरता के समय गम्भीर तो ऐसे होते थे कि किसी को चूं करने का साहस नहीं होता था। इनका यह विचार नहीं था कि गंभीर बनना ही बुद्धिमानी का चिन्ह है। कदाचित् ऐसे ही विचार के मन में उद्भव होने से विलायती कवि "गे" (Gay) ने कहा है:—

"Can grave and formal pass for wise,
When we the solemn owl despise ?" (१)

जो हो, इसी रंग ढंग से ये शिष्यों को पढ़ाते थे। इनके पढ़ाने से छात्रगण ऐसे प्रसन्न होते थे और उन्हें इतना शीघ्र पाठ बोध और हृदयङ्गम हो जाता था कि इनकी सुख्याति अल्पकाल ही में चारों ओर फैल गई। बड़े बड़े सुविख्यात और प्राचीन टोल रहते हुए भी, इस नवीन टोल मे छात्रगण नित्य प्रति झुंड के झुंड आने लगे।

विवाह हो ही गया, टोल की द्रुतवेग से बढ़ती हो ही चली, अतएव संसार सुखपूर्वक चलने लगा।

वैष्णवों के संग इन्हें शास्त्रार्थ करने में बड़ा आनन्द मिलता था। उन्हें पकड़ पकड़ कर उनसे ये ज़बरदस्ती भिड़ जाते थे। अन्य शास्त्रज्ञ पण्डितों को तो, चाहे वे कितना ही विद्यानिपुण हों, इनके सम्मुख खड़ा होने का साहस भी नहीं होता था।

---

(१) मौन गहे गम्भीर बनै सों। बुद्धिमान नहिं लोग कहै॥
सब उलूक से घृणा करत जब। जो धारत याही लक्षण सब॥

चट्टग्रामी मुकुन्द गुप्त वैद्य एक विद्याध्यायी, परम वैष्णव और अच्छे गायक भी थे। उक्त अद्वैत की सभा में प्रायः कीर्तन किया करते थे। इन्हें देखने वे शास्त्रार्थ के भय से सदा कात्रा काटते और थे उनका पीछा न छोड़ते। एक दिन वह रास्ते में जाते थे; यह अपने शिष्यों से कहने लगे कि "वह वैष्णव हैं, हम से वकवाद करना नहीं चाहते, हमें पाखंडी समझते हैं। हम सच कहते हैं हम भी वैष्णव होंगे और ऐसे वैष्णव कि शिव हमारे यहां आया करेंगे।" इस पर सब हँसने लगे। और मुकुन्द से पुकार कर कहने लगे "हे मुकुन्द! तुम हमसे भाग कर कहां जाओगे, अब शीघ्र ही तुम्हें ऐसा पकड़ेंगे कि हमारे पास से तुम कहीं जा भी नहीं सकोगे।" इसका भाव पाठकों को आगे ज्ञात होगा।

जब माधव मिश्र के पुत्र न्यायपाठी सरल, सुन्दर, गदाधर को पाते तो चट उनकी बाहें पकड़ कर उनसे शास्त्रार्थ छेड़ देते थे और उन्हें किसी प्रकार इनसे पिंड छुड़ा कर भागना पड़ता था। वे इनसे उम्र में छोटे और इनके प्रिय भी थे। सदा इनके साथ रहते। बालकाल ही से भक्तिपथ के पथिक थे।

इसी समय पूर्वोक्त श्री माधवेन्द्रपुरी के शिष्य ईश्वरपुरी (१) का नदिया में आना हुआ। परिचय होने पर गौराङ्ग ने उन्हें एक दिन भिक्षा भी कराई थी, अर्थात् निमन्त्रित कर उन्हें अपने घर भोजन कराया था।

प्रथम भेंट होने पर जब वह इनकी भव्यमूर्ति देख आश्चर्ययुत इन्हें सिर से पैर तक टकटकी लगाकर निहारने और विचारने लगे थे कि ये तो योगसिद्ध कोई महापुरुष प्रतीत होते हैं, तो गौराङ्ग ने, जिन्हें हँसी ठठोली सदा अच्छी लगती थी, सहास्यमुख कहा था कि "चलिए, आज हमारे घर भिक्षा कीजिए; वहां सारा दिन हमें देखने की सुविधा होगी।

(१) इनका पहला घर इसी जिले के कुमार हट्ट में था।

पुरी महाशय ने श्रीकृष्णामृत एक ग्रन्थ की रचना की थी। उसे आप नित्य गौराङ्ग तथा गदाधर को सुनाते थे और उसमें जो कुछ दोष प्रतीत हो उसकी ओर उनका ध्यान दिलाने को उन्होंने इनसे कहा था। इन्होंने उत्तर दिया था कि "कृष्णकथा तथा भक्त के बयान में कोई दोष दिखाने का साहस नहीं कर सकता।"

कुछ दिनों के बाद अठारह वर्ष की अवस्था में अपनी माता से अनुमति लेकर कई शिष्यों के संग ये पद्मा पार पूर्व बंगाल भ्रमण करने गये। इनके पहुंचने के पूर्व ही इनकी सुख्याति वहां पहुंच गई थी; इनके मुखचन्द देखने के पहले ही लोग इनकी लेखनी की शक्ति से परिचित हो चुके थे। इनकी रची व्याकरण की टिप्पणी छात्रों और अध्यापकों के घर घर जाजा कर इनकी विद्या का परिचय दे चुकी थी। इनके वहां पहुंचते ही, जहां जहां इन्होंने पदार्पण किया इनके दर्शन के लिए छात्रों, अध्यापकों, विद्यानुरागियों, पंडितों एवं साधारण लोगों की भारी भीड़ होने लगी। विद्यार्थी यही कहते "महाराज! आपके चरणदर्शन से हमलोग अपना जन्म धन्य मानते हैं, हमलोगों के बड़े सौभाग्य से आपने इस देश में पदार्पण किया। आपकी टिप्पणी हमारे अध्ययन में बड़ी सहायता दे रही है।" विद्वज्जन आपकी विद्वत्ता तथा पांडित्य की प्रशंसा करते एवं इस टिप्पणी को अद्वितीय कहते। आबालवृद्ध सभी इनसे मिलकर कृतार्थ होने लगे। इन्होंने चांचल्य को अपने साथ वहां जाने नहीं दिया था। वहां आपने पंडित और महापुरुष योग्य गाम्भीर्य्य अवलम्बन किया था। यह करना उचित ही था। नदिया में जैसे रहते और जो करते थे, वह क्या सर्वत्र करते। नदिया अपना घर था, वह विदेश। यहां इनके बालसखा, सहपाठी, शिक्षक, इष्ट मित्र, कुटुम्ब, गुरुजन सभी भरे थे। उनके मध्य सदा गम्भीरता नहीं सोभती।

वहां इन्होंने गम्भीर भाव से कृष्णप्रेम का लोगों को उपदेश दिया। कृष्णभक्ति का प्रचार किया। इनके रूपगुण पर सभी

महामुग्ध हो गये। इनके उपदेश का अच्छा प्रभाव पड़ा। उसका प्रभाव आज भी उस देश में परिलक्षित होता है। वहां इन्होंने हरिनाम की नौका सज कर धर्मी अधर्मी सब को पार कर दिया। प्राचीन ग्रन्थ यही कह रहे हैं।

तपन मिश्र (१) एक वयोवृद्ध ब्राह्मण इनके उपदेश से मोहित हो सर्वदा इनके संग ही रहना चाहते थे। पर आपकी सम्मति मान वह सपरिवार काशी जाकर वहीं वास करने लगे और दस वर्ष पीछे इनके चरणों का उन्हें वहां फिर दर्शन पाने का सौभाग्य हुआ।

विद्या तथा सद्गुणों के प्रभाव से वहां सब से सम्मानित तथा पूजित होकर प्रचुरधन संग्रह कर ये घर लौट आये। वहां से बहुत से विद्यार्थी भी विद्यार्जन के निमित्त इनके संग नदिया आये। वहां से जो कुछ लाये, सब आपने अपनी माता के चरणों में अर्पण किया। इनके आगमन के समय इनकी अर्द्धांगिनी लक्ष्मी का सांप काटने से देहान्त हो गया था। (२)

इन्होंने संसार की अनित्यता पर अनेकानेक उपदेश देकर माता का शोक निवारण किया। पर स्वयं मन में दुःखित हुए। कुछ आंसू भी बहाया। यह स्वाभाविक था। श्रीरामचन्द्र जी ने जगजननी जनकनन्दिनी के अचिरवियोग में भाई के संग वनप्रान्तों में घूम घूम कर विलाप किया था और यह तो चिर—विछोह था। ईश्वर होने पर भी मनुष्य रूप धारण करने से तदनुरूप ही कार्य करना

(१) कहते हैं कि साध्य साधन के निर्णय के भवजाल में तपन मिश्र चिरकाल से पड़े हुए थे। कुछ स्थिर नहीं कर सकते थे। स्वप्न में किसी विप्र ने उन्हें गौराङ्ग के पास जाकर भ्रम दूर कराने की सम्मति दी थी और तब वे इनके निकट उपस्थित हुए थे।

(२) सबों ने सांप के काटने से ही मृत्यु कही है। पर "चैतन्य चरितामृत" में लिखा है "प्रभु विरहसर्प लक्ष्मीरे दंशिल" जिसका अर्थ होगा "विरह रूपी सर्प," भाव यह कि इनके विरहदुःख से उनका देहपात हुआ, चाहे किसी प्रकार से हुआ हो।

योग्य होता है। इसीसे गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है "तस लाचिय जस काछिय काछा"।

कहते हैं कि इस यात्रा में ये अपने पितामह के घर भी गये थे। परन्तु इनके ज्येष्ठ चचा के पुत्र प्रद्युम्न मिश्र विरचित "श्री चैतन्य चन्द्रोदयावली" से यह बात प्रमाणित नहीं होती।

पूर्वांचल से लौट आने पर इनका देश में भी मान बढ़ गया। सब लोग सचमुच दंडवत् हो इनको दंडवत् करते, इनके घर पूजा भेंट भी भेजते। अब शची का समय सुख से बीतने लगा। नित्य अतिथियों और अभ्यागतों की सेवा होने लगी। परन्तु गौराङ्ग के इस प्रकार के व्यय से घर में बहुत संचय नहीं होने पाता था।

दिग्विजयी पंडित परास्त

कुछ काल अतीत होने पर एक दिग्विजयी काश्मीरी पंडित, केशव मिश्र का नवद्वीप में आना हुआ। वे सरस्वती के परम आराधक वा पुत्र थे। उनके सम्मुख शास्त्रार्थ के निमित्त खड़ा होने का किसीको साहस नहीं होता था। नवद्वीप के महान् विद्यावागीश पंडितों की भी यही दशा हुई। सब लोग "कतर ब्योंत" कर निमन्त्रणादि के बहाने इधर उधर टल गये।

एक दिन ग्रीष्म काल की चान्दनी रात में श्रीगौराङ्ग अपने शिष्यों के संग मयापुर पल्ली के बरकोना घाट पर बैठे शास्त्र-चर्चा और खेल कौतुक कर रहे थे। अपने कई लोगों के साथ केशव पंडित उसी राह से जा रहे थे। लोगों की बातचीत में इनका नाम सुनकर वे वहां बेधड़क पहुंच गये। परस्पर परिचय होने पर गौराङ्ग ने अपने शिष्यों के संग उनका आगत स्वागत कर उन्हें सादर सप्रेम बैठाया एवं कुछ वार्तालाप के अनन्तर निमाई ने उन्हें कुछ गंगास्तुति रचने का निवेदन किया, जिसके श्रवण से उन लोगों का पापमोचन और तृप्ति हो।

केशव मिश्र घटिका शतक थे (अर्थात् एक घड़ी में १०० श्लोकों की रचना कर लेते थे) उन्होंने कविता की झड़ी लगा दी। उनकी अद्भुत शक्ति और पांडित्य देख इनके शिष्यों को कुछ भय होने लगा कि ये विचार में उनसे पार पावेंगे या नहीं; पर गौराङ्ग पर उनका कुछ रोब नहीं छाया।

इन्होंने दिग्विजयी की उचित प्रशंसा की। कहा कि "आप की शक्ति तथा पांडित्य अलौकिक और प्रशंसनीय है। आप कृपया निजमुखोच्चारित किसी श्लोक का गुण दोष श्रवण कराइए, क्योंकि इसके बिना कविता का पूरा स्वाद और कविताश्रवण का यथार्थ आनन्द नहीं मिलता।"

उन्होंने कहा "अच्छा, कहो किस श्लोक पर हम विचार करें।" इस पर इन्होंने निम्नोद्धृत श्लोक पढ़ाः—

"महत्वं गंगायाः सततमिदमाभाति नितराम्।
यदेषा श्रीविष्णोश्चरणकमलोत्पत्ति सुभगा॥
द्वितीयश्रीलक्ष्मीरिव सुरनरैरर्च्यचरणा।
भवानीभर्तुर्या शिरसि विहरत्युत्तमगुणा॥" (१)

यह सुनते ही केशव मिश्र को महा विस्मय हुआ। बोले 'यें, यह कैसे? हमने कविता की झड़ी लगा दी थी, आपको यह याद कैसे हो गया?" मन में सोचा सम्भवतः श्रुतिधर होंगे। कदाचित् उनके मनका यह भाव जानकर इन्होंने उत्तर दिया कि कोई सरस्वती के वर से कवि होते हैं, कोई श्रुतिधर।

दिग्वीजयी जी कविता का गुण तो गा गये, पर उसके दोषों के कथन के लिए कहे जाने पर चटख उठे। बोले-तुम व्याकरण के पंडित, अलंकार का हाल क्या जानोगे?" इन्होंने कहा कि हमने

१, इसके चौथा चरण के अन्तिमांश में ऐसा पाठान्तर देखा गया है:—
"विभवत्यद्भुत गुणा"

पढ़ा तो नहीं; परंतु सुना अवश्य है।" इसके इस श्लोक में बहुत दोष होते हैं। चैतन्य चरितामृत में लिखा है:—

कवि कहे कह देखि कोन गुण दोष।
प्रभु कहेन कहि शुन, ना करिह रोष॥
पंचदोष एई श्लोके, पंच अलंकार।
क्रमे आमि कहि शुन, करह विचार॥"

यह कहकर आपने जो कुछ वर्णन किया वह सविस्तर उस ग्रन्थ में वर्णित है। उसके उद्धृत करने या उसका सारांश यहां देने का अवकाश नहीं। फल यह हुआ कि दिग्विजयी परास्त हुए। स्वभाववशात् इनके कोई कोई शिष्य इसपर हंसने लगे। परंतु इन्होंने उन्हें निवारण कर केशव मिश्र की बड़ी सान्त्वना की।

"अमिय--निमाई--चरित" के अनुसार रात्रि में सरस्वती का आदेश पाकर केशव मिश्र इनके शरणापन्न हुए और उन्होंने निजापराध क्षमा के लिए इनसे प्रार्थना की। फिर गौराङ्ग से कुछ शिक्षा पाकर अपनी सब चीज वस्तुओं को बाँट, स्वयं दण्ड कमंडल लेकर वे सँन्यासी हो गए।

परंतु केदारनाथ भक्तिविनोद लिखते हैं कि " एक बालक से परास्त होने का उन्हें इतना खेद हुआ कि लज्जावश वे रातों रात वहां से खिसक गये।

अब विद्वन्मण्डली में गौराङ्ग का डंका बजने लगा और ये स्थानीय पंडितों के सिरताज बन गये, जिससे उन लोगों के जी में जलन भी होने लगी।

दशम परिच्छेद

अब भी वही चाञ्चल्य



यद्यपि दिग्विजयी को जीत कर गौराङ्ग ने नवद्वीप की नाक रखली थी और इससे स्वयं दिग्विजयी के पद के अधिकारी हो गये थे, तौभी अभी तक इनका चाञ्चल्य तथा औद्धत्य नहीं छूटा था। इनमें गम्भीरता नहीं आई थी।

नवद्वीप की वैष्णवमंडली में अद्वैताचार्य्य के बाद श्रीवास का ही दर्जा था। वे गौराङ्ग के पिता के परम स्नेही थे। उनकी स्त्री मालिनी को शची के साथ सखीभाव रहता था। शैशवावस्था में वे लोग गौराङ्ग को गोद में खेलाया करते थे। और इन्हें सदा पुत्रभाव से देखते थे।

एक दिन मार्ग में इनसे भेंट होने पर दण्ड प्रणामादि और कुशलप्रश्न के अनन्तर उन्होंने इनसे कहा कि "जीवन का मुख्योद्देश्य ईश्वरप्राप्ति है। तुम जो उनका भजन भूलकर अहर्निशि विद्याचर्चा और तर्क वितर्क में बिताते हो, इससे क्या लाभ?" इसके उत्तर में इन्होंने कहा "कुछ और सयाने होने पर कोई योग्य गुरु करके हम ऐसे वैष्णव होंगे कि हमारे घर ब्रह्मा और महेश भी आया करेंगे।" फिर उनके प्रश्न पर कि "क्या तुम देव ब्राह्मण नहीं मानते?" ये बोले कि "सोऽहं, जो हरि वह हम अब मानेंगे किसको?" यह कहकर हंसते हुए शिष्यों के संग ये वहां से आगे बढ़े। ऐसे उद्धतपन से उत्तर देने में पिता के तुल्य श्रीवास का निश्चय निरादर हुआ। और इनकी बातों में नास्तिकता की कुछ महक पाकर वे चित्त में दुःखित भी हुए।

एक दिन छात्रों के संग इस अभिप्राय से बाजार चले कि कदाचित् मधुर मधुर बातों के प्रभाव से कुछ जिन्सपत्र प्राप्त हो सके।

प्रथम पानवाले की दूकान पर पान मिलने में सफलता हुई। एक जगह एक वस्त्र पसन्द करने पर और यह कह देने पर भी कि "न पैसा पास में है और न उधार लेने की प्रकृति है" बजाज ने सहर्ष वह वस्त्र बिना मूल्य इनके गले मढ़ दिया; पर श्रीधर के पास सहज ही काम न चला।

वे केले का फूल, उसके पेड़ के भीतरी तहवाला पत्ता इत्यादि बेंचा करते थे। परम वैष्णव थे। रात दिन इस ज़ोर से कृष्ण का नाम उच्चारण किया करते थे कि प्रतिवासियों को सोना कठिन हो जाता था। साधु स्वभाव के थे। खा पी कर जो दो पैसे बचाते थे उन्हें वे देवसेवा में व्यय कर देते थे।

गौराङ्ग जब बाज़ार जाते, उनसे अवश्य छेड़ छाड़ करते। उन्हें चिढ़ाने और तंग करने के लिए उनकी चीज़ों का आधा ही मूल्य देने लगते। यहां तक कह देते कि "जिस गंगा की तुम पूजा करते हो उसके हम जनक और तुम हमें तनक नहीं मानते।' इस पर वे अपने कानों पर हाथें धरते और कहते "सयाने होते पर गम्भीर होना उचित है। पंडित तुम जितने सयाने होते जाते हो, उतना ही तुम्हारा औद्धत्य भी बढ़ता जाता है।"

गौराङ्ग कहते हैं "देवते नित्य बिना मूल्य ही चीज़ें पावें, और हमें देते मूल्य कम भी नहीं करते, यह कौन सा न्याय है?" इनकी हुज्जतों से लाचार होकर श्रीधर कहते "हम हार गये। दाम तो एक कौड़ी भी न घटावेंगे, परन्तु ऐसा ही है तो तुम्हारे खाने को 'थोड़' और 'खोल का पत्ता' नित्य दिया करेंगे। अब आकर हम से राड़ न मचाना।" इसी प्रकार श्रीधर से हुज्जत और झगड़ा रगड़ा समाप्त होता।

और इसी ढंग से आमोद प्रमोद करते अध्यापक गौराङ्ग नगर में विचरण किया करते।

एकादश परिच्छेद

श्री गौराङ्ग का पुनर्विवाह



पाठक वृन्द पर यह बात विदित है कि गौराङ्ग के पूर्वांचल में रहने के समय उनकी पत्नी लक्ष्मी देवी का स्वर्गप्रयाण हो गया था। तब से इनका फिर विवाह नहीं हुआ था।

नवद्वीप में सनातन मिश्र राजपण्डित थे। धनाढ्य भी थे। उन्हें विष्णुप्रिया नाम की एक परम सुन्दरी, सरला, भक्तिमती कन्या थी। उसकी कोमल कान्ति तड़ित के समान झलमल किया करती थी।

गौराङ्ग का सौंदर्य्य जगद्विख्यात था। लोग कहते हैं कि इनके उस कन्या के हृदय में उदय होने से वह सदा इनकी प्राप्ति के निमित्त गंगास्नान और देवपूजन में मन लगाये रहती थी। सम्भव है कि उसने गौराङ्ग को देख भी लिया हो, इससे इनके रूप लावण्य पर मोहित हो इन्हीं के बारम्बार दर्शन की लालसा से दिन में तीन बार गंगास्नान को जाया करती हो। दोनों के स्नान का घाट एक ही था। पर इसमें कदाचित् सफल मनोरथ नहीं होती थी। हां! जब शची को घाट पर देखती तो उनको नम्रभाव से प्रणाम कर नीचे मुख किए उनके सामने खड़ी हो जाती थी। क्यों? हृदय में जिसका सहज स्नेह होता है उसके वस्त्राभूषणों को देखने से भी सुख प्राप्त होता है और यह तो गौराङ्ग की माता थीं। कई बार ऐसा होने से शची के मन में भी उसके प्रति स्नेह उत्पन्न हुआ। उसका पूरा परिचय पाने तथा नामादि जानने से वे उस कन्या को पास बिठाकर अब बातें भी करने लगीं। धीरे २ प्रेम की वृद्धि हुई। अधिक वार्तालाप और देखादेखी से स्वभाव, गुणादि का भी पता मिला। जैसी सुन्दरी, वैसे ही उसका कोमल, निर्मल

पवित्र हृदय भी पाया गया। इस बात से शची को उसे पुत्रवधू बनाने की प्रबल इच्छा हुई। इन लोगों में वैवाहिक सम्बन्ध होने में कोई सामाजिक बाधा नहीं थी।

उधर मदन-मदहारी गौराङ्ग के रूप लावण्य, आभा प्रतिभा, पाण्डित्य आदि के विचार से सनातन मिश्र भी इन्हें अपनी कन्या के प्रदान की इच्छा कर रहे थे।

शची सोचती थी कि "वह राजपंडित, धनाढ्य और हम साधारण एक विधवा स्त्री। हमारे पुत्र को वे अपनी कन्या कैसे देंगे?" एवं सनातन मिश्र सोचते थे कि "गौराङ्ग नवद्वीपीय विद्वान् समाज के सिरताज, वे हमारी कन्या का पाणिग्रहण करने को क्या सम्मत होंगे?"

अन्ततः शची ने साहस कर के काशी मिश्र घटक को सनातन मिश्र के पास भेजा और उन्होंने अपनी स्त्री से सम्मति करके यह विवाह सम्बन्ध स्वीकार कर लिया। उभय दिशि आनन्द का स्रोत उमगा।

सनातन मिश्र ने गणक को बुलाया। गणक को रास्ते में गौराङ्ग से भेंट हुई। इनसे विवाह की बात चलाने पर इन्होंने उच्च हास कर के कहा "हमारा विवाह! हम तो कुछ नहीं जानते।"

बात सच थी। शची ने यह विवाह स्थिर किया था। इसकी इन्हें खबर नहीं थी। घर के काम सब माता ही अपनी इच्छा से करती थीं। ये उसमें कदापि हस्तक्षेप नहीं करते थे। पर घटक को असल बात की जानकारी कहां? उन्होंने सनातन मिश्र से कह दिया कि कदाचित् वर इस विवाह में सम्मत नहीं हैं।

यह सुन कर सनातन मिश्र की क्या दशा हुई होगी, पाठक स्वयं अनुभव करलें। शची को भी यह समाचार मिला। दोनों के उत्साह पर पाला पड़ गया। शची के मन में बड़ा ही दुःख हुआ। उधर भी सब दु:ख सागर में डूबने लगे।

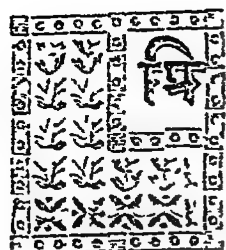
माता के चित्त के क्लेश का ज्ञान होने से गौराङ्ग ने स्वयं सनातन मिश्र को कहला भेजा कि "माता ने जो कुछ स्थिर किया है, ठीक है, आप विवाह का उद्योग करें।"

अन्ततः विवाह का शुभ दिन स्थिर हो कर यह विवाह बड़े समारोह से सम्पन्न हुआ। उधर तो राजपंडित ही थे। इधर पूर्वोक्त बुद्धिमन्त खां ज़मींदार एवं मुकुन्द सञ्जय ने व्यय का सब भार अपने ऊपर लिया। शची जिसे चाहती थीं वह पुत्रवधू हो कर उनके घर आई।

"वासर" घर (कोहबर) में जाते समय कन्या के अंगूठे में चौकठ से चोट लग कर कुछ रुधिर निकल आया था। उसे कन्या ने अशुभ समझा था। पीछे वह बात भूल गई थी। पर गौराङ्ग के सँन्यास ग्रहण के समय उसे वह घटना पुनः याद आई थी।

द्वादश परिच्छेद

गया गमन



य पाठकगण! ध्यानपूर्वक तथा प्रेमपूर्वक, आज दंडित गौराङ्ग का दर्शन कर लीजिये। पीछे श्री गौराङ्ग को देखियेगा, पर नदिया के सर्वविद्यापारंगत, महान्पंडितों के सिरमौर, वरन् दिग्विजयी, गौराङ्ग पण्डित के देखने का फिर अवसर न पाइयेगा। आप गया जा रहे हैं। (१) गये तो थे, आप पहले भी, बङ्गाल के पूर्वाञ्चल में पर्यटन के लिए। पर इन दोनों यात्राओं में बहुत कुछ प्रभेद है। यह अल्प काल ही में आपलोग प्रत्यक्ष ही देख लीजियेगा।

गया हमारे विहार प्रान्त ही में एक चिर प्रसिद्ध पुरातन स्थल है। इसके समान शक्तिमान् अपूर्व गुणसम्पन्न स्थान संसार के किसी भूखंड में वर्त्तमान नहीं है। हिन्दुओं के लिए इस भारत में एकसे एक प्राचीन, सुविख्यात, परमपुनीत तीर्थस्थान हैं, जहां के वास से, जिसके दर्शन से, जिसके रेणु स्पर्शन से, जिसके नाम स्मरण से, एवं जिसके ध्यान से हम हिन्दुओं का उभय लोक में कल्याण की आशा है। यहां सिक्खों और जैन बन्धुओं के भी अनेक आनन्ददायक तथा कल्याणकारक पवित्र स्थान हैं। मुसलमान भाइयों के भी ज़ियारत की जगहें हैं। अन्य भूभाग में भी भिन्न भिन्न देशवासियों, जातियों, धर्मावलम्बियों तथा सम्प्रदायोंके पूजनीय देवालय हैं। पर गया का गुण गौरव कहां? यह पितरोद्धारक स्थान है। जब तक यहां पिंडदान न किया जाय, पितरों का नरक से उद्धार ही नहीं, पुत्र का नाम सार्थक कही नहीं होता। कहिए, यह गुण भारतवर्ष के अथवा जगत के किस स्थान को प्राप्त है? जिन जातियों में पिंडदान की प्रथा

---

१. बीस वर्ष के वयस में विजयादशमी को आप गया गये और पौष में वहां से लौटे।

नहीं, जिन सुशिक्षागर्वित हिन्दुओं को इसमें विश्वास नहीं, उनसे हमारा कथन नहीं, और उन्हें इसकी गुणगरिमा समझने की शक्ति नहीं, पर हमारी दृष्टि में इसकी महान महिमा है। गौराङ्ग के समान जगन्मान्य महान् पंडितके ध्यानमें भी इसका बहुत माहात्म्य है। तभी तो वे श्राद्ध द्वारा पितृऋण से उऋण होने को वहां जा रहे हैं।

इस स्थान के तथा विहार के गौरव का अन्य कारण भी है। जगद्विख्यात परम पूजनीय प्रातः स्मरणीय श्रीबुद्ध देव भी यहीं अध्ययन, साधन तथा तप करके बुद्धावस्था को प्राप्त हुए थे। बोध गया का परम पवित्र स्थान अभी तक उन्हें स्मरण करा रहा है। देश देशान्तर से यात्रीगण उसके पूजन और दर्शन को आया करते हैं। शीघ्र ही देखियेगा कि यह विद्यादिग्गज, तर्कचूड़ामणि गौराङ्ग, को भी सर्वजीवहितकारी अतिदीन कृष्णभक्त बना देगा। नहीं; नहीं; जैसे बुद्धदेव को अवतार के आसन पर विराजमान कराया, वैसे इन्हें भी अवतार रूपमें भगतके सामने खड़ा करेगा।

विहार की भूमि में अपूर्व विलक्षणता है, ऐसे विषयों में इसका मस्तक सदा से उन्नत दीखता है। जैनधर्म के २४ तीर्थंकरों में से पांचका जन्मसम्बन्ध और प्रथम तथा बाईसवेंको छोड़ शेषका कल्याणक सम्बन्ध यहीं से हैं। सिक्खों के दसवें गुरु श्रीगुरु गोविन्द सिंह जी महाराज ने यहीं प्रादुर्भूत होकर, इसीको अपनी बाल-क्रीड़ा-भूमि बनाई है। श्रीशुकदेव जी का भी यहीं सन्देह निवारण हुआ था।

श्रीगौराङ्ग के अल्पकाल के विद्यागुरु, अपने समय के अद्वितीय नैयायिक, वासुदेव सार्वभौम भी यहीं के मिथिलानिवासी पंडित पक्षधर के शिष्य थे। इसे कौन कहे? न्यायशास्त्र का तो यहां जन्म ही हुआ है। अपने पदों से श्रीगौराङ्ग को मोहित करनेवाले विद्यापति भी इसी विहार के ही एक रत्न थे।

पंडित गौराङ्ग माता से अनुमति लेकर अपने मौसा चन्द्रशेखर तथा कतिपय विद्यार्थी शिष्यों के संग गया दर्शन के निमित घर से बाहर हुए हैं। मार्ग में मन्दार पहुंच कर इन्हें ज़ोर से ज्वर हुआ है। वहां के ब्राह्मण का चरणामृत मंगा कर पीने से इनका ज्वर जरजर होकर भाग गया है। जन्म भरमें इन्हें यही एकबार रोग हुआ है।

किसी किसी का अनुमान है कि वहांके निवासियों का आचार व्यवहार देख इनके किसी साथी के मनमें घृणा उत्पन्न होने से इन्होंने यह रंग ला कर वहांके ब्राह्मण का माहात्म्य दरसाया था।

बड़े आदमियों तथा महापुरुषों की साधारण बातों कार्य्यों और उनके सम्बन्धी घटनाओं की आलोचनाएं हुआ करती हैं; उन के भाव और आशय ढूंढ़े जाते हैं। हमारे आपके किसी यात्रा के मार्ग में मर जाने पर भी कदाचित् कोई उधर दृष्टिपात भी नहीं करेगा।

जो हो, आप गया धाम में विराजमान हुए। वहां न जाने इनमें कहां की गम्भीरता आ गई। न वह दौड़ मार कर चलना देखते हैं, न वह शिष्यों के संग हास विलास, आमोद प्रमोद करते। एकदम शान्त, साधुभाव, धीरे धीरे गमन, सबसे सस्नेह सम्भाषण, एकाग्र चित्त, पवित्र भावपूर्ण देश दर्शन, पूजन एवं श्राद्ध कार्य्य सम्पादन तथा मौनावलम्बन, और कुछ नहीं।

सब श्राद्ध क्रियाओं से निवृत्त हो, आप श्रीगदाधर भगवान के चरणचिन्ह के दर्शन को गये। यहां श्रीकृष्ण भगवान ने गयासुर के मस्तक पर अपना पादपद्म रखा था, उसीका चिन्ह अद्यावधि वर्तमान है। वही विष्णुपद के नाम से गया में एक सुप्रसिद्ध स्थान है। सुन्दर वृहत् मन्दिर बना हुआ है। सर्वदा दर्शनार्थियों की भीड़ लगी रहती है। श्राद्ध काल आश्विनादि मास की बात कौन चलावे, श्री गौराङ्ग की यात्रा के समय यहां की क्या अवस्था थी, नहीं कह सकते। परन्तु आज वहां बहुत से गीरहकट और चोर लम्पट भी

रहते हैं, जो यात्रियों और दर्शकों की कमर के अथवा कोट की पाकटों के बोझ को हलका कर देने में एवं उन्हें त्याग और वैराग की शिक्षा देने में सदा तत्पर रहते हैं।

इस स्थान में कई जगह पिण्डा विधि भी होती है। पूजा पाठ भी होता है। पण्डागण चरणचिन्ह की महिमा उच्च स्वर से यात्रियों को सुनाया करते हैं।

यहां पहुंच कर गौराङ्ग ने साष्टाङ्ग प्रणाम किया, प्रेमपूर्ण हृदय से स्तुति की। फिर भाव से एक टक पदचिन्ह का दर्शन करने लगे। सर्वथा मौन और आत्मविस्मृत थे। दर्शन करते करते दोनों होठ हिलने लगे, शरीर कुछ कुछ कम्पित होने लगा। आंख का आंसू रोकना चाहते हैं, पर नेत्र उनके वश नहीं। प्रेमधारा आंखों से प्रवाहित हो चली; वर्षा ऋतु की झड़ी सी बंध गई। सारा शरीर और वस्त्र भींज गये। मुख से बात नहीं निकलती, देह की द्युति चतुर्दिक् फैल रही है। आनन की प्रभा क्षण क्षण वृद्धि पा रही है। गिरने गिरने हो रहे हैं, चारो ओर लोग खड़े हैं, पर किसी को इनका देह स्पर्श करने और उन्हें धरने का साहस नहीं होता।

उस भीड़ के मध्य पाठकों के परिचित ईश्वरीपुरी भी थे, जो प्रथम बार नदिया में गौराङ्ग को देख इन्हें एक टक अवलोकन करने लगे थे और इन्होंने हँसकर कहा था कि "आज हमारे यहां भिक्षा कीजिये, तो हमें सारा दिन देखने की सुविधा मिलेगी।" आज वे एक टक इनका दूसरा रंग देख रहे हैं, उनके गुरु का भी ऐसा भाव होता था। वे श्याम घन देख कर घनश्याम के प्रेम में मयूर के समान नृत्य करने लगते थे, वह भाव उन्हें देखने में आया था। पर आज सा भाव उन्हें स्वप्न में भी देखने का सौभाग्य नहीं हुआ था। यह अपूर्व भाव देख वे चकित और प्रेम-विह्वल हो रहे थे। पर-मानन्द अनुभव कर रहे थे। पर हा! यह सुख देर तक भोगना उन के भाग्य में नहीं था। गौराङ्ग गिर पड़े और इन्हें पकड़ना आव-श्यक हुआ।

उनके शरीरस्पर्श से ये सचेत हो गये। नेत्र खोलने पर उन के दर्शन से महानन्दित हुए। गले लग कर रोने लगे। कहने लगे "आज हमारा सौभाग्य उदय हुआ। आज हम श्री कृष्ण भगवान के दास हुए। आज हमारा उद्धार कीजिए। हम अपने को आप के चरणों में समर्पण करते हैं। आप अपने करुणामय हृदय में स्थान दीजिए।" यह कह कर आप उनके चरणों पर गिर पड़े।

पुरी ने कहा, पण्डित जी ! नदिया की प्रथम भेंट ही में आप हमारे हृदय में प्रवेश कर गये। आप वहां से बाहर न होंगे। हम तो आपके वश में हैं, जो कराइयेगा, करेंगे।

अनन्तर गौराङ्ग अपने सहचरों के संग अपने स्थान पर गये। वहां भोजन बना रहे थे कि इतने में ईश्वरीपुरी जा पहुंचे। इच्छा प्रकट करने से प्रस्तुत सब भोज्य पदार्थ उन्हें भोजन कराकर इन्होंने फिर बनाकर आप खाया।

एक शुभ दिन गौराङ्ग इन्हींसे दीक्षित हुए और वे इन्हें श्री कृष्ण का मंत्र दे कर न जाने कहां चले गये। पुनः उनका हाल किसीको ज्ञात नहीं हुआ। केवल उनके कृष्ण में लीन होने के अनन्तर उन के नौकर गोविन्द ने नीलाचल में जाकर गौराङ्ग को वह सम्वाद जनाया था।

श्री गदाधर के पादपद्म के दर्शन से इनके हृदय में भक्ति का स्रोत फूट निकला। प्रेमभक्ति दिन दिन वृद्धि पाने लगी। प्रकृति सर्वथा बदलने लगी। कृष्णप्रेम में विह्वल हो कभी हंसते, कभी रोते, कभी भूमि में लोटने लगते और कभी वृन्दावन जाने पर उद्यत होते। इनके सहचर किसी प्रकार शान्त कर, इन्हें नदिया लाये। नदिया में लौट आने पर इनकी माता और पत्नी को जो आनन्द हुआ उसका लिखना व्यर्थ है। उसे सब लोग स्वयं अनुभव कर सकते हैं।

एक ही वस्तु को भिन्न २ प्रकृति का मनुष्य भिन्न भिन्न दृष्टि से देखता है। जिस विष्णुपद को देख गौराङ्ग ईश्वरानुराग-रस-वारिधि

में निमग्न होने और उसकी तरङ्गों में उछाल खाने लगे, जिसके अवलोकन से इनको प्रकृति सर्वथा परिवर्तित हो गई उसके विषय में डाक्टर राजेन्द्र लाल मित्र ने 'बोध गया" नामक पुस्तक में लिखा है कि "कलिंग से हिमालय तक और मध्य हिन्दुस्तान से बंगाल तक भूमिका क्षेत्रफल ५७६×२६८ इतना ही होगा। बोध गया उसका सिर अर्थात् बौद्ध धर्म्म का मुख्य स्थान था, जो अब भी एक मोल से अधिक नहीं है। ब्राह्मण लोग जब बोध मत को बुद्धि-बल से न दबा सके तब गदा की सहायता ली और यही कथा उस ढंग से पुराण में कथित है॥" पुराण से इनका तात्पर्य "वायुपुराण गयाखंड" से है। पुस्तक में वहां उसीका प्रकरण छिड़ा है।

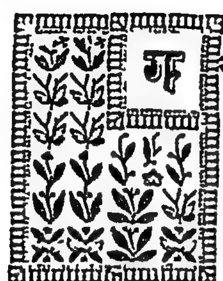
अन्य लोग उसे किस भाव से देखते होंगे, इसे बिना जाने कौन कह सकता है?

द्वितीय खण्ड



प्रथम परिच्छेद

गया से प्रत्यागमन



गया से लौटने पर गौराङ्ग का रंग ढंग सर्वथा परिवर्तित हो गया। विद्यामद, जिससे आप मत्त से देखे जाते थे, एक दम उतर गया। नैयायिकों के संग का तर्क वितर्क आपने तर्क कर दिया। शास्त्रार्थ की विदाई दी। आलोचना-प्रत्यालोचना की प्रवृत्ति का मूलमोचन कर दिया।

ये परमभक्त और पूरे धर्मप्रचारक हो गये। इनकी धार्मिक रुचि तथा आध्यात्मिक शक्ति ऐसी जाग्रत हुई कि अद्वैत, श्रीवास पंडित एवं अन्यान्य लोग, जो इनके जन्म के पूर्व वैष्णव-धर्म्म धारण कर चुके थे, इनकी दशा ऐसी बदली देख अचम्भा करने लगे।

ये जब जो बातें करते, जो व्याख्यान देते, उनमें सदैव श्रीकृष्ण प्रेम की ही कथाएं भरी रहती थीं। इनका भक्तिभाव इतना बढ़ चला कि इनका तन, मन, कार्य सब कृष्णमय देख पड़ने लगा। इनमें गोपियों की सी भक्ति आ गई। पागलों के समान यह हंसते, रोते, उच्चस्वर से अविरत कृष्ण-कृष्ण उच्चारण करते। वृक्षों पर चढ़ जाते और आवेश में अपने ही को कृष्ण मान बैठते थे। इसी

समय सुप्रसिद्ध विद्वान् भक्त अद्वैताचार्य एवं सँन्यासी नित्यानन्द इनसे आ मिले।

पूर्वोक्त मुरारि गुप्त ने अपनी आंखों की देखी बातें कही हैं। उन का कथन है कि "श्रीवास के घर पर अपने सेकड़ों अनुयायियों के सामने, जिन में प्रायः सभी पंडित विद्वान थे, इन्होंने ऐसी शक्ति का परिचय दिया था। इसी समय अपने अनन्य अनुगामियों के संग, इन्होंने उक्त पंडित के आंगन में रात्रि को कीर्तन का रंग जमाया। वहां नित्य गान, वाद्य, नृत्य, और उपदेश होने लगे। उस समय नवद्वीप वैष्णवों का अखाड़ा बन गया। ये लोग नाचते, गाते, गलियों और सड़कों पर घूमते एवं भक्तों के आंगनों में आनन्द मनाते थे। इसीसे नाम-कीर्तन की नींव पड़ी। अब कुछ इन्हीं दृश्यों की छवि पाठकों को स्पष्ट रूप से दिखाने की चेष्टा की जायगी।

गौराङ्ग के घर लौट आने पर इष्टमित्र तथा शिष्यगण, सब इन से मिलने आये। इनकी नम्रता तथा भक्ति भाव से प्रसन्न हो सब लोग मिल जुल कर अपने अपने घर लौट गए।

तीसरे पहर में श्रीमान पंडित, सदाशिव कविराज और मुरारि गुप्त इनके द्वार पर बैठे थे। गया यात्रा का वृतान्त कहते कहते जब इन्हों ने गयासुर के सिर पर श्रीविष्णु भगवान के पैर (१) रखने और उस पादपद्म के दर्शन का प्रकरण उठाया, तब कृष्णप्रेम से

१. वायुपुराण के गयाखंड में लिखा है कि गयासुर तपस्या कर और वर पा, सर्वदा ईश्वर भजन में मग्न रहने लगा। देवगण उसके तप से भयभीत हो उसके नाश में लगे। विष्णु के आज्ञानुसार उसका शरीर यज्ञ करने को मांगा गया। उसने देना स्वीकार किया। उसका शरीर पहाड़ पर पार कर उस पर यज्ञ किया गया। पर इससे उसका निधन नहीं हुआ। दूसरी युक्तियां भी निष्फल हुईं। तब विष्णु भगवान ने गदाधर रूप धारण कर उसका वध किया और अन्त समय उसके प्रार्थनानुसार यह वर दिया कि "जो गया में पिंड दान करेगा, अपने अनेकानेक पुरुषों के साथ नरक से उद्धार पावेगा।"

डा० राजेन्द्र लाल मित्र ने जो इसका भाव निकाला है, वह पहले ही लिखा जा चुका है।

विह्वल हो ये एकदम मूर्छित हो गये। फिर चैतन्य होने पर कृष्ण ! कृष्ण !! कह कर रोने लगे। नेत्रों से आंसू की झड़ी बंध गई। वहां की भूमि तर हो गई। आंखों से इतना जल गिरते कदाचित् किसी ने कभी नहीं देखा होगा, न चक्षु से देखते हैं, न कानों से सुनते हैं। केवल मुख से "श्री कृष्ण श्री कृष्ण" चातक के समान रट रहे हैं, कोई इनकी भक्ति देख आश्चर्य प्रदर्शन कर रहे हैं; कोई प्रशंसा करते हैं; कोई कहते हैं कि "तीन मास पहले क्या कोई स्वप्न में भी अनुमान कर सकता था कि उद्धतराज गौराङ्ग ऐसे, शान्त और भक्त होंगे ?" उस समय यात्रावृतान्त ये कुछ न कह सके। दूसरे दिन प्रातःकाल शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी के घर उन लोगों को वृतान्त सुनाने के लिए बुलाये गये।

रात को शयनकाल में भी यही दशा हो गयी। कृष्णविरह से ये फूट फूट कर रोने लगे। विष्णुप्रिया घबड़ा कर इनकी माता को इनके पास बुला ले गयीं। माता के बहुत पूछने पाछने पर इन्हों ने कहा "मा ! क्या कहूं ? अभी स्वप्न में वनमालाधारी श्यामवर्ण के एक व्यक्ति को देख कर आनन्दाश्रु रोके नहीं रुकता।" और उसी पुरुष की छवि आदि वर्णन में इन तीनों व्यक्तियों की सारी रात कटी।

प्रातःकाल श्रीमान पंडित के द्वारा, पूजार्थ फूल चुनने के समय, श्रीवास, गदाधर प्रभृति को नूतन भक्त गौराङ्ग की अलौकिक भक्ति का हाल ज्ञात हुआ। सब वैष्णव आनन्द से फूल उठे। श्रीवास ने कहा "इतने दिनों पर भगवान ने हमलोगों की मनोकामना सिद्ध की।" कोई मोछों पर ताव देकर कहने लगे 'अब क्या, ? जब पंडितराज श्रीगौराङ्ग प्रबल वैष्णव हो गए, दूसरों का दाँत खट्टा कर देंगे।"

दूसरे दिन प्रातःकाल मुरारि इत्यादि शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी के घर पर गंगा किनारे गये। गदाधर भी जा कर एक घर में छिप कर

बैठे; क्योंकि उनकी बुलाहट नहीं थी। कुछ काल पीछे गौराङ्ग भी वहां पहुंचे। पर चौकठ तक जाते जाते फिर वही दशा हो गई। "हा कृष्ण !" कह कर मूर्छित हो गये। कुछ चैतन्य होने पर वही कृष्णनामोच्चारण, वही रोदन; कभी मुरारि का गला पकड़ कर "हरि भज, हरि भज" कहना; कभी सदाशिव से कृष्ण भजन करने को अनुरोध करना; सारा दिन यही रंग ढंग रहा। इनका प्रेम देख गदाधर घर के भीतर ही फूट फूट कर रोने लगे। यह जान कर कि वह गदाधर है। आप कहने लगे "धन्य गदाधर ! धन्य ! तुमने बाल्यावस्था ही से श्रीकृष्ण को पहचाना, हमारा समय यों ही नष्ट हुआ। आ, आ, निकल बाहर आ।" और उनके निकलते ही उनके गले से लिपट कर रोने लगे।

सायंकाल में निज विद्यागुरु गंगादास का दर्शन करते, एवं पुरुषोत्तम सञ्जय के घर उनके पुत्र मुकुन्द आदि से स्नेहपूर्वक भेंट करते, सबसे मिल जुल कर ये अपने घर आये। सञ्जय के घर वालों ने इनके शुभागमन का महा-आनन्द मनाया।

अपने पूज्यपाद गुरुवर्य के गया से प्रत्यागमन का शुभ समाचार पाकर इनके सब शिष्य सानन्द इनकी सेवा में उपस्थित हुए। दूसरे दिन ये यथा नियम अपने टोल के मंडप में गुरुगद्दी पर विराजमान हुए और शिष्य गण भी अपनी अपनी जगह पर बैठ गये। परन्तु यहां तो "मोहि राम नाम सुधि आई। ताना कौन तने रे भाई" की बात थी। पढ़ाने में किसका मन लगे। कृष्ण नाम पर व्याख्या आरम्भ हो गयी। ईश्वर-चरण-प्राप्ति का उपाय करना ही जीव का कर्त्तव्य और धर्म है। विद्या निमित्त इतना परिश्रम करने से क्या लाभ ? दो तीन दिन इसी प्रकार की बातें हुई; इसी रीति से समय व्यतीत हुआ। इस बात की खबर इनके विद्यागुरु गङ्गादास को मिली। वे महान पण्डित थे, पर उसीके प्रभाव से एक प्रकार के नास्तिक ही थे। निमाई के भक्त होने की बात सुन कर

उन्होंने बड़े ज़ोर से ठहाका लगाया। उनका विचार इनके विचार के प्रतिकूल था। वे विद्याभ्यास ही को जीवनकर्त्तव्य मानते थे। जो हो, उन्होंने इनको बुलाकर शिष्यों को मन लगा कर पढ़ाने का उपदेश किया, क्योंकि इनके शिष्यगण इनपर इतना मोहित और इनमें इतना अनुरक्त थे कि अन्य पंडित के निकट विद्याभ्यास करना नहीं चाहते थे। इन्होंने अपनी भूल स्वीकार कर क्षमा-प्रार्थना की और आगे से पढ़ाने में चित्त देने की प्रतिज्ञा की। फिर गुरु को प्रणाम कर वहां से विदा हुए।

(इनके प्रथम कृपापात्र और प्रथम संकीर्तन।)

गंगादास के घर से शिष्यों के संग विद्याचर्चा करते चले आ रहे थे। रास्ते में रत्नगर्भाचार्य के द्वार पर बैठ गये। वे सिलहट निवासी महाशय इनके स्वदेशी और स्वग्रामी थे। रात का समय था। वहां बैठ कर आपने शास्त्रचर्चा आरम्भ की। इनका पांडित्य देख शिष्यवर्ग चकित हो रहे थे कि इतने में रत्नगर्भ जी ने बड़े मधुर स्वर से यह श्लोक कहाः—

"श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यबर्ह-
धातुप्रवालनटवेषमनुव्रतांसम्।
विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जम्।
कर्णोत्पलालककपोलमुखाब्जहासम्॥" (१)

यद्यपि गौराङ्ग बाहर वालों के सामने सदा सचेत और सावधान रहते थे जिसमें उनका भाव न बिगड़ने पावे, पर यह श्लोक सुन कर वे अपने को सम्हाल न सके, मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़े। कुछ चैतन्य होने पर छाती फाड़ कर रोने और धरती पर लोटने लगे। इनकी दशा देख सब चित्रलिखित से हो गये। हरि-प्रेम का ऐसा आवेग कभी किसीको देखने का संयोग न हुआ था।

१. श्रीमद्भागवत दशम स्क०, २३ अ०, २२ श्लोक।

शिष्यगण सकते की हालत में थे। जो उस रास्ते जाते यह दृश्य देख ठिठक जाते, आनन्द-विह्वल हो इन्हें वारम्वार प्रणाम करते।

ऐसे ही लोटते लोटते ये फिर श्लोक पढ़ने को कह उठे। श्लोक पढ़े जाने पर इन्होंने उठ कर रत्नगर्भ को अंक में लगाया। बस अब क्या था? वे कभी इन्हें प्रणाम करने, कभी रोने और कभी श्लोक पढ़ने लगे ये जितना ही श्लोक पढ़ते, ये इतना ही आत्मविस्मृत हो भूमि पर लोटते। इनके सदा के संगी गदाधर वहीं थे। उन्होंने किसी प्रकार श्लोक पढ़ा जाना बन्द कराया और तब इनका चित्त स्वस्थ हुआ। फिर सब लोग गंगास्नान को गये और वहां से घर।

येही रत्नगर्भ इनके प्रथम कृपापात्र हुए।

दूसरे दिन आप टोल में गये। चेष्टा करने पर भी पढ़ा न सके। तब इन्होंने सकरुण स्वर से शिष्यों को कहा "भाई! अब हमारी आशा परित्याग करो; हमसे तुमलोगों का काम नहीं होगा; हमें क्षमा करो; किसी अन्य पुरुष के निकट विद्याध्ययन करो और विद्याभ्यास ही से क्या? भगवद्भजन करो; उसीमें वास्तविक सुख और लाभ है। हम जब पढ़ाने का यत्न करते हैं, तब एक श्यामवर्ण का शिशु मुरली बजा बजा कर हमारी सुद्धि बुद्धि हर लेता है।" यह सुन कर शिष्यों को महा खेद और औदास्य हुआ। इन्होंने कहा "अब हम लोग कहां जायंगे? आपके समान स्नेहपूर्वक हमें कौन शिक्षा देगा? अब यही आशीर्वाद कीजिए कि जो कुछ पढ़ा है वही फलदायक हो।" यह कहते कहते किसीके नेत्रों से जल प्रवाहित होने लगा; किसीका कंठ रुद्ध हो गया; किसीके मुख पर पियरी छा गई। गौराङ्ग ने सबों को आशीर्वाद दिया। प्रत्येक को छाती से लगाया; श्री-कृष्ण-शरण लेने और उनका गुणगान करने का उपदेश दिया और कहा कि "इतने दिन हमलोगों का सानन्द साथ रहा, आज विलग

होते समय एक बार कृष्ण कह कर हमारा हृदय शीतल करते जाओ।"

शिष्यों ने सहर्ष स्वीकार किया। इन्होंने उनके साथ मिल कर

"हरि हरये नमः कृष्णाय, यादवाय नमः
गोपाल गोविन्द राम श्री मधुसूदन" इत्यादि

कहते कीर्तन आरम्भ किया। उसका रंग ऐसा जमा कि चारो ओर से लोग उसका आनन्द लेने दौड़े। सबके हृदय में भक्ति का उद्रेक हुआ। सब आनन्द से गद्गद हो गए। गौराङ्ग के प्रेमभाव ने सबको संत्रमुग्ध कर दिया।

संम्वत् १५६५ में "नाम कीतन" का यही सूत्रपात हुआ। उसी दिन के संकीर्तन के प्रभाव से इनके बहुत से शिष्य इनके भक्त बन गये और कितने उदासी हो गये।

आज जैसा उस समय श्रीगौराङ्ग अथवा श्रीनित्यानन्द की लीलाएँ सम्बन्धी पद गा गा कर संकीर्तन नहीं होता था। उसकाल में लोग उपयुक्त "हरि हरये नमः" इत्यादि का ही कीर्तन करते थे।

द्वितीय परिच्छेद

श्रीगौराङ्ग की नूतनावस्था का प्रचार

"होने वाला जो कोई होता है काम।
ग़ैव से होते हैं सामां आशिकार॥"



अब निमाई पंडित, निमाई पंडित नहीं रहे। अब आपका टोल भङ्ग हो गया। नदिया में अब "हरिकीर्तन" का सूत्रपात हुआ। अहर्निश कृष्णविरह से सन्तप्त रहने के कारण इनकी अवस्था लोगों को शोचनीय प्रतीत होने लगी।

माता का वयस सत्तर वर्ष का था। घर में कोई और सन्तति नहीं। केवल यही सर्वप्रधान पंडित पुत्र और बालिका पुत्रवधू, विष्णुप्रिया। इनकी दशा देख माता को महा क्लेश हो रहा था। इनका रह रह कर रोना, बात बात में बेसुध होना, किसी प्रश्न का स्पष्ट, शुद्ध उत्तर न देना, उन्हें पागल बना रहा था। उस पर टोले मुहल्ले के लोग उनके दग्धचित्त को और भी जलाने लगे। लोग गौराङ्ग को पागल बताने और उन्हें कोठरी में बन्द रखने वा सीकड़ में जकड़ने की सम्मति देने लगे।

कुछ स्वस्थ रहने पर गौराङ्ग यही कहते कि "रोग और कारण क्या है, वह नहीं जानते, पर हमें रोने ही का जी चाहा करता है। मा! तु मुझे छोड़ दे। मैं वृन्दावन श्रीकृष्ण की खोज में जाऊंगा।" एक बार सब प्रश्नों के उत्तर में राधा और कृष्ण कहते गये। इन बातों से घबड़ा कर शची ने अपने पूज्य पति के परम मित्र श्रीवास को सब हालत कहने के लिए बुला भेजा।

जबसे उस दिन श्रीमान् पंडित के मुख से उन्होंने गौराङ्ग की भक्ति तथा स्वभावपरिवर्तन का समाचार सुना था, तभी से वे इन्हें देखने के लिए उत्सुक थे। बुलाहट जाते ही आ धमके।

उस समय गौराङ्ग तुलसी की पूजा-प्रदक्षिणा कर रहे थे। दोनों नेत्र प्रेमाश्रुपूर्ण थे। श्रीवास को देख, उन्हें परमभक्त जान, उन्हें प्रणाम करना चाहते ही थे कि मूर्छित हो गये। कुछ ज्ञान होने पर ये "कृष्ण, कृष्ण" कह कर रोने लगे। एकदम स्वस्थ होने पर इन्होंने अपनी दशा एवं तज्जनित माता की दशा सब कह सुनाई और उनसे उपाय पूछा।

श्रीवास ने सहास्यवदन कहा कि "जो तुम्हें वायुरोगग्रस्त कहता है उसे स्वयं वायुरोग हो गया है; इस वायुरोग की वांछा ब्रह्मादि देवगण करते हैं। कृपा कर तुम हमें भी इस रोग का भागी बनाओ तो हम अपने को धन्य मानें। तुम पर श्रीभगवान की पूर्ण कृपा हुई है। तुम्हें और तुम्हारी माता शची को चिन्ता का कोई कारण नहीं है। आजसे हमारे घर पर हमलोग सब साथ मिल कर संकीर्तन करते जांय।"

अब गौराङ्ग के आनन्द की सीमा न रही। इन्होंने कहा कि "यदि आप आश्वासन न देते तो हम गंगा में डूबकर प्राण दे देते।" यह कह कर आप उनके अंक में लिपट गये। आलिङ्गन करते ही आनन्द से उनका शरीर रोमाञ्चित होने लगा। आपने अपने राग अर्थात् कृष्णप्रेम का अंश उन्हें दे दिया। इसी समय से क्या, शिष्यों को अंक में लगाने के समय ही से "कृष्णप्रेम" वितरण आरम्भ हुआ। इस शक्तिसंचार का विचार उपयुक्त स्थान में किया गया है।

तब तो तार अखबार नहीं था। सर्वसाधारण का मुख ही समाचार-पत्र का काम करता था। लोगों के द्वारा अद्वैत की सभा में भी इसकी खबर पहुंची। सब इनकी नम्रता, भक्ति तथा दैन्य भाव की प्रशंसा करने लगे।

पाठक महोदय! अद्वैत और उनकी सभा से आप अवश्य परिचित हैं। वही अद्वैत जो भक्ति के प्रभाव से श्रीकृष्ण को

आकर्षित करने एवं भूतल पर आविर्भूत कराने के लिए प्रेमपूर्ण चित्त से आराधन और भजन कर रहे थे और सभा वहीं जहां सर्वदा वैष्णवों का अखाड़ा जमता था। थे तो अनन्य और परम भक्त, पर हृदय सन्दिग्ध था। सब बातों में शंका तुरत आ दबाती थी। साकार निराकार का बवन्डर भी कभी कभी उनके चित्त को चंचल कर देता था।

यह शुभ संवाद पाकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। आनन्द से उनका हृदय उछल पड़ा। वे अपने गत रात का स्वप्न उपस्थित लोगों को सुनाने लगे। स्वप्न की बात यही थी कि गीता के एक श्लोक का आशय नहीं समझने से उन्होंने उपवास किया था। शेष रात्रि में उन्होंने देखा कि कोई व्यक्ति कह रहा है कि "उठो, उस श्लोक का अर्थ सुनो तुम क्यों दुःख करते हो? तुम्हारा संकल्प पूरा हुआ। हम स्वयं आये हैं। अब कीर्तन आरम्भ होगा और जीवों का उद्धार होगा।" आंखें खोलने से उन्होंने देखा कि विश्वम्भर (गौराङ्ग) उनसे बातें कर रहे हैं और बातें करते करते अदृश्य हो गये।

अद्वैत और कहने लगे कि बालावस्था में जब यह अपने भाई विश्वरूप को उनकी सभा से बुलाने जाते थे, उसी समय उनका चित्त बलात्कार इनकी ओर आकृष्ट होता था और वे सोचते थे कि वे तो कृष्ण के अनन्य दास हैं, उनका चित्त एक बालक कैसे अपहरण करता है। अन्त में उन्होंने कहा कि "जब सुप्रसिद्ध नीलाम्बर पंडित के नाती, जगन्नाथ पुरन्दर के पुत्र, विरक्त विश्वरूप के भ्राता, और स्वयं दिग्विजयी पंडित के हृदय में भक्ति का उदय हुआ है तब इसमें हमलोगों का कल्याण ही है और यदि ये स्वयं "वह" होंगे तो एक बार अवश्य ही आवेंगे, दर्शन देंगे, हमें उन्होंने ऐसा ही वचन दिया है।"

एक दिन गौराङ्ग गदाधर के संग उनके घर जा पहुंचे। उन्हें तुलसी की सेवा करते देख एवं भक्तभूषण जान यह "हुंकार" कर वहीं मूर्छित होगये। इनका अङ्ग प्रत्यङ्ग ध्यानपूर्वक निरीक्षण करने से उन्हें विश्वास होगया कि ये निश्चय श्रीभगवान हैं और उन्होंने उसी संज्ञाशून्यावस्था में चन्दनादि द्वारा इनकी विधिवत् पूजा की।

गदाधर के यह कहने पर कि "इन्होंने आपका क्या अपराध किया है कि आप इनकी पूजा कर इनका अशुभ कर रहे हैं" अद्वैत ने हंस कर कहा "कि ये कैसे बालक हैं, यह तुम्हें कुछ दिन बाद ज्ञात होगा।"

मूर्छा भङ्ग होने पर इन्होंने वह रंग दिखलाया कि अद्वैत सन्देह-समुद्र में गोता खाने लगे। कहा कि "आपके चरणों के दर्शन की बड़ी लालसा थी, आज मनोरथ सफल हुआ, हम भवसागर में डूब रहे हैं; हमारा उद्धार कीजिए, हमारे मस्तक पर चरण रख कर हमें पवित्र कीजिए।

इनके इस वाक्य और लीला से अद्वैत की बुद्धि चकरा गई। वे भूल गये कि भक्त भृगु की लात भगवान अब तक वक्षस्थल पर भूषणस्वरूप धारण करते हैं, आज तक बलि के द्वार पर दरवान बने खड़े हैं और नारद का शाप शिरोधार्य्य कर अपने ऊपर कितना कष्ट उठाया है। कुछ काल उधेड़ बुन में पड़े रहने के अनन्तर वे नदिया परित्याग कर शान्तिपुर चले गये कि "यदि यह भगवान हैं तो हमारी खोज खबर लेंगे। उन्होंने यह दूसरी बार परीक्षा लेने का विचार किया।

यदि संज्ञाशून्य नहीं हुए होते तो गौराङ्ग उन्हें अपने चरणों की पूजा नहीं करने देते; क्योंकि जब पूर्वाञ्चल में तपन मिश्र ने आकर इनसे कहा था कि "एक ब्राह्मण ने स्वप्न में कहा है" कि आप पूर्ण ब्रह्म सनातन हैं। आपही के पास हम उद्धार पावेंगे" तब इन्होंने दांतों से जीभ काट कर कहा था "ऐसी बातें नहीं कहनी चाहिए; जीव में भगवद्बुद्धि रखनी पाप है।"

तृतीय परिच्छेद

श्रीवास के घर कीर्तनारम्भ


वास के प्रस्तावानुसार उनके यहां कीर्तन के लिए सब एकत्र हुए। जब लोग गौराङ्ग को चारों ओर से घेर कर बैठे, तो ये कुछ कहते कहते मूर्छित हो गये। चैतन्य होने पर वही रोना, हंसना और श्रीकृष्ण की खोज, इसीमें रात सानन्द व्यतीत हो गई।

परन्तु इसी रात को वह वृत्तान्त, जिसके सुनाने की इन्होंने गया से लौट कर अपने द्वार पर और फिर दूसरे दिन शुक्लाम्बर के स्थान पर चेष्टा की थी और न कह सके थे, भक्तों को कह सुनाया।

अर्थात् गया से आते समय गौड़ निकटवर्त्ती नाटशाला ग्राम में श्रीकृष्ण भगवान् परम रूपवान् ने नूपुर पहने नाचते नाचते और हँसते हँसते इनके पास आ इन्हें छाती से लगाया और फिर वे अदृश्य हो गये। यही कह कर लोगों से विह्वल हो पूछने लगे "वे कहां हैं? कहां गये?"

एक दिन गदाधर से ऐसा ही प्रश्न करने पर उन्होंने कहा "कृष्ण गये कहां? वे तो आप के हृदय में हैं।" यह सुन आप आनन्दित हो कहने लगे "फिर क्या?" एवं नखों से अपना वक्षस्थल विदारने लगे। बड़े बड़े यत्नों से लोगों ने इन्हें उस कार्य से निवारण किया।

यह काल इनके पूर्वानुराग का था। स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभङ्ग, कम्प, वैवर्ण्य, प्रलय इत्यादि (१) उस अवस्था के सात्विक लक्षण, जो काव्य के ग्रन्थों में वर्णित हैं, इनमें सभी देखे

---

१ इन सबों का वर्णन पाठकगण "जगत् विनोद" "रसकुसुमाकर" आदि रस के ग्रन्थों में देख सकेंगे।

जाते थे। साथ ही साथ रोना, हँसना और ज्ञानशून्य होना। सो भी पराकाष्ठा का।

अब तक वस्तुतः कीर्तन नहीं होता था। धीरे धीरे इनकी दशा स्ववश होने लगी। अब ये कुछ नृत्य करने लगे। परन्तु उस में उद्दण्ड भाव का आधिक्य था। बड़े वेग से नृत्य करते। कोई इनका साथ नहीं दे सकता था। कभी कभी बेहोश हो गिर भी पड़ते थे, जिससे इनका अङ्ग भङ्ग हो जाने का भय हो जाता था। इसीसे इनके भक्तगण इन पर सदा दृष्टि रखते और सावधान रहते थे।

अल्पकाल के अनन्तर अपने शरीर पर इनका पूरा अधिकार हो गया। अब इनका नृत्य महा मधुर होने लगा। ये दोनों हाथ ऊपर उठाये "हरिबोल, हरिबोल" कहते नृत्य किया करते थे। और संग संग मृदंग, मँजीरा और करताल बजा करता था। न आज के समान हार्मोनियम बजता था और न किसीके गुणगान का गीत और पद ही गाया जाता था।

रात रात भर नृत्य वाद्य रहता था। सब सुखसागर में गोता लगाया करते थे। अब अन्य भक्तों पर भी इनके प्रेम का प्रभाव पड़ा। वे लोग भी आत्मविस्मृत हो कभी रोते, कभी हँसते, कभी एक दूसरे का पांव पकड़ सैकड़ों प्रणाम करते और कभी धूलि में लोटने लगते।

यह स्वाभाविक बात थी। जब कुसंगति अपना प्रभाव दिखलाती है, तब सत्संगति का प्रभाव क्यों न देखने में आवेगा। और उसमें भी भगवान और महन्त महान की संगति। जो महाप्रभु चैतन्य को ईश्वरावतार नहीं मानते, उन्हें आपको महापुरुष, महासंत अवश्य मानना पड़ेगा। और आदिगुरु नानकजी कहते हैं:—

"पारस में अरु संत में, बड़ो अन्तरो जान।
वह लोहा सोना करे, ये करें आप समान।"

अर्थात् पारस लोहे को सोना ही बना कर छोड़ देता है, उसे पारस नहीं कर देता, और संत, संत ही बना देते हैं। तब श्रीगौराङ्ग के प्रेमपात्र भक्तों की ऐसी दशा होनी उचित ही था।

इनके कीर्तन में सबलोग महा सुख अनुभव करते थे। वह बड़ा ही आनन्दप्रद होता था। ये स्वयं आनन्द के ही वश होकर नृत्य करते थे। यही इन्हें नृत्य करने को खींच ले जाता था। कहावत ही प्रसिद्ध है कि " अमुक व्यक्ति मारे खुशी के नाचने लगा।" इन्हें किसी प्रकार का महानन्द होने का यही प्रमाण है कि ऐसे जगज्जायी गुणवान् पंडित को जिसके सामने आंखें बराबर करने का बड़े बड़े महान पंडितों को भी साहस नहीं होता था, सबों के सामने नाचते हुए कुछ हिचक, संकोच और लज्जा नहीं होती थी। आज कहीं श्रीमद्भागवत तथा श्रीरामायण की कथा मंडलि में वा किसी कीर्तन के अवसर पर लोगों को जयध्वनि करने में लज्जा होती है, जैसे कोई कुकर्म करने जाते हों। प्रायः पढ़े लिखे श्रोता के मुख से तो यह शब्द ही नहीं निकलेगा मानो उनके मुंह में "जाबी" लगी हो वा उनकी ' बोलती " मारी गई हो। किसीके मुंह से निकला भी तो वह निकल कर उसीके कानों में विलीन हो जायगा। जिन्हें आप मूर्ख समझते हैं उन्हीकी जयध्वनि से आकाशमंडल गूंजेगा। उन्हींकी ध्वनि प्रेमियों के हृदय में आनन्द की वर्षा करेगी। और आपके बुद्धिमान विद्वान तो ऐसे स्थान में जाने में ही अपना अपमान और हतक इज्ज़ती समझेंगेऔर समझते हैं।

ऐसा नृत्य दो ही प्रकार के लोग करने में संकोच न करेंगे, जो मदमाते,हों या प्रेमप्याला खूब छाके हो। अथवा स्वयं भगवान, जिन्हें कोई काम किसीके सामने करने में संकोच नहीं, किसीकी लज्जा नहीं, किसीका भय नहीं।

अब इन के भक्तों अथवा सहचरों को मान होने लगा कि जैसे इनका पांडित्यकोष परिपूर्ण है, इनका कृष्णप्रेमभंडार भी अक्षय

और अघट है। इच्छा करने और प्रसन्न होने ही से ये उसे दूसरों को दान कर सकते हैं और कृष्णप्रेम भी वास्तविक कोई पदार्थ है। गदाधर इनका बहुत काल का प्रेमी, सर्वकाल का साथी और सेवक थे। अङ्गद के यह कहने पर भी कि "नीच काज गृह के सब करिहौं" श्री रामचन्द्र ने उन्हें अपने पास नहीं रखा। और गदाधर गौराङ्ग के साथ बराबर रहकर घर का नीच काम भी करते और इनके चरणों के पास शयन भी करते। एक रात वे इनके चरण पर अपना मस्तक रख रोने लगे और पूछने पर उन्होंने डरते डरते कहा कि "किस अपराध से कृष्णप्रेम की हम पर कृपा नहीं होती।" गौराङ्ग महाप्रभु बोले "अच्छा, कल्ह गंगास्नान के बाद ही तुम्हें श्रीकृष्णप्रेम प्राप्त होगा।"

अब गदाधर की आंखों में नींद कहां ? करवटें बदलते भोर हुआ। स्नान कर कृष्णप्रेम में निमग्न नेत्रों से प्रेमाश्रु बहाते प्रभु के पादपद्मों में गिर कर उन्होंने अपना सौभाग्य प्रकट किया।

गौराङ्ग के घर के निकटवासी शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी ने भी, जो इन्हें पुत्र सा प्यार करते, इनकी नांक मुंह पोंछ देते थे, इनसे कृष्ण प्रेम की भिक्षा की; परन्तु उन्होंने उसके पाने के लिए अपना हक़ दिखलाया कि "हमने बहुत कष्ट उठाकर द्वारावती प्रभृति तीर्थों का दर्शन किया है हम पर कृपा होनी चाहिए।" प्रभु बोले "ऐसे स्थानों में जाने और रहने ही से क्या ? वहां क्या शूकरादि नहीं रहते ?" इससे वे महा लज्जित और व्यग्र चित्त हो रोने लगे। तब इन्हें दया आई और इन्होंने कहा कि "दिया दिया।" वे उसी समय भिक्षाटन कर के आये थे। आनन्द से कंधे पर झोली रखे नाचने लगे, सब हँसने लगे और ये उनकी झोली से धानमिश्रित चावल निकला कर खाने लगे।

माघ मास में कीर्तन आरम्भ हुआ था। चैत मास तक इसकी चर्चा तमाम फैल गई। बहुत से सुप्रतिष्ठित लोग इसमें सम्मिलित हुए।

कीर्तन श्रीवास पण्डित के घर नित्य हुआ करता था। नियत समय पर द्वार बन्द हो जाता था। उसके पीछे स्वजन अथवा अन्य जन कोई भीतर जाने नहीं पाता था। बाहर दो एक द्वार रक्षक रहते थे। कीर्तन के गान, वाद्य सुन कर बहुत से लोग भीतर जाना चाहते थे। पर वहां प्रेमियों का काम था। वहां तमाशा थोड़े ही होता था कि जो चाहे टिकट लेकर या दरवान की मुट्ठी गरम कर वहां पहुंच जाय। रुकावट होने से कतिपय लोग चिढ़ कर इसको नाना प्रकार की निन्दा करने लगे, वरन् वहां के हाकिम के पास भी जाकर नालिश की, कि निमाई धर्मविरुद्ध काम करते हैं, इस प्रकार के कीर्तन से हृदयवासी प्रभु को क्लेश होगा एवं वह कुपित हो जनसमुदाय को कष्ट देंगे, लोग अन्न दाना को मरने लगेंगे।

वाह रे ईर्ष्या! तेरी बदौलत कितने घर और देश चौपट हुए। भारत तो तेरे कारण आज तक दुःख भोग रहा है। प्लेग में यहां लाखों खप गये, महासमर में करोड़ों का सिर क़लम हो गया, पर तुझे मौत तक न आई। यमराज आज भी तुझे भूले बैठे हैं। यदि इस भूतल से तू अदृश्य हो जाती, तो न जाने संसार कैसा सुखमय हो जाता। आज भी तू अपनी करनी करतूति से बाज़ नहीं आती। भारत तो तेरे मारे जर्जर हो गया, उसका नाकों दम आगया।

हाकिम ने कदाचित् इस विषय में अनुसन्धान की बात कही थी। उसको रंग बिरंगी टिप्पणियां होते होते यह जनरव फैला कि गौड़ाधिप की आज्ञा से एक सेनापति ससैन्य कीर्तनियों को पकड़ने आ रहा है। इससे कुछ कीर्तनिये भीत हुए। श्रीवासादि के मन में

भी कुछ भय हुआ, परन्तु वे लोग खुले नहीं। गौराङ्ग के चित्त में चैन राज कर रहा था। नगर घूमते, गंगास्नान करते, सानन्द कीर्तन तथा कृष्णप्रेम का रसास्वादन किया करते थे। इन्हें भय कहां! एक दिन गंगातट पर एक पंडित महाशय इन्हें सपरिवार कहीं भाग जाने का परामर्श देने लगे और बोले कि "पहले तुम्हारे माथे वज्र गिरेगा। तुम यहां से टल जाव।" इन्होंने कहा "राज्य के बाहर कहां जायंगे? जो होगा देखा जायगा। पकड़ा कर राजा के पास जायंगे तो वहां कुछ काम भी चलेगा। यहां पंडित होने पर भी कोई नहीं पूछता"

चतुर्थ परिच्छेद

प्रकाश



वांके श्रीवास श्रीनरसिंह के उपासक थे। ज्येष्ठ का महीना था। वह अपने पूजागृह में अपने इष्टदेव का ध्यान कर रहे थे। अकस्मात् श्रीगौराङ्ग वहां पहुंच कर और उनका नाम लेकर उन्हें पुकारने लगे। उनके पूछने पर कि "कौन है" इन्होंने उत्तर दिया "जिसका तुम ध्यान कर रहे हो।" कपाट खोलने पर इन्हें देख वे अकचका गए और ये भीतर जाकर श्रीशालग्राम का विग्रह एक ओर करके उसी आसन पर बैठ गये और बोले कि "हम आगये हैं, हमारा अभिषेक करो।" उस समय इनके तेज से सूर्य्य की ज्येष्ठवाली प्रखर ज्योति मलीन हो रही थी। श्रीवास इनके तेज और कार्य से स्तम्भित हो गये। उन्हें कुछ कहते न बना। अपने भाइयों, घर की स्त्रियों तथा दासियों के द्वारा सब प्रयोजनीय सामग्रियां (१) प्रस्तुत कराके उन्होंने सहर्ष अभिषेकविधि सम्पन्न किया। अनन्तर इनके इच्छानुसार उनके शयनगृह में इनके जाने का प्रबन्ध हुआ। तब ये वहां विराजमान हुए।

गौराङ्ग के संग से प्रेमरस पान करते, उसकी लहरों में निमग्न होते, स्वयं श्रीवास को एवं उनके परिवारवर्ग को पहले से आशा और विश्वास था कि ऐसी कोई घटना अवश्य होगी। आज यह जान कर कि श्रीभगवान् का प्रादुर्भाव हुआ और वह निमाई के ही रूप में सबको असीम और अनिर्वचनीय सुखानन्द प्राप्त हुआ।

शयनघर में अति ज्योति प्रकाशित हो रही थी। द्वार पर परदा गिरा था। गौराङ्ग कहने लगे कि "हम कौन हैं यह तो जान गये। तुमलोगों के हृदयों में वास करने वाले, जीवों का दुःख दूर करने आये हैं और इस बार केवल प्रेमभक्ति दान द्वारा दुःख निवारण

---

(१) अभिषेक की आयोजना का विस्तार वर्णन अमिय-निम.ई.-चरित में दिया हुआ है

करेंगे। तुम लोग कुछ भय मत करो। कोई राजा तुम्हारा कुछ नहीं कर सकेगा। यदि हम यवनराज के निकट जायंगे तो उनका भी संशोधन करेंगे। देखो यह कैसे होगा।" यह कह कर इन्होंने उनकी भतीजी चारवर्षीय नारायणी को बुला कर कहा कि "तुझे कृष्ण प्रेम हो।" यह सुनते ही वह "हा! कृष्ण कह कर" प्रेम से विह्वल हो धरती पर लोटने और रोने लगी।

फिर श्रीवास की पत्नी और उनकी भ्रातृवधुओं की दर्शनाभिलाषा जान आपने उन्हें बुलाकर उनके मस्तकों पर लात देकर कहा 'तुम लोगों का हम में प्रेम हो, तुम्हारा हृदय हम में रत हो।" इनका ऐसा कहना और उनके माथों पर पांव रखना किसी को बुरा न लगा।

अनन्तर यह कह कर कि "अब हम जाते हैं, उपयुक्त समय पर फिर आवेंगे," आप आसन से उठ खड़े हुए और हुंकार कर के पृथ्वी पर गिर गये। अनेक यत्नों से होश में लाये गये।

अब न वह तेज है और न वह ज्योति। वरन् पूछने लगे कि ये वहां कैसे गये थे और बदहवासी में कुछ चंचलता तो नहीं कर बैठे थे।

दूसरे दिन लोगों ने इन्हें पूर्ववत् गौराङ्ग रूप ही में देखा और इन्हें यही कहते सुना "हे कृष्ण भगवान! हमें विषय वासना से बचाओ।" परन्तु इनका यह भाव देख श्रीवास और उनके घरवाले भ्रम में नहीं पड़े। श्रीभगवान का आविर्भाव हुआ है, इसी आनन्द में वे संसार को आनन्द रूप ही देखने लगे। अब उन्हें कुछ दृष्टि में नहीं आती थी। और यही कथन चरितार्थ हो रहा था:—

"जब आंख न थी, तो देखते थे सब कुछ।
जब आंख हुई तो कुछ न देखा हम ने॥"

अर्थात् ज्ञानदृष्टि खुलने पर उसके सिवाय कुछ नहीं रहा।

एक बार श्रीवास के घर वराह भगवान की स्तुति सुनने से इन्हें उन्हींका आवेश हुआ था। हुंकार कर ये मुरारि के घर पहुंचे

और उनके देवगृह में प्रवेश कर कहने लगे "यह बलवान, पहाड़ सा शूकर कहां से? यह दांतों से पृथ्वी पकड़े हुए है। दांतों से हमारा हृदय स्पर्श कर हमें पीड़ित करता है।" यही कहते कहते पीछे हटे और फिर दोनों हाथों और पैरों के बल पशुवत् धरती पर घूमने लगे। उस आवेश में इन्होंने पीतल के एक बड़े गगरे को दांतों से पकड़ कर फेंक दिया। फिर कहने लगे "तुम निर्भय रहो; तुम हमारे अति प्यारे हो। तुम बहुत वेद पढ़ते हो; वेद हमारा मर्म नहीं जान सकता। काशी में एक प्रकाशानन्द वेद की शिक्षा देकर हमें खंड खंड करना चाहता है।" मुरारि को पुरानी बातें स्मरण हो आईं। चरणों में पड़ कर रोने लगे।

"अब हम जाते हैं" यह कह कर ये मूर्छित हो गये। और चैतन्य लाभ करने पर कहने लगे "हम तो श्रीवास पंडित के पास थे, यहां कैसे आये। कदाचित् अचेत हो गये थे। कुछ अनुचित कार्य तो नहीं किया।"

इन्हींको महाप्रभु ने अपना स्वाभाविक रूप वर्णन करने की आज्ञा दी और इन्होंने सर्वप्रथम उनकी लीलाएं लिखीं।

अब गौराङ्ग में दो भाव—भक्ति भाव तथा भगवद्भाव दीखने लगे। भगवद्भाव के आवेश की घटनाएं इन्हें कुछ स्मरण नहीं रहती थीं और न वे सब बातें इनसे कहने का किसीको साहस होता था। चैतन्य रहने पर ये सबसे कृष्ण प्रेम की बातें करते थे और सबसे आशीर्वाद चाहते थे जिसमें कृष्ण में इनका अनुरागवर्द्धन हो तथा इनके प्राण की रक्षा हो।

इनके येही दो-रंगी भावप्रदर्शन से और भक्ति भाव में सदा डूबे रहने से, इन्हें कृष्ण का अवतार कहते हुए भी नाभा स्वामी ने अपने भक्तमाल में इनका उल्लेख किया है। नहीं तो जिसे "यसोमति सुत" का अवतार कहते हैं, उसे भक्तों की श्रेणि में बैठाना उचित नहीं था। यों तो भगवान भक्तमंडली में सदैव विराजमान ही रहते हैं।

पञ्चम परिच्छेद

श्रीनित्यानन्द का आगमन



निताई के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं, जैसे गौराङ्ग निमाई के नाम से। इनका गृहस्थाश्रम का नाम कुवेर था। प्रोफेसर यदुनाथ सरकार ने लिखा है (१) कि महात्मा ईसा के लिए जैसे पाल (२) हुए उससे कहीं बढ़ कर श्रीगौराङ्ग के लिए नित्यानन्द हुए। अर्थात् चैतन्य-धर्म्म-प्रचार में इन्होंने सर्वापेक्षा विशेष यत्न, परिश्रम एवं उत्साह प्रदर्शित किया। सचमुच इन दोनों महापुरुषों में इतना घनिष्ठ प्रेम हुआ कि ये दोनों भ्राता के समान हो गये। निमाई निताई दोनों नाम भी भाई के नामों के सदृश हो गये। नदिया में इनके आगमन के दूसरे ही दिन निमाई ने अपनी माता से अपना खोया गया भाई विश्वरूप ही कह कर इनका परिचय कराया था। उन्होंने उस समय निताई का मुख ध्यानपूर्वक अवलोकन करने से उसमें विश्वरूप ही के मुख की समानता पाई थी। तबसे शची इन्हें अपना पुत्र ही समझती थीं।

प्राचीन तथा नवीन बंगला ग्रथकारों ने इन्हें प्रायः बलराम कह के वर्णन किया है। निमाई जब कृष्ण कहे जाते हैं, निताई को बलराम मानना उचित ही है।

स्वकृतभक्तमाल में श्रीनाभा जी ने लिखा है :—

१, देखो "Chaitanya's Pilgrims and Teachings. p. XI.

२, ये धर्मप्रचारकों के रक्षक और सहायक थे। इनका चिन्ह खड्ग तथा खुली हुई पुस्तक है। पहला उनके धर्मकार्य में प्राण देने का और दूसरा नूतनधर्म के प्रचार का चिन्ह है। चित्रों में वे नाटा, चाँदिल और भूरी तथा घनी दाढ़ीवाले पुरुष दिखाये जाते हैं। देखो Brewer's Dictionary of Phrases and Fables p. 664, also Emerson's Biographical Dictionary Vol. II, p. 534.

"गौड़देस पाषंड मेटि कियो भजन परायण। करुणासिन्धु कृतज्ञ भये अगणित गतिदायन॥ दशधारस आक्रान्ति, महतजन चरन उपासे। नाम लेत निहपाप दुरित तिहिं नरके नासे॥ अवतार विदित पूरबमही, उभय महँत देही धरी। नित्यानन्द कृष्ण चैतन्य की भक्ति दसोदिसि निस्तरी।"

इसीकी पद्यबद्ध टीका में श्रीप्रियादास जी कहते हैं:—

"आप बलदेव सदा वारुणी सो मत्त रहैं, चहैं मनमानो प्रेम-मत्तताई चाखियै। सोई नित्यानन्द प्रभु महँत की देह धरि भरी सब आनि तऊ पुनि अभिलाषियै॥ भयो बोझ भारी, किहू जात न संभारी तब ठौरठौर पारषद मांझ धरि राखियैं। कहत कहत और सुनत सुनत जाके, भये मतवारे, बहु ग्रन्थ ताकी साषियै॥" (१)

इन्हीं नित्यानन्द ने श्रीगौराङ्ग के जन्मकाल में अपने घर बैठे हुङ्कार करके समूचे राढ़ देश को गुँजा दिया था। उस समय इनकी अवस्था सात आठ वर्ष की थी।

ओ मैल (O. Malley) साहब सम्पादित वीरभूमि जिला के "गजेटियर" पृ० १११ के लेखानुसार रामपुर हाट सब डिवीजन में मयूरेश्वर थाना के इलाके "लुपनाइन" के मल्लारपुर स्टेशन से ८ मील (४ कोस) पूरब वीरचन्द्रपुर ग्राम के निकटवर्ती "गर्भवास" नामक एक क्षुद्र गांव में इनका जन्म हुआ था। (२) यह एक तीर्थस्थान हो गया है एवं इनके नाम का वहां एक मेला लगता है।

(१) श्री सीतारामशरण भगवान प्रसाद कृत "भक्तमाल" की "सुधाबिन्दु" नाम की टीका पृ० ८०८ देखिये।

(२) श्रीयुत विपिनचन्द्रपाल सम्पादित "हिन्दू रिव्यू" नामक मासिक पत्र में प्रकाशित एक लेख में स्वर्गीय बलराम मल्लिक बी० ए० ने वीरभूमि जिला के एकचक्र नामक ग्राम में इनका जन्म होना कहा है। सम्भवतः यह गर्भवास का नामान्तर हो।

और श्रीमान् शिशिरकुमार घोष कृत "अमिय निमाई-चरित" प्रथम खण्ड, पृ० १७० षष्ठ संस्करण में वर्द्धमान के एक चाका ग्राम में इनका जन्म कहा गया है।

ये जाति के ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम हरिश्रोझा तथा माता का नाम पद्मावती था। ये उनके ज्येष्ठ पुत्र थे। ये बड़े सुन्दर थे श्रोर बालकाल में बहुत शान्त रहते थे। बालकों के संग श्री राम, कृष्ण तथा अन्य अवतारों की लीलाएं करने में आनन्द पाते थे। इससे दर्शकगण समझने लगे थे कि ये कोई महापुरुष होंगे।

इनके पिता पंडित थे श्रोर आसपास के गावों में इनके माता-पिता का बहुत आदर सम्मान होता था। पुत्र का क्षणिक वियोग वे सहन नहीं कर सकते थे। परन्तु विधाता ने जन्म भर के लिए इन्हें उन लोगों से विलग कर दिया।

एक दिन एक सँन्यासीइनके घर अतिथि हुए श्रोर चलते समय उन्होंने सँन्यास शिक्षा के लिए इनके पितामाता से इन्हें भिक्षा में मांगा। हरि श्रोझा बड़े असमंजस में पड़े। न दें तो पाप शाप, दें तो दुःख दुर्भोग। किन्तु पत्नी से सम्मति लेने पर माता ने सहर्ष साहसपूर्वक निताई को उस सँन्यासी को समर्पण कर दिया। 'चैतन्य भागवत" ऐसा ही कह रहा है।

कहते हैं कि वह सँन्यासी गौराङ्ग के बड़े भाई विश्वरूप ही थे।

आज के कानों को ऐसी भिक्षा-प्रार्थना रुचिकर न होगी। सुनने वालों को महा आश्चर्य होगा श्रोर लोग ऐसी भिक्षा चाहनेवालों का किसी अन्य रीति से सत्कार करने को तत्पर हो जायंगे। पर वह समय श्रोर था। धर्म में आस्था अधिक थी। पूर्वकाल में जहां के लोग इसी प्रकार की भिक्षाप्रार्थना पर अपना शरीर का मांस काटने एवं निज हाथों से अपने प्रिय पुत्र की देह आरा से चीरने को उद्यत हो जाते थे, वहां के किसी निवासी को ऐसा करने में कुछ आश्चर्य की बात नहीं। उस समय लोग शास्त्रों के इस कथन में विश्वास करते थे कि घर में कोई सँन्यासी साधु हो जाने से वह अपना एवं अपने से सात पीढ़ी ऊपर श्रोर सात पीढ़ी नीचे के लोगों को नरक से उद्धार करता है।

उक्त सँन्यासी का साथ होने ही से, ये तीर्थाटन करने लगे। कोई महापुरुष निम्नोद्धृत श्लोक स्मरण कर तीर्थाटन को हेय विचार करें, पर सर्वसाधारण इस दृष्टि से तीर्थप्रयटन को नहीं देखते।

"रूपं रूपविवर्जितस्य भवतो ध्यानेन यत् कल्पितम्,
स्तुत्या निर्वचनीयताखिलगुरो दूरीकृता यन्मया।
व्यापित्वञ्च निराकृतं भगवतो यत्तीर्थयात्रादिना
क्षन्तव्यं जगदीश! तद्विकलतादोषत्रयं यन्मम॥

इससे तो ध्यान, पूजन, भजन, तीर्थाटन सब कुछ हवा हो गई। धर्मकार्य रहा ही क्या? हमारे विचार में तो "Eat, drink and be merry" खाओ पीओ, मौज करो—यही रहा। यह धर्मके बोझ से लोगों की गर्दन अवश्य हलका करता है और आज का सुशिक्षित संसार इसे निश्चय पसंद करेगा। पर उस समय की बात अन्य थी; लोग अन्य थे और तीर्थाटन एकदम ऐसा अनावश्यक भी नहीं था। यदि ऐसा होता, तो बौद्ध, कृस्तान और मुसलमान धर्मों में भी इसकी व्यर्थता मानी जाती, जहां निराकार और सर्वज्ञ ही की प्रार्थना है। आज बोध गया पर किसीको धावा करने की जरूरत नहीं होती; काबा शरीफ़ का फाटक बन्द हो जाता।

इस श्लोक को कंठस्थ कर कोई हाथ पैर मोड़े घर में बैठा रहे, पर साधु, सँन्यासी, धर्मपरायण पुरुष ऐसा नहीं कर सकते। तीर्थभ्रमण में निर्विवाद लाभ है। नित्यानन्द यदि तीर्थाटन न करते होते, तो इन्हें चैतन्य महाप्रभु की भेंट और उनका सहवास भी नहीं होता।

तीर्थस्थलों के दर्शन से चित्त शान्त और पवित्र होता है। मन में भक्ति, प्रेम, दयादि सद्गुणों का उद्रेक होता है। क्या सहस्रों यात्रियों का प्रेमपूर्ण भाव से हरिनामोच्चारण करना हृदय पर कुछ प्रभाव नहीं दिखलाता? क्या वहां का प्रसाद, चरणामृत

पान कर एक अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त नहीं होता ? केवल एक दो बून्द जल कैसी तृप्ति प्रदान करता है ! क्यों ऐसे स्थानों में सत्संगति का सुअवसर नहीं मिलता ? भाग्यवश सच्चे साधु सन्त का दर्शन हो जाने से तो कल्याण ही कल्याण है। सत्संगति की महिमा श्रीगुरुनानक जी और श्रीतुलसी दास जी प्रभृति ने कितनी गाई है। यदि तीर्थस्थल नहीं होते, यदि तीर्थाटन नहीं होता यदि श्रीभरद्वाज और याज्ञवल्क्य से भेंट नहीं होती, तो रामचरित-मानस (१) सा अलभ्य रत्न का कभी किसीको दर्शन भी नहीं होता।

नित्यानन्द को उन सँन्यासी महात्मा का कब तक साथ रहा, यह ज्ञात नहीं होता। किन्तु वक्रेश्वर, वैद्यनाथ, गया, काशी, प्रयाग, व्रज-प्रदेश, हस्तिनापुर, द्वारका, सिद्धपुर, कुरुक्षेत्र आदि में इनके भ्रमण करने का कुछ पता लगता है। ये कृष्ण की खोज में सर्वत्र घूम रहे थे। इसी भ्रमण में श्रीवृन्दावन में इन्हें ईश्वरपुरी का दर्शन प्राप्त हुआ। इन्हें देख पुरी ने इनका मनोभाव समझ कर इनसे कहा कि "इस काल में कृष्ण भगवान नवद्वीप में विराज रहे हैं। यदि आप उनकी खोज में हैं, तो वहीं की यात्रा कीजिए।" यह सुसम्वाद पाते ही नित्यानन्द वहां से चल खड़े हुए।

ऊपर कह आये हैं कि इस अवतार में ये बलराम माने गये हैं। मार्ग में चलते चलते इन्हें वहीं बलराम का भाव उदय हुआ। कृष्ण से मिलने के उत्साह और उत्सुकता में पथ में ये विचित्र गति से चल रहे हैं। दशा विचित्र है:—

नहिं सूझत पंथ कितेक चलै,
नहिं बूझत काह चलै ? किहि पाही ?

जब कभी दौड़ लगाते हैं, या दोनों पावों की फ़िल्लियाँ सदा

१ गोस्वामी तुलसीदास ने उक्त मुनियों की भेंट की ही बात लेकर इस ग्रन्थ की रचने की भूमिका बांधी है।

कर कुद्कते चलने लगते हैं तो अन्य बटोहियों और देखनेवालों को इनके पागल होने का भ्रम हो जाता है।

नदिया पहुंचने पर गौराङ्ग के घर का कदाचित् शीघ्र पता न पाने से ये श्रीनन्दनाचार्य के मकान पर गये। इन्हें एक तेजस्वी पुरुष देख आचार्य ने इनका सादर सम्मान किया।

इसके तीन चार दिन पूर्व ही गौराङ्ग ने अपनी मण्डली में इन के आगमन की बात चलाई थी और आज इन्होंने कहा कि "वह महापुरुष आ गये हैं; उन्हें तुम लोग खोज निकालो।" यह कहते इन्हें बलराम का आवेश हो आया और मद्य मांगने लगे।

जब मुरारी, श्रीवास, मुकुन्द तथा नारायण के दिन भर खोजने पर उनका पता न लगा तब श्रीगौराङ्ग उनलोगों के संग स्वयं खोजने चले और सीधे नन्दनाचार्य के घर जा पहुंचे। सबों ने देखा कि वहां सुपुष्ट, तेजवान, श्यामवर्ण का एक पुरुष माथ में तथा कटि में नीला वस्त्र धारण किये बैठा है एवम् आप ही आप हँस रहा है। अवस्था तीस बत्तीस वर्ष की है। गौराङ्ग प्रणाम कर उनके सामने खड़े हुए। गौराङ्ग की तत्कालीन शोभा "चैतन्य भागवत" में वर्णित है। उसका आशय इन छन्दों में प्रगट किया जाता है:—

विश्वमोहिनि रूप छवि लखि, नैन सुख अद्भुत लहै।
बसन दिव्य सुदिव्य माला, गंध सुठि वितरत अहै॥
देहद्युति के सामने द्युति, कनक फीकी सी परै।
बदन निरखन हेतु निस दिन, साध ससि मन मों करै॥
अरुन आयत आंखि देखत, मन कहत इक बात है।
कबहु कोऊ सरित मंह अस, कमल कहुं बिकसात है॥
जानु लों भुज दंड, उन्नत स्निग्ध सु उर दरसात है।
ताहि पै उपवीत सूछम, लखत मन हरसात है॥

इनके रूप पर मोहित हो, वे इन्हें एकटक देखने लगे। उठना चाहते हैं, पर प्रेमथकित हो रहे हैं। निमाई के आज्ञानुसार श्रीवास के भागवत का वही श्लोक पढ़ते ही, जिसे उस दिन रत्नगर्भ ने पढ़ा था, मानो निताई के हृदय में प्रेमतरंग तरंगित होने लगी। किसी प्रकार स्थिर न होने से निमाई ने उनका शरीर स्पर्श किया और साथ ही वे संज्ञाहीन हो इन्हीं की गोद में पड़ गये। दोनों नेत्रों से जल प्रवाहित था। उनके शान्त होने पर निमाई उनकी प्रशंसा करते, उनके दर्शन से अपना सौभाग्य मानते, उनसे निजोद्धार की आशा करते, उनमें श्रीकृष्ण की भक्ति की तथा कृष्णप्रेमदान की पूरी शक्ति होने की बात कहते, उनकी दया और कृपा के प्रार्थी हुए।

इनकी ऐसी स्तुति सुनने से इनके भक्तों का और अधिकतर निताई को बड़ी लज्जा होने लगी। निताई ने धीरे धीरे नम्रतापूर्वक कहा कि "यह सुन कर कि नदिया में श्रीकृष्ण इस समय विराज रहे हैं, वहां के संकीर्तनों में वे आप सम्मिलित होते हैं, हम आशा लगा कर अपने भाग्य की परीक्षा करने आये हैं। कृष्ण कृपा करेहींगे।"

फिर दोनों महापुरुषों ने खड़े खड़े गुप चुप कुछ बातें कीं और तब वहां से सब लोग रवाने हुए। निताई इनके पीछे पीछे चलने लगे और उसी समय से उन्होंने निमाई को प्राणार्पण किया।

सब लोग श्रीवास के घर पहुंचे। द्वार बन्द होकर संकीर्तन आरम्भ हुआ। निमाई और निताई दोनों बाहें पकड़ कर नृत्य करने लगे। नाचते नाचते निमाई को पुनः बलराम का भाव हुआ। विष्णु आसन पर बैठ "मद्य" मांगने लगे। लोगों ने गंगाजल देकर उन्हें ठंढा किया। तुरत ही उन्हें श्रीभगवान का भाव हुआ। कहने लगे कि "नित्यानन्द के आने से आज हमारा आनन्द पूर्ण हुआ, परन्तु "नाड़ा" कहां? हमें तो इतना हुंकार देकर बुलाया। आप हमें छोड़ जा बैठा। यह उचित नहीं किया। उसीके कारण ही

हमारा यह अवतार है। इस बार हम उस तुद्र को श्रीभगवद्भक्ति दान करेंगे।" "नाड़ा" से अभिप्राय श्रीअद्वैत से था।

निमाई के दर्शन, संकीर्तन तथा आवेशनिरीक्षण से निताई की ऐसी दशा हुई कि उन्होंने अपना दंड कमंडलु सब तोड़ ताड़ कर फेंक दिए। उन्हें निमाई ने गंगा में बहा दिया।

दूसरे दिन गंगास्नान के बाद निमाई के इच्छानुसार निताई श्रीवास के घर व्यासपूजा करने बैठे। उधर संकीर्तन भी होने लगा। पूजा क्या करेंगे, खाक पत्थर? वहां तो होश ठिकाने न था। जब से निमाई का दर्शन हुआ था, "वेखुदी" (आत्मविस्मृति) रंग दिखला रही थी।

पूजा काल में नौबत यहां तक पहुंची कि पूजा की माला "व्यास जी" को अर्पण करने के बदले इन्होंने उसे गौराङ्ग के गले में डाल दी।

इसी समय उपस्थित लोगों ने श्रीगौराङ्ग में षड्भुजामूर्ति का दर्शन पाया। उस मूर्ति का दर्शन पाकर निताई कांपते कांपते गिर पड़े। निमाई उनके शरीर को सुहलाते कहने लगे "नित्यानन्द उठो; संकीर्तन करो; जीवों को प्रेमदान दो; उनका उद्धार करो; जिसे इच्छा हो उसे प्रेमदान करो। तुम्हारी तो सब वासनाएं पूरी हो गई हैं। अब क्या चाहिए।

पुनः प्रातःकाल निमाई ने निताई को घर लेजा कर अपनी माता को उनका परिचय दिया कि "यह तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र विश्वस्वरूप हैं।" शची तबसे इनसे पुत्रवत् स्नेह करने लगीं।

किन्तु नित्यानन्द श्रीवास के घर रहने लगे। बीस वर्ष तीर्थभ्रमण के अनन्तर माता और घर पाकर वे सुखपूर्वक श्रीवास की स्त्री मालिनी की गोद में सोने लगे। अभी तक लड़के बने हुए थे। भोजन के समय खाते खाते भात शरीर में मलने लगते थे। गंगा

में स्नान के लिए जब प्रवेश करते तब जल से निकलना ही नहीं जानते थे। मालिनी का स्तन मुख में देकर दूध पीने लगते थे। शिशिर बाबू "अमियनिमाई-चरित" में लिखते हैं "क्या आश्चर्य! शुष्कस्तन मुंह में देकर उससे दूध निकालते थे।"

इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। यह बालसँन्यासी नित्यानन्द जी की एक सहज लीला थी। श्रीयुत् यामिनी कुमार मुख्योपाध्याय ने—जो कुछ दिन भागलपुर में वकालत करते थे और पीछे चौबीस परगना चले गये थे, श्रीबाबा लोकनाथ ब्रह्मचारी की जीवनी "धर्मसारसंग्रह" नामक ग्रंथ में लिखा है कि "ढाका जिलान्तर्गत बारदी निवासी बाबू राजमोहन नाग के पुत्र उमाप्रसन्न नाग की स्त्री एक पुत्र प्रसव कर तीन मास के अनन्तर संसार से विदा हो गई। योग्य धात्री के अभाव से दूध पिलाने का उचित प्रबन्ध न होने के कारण वह बालक मृतप्राय हो चला, तब उसकी सधवा, पर जन्मवन्ध्या, फूआ सिन्धुबालिनी उस शिशु को गोद में लेकर उक्त ब्रह्मचारी के पास गई और उनसे उसकी प्राणरक्षा के निमित्त प्रार्थना करने लगी। ब्रह्मचारी जी ने कहा 'तुम्हीं अपना स्तनपान कराकर इसकी जान क्यों नहीं बचाती?" उस नागमहिला के अपनी जन्मवन्ध्या की बात कहने पर ब्रह्मचारी ने उसका स्तन मुंह में ले लिया और उसी दम दूध प्रवाहित हो चला।" उसी फूआ का दुग्ध पान कर वह शिशु सयाना हो, उक्त पुस्तक के प्रणयन के समय प्रथमश्रेणि में एंट्रेंस पास करके कालेज में पढ़ता था। (१)

१ उस पुस्तक का तृतीय संस्करण बंगाब्द १३१९ में हुआ है। उसका पृ० १०८—११ देखिये।

षष्ठ परिच्छेद

अद्वैतागमन



श्री गौराङ्ग के मन का भाव जान, निताई के आने के दो चार दिन के बाद श्रीवास के छोटे भाई श्रीराम अद्वैत के बुलाने को शान्तिपुर रवाने हुए। वहां पहुंच कर वह हंसते हुए उनके सम्मुख खड़े हुए। इन्हें देख कर वह बोले कि "हम समझते हैं, कि तुम हमें बुलाने आये हो। हम क्यों जाने लगे? हम क्या तुम लोगों के सदृश निर्बोध हैं कि एक बालक को लेकर उन्मत्त हो जांय, नदिया में अवतार? यह किस शास्त्र में लिखा हुआ है?"

राम ने कहा "शास्त्र की बात आप जानें। परन्तु जिसके निमित्त आपने इतना कष्ट उठाया है, वही दयार्द्र होकर जीवों के उद्धार के लिए भूतल पर प्रकट हुए हैं और आपको सस्त्रीक बुला रहे हैं।" यह कहते कहते राम के नेत्रों से प्रेमधारा फूट चली। अद्वैताचार्य पर इसका विलक्षण प्रभाव पड़ा। आनन्दोन्मत्त हो "आये हैं, आये हैं; लाया है, लाया है" कह कह कर, ताली बजा बजा, कर वे नाचने लगे। उनकी स्त्री भी आनन्द विह्वला हुई। पूजा की भारी तैयारी कर अद्वैत सस्त्रीक रवाने हुए। मन में कहा कि "हम तभी जानेंगे कि भगवान् प्रकट हुए हैं जब वे हमारे सिर पर पांव रखेंगे।" और राम से उन्होंने कहा कि "हम नन्दनाचार्य के घर में छिपे रहेंगे, तुम उनसे कह देना कि अद्वैत नहीं आये।" वाहरे जीव! सर्वकाल प्रभु से चोरी, सर्वकाल उनके निकट मिथ्याभाषण।

इधर गौराङ्ग आवेश में श्रीवास के घर पहुंच कर श्रीभगवान् के आसन पर विराजमान हुए। भक्तगण उनकी सेवा में तत्पर हुए। उसी आवेश में बोले कि "अद्वैत हमारी परीक्षा के निमित्त

नन्दनाचार्य के घर छिपे हुए हैं।" यह खबर सुनते ही व्यग्रचित्त अद्वैत अपनी पत्नी के संग मन में नाना मनोरथ करते, नानाभावों की तरङ्गों में खेलते, श्रीवास के घर पहुंचे। भीतर जाने की शक्ति नहीं रही। लोग उनकी बाहें पकड़ कर उन्हें भीतर ले गये। वहां उन्हें न श्रीवास का घर नज़र आया और न निमाई नज़र आए। गृह ज्योतिर्मय हो रहा था। जिधर दृष्टिपात करते थे ज्योति ही ज्योति दृष्टि आती थी। फिर गौराङ्ग के चतुःपार्श्व में, आकाश में, दिव्य आभूषणों से अलंकृत सर्वत्र देवगण दृष्टिगोचर होने लगे। ऐसा विभव देख आचार्य महाशय महाविस्मित हुए। उनके हृदय में भय भी उत्पन्न होने लगा। स्तुति वन्दना का भी साहस जाता रहा। पुनः निमाई ने सब ऐश्वर्य्य निवारण कर केवल ज्योतिर्मय स्वरूप दिखलाया। तब अद्वैत ने सस्त्रीक उनकी यथोचित पूजा वन्दना की। प्रसन्न हो प्रभु ने दोनों के मस्तकों पर चरण रखा। नृत्य करने की आज्ञा होते ही, ऐसे पंडित, वृद्ध, परम ज्ञानी, अद्वैताचार्य सानन्द निःसंकोच भाव से नृत्य करने लगे, भक्तों ने भी कीर्तन आरम्भ किया।

पुनः प्रभु के वर मांगने का आदेश होने से आचार्य ने यही वर मांगा कि जो भक्तिप्रेम प्रभु वितरण करेंगे उससे कोई भी वञ्चित न किया जाय; वह ऊँच नीच सब जनों को प्राप्त हो। ऐसे वर की प्रार्थना से प्रभु को बड़ी प्रसन्नता हुई और सब लोग आनन्द से उछल पड़े।

अनन्तर अद्वैत शान्तिपुर लौट गये। वहां वे फिर सन्देह के वशीभूत हुए। पंडित थे; जपतप भी किये हुए थे। जगत का रंग चिरकाल से देख रहे थे। उन्हें बहुत कुछ ऊंचा नीचा संसार में देखना पड़ा था। भला ऐसे को बात बात में शंका अपना खिलौना न बनावे, तो क्या भोले भाले मूर्ख उसके हाथ के लट्टू होंगे? उनके निकट तो उसे भटकने का भी साहस नहीं होगा।

अबकी बार पूर्णरूप से शंकानिवारण का संकल्प करके अद्वैत नवद्वीप पहुचे। उस समय श्रीगौराङ्ग श्रीवास के मकान पर भक्तों के संग कथोपकथन, आनन्द प्रमोद तथा श्रीकृष्णकथा कथन में प्रवृत्त थे। अद्वैत भी वहीं पहुंचे। प्रभु सहित सब लोगों ने उनकी अभ्यर्थना की। वे भी उसी रंग में मस्त हुए। फिर श्रीवास के द्वारा यह अवगत होने पर कि आचार्य को श्याम कृष्ण के दर्शन की लालसा है और कदाचित् प्रभु ने उसी रूप में दर्शन देने की प्रतिज्ञा की है, आपने कहा कि "किसी रूप अथवा वैभव का दर्शन कराना हमारे अधीन नहीं। पर यदि इन्हें श्रीकृष्ण के स्वरूप दर्शन की अत्यन्त इच्छा है तो ध्याना-वस्थित होने से भगवान स्वयं कृपा कर इन्हें दर्शनसुख देंगे।"

आचार्य ध्यानावस्थित हुए। अल्पकालही ही में स्पन्दहीन, हो गये। शरीर रोमाञ्चित होने लगा। पुनः चैतन्य लाभ करने पर उन्होंने श्रीकृष्णदर्शन की कथा सुनाई। बोले कि यही जो सामने विराजमान हैं, हमारे हृदय में प्रवेश कर पुनः बाहर आये। यही थे, यही; दूसरा कोई नहीं था।

श्रीगौराङ्ग ने कहा 'आप बैठे बैठे सो गये। आपने स्वप्न देखा; इसमें हमारा क्या दोष ? इसमें हमारा नाम क्यों लाते हैं ?"

अद्वैत ने युगलकर सम्पुट कर कहा 'आप इस दास को कब तक भ्रम में डाले भुलाये रखियेगा ? हम जिसका भजन करते हैं, वही भगवान आप हैं।"

परन्तु सच पूछिये, तो अब भी सन्देह उनका सहचर रहा। अब उसे मार कर ही भागना पड़ेगा।

कुछ काल के अनन्तर श्रीगौराङ्ग को पुंडरीक से भेंट हुई। वे मकुन्ददत्त के स्वग्रामनिवासी चटग्राम के रहने वाले थे। परमपंडित तथा भक्त; पर ऊपरी रंग ढंग में महा विषयी भी,

वे भान होते थे। प्रकट में शरीर के साजने और सिंगारने ही में उनका समय व्यतीत होता था। इसीसे जब उनकी भक्ति का हाल सुनकर गदधर मुकुन्द के साथ उनसे मिलने गये थे; तब उनके बाह्य व्यवहार को देखें गदाधर के मन में उनके प्रति घृणा उत्पन्न हो गई थी। पर जब इन्होंने देखा कि मुकुन्द के मुख से श्रीभगवत्त का एक श्लोक श्रवणमात्र से उनका रंग बदल गया; वे प्रेमाभिभूत हो चारपाई से लुढक पड़े और अनेक चेष्टा से चैतन्य कराए गये तब इन्हें महा पश्चाताप हुआ और इन्होंने उन्हींसे दीक्षित हो कर उसका प्रायश्चित करने का संकल्प किया।

एक दिन भावावेश में गौराङ्ग पुंडरीक विद्यानिधि की याद में फूट फूट कर रोने लगे यद्यपि इन लोगों में पहले की कभी भेंट नहीं थी।

उसीके कुछ दिन बाद पुंडरीक अपने कतिपय शिष्यों के संग अपने नवद्वीपवाले मकान में आये। रात्रिकाल में मैला कुचैला वस्त्र पहने अपनी अधमता तथा ईश्वर की दयालुता का स्मरण करते गौराङ्ग के सम्मुख नतमस्तक जा खड़े हुए; एवं आर्त्तनाद से निम्न छन्द वर्णित भाव प्रदर्शक कुछ कहते कहते मूर्छित हो गये।

कृष्ण मेरे प्रान हैं, अरु शमन सब संताप।
हौं अती अपराधमैं, नित सहत तिहि सों ताप॥
मा जगत उद्धार सब, साखी सकल यह काल।
एक वंचित लिव अहे, जो फस्यो जगजंजाल॥

यह देख भक्तगण रो उठे। प्रभु ने उठ कर उन्हें छाती से लगाया और उनके दर्शन से अपने को धन्य माना। होश होने पर पुंडरीक ने प्रेमपूर्ण हृदय से प्रभु की स्तुति वन्दना की। ... से गदाधर उसीदम उनसे दीक्षित हुए।

सप्तम परिच्छेद

महाप्रकाश

अब श्रीगौराङ्ग के भक्तों की मंडली की परिधि विस्तृत होगई है। इनके भक्तों की श्रेणि में अब गण्य मान्य बहुत से प्रधान पुरुष भी युक्त होगये हैं। उनमें से प्रियपाठकों को कितने लोगों का परिचय भी मिल चुका है। पर वे अभी तक भक्त हरिदास को नहीं जानते। अब शीघ्र ही "महाप्रकाश" होगा। उस में वे बुलाये जायंगे। अतएव पाठकों को पहले इनसे परिचय करा देना आवश्यक बोध होता है।

बनग्राम महकुमा के अधीन बूढ़न ग्राम में इनका घर था। थे ब्राह्मण कुमार; परपितृ मातृ हीन हो जाने के कारण मुसलमान द्वारा पोषित पालित होने से मुसलमान ही की गणना में थे। इनमें हरिभक्ति अपार थी। महान साधु थे। हरिनाम के उपासक थे। इसमें इन्हें बड़ा विश्वास था। इनके विचारानुसार नाम का ऐसा महात्म्य है कि जपनेवाले का कौन चलावे सुननेवाले का भी यह कल्याणकारक है। इससे यह सदा उच्चस्वर से चिल्ला चिल्ला कर नाम जपा करते थे। निःसन्देह नाम का कुछ ऐसा ही महात्म्य है। श्री गुरुनानक ने भी नाम की महिमा बहुत जताई है एवम् श्रीगोस्वामी तुलसीदास ने भी कहाही है :—

"राम न सकहिं नाम गुन गाई" और

"भाव कुभाव अनख आलसहु।

नाम जपत मंगल दिस दसहु॥"

ये उक्त बनग्राम के समीप बेनापोल के जंगल में एक कुटी बना कर रहते थे। वहां के कुकर्मी जमींदार रामचन्द्र खां ने इनकी परीक्षा के लिए एक वेश्या भेजी। वह परीक्षा क्या करेगी इनके दर्शन

माल से उसके चित्त का भाव बदल गया। (१) वह अपना सब कुछ ब्राह्मणों को दान कर और माथ मुड़ाकर इनके शरणापन्न हो गई। ये उसे हरिनाम उपदेश कर और उसी कुटी में रख कर स्वयं अन्यत्र चले गये। इन्द्रियदमन कर दिवानिशि हरिनाम जपते जपते वह महा साध्वी हो गई। बड़े बड़े वैष्णव उसके दर्शन को जाया करते थे।

पीछे इनके हिन्दूधर्म्म अवलम्बन करने का समाचार पाकर देशपति ने अपने मंत्री, गोसाई नामक काज़ी और अन्य लोगों के बहकाने से बेंत मारते बाइस बज़ारों में घुमाकर उनके बध की आज्ञा प्रचारित की। गोसांई ने कहा कि "यदि अब भी कलमा पढ़ो, तो तुम्हारी ज़ान की रक्षा हो।" परन्तु इन्होंने उत्तर में कहाः—

"खंड खंड होय यदि जाय देह प्रान।
तबू आमि वदने न छाड़ि हरिनाम॥" (२)

मदिरा से मत्त व्यक्ति को शारीरिक कष्ट का ध्यान न होता मदिरा चाहे "श्यामपीन" हो वा "प्रेमपीन।"(३) इसी प्रेमपीन से उन्मत्त हो श्रीगुरु गोविन्द सिंह जी के छोटे छोटे बच्चों ने अनिर्वचनीय कष्ट सहन करते सहर्ष अपना प्राण विसर्जन कर दिया था। हरिदास क्यों कलमा पढ़ना स्वीकार करते? फल जो होना था वह हुआ।

बेंत खाते बाज़ारों में घुमाए जाने लगे। इनकी देह पर आघात होने से दर्शकवृन्द कलेजा थाम कर बैठ जाते थे। पर न मारने

१. श्रीगोस्वामी तुलसीदास के दर्शन से भी एक वेश्या तथा उसका समाजी श्री भगवद्भक्ति के रंग में रंग गये थे।

२. पाठान्तर'—टुक टुक देह होइ जाय यह प्रान।
तथापि न छाड़िब वदने हरि नाम॥"
ऐसा एक बंगाल के इतिहास में देखा गया है।

३. एक प्रकार की अंगरेजी शराब।

वालों को दया आती थी, और न इन्हें दर्द होती थी। वरन् ये ईश्वर से प्रार्थना कर रहे थे "हे हरि! करुणानिधान! ये महा कुकर्म कर रहे हैं, इससे निश्चय इनकी दुर्गति होगी। उस दुर्गति के हमेहीं कारण होंगे। प्रभो! दयादृष्टि कर इनकी रक्षा करो।" यही कहते करते ध्यान में निमग्न और संज्ञाशून्य हो पृथ्वी पर गिर पड़े।

बेंत मारनेवाले मृतक समझ इन्हें गंगा में फेंक आये। चैतन्य होने पर गिरते पड़ते ये ऊपर किनारे पर पहुचे। पीछे श्रीअद्वैत के संग रहने लगे। तदनन्तर श्री गौराङ्ग का दर्शन कर इन्होंने उन्हीं को सदा के लिए आत्मसमर्पण किया। प्रभु ने अपने हाथ से इनको चन्दन लगाया था और इन्हें पुष्पमाला पहनाई थी।

इनके विषय में "चैतन्य चरितामृत" में यह भी लिखा हुआ है कि वेश्यावाली घटना के अनन्तर ये रामचन्द्रपुर जाकर हिरण्य तथा गोवर्द्धन मजुमदार के पुरोहित बलराम आचार्य के घर रहने लगे। एक पर्णकुटी में नामकीर्तन करते और उनके यहां भिक्षा करने। आचार्य्य की पाठशाला में गोवर्द्धन के पुत्र रघुनाथ दास विद्याध्ययन करते थे। वे सर्वदा हरिदास के दर्शन का आनन्द लेते थे। इन्हींकी कृपादृष्टि का यह फल हुआ कि कालान्तर मे रघुनाथ दास श्रीगौराङ्ग के अन्तरङ्ग सेवक तथा वृन्दावन के सुप्रसिद्ध छः गोस्वामियों में से एक हुए। जिनका वृत्तान्त आगे लेखबद्ध किया गया है।

एक दिन बहुत अनुनय विनय करके बलराम पण्डित हरिदास को मजुमदार की सभा में ले गये। उन लोगों ने इनका अति आदर सत्कार किया। वहां पर बहुत पंडित और सज्जन उपस्थित थे। सबलोग यह कह कर कि "ये नित्य तीन लाख नाम-कीर्तन करते हैं" इनकी प्रशंसा करने लगे एवं सबों ने आपसे नाम महात्म्य सुनने की इच्छा प्रकट की।

अपनी व्याख्या में इन्होंने नामकीर्तन का फल कृष्णपदप्रेम और आनुषङ्गिक फल पापक्षय और मुक्तिलाभ बताया। यह भी कहा कि "भक्त कृष्ण के देने पर भी मुक्ति लेना नहीं चाहते, भक्ति का ही सुख भोगना चाहते हैं।" उस समय गोपाल चक्रवर्ती नामक मजुमदारों का आरिन्दा (कारिन्दा) ब्राह्मण, परम सुन्दर पंडित और नवजवान उस सभा में उपस्थित था। उसने कहा "कोटि जन्म ब्रह्मज्ञानाभ्यास से तो मुक्ति प्राप्ति दुष्कर, वह केवल नामाभ्यास से हो। अच्छा, जो न हो तो तुम्हारी नाक काट ली जाय।" हरिदास ने कहा 'हां! निश्चय नाक काटी जाय।" इस पर सब लोगों ने "हा हाकार" किया। मजुमदारों ने क्षमाप्रार्थना की, उक्त ब्राह्मण का अपने घर रहना बन्द कर दिया। हरिदास की तो ईश्वर से सर्वदा यही प्रार्थना रही कि उनके कारण किसीको कष्ट न हो, पर ईश्वर अपने भक्तों का अपमान सहन नहीं कर सकते। तीन ही दिन के बाद चक्रवर्ती कुष्टरोग से पीड़ित हुए एवं उनकी नाक सड़ कर गिर पड़ी।

हरिदास वहां से अद्वैताचार्य के पास चले आये, जैसा कि अभी कहा गया है। उन्होंने गंगातट पर इनके लिए एक "भूज-घरा" बनवा दिया, वहीं नामकीर्तन करते और आचार्य के घर प्रसाद पाते।

वहां भी स्त्रीवेष में माया इनकी परीक्षा करने गई थी। पर उसे भी इनसे हार मान कर लज्जित होना पड़ा।

यह तो पाठकों को विदित ही है कि श्रीगौराङ्ग को भगवान का आवेश होता था। उस समय भक्तगण उनमें भगवान रूप का प्रत्यक्ष दर्शन पाते थे। कभी कभी ऐसा भी होता था कि आवेश न होने पर भी उनके तेज तथा भाव भङ्गियों से लोगों को उनके ईश्वरत्व का बोध होने लगता था।

आज भी इनमें भगवान का आवेश हुआ है। यह आवेश सात पहर रहने से महाप्रकाश (१) कहलाता है। कविकर्णपूरकृत 'चैतन्य चन्द्रोदय नाटक" में इसका सविस्तर तथा विशद वर्णन हुआ है। "अमिय-निमाई-चरित" ने भी इसके अन्तर्गत वरप्रदान के प्रकरण में भक्ति की महिमा की सुन्दर व्याख्या की है।

आज के प्रकाश में आदि हो में यह विचित्रता देखी गई कि गंगास्नानादि के अनन्तर जब ये श्रीवास के घर में अन्य भक्तों के संग वार्तालाप कर रहे थे, चेतनावस्था ही में एकाएक उठ कर देवासन पर जा बैठे। अन्य दिन भाव प्रकाश होने पर वह आसन ग्रहण करते थे और प्रकाश भी अल्पकाल तक ही रहता था।

भक्तगण भगवद्भाव का प्रकाश देख कुछ भयभीत हुए और इनकी आज्ञा पा कीर्तन करने लगे। नियमपूर्वक स्नानादि कराकर और स्वच्छ वस्त्र पहना कर लोगों ने इन्हें श्रीवास के शयनागार में देवासन पर विराजमान कराया।

अङ्गों से सहस्रों दिवाकर के समान ज्योतिछटा छिटकने लगी, पर साथ हो इसमें लाखों निशाकर के करनिकर की शीतलता अनुभव होती थी। जिसे देखने हैं उसीका चित्त चुरा रहे हैं। बाहर भीतर, आंखों में और हृदय में यत्र तत्र वही दृष्टिगोचर हो रहे हैं। उनके भिन्न और क्या? जब भगवान् के सम्मुख रहने पर भी किसीको अन्य कुछ दीख पड़े तो उससे बढ़ कर संसार में दूसरा अभागा कौन? उस काल में भक्तों की जो दशा थी, वह इन छन्दों से सुस्पष्ट प्रकट होती है।

" जिधर देखता हूं, जहां देखता हूं।
खुदा ही का जलवा वहां देखता हूं॥
न तन देखता हूं न जां देखता हूं।
उसी को अयां औ नहां देखता हूं॥"

१. यह " सात पहरिया प्रकाश " के नाम से भी प्रसिद्ध है।

सब आनन्दसागर में गोता लगा रहे थे। सबोंके मन में भगवान् की पूजा की इच्छा बलवती हो चली। सब उसीमें लग गये।

कोउ लाय चन्दन की टीका लगावै।
कोउ हर्ष सों फूल माला पिन्हावै॥
कोउ तुलसीदल सीस ऊपर चढ़ावै।
कुसुम वृष्टि कर प्रेमधारा बहावै॥
कोउ गंध लै लै सुअंगन लगावै।
रतन भूरि भूषन वसन सों सजावै॥
यथा साध सकती सुसेवा जनावैं।
सभी जोर कर पाद मस्तक नवावैं॥

जो जिस वस्तु से जिस प्रकार से सेवा करता आप उसे अंगीकार करते। मेवा, माखन, मलाई, मिठाई, भांति भांति के मधुर फल जो कुछ अर्पण होता उसीको आप भोजन करते। भक्तों की लालसा के अनुसार एक बार नहीं, दो दो, तीन तीन, बार एकही पदार्थ भोजन कर उन्हें सुख देते, उनका आनन्दवर्द्धन कर रहे हैं। चतुर्दिक् उमंग की तरङ्ग तरङ्गित हो रही है। लोगों के मन में ऐसा असीम आनन्द हो रहा है मानों चिरदिन का खोया हुआ कोई पदार्थ आज उन्हें प्राप्त हो गया है। मानों चिरदिन का बिछुड़ा हुआ प्रियस्नेही आज उनके अंकों में बैठा, उनका मुंह देखता, उन के अङ्गों को स्पर्श करता, उन्हें आनन्दरस में डुबो रहा है।

इसी बीच प्रभु श्रीअद्वैत को उस स्वप्न का स्मरण कराते हैं; जब उन्हें श्रीमद्भगवद्गीता के एक श्लोक का अर्थ बताया गया था। श्रीवास को उस घटना की याद दिलाई गई, जब देवानन्द के घर भागवत सुनते समय इनकी आंखों में प्रेमधारा देख उन के शिष्यों ने इन्हें वहां से निकाल दिया था।

इसी आनन्द में सन्ध्या हो गई। इनकी प्रखरज्योति से डर हो सूर्य नारायण उस दिन मानो शीघ्र ही पश्चिमीय सागर में जा गिरे। किसीको खबर भी नहीं हुई कि कब गये।

सन्ध्या होते ही आरती की तैयारी होने लगी। लोग श्रीवास की सम्मति से शची माता को वहां बुला लाये, जिसमें वे स्वयं अपने नेत्रों से देख लें कि उनके पुत्र,कौन हैं? और उन्हें भुलाने बिगाड़ने की किसीको शक्ति हो सकती है या नहीं।

उन्होंने आकर देखा कि उनके निमाई उनके पुत्र नहीं। वे स्वयं भगवान हैं; शची ठिठक गईं। उनकी सकते की दशा हो गई। देखा कि जिसका आज तक उन्होंने इतने प्रेम से लालन पालन किया, वह पदार्थ उनका नहीं। उसपर संसारमात्र का, सब जीव जन्तुओं का, चराचर का, तुल्य दावा है। पुत्र का रंग रूप देख उन्हें भय उत्पन्न हुआ। श्रीवास शची के निकट जाकर प्रणाम करने को कह रहे हैं। वे भय से आगा पीछा कर रही हैं। श्रीगोसाईं तुलसीदास जी का यह कथनः—

"अस्तुति करि न जाय भय माना।
जगत पिता मैं सुत करि जाना"

उनपर सर्वथा चरितार्थ हुआ।

तब श्रीवास ने प्रभु से कहा "हे भगवन्, यहां जगज्जननी शची उपस्थित हैं, आपके दर्शन से अनेक भावों के वशीभूत हो रही हैं; इन्हें सावधान कर इनसे सम्भाषण कीजिए, ये आपको गर्भ में धारण करनेवाली हैं।"

श्रीगौराङ्ग ने कहा कि "हमारी गर्भधारिणी होने पर भी, ये सर्वदा हमारे भक्त वैष्णवों की अर्थात् तुमलोगों की निन्दा करती रहती हैं, अतएव ये हमारे प्रसाद के योग्य नहीं हैं।" यह सुनकर सबको महाश्चर्य हुआ। श्रीवास के बारम्बार कहने से सब सङ्कोच छोड़कर शची ने अपने पुत्र को प्रणाम किया। निमाई ने सहर्ष उनके मस्तक पर अपना चरण रख कर उनका वैष्णव अपराध क्षय होने की आज्ञा की।

इस वाक्य से शची का बड़ा आश्वासन हुआ। वे उठकर श्लोक (१) बारम्बार पढ़ने लगीं, जो श्रीदेवकी के मुख से श्रीकृष्ण भगवान् के जन्मकाल में स्फुरित हुआ था और नृत्य करने लगीं। स्मरण रहे, शची लिखी पढ़ी नहीं थीं। आज को स्त्रियों के समान डिग्री होल्डर कोई वकील, वारिस्टर नहीं थीं; पर थीं श्रीगौराङ्ग की गर्भधारिणी।

भक्तों के कहने से अब शची सानन्द सहुलास अपनी संगिनी श्रीवास की पत्नी, मालिनी आदि को बुलाकर उनके साथ आरती करने लगीं। आरती गान होने लगा। बाजा बजने लगा। वासुदेव, माधव और गोविन्द इन तीनों भाइयों ने इस "महा प्रकाश" का दर्शन किया था। देखिये वे क्या कहते हैं।

"ताम्बुल भक्षण करि वसिल सिंहासने।
शची देवी आइलेन मालिनीर सने॥
पंचद्वीप ज्वालि निहँ आरति करिल।
निर्मन्छन करि शिरे धान दुर्व्वादिल॥
भक्तगन सबे करे पुष्प वरिषन।
अद्वैत आचाय देई तुलसी चन्दन॥" इत्यादि।

आरती समाप्त होने पर शची को भक्तों ने उनके घर भेज दिया।

अब गौराङ्ग ने भक्तों को अपने निकट बुला बुला कर वरप्रदान करना आरम्भ किया। लोग किसी विशेष वर के अभिलाषी नहीं थे, केवल भगवान की कृपादृष्टि के ही इच्छुक थे। ईश्वर के सम्मुख होने पर, उनका दर्शन होने पर, तो सब कुछ प्राप्त हो गया। शेष क्या रहा, जिसके लिए वर मांगा जाय। परन्तु भगवान की इच्छा का भी तो अतिक्रम नहीं हो सकता। भक्तों को वर मांगना ही पड़ा। देखते हैं कि वरप्रदान की एक परिपाटी सी होगई है। सर्वकाल में यह बात देखने सुनने में आती है।

१. तथा परमहंसानां मुनीनममलात्मनाम्। भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः॥

पहले श्रीधर का नम्बर हुआ। वही श्रीधर जो केले का पत्ता और फूल बेंचते थे और जिसकी दुकान पर शिष्यों के सङ्ग जाकर निमाई पंडित झंझट नाधते थे। ये घर से बुलाए गये। यह देख, कि इनके समान व्यक्ति को, जिनसे ब्राह्मणगण अत्यन्त घृणा करते थे, श्रीगौराङ्ग बुलाते हैं, थे आनन्द से मूर्छित, हो गये। "टांग टूंग" कर लोग इन्हें रात्रिकाल में श्रीगौराङ्ग के निकट लाये।

श्रीप्रभु के चरणों के निकट आने पर इन्होंने कहा "आपने तो हमें बार बार परिचय दिया; कहा कि जिस गंगा की तुम पूजा करते हो उसके हम बाप हैं। पर इस मूर्ख को तो वह बात समझ में न आई। हमारा "खोला" बेचना सार्थक हुआ। वर के लिए आग्रह करने पर इन्होंने यह वर मांगा कि "जो ब्राह्मण कुमार हमारे केले का पत्ता और फूल जबरदस्ती ले लेते थे, हमसे झंझट नाधते थे, वह अब शान्तभाव से निश्चल हो हमारे हृदय में वास करें।" गौराङ्ग जानते थे कि श्रीधर कुछ न लेगा, तो भी उसे ऋद्धि सिद्धि आदि देने का प्रलोभन देते थे।

श्रीधर को प्रभु में श्रीकृष्ण रूप का दर्शन हुआ।

अब मुरारि का नम्बर आया। इनसे पाठक निश्चय परिचित हैं; पर इतना और जानलें कि ये सद्गुणसम्पन्न परमभक्त, महादीन, सरलस्वभावी एवं परोपकारी थे। ये रामभक्त थे। इनसे गौराङ्ग ने अध्यात्मचर्चा परित्याग करने को कहा। इनका उत्तर यह हुआ कि "अध्यात्मचर्चा कैसे करेंगे, और कहां सीखेंगे?" श्रीअद्वैत की ओर संकेत होने पर वे चट प्रश्न कर बैठे कि "क्या अध्यात्म-चर्चा अच्छा काम नहीं? गौराङ्ग ने कहा "अच्छा खराब की बात नहीं; पर इससे कोई हमें नहीं पावेगा। यह सुन वे महा भयभीत हो मौन हो रहे।

श्री गुरु नानक ने कहा है:—

"भक्ति भाव तरिये संसार।

बिन भक्ति तन हो सी छार ॥" और—

"भक्ति विना बहु डुबे सियाने ॥" (महल ५)

अर्थात् भक्तिविहीन बड़े बड़े ज्ञानी भी भवसागर में डूब जाते हैं।

प्रभु ने मुरारि से कहा कि "तुम साक्षात् हनुमान होकर ज्ञानी बनने की चेष्टा करते हो, यह बड़े अचरज की बात है। नेत्र उठाकर हमारी ओर देखो।" प्रभु के मुख की ओर देखते ही उनको श्री-गौराङ्ग का नहीं वरन् स्वयं उनके इष्टदेव श्रीसीताराम का, दर्शन मिला।

अनन्तर हमारे पाठकों के सद्यःपरिचित हरिदास की बारी आई। सम्मुख होकर इन्होंने बड़ी ही दीनता प्रकट की। इनको दीनता ही से प्रभु की इनके प्रति विशेष कृपा और प्रसन्नता थी। इन्होंने सदा दीन, निरभिमानी रहते एवं भक्तों के प्रसाद पाते रहने का वर मांगा; जिससे चतुर्दिक् आनन्दध्वनि होने लगी।

इसके पश्चात् सबको वर मांगने का आदेश हुआ और सबों ने अपनी अपनी अभिरुचि के अनुसार वर पाकर अपने को धन्य माना।

मुकुन्द का ऊपर उल्लेख हुआ है। ये श्रीअद्वैत की वैष्णव-सभा में गान करते थे। बड़े प्रेमी और मधुरगायक थे एवं इसी गुण से कृष्णगायक कहलाते थे। श्रीगौराङ्ग इनसे प्रेम भी रखते थे। इनकी बुलाहट नहीं हुई; इससे ये बाहर बैठे रो रहे थे। बिना बुलाये निकट जाने का साहस नहीं होता था।

श्रीवास के उनके विषय में निवेदन करने पर यह कहा गया कि वे सामने बड़े सीधे सादे रहते हैं, पर पण्डितों के संग होने से ही महा ज्ञानी बन जाते हैं, उनके निमित्त किसीको कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।" अन्त में मुकुन्द के भक्तों के द्वारा यह

बात जानने के लिए निवेदन कराने पर, कि उन्हें कभी भगवान् का दर्शन होगा या नहीं, उन्हें यह बात कही गई कि "कोटि जन्म में दर्शन होगा।" यह सुनते ही मुकुन्द प्रेमोन्मत्त हो यह कह कर नाचने लगे "होगा, होगा; होगा तो; कोटि जन्म में। कोटि जन्म की क्या बात है? उसके बीतते कितना समय लगेगा? देर हो भी तो होगा अवश्य।"

उनके प्रेम की पराकाष्ठा देख श्रीगौराङ्ग के नेत्र जलपूर्ण हो गये। रुन्धे स्वर से इन्होंने मुकुन्द को भीतर बुलाया और कहा कि "कोटि जन्म के बाद दर्शन की बात जो तुम सर्वथा सिद्ध मानते हो, तो तुम से बढ़ कर हमारा प्रिय और कोई नहीं है। इस समय हमारे आनन्द में जो कुछ कसर होता, उसे तुमने पूरा कर दिया।"

फिर अपना जूठन पान भगवान ने भक्तों को प्रदान किया। किसीसे आलिङ्गन, किसीका मुखचुम्बन और किसीका अङ्ग-स्पर्शन के अनन्तर भक्तों के इच्छानुसार भाव सम्वरण कर एक हुंकार के साथ आप पृथ्वी पर गिर पड़े। तीन पहर तक मूर्छा रही। विविध यत्नों के बाद कीर्तन द्वारा ये चैतन्य कराए गये। तब पूछने लगे "क्या मामला है? हम कहां हैं?"

श्रीवास यह कहते कहते कि "अब हम लोगों को हवा मत बताइए" सम्हल गये और बोले कि "आप संज्ञा रहित हो गये थे, इसीसे सब लोग आपको घेरे बैठे हैं।"

इस महाप्रकाश के सदृश एक दिन महा उद्दण्ड नृत्य भी हुआ था। आप बलराम के आवेश में अपने घर से मुरारि के घर गये और इनके पीछे पीछे भक्तगण भी वहां पहुंचे। उस समय इनकी कैसी अवस्था थी वह इन छन्दों में देखिए।

कच बिखरे त्यों तेज तीव्र तनमों परकासत।
मत्त गजेन्द्र सों गमन मधू (१) रहरह कै मांगत॥

(१) बलराम जी शराब पीते थे। उनके आवेश में मदिरा की चाह उठी थी।

घूर्मित लोहित नैन जनु रङ्ग चढ्यो खुमारी।
हुंकरत मुर्छत छने छने बल धारत भारी॥

लोगों ने एक घड़ा गंगाजल आगे रख कर इनका मन शान्त किया। कहते हैं कि आपने वहां उपस्थित एक अति बलिष्ठ ब्राह्मण को अपनी उंगली से छू दिया और वे बहुत दूर फैंका कर धम से जा गिरे। अवश्य लज्जा बचाने के लिए वह ब्राह्मण देवता कुछ ऐसा ही कह कर अपने मन को सन्तोष दिये होंगे।

"कूदा भी कोई घरमें तेरे भय से न होगा।
जो काम हुआ हमसे वह रुस्तम (१) से न होगा"

बलराम भाव से आवेशित हो आप दो दिनों तक अनवरत नृत्य करते और मूर्छित होते रहे। कभी ' हे नन्द बाबा रक्षा करो बलराम भैया कष्ट दे रहे हैं" कह कर पुकारते; कभी निताई का गला धर भाई भाई कह प्रेम करते और रोदन करते। इनके आज के उद्दण्ड नृत्य से भक्तों का हवास ठंढा हो गया। वे भी नृत्य में सम्मिलित हुए, पर साथ न दे सके। शीघ्र थक कर बैठ गये। बलराम की स्तुति कर लोगों ने शान्त होने की प्रार्थना की। तब बलराम भाव सम्वरण हुआ।

इस नृत्य काल में श्रीरामाचार्य को सारा आकाशमण्डल विविधवेषधारी देवों से परिपूर्ण नजर आया था। वनमाली आचार्य ने वहां बृहत् लांगूल की छटा देखी थी।

श्रीचैतन्य भागवत में देखते हैं कि प्रभु ने भक्तों को सब अवतारों का रूप दर्शन कराया। एवं किसी किसी अन्य देवता तथा कृष्णलीला से सम्बन्ध रखनेवाले अन्य पुरुषों का भी अपने में भाव दिखलाया।

(१) फिर्दौसी कृत "शाहनामा" ग्रन्थ का नायक, महाप्रसिद्ध योद्धा पहलवान।

अष्टम परिच्छेद

जगाई मधाई का उद्धार



नाम कीर्तन के सूत्रपात का समय ऊपर कहा जा चुका है। तबसे संकीर्तन प्रायः श्रीवास के घर कपाट बन्द करके हुआ करता था। महाप्रकाश भी उसी स्थान में कपाट बन्द करके ही हुआ था। प्रतीत होता है कि श्रीवास के घर का आंगन बहुत लम्बा चौड़ा था। तभी तो सैकड़ों भक्त उसमें बैठने और नृत्य करने का अवकाश पाते थे।

गृहसंकीर्तन के साथ साथ अब नगरसंकीर्तनका विचार हुआ। एक दिन निताई प्रेमोन्मत्त हो श्रीगौराङ्ग के घर पहुंचे। उस समय अपनी माता के प्रसन्नार्थ निमाईप्रभु विष्णुप्रिया के संग बैठे हुए थे। नित्यानन्द ऐसे बेसुध थे कि लंगोट माथे में बांध वहां नृत्य करने लगे। प्रियाजी वहां से खिसक गईं और निमाई ने उन्हें धर पकड़ कर बैठाया और शान्त किया। भक्तों के एकत्र होने पर नित्यानन्द जी का चरणोदक सबको दिया गया। उसी दिन और उसी समय निताई और हरिदास को आज्ञा हुई कि वे नगर में घर घर, द्वार द्वार, राजपथ, एवं गलियों और वीथियों में घूम घूम कर हरिनामवितरण करें। साधु असाधु, ब्राह्मण चंडाल, पंडित मूर्ख, नरनारी, वृद्ध, युवाबाल कोई न छूटने पावें और अपनी कारवाई की रिपोर्ट नित्य सुनाया करें।

थे तो दोनों प्रधान "वालंटियर" (प्रधान सेवक)। दोनों उदासी, विश्वासी, अन्यस्थान निवासी; कार्यकुशल और करुणापूर्ण हृदय। तौभी जोड़ी ठीक नहीं मिली। हरिदास स्थूलकाय, और निताई दुबले पतले; वे उपवास सहनेवाले और ये बालकों के

समान भोजन के लिए सदा व्यस्त; वे धीर गंभीर और ये महा-चञ्चल। इनका चाञ्चल्य निमाई की चञ्चलता से कहीं बढ़ा चढ़ा था। निमाई तो बालकाल में गंगास्नान करते समय जल के भीतर लोगों के चरणों को पकड़ पकड़ उन्हें चौंका देते, पंडित निमाई शिष्यों के सङ्ग राजपथ में चौकड़ी लगाते नहीं चुकते, चटगांव-वासियों की चुटकी लेलेकर चित्तविनोद करते, वैष्णवों के चिढ़ाने में अपनी चतुराई दिखाते, पर निताई राह चलते कोई दूधवाली गाय देख घट उसके पैरों को बांध, मुंह लगा उसके थन चूसने लगते; कभी किसी भैंस पर बैठ यमराज बनते; कभी किसी सांढ़ पर सवार हो "हम सदाशिव, हम सदाशिव" कह कर चिल्लाने लगते और यदि सांढ़ चौंक कर चौकड़ी भरता तो पृथ्वी पर चित्त हो जाते और सब चञ्चलता हवा हो जाती।

ऐसे चञ्चल से हरिदास का साथ हुआ। प्रभु आदेशानुसार दोनों नामवितरण करने नित्य निकलते। द्वार द्वार भ्रमण करते। जो भिक्षा भेंट करता, उससे कहते "तुम कृष्ण भजन करो भक्ति करो, नामकीर्तन करो, अन्य भ्रम में मत भूलो, यही हमारी भीख है। हम लोग भोजन नहीं चाहते।" दोनों की भव्य मूर्ति थी, दोनो भोले भाले; दोनों सरल, दोनों दीनातिदीन, मिष्टभाषी। दोनों के सविनय प्रार्थना और शिक्षा का प्रभाव लोगों के चित्त पर सहज ही पड़ जाता था। इनकी बातें मान बहुत से हरिकीर्तन में लग जाते थे। नीचों, अछूतों, पतितों और नारियों का चित्त तो इनके दर्शनमात्र से प्रफुल्लित हो जाता था। वे इन्हें अपने उद्धार का अवलम्ब और सहायक समझती थीं। गौरधर्म्मप्रचारकों के झंडे पर मानों यही अंकित था "जो भक्त वही ब्राह्मण।" क्या "मोटो" दूषणीय था? दूषणीय होता तो रामायण में यह कैसे देखते? "जाति पांति पूछै ना कोई। हरि को भजे सो हरि के होई॥"

इस प्रकार हरिनामवितरण से श्रीगौर के भक्तों की संख्या की नित्य प्रति वृद्धि होने लगी। उस समय तक बहुत से महान् पंडित और भलेमानुष लोग भी इनके भक्तों में सम्मिलित हो गये थे। अब इनके गृह के चतुः पार्श्व दर्शकों की भीड़ होने लगी। लोग दूर दूर से आने लगे। जो आते नाना प्रकार के द्रव्य पूजा भेंट लाते। कतिपय नगरनिवासी भी इन्हें देख प्रत्यक्ष वा मनही मन घाट बाट में प्रेममात्र से प्रणाम करते। इनके घर उत्तम उत्तम पदार्थ पूजा भेजते। निश्चय जो आते वे सब इन्हें ईश्वरावतार ही नहीं मानते और न भक्तिभावपूर्ण हृदय से संसार से उद्धार पाने की ही अभिलाषा से आते। भक्तों में भी सब सच्चे भक्त नहीं थे। वैसे भी थे जैसे आज महात्मा गांधी के अनेक जन भक्त हुए थे। परन्तु इनका प्रभाव जनसमुदाय पर अवश्य पड़ा था, और बहुत से अच्छे अच्छे बुद्धिमान भी इन्हें भगवान का अवतार मानने लगे थे। यहां तक कि महिलायें भी सड़कों पर हरिनामकीर्तन के समय नाचने लगती थीं और दोनों हाथ उठा उठा कर हरिकीर्तन करना लड़कों का तो खेल हो गया था।

जगन्नाथ और माधव दोनों भाइयों का नाम तो पाठकों को स्मरण होगा। वेही जगाई और मधाई के नाम से प्रसिद्ध थे। वे ब्राह्मण कुमार नवद्वीप के, सुप्रसिद्ध कहिए अथवा कुप्रसिद्ध, कोतवाल थे। उन्हें ब्राह्मणकुमार क्यों कहें ? वे इस पदवी और अपने कुल के नाम को कलंकित करनेवाले थे। खूब पूजा पाते रहने से काजी उनके हाथों की कठपुतली हो रहा था। जैसे चाहते वैसे उसे नचाते थे। शस्त्रधारी सेना भी साथ रहती थी। अत्याचार का बाजार गरम था। घर तो था गङ्गातट पर, पर कभी यहां, कभी वहां, नगर को चारों ओर खीमा खड़ा कर निवास करते। जिस महल्ले और पाड़े में उनका डेरा पड़ता वहां के अधिवासियों का प्राणपखेरू, बिल्ली को देख पिंजड़े के पक्षियों के सदृश

छुट पटाने लगता। किसीको वध कर देना, किसीका घर लूट लेना, किसी भलेमानुप का राह चलते अपमान करना, यह तो उनके बायें हाथ का खेल था। उनके सामने चूं करे, ऐसा साहस किस का? नदिया के विद्यानुरागी विद्याव्यसनी पंडितगण उनका सामना कब कर सकते थे? उनलोगों का तो मौनसाधन ही में कल्याण था।

आज की अनुचित या उचित भाव से घृणित पुलिश उनकी अपेक्षा सहस्रगुणी प्रशसनीय मानी जायगी। आपके महानिन्दनीय कोतवाल दारोग़ा भी, जिन्हें अत्याचारी विचार, आप फूटी आखों से भी देखना नहीं चाहते होंगे उनके क़दमों के पास बैठ, अत्याचार का सबक़ ले सकते थे।

एक दिन ऐसे पुरुषरत्नों को हरिनामदान करने की धुन नित्यानन्द को समाई। ये दोनों हरिनामप्रचारक विदेशी, साधु थोड़े दिनों से नदिया में रहने लगे थे। इससे सम्भवतः उनके गुणों से पूरे परिचित नहीं थे। नहीं तो सोते हुए शेरों को उनके मान में जाकर जगाने पर कमर नहीं बांधते।

दोनों उदासी उनकी ओर चल पड़े। देखते हैं कि वे दोनों मदमस्त शिविरद्वार पर बैठे हैं; नेत्र रक्तवर्ण हो रहे हैं। एक तो करैला आप तीता, दूसरे चढ़ा नीम पर। एक तो जगद्विख्यात दुराचारी बदमाश, दूसरे नशा में चूर। भोले भाले नित्यानन्द उनके सामने खड़े हो इस प्रकार कहने लगे:—

'कृष्ण भज, कृष्ण भज, कृष्ण कृष्ण बोल रे।
नाहिं चाहिं भीख दान, याहि अनमोल रे॥"

किसी महाविपधर के सिर अचूक लाठी की चोट पड़ने के समान इस छंद के चरणों का प्रहार उनके हृदय पर पड़ा। क्रोध का फूत्कार छोड़ते और कुवाच्यों का विष उगलते दोनों भाई दोनों उदासियों पर झपटे। ये दोनों प्राण ले कर भागे। दौड़ने में

बराबर डेग नहीं बढ़ाने से नित्यानन्द मोटे हरिदास को बांह पकड़ घसीटते आये। बहुत से दुष्ट दर्शक इन्हें भागते देख ठहाका मारने लगे और व्यंगयुक्त वाक्यों में कहने लगे "अच्छा हुआ; अब हरि बोलाने तथा नीचों को ब्राह्मणों के तुल्य समझने का इन्हें साहस नहीं होगा; अब इनका कीर्तन भी जिससे रातों को सोना हराम हो जाता है, हवा हो जायगा।" पर गौर के भक्तों का छक्का पञ्जा छूटा, या कुकर्म का भूत जगाई मधाई के माथे से झाड़ा और भगाया गया, पाठकों को अभी ज्ञात होगा।

उस मनुष्य रूपी भुजंगमों के भय से पार होने पर दोनों साधु आमोदपूर्वक उस स्थान पर जाने का दोष एक दूसरे के माथे मढ़ते अपने घर लौटे। उधर उन दोनों ने अपराह्न काल ही में निमाई की पल्ली में आकर डेरा खड़ा किया। इससे उस पाड़ावालों का कलेजा कांप उठा।

रात को नियमानुसार कपाट बन्द होकर कीर्तन होने लगा। वे भी द्वार पर जाकर कीर्तनश्रवण का आनन्द लेने लगे। उनका सौभाग्यसूर्य शीघ्र उदय होने को था। अतएव उनके मन में सुमति आई। न अपने कोई सैनिक को संग ले गये और न वहां जा कर स्वयं उन्होंने कुछ उपद्रव ही मचाया। नशे में तो थे ही, जब तक कीर्तन सुन सके सुने। पीछे नशे का रंग अधिक जमने से, बेख़बर वहीं भूमि पर पड़ गये।

कपाट खोलते ही प्रभु और भक्तों ने उन्हें सामने खड़ा देखा। उन्होंने कहा "निमाई पंडित! यह गान क्या चंडी मङ्गल का था? गीत बहुत सुन्दर था अच्छा, एक दिन हमारे यहां भी आकर गान कीजिए।"

अनन्तर सब लोग गंगास्नान को गये। तीसरे पहर को भक्तों के एकत्र होने पर, उनको तथा नित्यानन्द की इच्छा के अनुसार, गौराङ्ग, जगाई और मधाई के उद्धार पर उद्यत हुए। अनुपस्थित

भक्तगण भी बुलाये गये एवं सब मिलकर मृदङ्ग, करताल, मंजीरा शंख और भेरी आदि लिए, पावों में नूपुर दिए खूब सजधज कर कीर्तन करते, उन्हें हरिनाम देने चले। सबसे आगे नित्यानन्द जी थे। इस मंडली में मुरारि भी थे। उनके स्वलिखित कड़चा के आधार पर "चैतन्य मङ्गल" के कर्ता ने अपने ग्रंथ में इसका उत्तम वर्णन किया है। यह प्रथम नगरसंकीर्तन था। आज नगरनिवासियों को तथा जनसाधारण को ज्ञात हुआ कि संकीर्तन क्या वस्तु है। सब लोग सहोत्साह यह रंग देखने चले कि ये लोग किस ढंग से उन्हें हरिनाम देते हैं और उनके सामने इस नाच रंग का उमङ्ग स्थिर रहता है या इसकी गोड़ी उखड़ जाती है। क्योंकि वे बाघ की मान्द में हाथ डाल कर उसकी दाढ़ी खींचने जा रहे हैं। ईश्वर ही कुशल करें। पाठकगण! उन्हें ऐसे ही विचार और चिन्ता में छोड़ दीजिये। हमलोग देखें गौराङ्ग कैसे जा रहे हैं। यह देखिये:—

नाचत नाचत जात गुराङ्ग अवेश मों सो छबि को बरनै।
मालति माल झुलै उर पै अरु नूपुर बाजत हैं चरनै॥
भाव भरे कटि सीस हिलाय करैं नृत नैन बनै झरनै।
मूरति आनि सोई उर मांहि पर्‌यो सिव आरत ह्वै सरनै॥

और उधर श्रीनित्यानन्द को निहारियेः—

छल छल आंखि करै ढल मल देह।
हिय उमहात मनो सरित स्नेह॥
प्रेमउन्मत गोरा गोराहिं पुकार।
भाइ आज दीन ह्वै करहु उधार॥

जगाई और मधाई नशे की खुमारी में खाटों पर करवटें बदल रहे थे। संकीर्तन का शोरगुल सुन निद्राभङ्ग होने से उन्होंने दरबान को उसके बन्द करा देने की आज्ञा की। पर यहां नक्कारखाने में तूती की आवाज़ को कौन सुनता है। सुना भी हो, तो

अनसुनी कर के और उमङ्ग से लोग नाच रङ्ग में उद्यत हुए। इससे क्रुद्ध हो, दोनों बाहर निकल आये। सबसे आगे नित्यानन्द उनकी दशा सोच सोच अश्रुमोचन कर रहे थे। उन्हें देख और पहचान कर क्रोधाभिभूत हो घड़े का एक टुकड़ा उठाकर मधाई ने इतने ज़ोर से मारा कि उनके ललाट से रुधिरप्रवाह हो चला। उसकी कुछ पर्वाह न कर आप "गौर गौर" कह कर नृत्य करने लगे। मधाई का क्रोध और भभक उठा। उसने पुनः प्रहार करना चाहा, पर जगाई ने जिसका चित्त यह दयालुता, और सहनशीलता देख कुछ नरम हो गया था, उसे निवारण किया।

इधर श्रीनित्यानन्द जी नाच नाच कर मुख से यह आशय प्रगट कर रहे थे।

घड़े टुकड़े से जो मारा वह सह सकते हैं हम, फिर भी।
तुम्हारी यह गिरी हालत मगर देखी नहीं जाती॥

श्रीनिमाई पीछे नृत्य कर रहे थे। उनका विचार था कि इन दोनों के सुधार का यश आज बड़े भाई निताई को ही मिले। जब इन्होंने नित्यानन्द के ललाट में चोट लगने की बात सुनी तो ये चट उनके निकट पहुंच गये।

जो नदिया के बिना तिलक के राजा थे, जिनके भय से चिड़िया भी पर न मार सकती थी, जिससे चार आंखें करने का किसीको साहस नहीं होता था, जो पल में प्रलय मचा सकते थे, उन्हें, गौराङ्ग उनके पापों का वर्णन करते, कोटि कोटि धिक्कार दे रहे हैं और भींगे भेड़ों के समान वे थर थर कांपते अपने कर्म पर रो रहे हैं। चित्त व्याकुल है, समझ रहे हैं कि हमारे अकथ अपार पापों का दण्ड मिल रहा है। प्रभु ने क्रुद्ध होकर 'चक्र, चक्र" पुकारा। मुरारि जिन्हें श्रीहनुमान का आवेश होता था, आगे कूद पड़े और बोले 'चक्र की क्या आवश्यकता, हमें आज्ञा हो, हम ससैन्य इन्हें यमालय पठाते हैं।" उधर चक्र का भी दर्शन

हुआ। श्रीनित्यानन्द ने व्यग्र हो मुरारि के चरणों को पकड़ कर विनय की एवं चक्र की भी प्रार्थना की कि जब तक वे महाप्रभु की स्तुति कर उनसे क्षमाप्रार्थना करें, चक्र किसीको दग्ध न करें। फिर आप गौराङ्ग की स्तुति करने लगे और बोले "क्या आप अपना कथन भूल गये ? क्या आपने यह नहीं कहा है कि इस बार करुणा और प्रेमरस में डुबा कर पापिष्ठ मलिन जीवों का उद्धार करेंगे ? जब ऐसे लोगों का वध ही होगा तो उद्धार किसका करेंगे ? इस अवतार में आपको वध का अधिकार नहीं ।"

गौराङ्ग ने चक्र का क्यों आवाहन किया ? भगवान को भक्तों पर किया गया अत्याचार सदा असह्य होता है। श्रीगे स्वामी तुलसी दास जी क्या कह रहे हैं:—

"बेद विरुद्ध मही मुनि साधु ससोक किए सुरलोक उजार्‍यौ।
और कहा कहौं सीय हरि तबहूं करुनाकर कोप निवार्‍यौ॥
सेवक छोह ते छाड़ी छमा तुलसी लख्यो राम सुभाव तिहार्‍यौ।
तौलों न दाप दल्यो दसकंधर जौलौं बिभीषन लात न मार्‍यौ॥"

अन्त में नित्यानन्द जी के नाना विनय अनुनय के अनन्तर यह जानने पर कि जगाई ने, मधाई को उन्हें पुनः प्रहार करने से निवारण किया था, आपने उसका अपराध क्षमा किया और उसे छाती से लगाया। अपना अपराध एवं इनकी कृपा का ध्यान कर वह मूर्छित हो इनके चरणों में लोट गया। मधाई का अपराध इन्होंने स्वयं शमन नहीं किया। वह भक्तद्रोही था। उसे आपने भक्त नित्यानन्द ही से क्षमाप्रार्थना का आदेश किया और उसको क्षमा करने के निमित्त उनसे सिफ़ारिश कर अपनी कृपा का परिचय दिया। वह भी वहीं मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा। लोग इनकी लीला देख महा चकित हो गये। इतने बड़े पापी अदमनीय दुष्ट का आपने सहज रीति से दमन किया। उनलोगों को उसी अवस्था में वहीं छोड़ कीर्तन मंडली अपने स्थान पर लौट आई।

सन्ध्या समय चैतन्य लाभ कर दोनों भाई निमाई के घर पहुंचे। द्वार पर खड़े होकर दोनों ने आवाज़ दी। मुरारि उन्हें भीतर लाने को भेजे गये और निज बलगर्वित असीम बलवान उन दोनों भाइयों को बालकों के समान गोद में लेकर प्रभु के सम्मुख उपस्थित हुए।

फिर उन्हें गंगा में स्नान कराकर श्रीगौराङ्ग ने उनके हाथों में सोना तुलसी दे उनका पापसमूह दान करा लिया। वे पाप दान करना नहीं चाहते थे। कहते थे "हमलोगों का जितना दंड हो, सही, पर जिसमें आपके पादपद्मों का ध्यान बना रहे, हमलोग पाप अर्पण नहीं कर सकते।" अनेक समझाने बुझाने से ईश्वरेच्छा बलीयसी जान उन्होंने ऐसा किया। किन्तु इससे उनलोगों के चित्त की शान्ति नहीं हुई। श्रीगौराङ्ग के आदेश से नित्यानन्दजी ने उनलोगों को उसी दम दीक्षित किया।

लौटने पर महाप्रभु के ही घर में कीर्तन आरम्भ हुआ और वे ही दोनों भाई उस दिन प्रधान नृत्यकारी हुए। परन्तु हृदय के सन्ताप से अधीर हो, तुरत ही कलेजा फाड़ कर रोने लगे। फिर लौट कर घर नहीं गये। भक्तों ही में मिलकर रहे और श्रीवास के घर रहने लगे। परन्तु खाना दाना मानो हराम हो गया था।

मुंहसे निकलता श्याम था।
रोने ही से बस काम था॥

गत कुकर्मों और करनी करतूतों का चित्रपट उनकी मानसिक आंखों के सामने खड़ा हो गया। प्रतिक्षण पर्दा बदलने लगा। क्षण क्षण चित्त की व्यग्रता बढ़ने लगी। दूसरों को कौन कहे, श्रीनिमाई का आश्वासन भी उन्हें शान्त न कर सका। यही कहते थे 'जितना हमें अपने पापों के स्मरण से क्लेश नहीं होता, उतना आपकी असीम कृपा हमें बेचैन कर रही है।

अन्त में मधाई ने अपने हाथों से एक घाट (१) काट कर गंगातट पर जा अपना आसन जमाया। नर नारी, बालवृद्ध, जाति कुजाति जो स्नान करने जाते, दौड़कर उनके चरणों पर लोट लोट कर उनसे वह अपने, जाने अनजाने किये गये, अपराधों को क्षमा कराता; फूट फूट कर रोदन करता; जिससे अन्य लोगों का भी हृदय द्रवित होता था; उनके नेत्रों से भी अश्रुधारा प्रवाहित होती थी। इससे औरों का भी चित्त निर्मल पापरहित होने लगा। उसकी ऐसी दीनदशा देख सब दुखित और अचम्भित होने लगे। श्रीगौराङ्ग की कीर्ति चारों ओर बड़े वेग से फैल गई। क्षण भर में ऐसे जनपीड़क पापिष्ठ कुकर्मियों को ऐसा नम्र, दीन, साधु बना दिया! ऐसे भयङ्कर व्याघ्रों को पलमात्र में खरहा और बिल्ली कर दिखाया! इनके ठट्ठा उड़ाने वाले विपक्षी भी आश्चर्य से दांतों से उंगलियां काटने लगे; इनकी प्रशंसा भी करने लगे।

जय निमाई अरु निताई की।
जय जगाई अरु मधाई की॥
जय प्रेमी सु भक्त भाई की।
जय सिया मा श्रीकन्हाई की॥

१ "अमिय-निमाई-चरित" में लिखा है कि अभीतक नवद्वीप में मधाई घाट प्रसिद्ध है। इनके वंशधर भी वर्तमान हैं। वे परमवैष्णव, गौराङ्ग भक्त और श्रोत्रिय ब्राह्मण हैं। प्रथम खण्ड पृ० २७५ पृष्ठ संस्करण देखिए।

नवम परिच्छेद

श्रीअद्वैताचार्य का सन्देहभञ्जन



एक दिन श्रीगौराङ्ग के प्रस्ताव से उनके मौसा चन्द्रशेखर के घर श्रीकृष्णलीला का अभिनय हुआ था। उसमें अद्वैताचार्य ने श्रीकृष्ण का एवं स्वय गौराङ्ग ने श्रीराधा का रूप धारण किया था। इसी प्रकार अन्य भक्तों ने भिन्न भिन्न रूप सज कर अभिनय किया था। बनावट, सजावट तथा कार्यक्रीडा स्वाभाविक छटा दिखला रही थी। सबोंके शरीरों में मानो श्रीराधाकृष्णादि का वस्तुतः प्रवेश हुआ था।

अभिनय के अनन्तर श्रीगौराङ्ग को श्रीभगवती भाव का आवेश होने से ये देवगृह में घुस गये एवं आसन पर विराजमान हो इन्होंने हरिदास (१) को गोद में लेलिया। वे अपार मातृसुख अनुभव करते सोए रहे वरन् बालस्वभाव उदय होने से माता के स्तन को खोज करने लगे। भक्तसमूह चतुर्दिक घेरे खड़े थे। सबों को दुग्ध पीने की इच्छा होने लगी और भगवती ने स्तन पिला पिला कर सबोंकी इच्छा पूर्ण को। हरिदास को सर्वप्रथम यह सौभाग्य प्राप्त हुआ। भाव सम्वरण होने पर एवं सब के अपने अपने घर चले जाने पर भी उस घर में सात दिनों तक ज्योति जगमगाती रही।

उस अभिनय के समय शची, विष्णुप्रिया तथा अन्यान्य भक्तों की स्त्रियां वहां उपस्थित थीं।

यह दानलीला का अभिनय था। पीछे आपने क्रमशः श्रीमद्भागवतवर्णित सब लीलाओं का उत्सव किया था।

१' हरिदास जब छः महीने के थे, तभी इनकी माता पतिके संग चिता पर जल कर सती होगई थीं।

अद्वैत घर जाकर अपने शिष्यों के मध्य पुनः ज्ञान छांटने लगे। वे दासभाव का सुख अनुभव करना चाहते थे और गौराङ्ग उनकी यह अभिलाषा पूर्ण होने का अवसर नहीं देते थे। इससे उन्होंने अपने कार्यों के द्वारा इनके मन में क्रोध जन्माकर अपना मनोरथ सफल करना चाहा। उनका अभिप्राय जो कुछ हो, पर उनके उपदेश का बुरा प्रभाव उनके शिष्यों पर पड़ने लगा।

एक दिन नित्यानन्द को लेकर गौराङ्ग अद्वैत के घर शान्तिपुर अकस्मात् जा पहुंचे। राह में ललितपुर में एक गृहस्थ संन्यासी के घर गये थे और वहां जलपान करते समय यह जान कर कि वे वाममार्गी थे, आप चट गङ्गा में कूद दो कोस तैरते शान्तिपुर चले गये थे।

मार्ग ही में इन्हें आवेश हो आया था। "चैतन्य भागवत" में लिखा हैः

"विश्वंभर तेज येन कोटिसूर्य्यमय।
देखिया सबार चित्ते उपजिल भय॥"

अद्वैत घर के किसी व्यक्ति पर ध्यान नहीं देते, इन्होंने अद्वैत से पूछा "क्यों रे! भक्ति की अवहेला करता है?" उन्होंने उत्तर दिया कि "चिरकाल से ज्ञान बड़ा है। भक्ति स्त्रियों का धर्म है। बिना ज्ञान, भक्ति से क्या हो सकता है?"

बस यह सुनते ही अद्वैत को आङ्गन में पटक कर ये उन्हें ज़ोर ज़ोर से मारने लगे। सबके सब महाचकित हो पत्थर की मूर्तियों के समान जहां के तहां खड़े रहे। उनकी पत्नी के बार बार कहने और चिल्लाने बिललाने पर भी किसीकी कुछ कहने और करने का साहस नहीं हुआ। उधर अद्वैत पर जितनी ही मार पड़ी थी, उतनाही वे हृष्ट मन और प्रफुल्लित चित्त हो रहे थे।

फिर प्रभु के छोड़ देने पर वे सहर्ष नाच नाच कर इनका गुन गान करने लगे। पुनः इनके चरणों पर लोट गये। तब प्रभु अपनेको

छिपा कर कहने लगे "श्रीविष्णु श्रीविष्णु ! आप यह क्या कह रहे हैं ? हमसे कोई चपलता हुई हो तो क्षमा कीजिये। हम आपके अच्युत पुत्र के तुल्य हैं। सदा आपको हमारी खोज खबर लेनी चाहिए।" इन बातों को सुन कर हरिदास, अद्वैत और नित्यानन्द एक दूसरे को देख कर हँसने लगे।

पश्चात् सब लोगों के गंगास्नान करके लौटने पर निमाई देवघर में जाकर साष्टांग प्रणाम करने लगे। उनके पद के तले अद्वैत पड़ गये हरिदास उनके चरणों में गिरे।

उस समय भी अद्वैत को अपने चरणों के पास पड़े देख इन्होंने "श्रीविष्णु श्रीविष्णु" कह कर दाँतों से अपनी जीभ काटी।

फिर शान्तिपुर के सामने उस पार काल्ना जा कर आपने वहां के गौरीदास को अंक में लगाया और एक नाव खेने का "डाँड़" देकर उन्हें लोगों को संसारसागर से पार करने की आज्ञा दी। वह वस्तु अद्यावधि वहां विद्यमान है। इन्हींके परशिष्य श्यामानन्द ने सारे उड़ीसा देश को गौरभक्त बनाया।

फिर अद्वैतादि सबके संग नदिया लौट आये। उस दिन से अद्वैत की ज्ञानचर्चा की आदत छूट गई। उनका ज्ञान कथन सब भूल गया। पर उनके मन से पूर्णरूपेण सन्देह नहीं गया। कुछ काल के बाद वे फिर सन्देहसमुद्र में डूबने लगे।

अन्ततः क़ाज़ी के सुधार के अनुसार (जिसका वर्णन आगे होगा) श्रीगौराङ्ग का मन कीर्तन में विशेष नहीं लगता था। वे प्रायः उसमें सम्मिलित नहीं होते थे। उसी काल में एक दिन श्रीवास के घर कीर्तन में अद्वैत अत्यन्त दुःखपूर्ण हृदय से रोने लगे। बहुत यत्न से शान्त हुए। परन्तु लोगों के संग स्नान को न जाकर वहीं बैठे, इस बात के लिए बड़ेही चिन्ताग्रस्त हुए कि "क्या हमारे आराध्य देव श्रीकृष्ण, सचमुच यही शचीनन्दन हैं ? बारबार इनका इतना ऐश्वर्य देखने पर, बारबार विश्वास जम जाने पर,

परीक्षा करने पर, फिर हमें क्यों अविश्वास आ घेरता है? यह हमारे दुर्भाग्य और अभिमान का फल है। इसीसे हम इतना क्लेश पा रहे हैं। हम इनके अपने नहीं। नहीं तो हमारी ऐसी दशा क्यों होती?" यही सोचते, "हा गौराङ्ग!" कह कर वे पृथ्वी पर गिर पड़े। अभिमान कदाचित् यही होगा कि उन्होंने श्रीवास के भाई के मुख से इनके आविर्भाव का हाल सुन कर कहा था "लाया है; लाया है।" अर्थात् कृष्ण को पुनः संसार में लाया है।

घरवालों को तो उनके आह भरने और आंगन में गिरने के शब्द न सुन पड़े, पर वे गौराङ्ग के कानों में पहुंच गये। द्रुतवेग से उनके पास पहुंच कर उनकी देह सुहलाने लगे। होश होने पर उनके इच्छानुसार इन्होंने उनका सन्देहनिवारण के लिए उन्हें विराटरूप का दर्शन कराया।

इसी समय निताई भी इनकी खोज में वहां जा पहुंचे एवं किवाड़ खुलवा कर भीतर प्रवेश करने से उन्हें भी उस रूप के दर्शन का सौभाग्य और सुख प्राप्त हुआ; परन्तु भयभीत हो वे भूतल पर गिर पड़े। गौराङ्ग के वह रूप सम्वरण करने से अद्वैत और निताई दोनों का मन ठिकाने आया। अब अद्वैत का सन्देह कदाचित् सर्वथा निवारण हुआ।

दशम परिच्छेद

नदिया में प्रेम-तरङ्ग

नदिया में कृष्ण प्रेम का सैलाब आ गया।
जितना हि जिसने चाहा उतना हि पा गया॥
जल से किनारे बैठे रहे हासिदान ख्वार।
क़िसमत न थी, न पाया इक क़तरा एक बार॥



नदिया में कृष्णप्रेम की लहरें चतुर्दिक लहराने लगीं। कहीं सागर की तुङ्ग तरङ्गों के गर्जन के न्याय कीर्तनों में मृदंगों की ठनक सुन पड़ती, कहीं कलकल नादिनी गंगा की लहरों की भी मधुर गानध्वनि कानों में प्रवेश करती। कहीं वृद्धा देहरी पर बैठी छोटे छोटे बच्चों को खेलाती "हरे कृष्ण हरे कृष्ण" बोल उठती; कहीं निःशब्द रात्रि में प्रीतमों के अंकों में लगीं युवतियां "हरि बोल हरि बोल" की सुमिष्ट सुर छेड़ देतीं। कहीं कोई हरिकीर्तन का स्वप्न देखता; कोई "हरि हरि" कह कर बर्राने लगता। कहीं सड़कों पर दो भक्तों की भेंट होते ही उभय हाथें मिला कर नृत्य करने लगते। कहीं कोई अपनी आंखों और अङ्ग-प्रत्यङ्गों के भावों से कृष्णप्रेम पान का सुख दर्साता चला जाता। कहीं छोटे छोटे अबूझ बालक हाथ उठाये कमर लचकाते "हरिध्वनि" करते नाचते देख पड़ते थे। आरा नगर के विक्रमीय सं० १९८० के सैलाव के समान प्रेमधारा घर घर प्रवेश कर गई थी। घर घर संकीर्तन होना आरम्भ हो गया था। भक्तों की अब सब साधें मिट गई थीं। ईश्वर से अब सदा यही प्रार्थना किया करते थे कि उन्हींके समान सब लोग प्रभुपादपद्मो का मधुकर बन कर आनन्दरस पान करते रहें।

मुरारि को तो हमलोग बहुत दिनों से पहचानते हैं। गौराङ्ग को बालकाल ही से इनके साथ रङ्ग तमाशा करते देखा है। यह भी जानते हैं कि इनकी देह में हनुमान और गरुड़ का प्रकाश होता था। उस समय इनके शरीर में असीम बल हो जाता था।

एक बार श्रीवास के घर बैठे गौराङ्ग ने "गरुड़ गरुड़" पुकारा। ये अपने घर से चट उसी दम आकर प्रभु जैसे दीर्घ-काय और बलवान पुरुष को कंधे पर बिठाकर आंगन में घूमने लगे।

श्रीगौराङ्ग जानते थे कि मुरारि रामोपासक हैं। तब भी एक दिन परीक्षार्थ उन्होंने इन्हें कृष्ण भजन कर ब्रजलीला के रसास्वादन की आज्ञा की थी। सारी रात चिन्ता मे व्यथित रह कर इन्होंने दूसरे दिन युगल कर जोर निमाई से निवेदन किया:—

रामहिं सौंप दियो मन चित्त नहीं अब पाप है स्वत्व हमारो।
आयुस पालन को न समर्थ दया कर मोहि प्रभु वध डारो॥

यह सुन कर:—

बोल उठें तब गौरहरि सुभ भाग महा मम मीत मुरारो।
राम भजो बर लेहु अरू रस कृष्ण भरै उर मांहि तिहारो॥

कुछ दिनों के बाद जब मुरारि ने श्रीराम की स्तुति के आठ श्लोक रच कर निमाई के पास ले गये तो उन्होंने स्वकर से इनके ललाट पर "रामदास' लिख कर इन्हें सप्रेम छाती से लगाया। आनन्द विह्वल हो घर जाकर मुरारि ने भात में घी मल मल कर आस पास के बालकों को इतना खिलाया और स्वयं खाया कि गौराङ्ग को अजीर्ण हो गया। प्रातःकाल वे इनके पास पाचक की गोली मांगने गये और इनसे अनपच का कारण कह कर चट इनके गिलास में जल भर कर पी गये। ऐसा करने में मुरारि ने निषेध करने का कुछ ख्याल नहीं किया।

एक बार यह विचार कर कि प्रभु का अन्तिम वियोग सहने को कैसे समर्थ होंगे, मुरारि ने आत्मघात के निमित्त एक छुरा छिपा रखा था। इनके घर पहुँच कर, इनके अस्वीकार करने पर प्रभु ने वह छुरा निकाल इन्हें दिखला दिया और आश्वासन देकर इन्हें उस कार्य से रोका।

एक दिन शची माता के अपने स्वप्न का विवरण सुनाने पर आपने कहा "हां! मा! हमारे घर के ठाकुर बड़े जाग्रत हैं, यह अच्छा स्वप्न है।" और फिर गम्भीरतापूर्वक धीरे धीरे बोले "नित्य ठाकुर के भोग का आधाही अंश शेष देख हमें सन्देह होता था कि तुम्हारी पतोह आधा खा जाया करती है। आज यह सन्देह दूर हो गया।" इस पर सब हँसने लगे। ओड़ में खड़ी इनकी पत्नी भी मुंह पर कपड़ा दिये, हँस रही थीं। तब शची को मालूम हुआ कि ये हँसी कर रहे हैं और उन्होंने सुमिष्ट भाषा में इन्हें उचित उत्तर दिया। यह घटना स्पष्ट कह रही है कि गौराङ्ग हास्य प्रिय भी थे।

अब गौराङ्ग अपने भक्तों के संग सन्ध्या में कभी कभी नगर-भ्रमण को भी निकलते हैं। आज हमलोग भी इनके तथा इनके भक्तों के चरणों का दर्शन करते हुए चलें और देखें कि जन समुदाय इन्हें किस दृष्टि से देखता है और ये लोग आज कहां कहां जाते हैं। अब शीघ्रता कीजिये। नहीं तो इनके दौड़ मारने पर इनके भक्तगण तो इनके संग डेग बराबर रख ही नहीं सकते, हम और आप क्या हैं? देखिये, श्रीगौराङ्ग की मण्डली वह आ रही है। नतमस्तक हो उसे प्रणाम कीजिये। आंखें पसार कर निरीक्षण कीजिये गौराङ्ग, कैसे शोभायमान हो रहे हैं।

दीरघ गौर शरीर सुहावन, कंज लजावन नैन विराजै।
उन्नत भाल सुवक्ष विशालहु पुष्पक माल गरै छवि छाजै॥

खौर किये मुख पान दिये शिव, वस्त्रअनूपम अंगन साजे।
आवत भक्तन संग अहैं जिमि, तारन मध्य निसापति भ्राजे॥

सज्जन, स्वजन तथा भक्तजन तो यह भाव प्रकट करते हैं।

"गो मेरे पास नहीं क़ाक़मो शंजाव का फ़र्श।
यार आवे तो करूं दीदए कमख़ाब का फ़र्श॥

अथवा

मनमें आता है कि इस भूमि पर देह बिछावें।
और उस पर श्रीगौराङ्ग को सानन्द नचावें॥

दुर्जनों के चित्त का भाव नीचे की सवैया से प्रकटित होता है:—

देखि छवी मम नैन जुड़ात पै, दुष्टन हीय है आग सी जारत।
कोऊ कहै भल गौर है आप जगीस समाज कै लोग बिगारत॥
कोऊ कहै नहिँ भोजन काल रह्यौ सिव आज सो माल है मारत।
नागर ह्वै नगरे निकसै नदिया नरनाह जनू पग धारत॥

ये लोग निमाई के अतुल्य पाण्डित्य, नम्रता, सरलता, अपार भक्ति, पर दुखदुखी स्वभाव और सद्गुणों की ओर दृष्टि नहीं करते थे। परन्तु इस बात से लोगों को जलन निश्चय होती थी कि कल के लड़के का यह भाग्य कि उसका सारा नगर अनुगत हो जाय; लोग शाखामृगों के समान उसके ताल पर नाचा करें। कोई पूछे कि इससे उनकी हानि क्या थी? तो इस का उत्तर वे ही लोग देते। हम तो उनका स्वाभाव ही कहेंगे; श्रीगोस्वामीजी ने कहा ही है कि ऐसे व्यक्ति "बिनु काज दाहिने बायें" होते हैं एवं दूसरों के सुख ही में इन्हें विषाद और बरबादी ही में आनन्द होता है "उजरे हर्ष विषाद बसेरे।" बिच्छु को क्या सबसे बैर ही रहता है कि डंक मारा करता है? जो हो, ऐसे लोगों को यहीं झँखते बैठे रहने दीजिये। हमलोग संग संग आगे चलें।

ये भ्रमण करते करते नगर के बाहर उस प्रान्त में पहुंच जाते हैं, जहां मदिरा की बिक्री हो रही है। मद्यप यह समाचार सुन कर

इनके चतुर्दिक आ घेरते हैं। पहले इन्हीं लोगों का नृत्य गीत सुनने की अभिलाषा प्रकट करते हैं। पीछे स्वयं नाचने लगते हैं, एवं प्रभु की कृपादृष्टि से तथा भक्तों के दर्शन के प्रभाव से 'हरिबोल, हरिबोल' से आकाश गुंजाने लगते हैं।

वहां से गौरमण्डली विद्यानगर गई। वहां देवानन्द नामक परम भागवत्, परन्तु भक्ति-विहीन, एक साधु रहते थे। एक वार उनके स्थान पर भागवत की कथा होती थी। उस समय श्रीवास के प्रेमाश्रुवर्षण से रुष्ट हो उनके शिष्यों ने श्रीवास की बांह पकड़ कर उन्हें वहां से उठा दिया था। इससे गौराङ्ग को प्रगट रोष हुआ था। परन्तु सच्ची बात यह थी कि देवानन्द भी इनके जन थे। उन्हें भी रास्ते पर लाना इन्हें अभिप्रेत था। अतएव आज उनको कुछ खट्टा मीठा सुना कर यह कहते कि "जब आप भागवत पाठ करते रहने पर भी उसके रससे वञ्चित रहे और भक्तिमान न हुए तो उसे फाड़ कर गंगा में वहा दीजिये," आप वहां से लौट आते हैं। देवानन्द को इनकी बातों के उत्तर देने का साहस नहीं हुआ। साहस क्या होता? वे तो अपनी भूल समझ पीछे इनके शरणापन्न हुए और अपना अपराध क्षमा कराकर आगे इनके अनुगत बने। (१)

तदनन्तर नाव पर भक्तों के सङ्ग झिझरी खेलते और उसी पर नृत्य करते आप नदिया की एक ओर जाहान्नगढ़ में शार्ङ्गदेव नामक एक वृद्ध भगत, श्रीगोपीनाथ के सेवक, के निकट पहुंचे। उनकी अवस्था के विचार से आपने उन्हें एक चेला बनाने की सम्मति दी। उन्होंने आप ही को एक सुयोग्य पात्र ढूंढ़ देने के लिए प्रार्थना की।। उसके दूसरे दिन प्रातःकाल जब वे स्नानान्तर घाट पर जप कर रहे थे, एक मृतकबालक धारावेग से उनके पैरों के पास आ

( ) इस पुस्तक के खंड १ के एकोन विंशति परिच्छेद में देवानन्द का वर्णन देखिये।

गया। सारंगदेव के उसके कान में कुछ मंत्र पढ़ने से वह बालक जी उठा। तब तक ये भी भक्तों के संग वहां जा पहुंचे। उस बालक से, जिसका नाम मुरारि था, ज्ञात हुआ कि उसका सरग्राम (१) में घर था; सांप काटने से उसके घरवालों ने उसे नदी में बहा दिया था। वह बालक कितना समझाने बुझाने पर भी घर न गया। शार्ङ्गधर का चेला बन कर उनके साथ रहने लगा। उसके माता पिता भी शार्ङ्गदेव से दीक्षित हुए। ये लोग सब एक दिन निमाई के दर्शन के लिए इनके घर भी आये थे।

एक दिन इनका संकीर्तन देखने की सुविधा न पाने से क्रुद्ध हो एक ब्राह्मण साधु ने इन्हें संसारदुःख से वञ्चित रहने का शाप दे दिया। इन्होंने सहर्ष उसे शिरोधार्य किया। यह इनकी एक लीला थी।

यदि कहिए कि ब्राह्मण ने बेविचारे शाप दिया, तो ब्राह्मण कब विचार कर शाप देते हैं? ये समाज में उच्चासन पाने से गर्वित और सदा क्रोध के वशीभूत हो, अन्याय रीति ही से सबों को शाप दिया करते हैं और देने को तैयार रहते हैं। भानुप्रताप का यथार्थ में क्या दोष था जो ब्राह्मणों ने शाप देकर उसे सपरिवार नाश कर डाला? और दूसरी आकाशवाणी सुन कर भी उसे नारद के समान, अन्यथा करने की चेष्टा नहीं की? गोसाईं जी को भी यह बात बुरी जंची है। इसीसे उन्होंने भी कहा है "नहिं कछु कीन्ह विचार।"

पाठकगण इस शाप की बात सुन कर चकित और दुःखित मत हुजिए। ऐसे महापुरुषों की आगे की कार्रवाई सुनिये।

१. यह गुसकरा स्टेशन के पास है।

एकादश परिच्छेद

क़ाज़ी का दमन

" न ख़ाहम आँ कि बेआजारम अन्दरूने कसे।
हसूद रा चे कुनम कूज़ो खुद बरंज दरस्त ॥"

भावार्थः—नहीं चाहता दिल दुखाऊं किसीका।
स्वयं द्वेष रखले तो इसका करूं क्या?

अब नगर के भिन्न भिन्न भागों में भिन्न भिन्न प्रकारों से इनके कार्यों की आलोचना होने लगी। भक्तों को अलौकिक आह्लाद होने लगा। जिन लोगों को पहले देव मंदिरों के द्वारों पर ही खड़े रहने का अधिकार था देहरी के भीतर प्रवेश की बात कौन कहे, उधर झांकने की भी योग्यता नहीं थी, वे आज इनके उपदेशों में अपने कल्याण की राह देख और हरि-कीर्तन में सम्मिलित होने का उत्साह पाकर, आनन्दसागर में मग्न होने लगे। स्मार्त ब्राह्मणगण ईर्ष्या वश जलने लगे। पण्डितों के पिंडों में पीड़ा सी होने लगी। नवद्वीप के पंडितवर्ग विद्यादिग्गज तो अवश्य थे, परन्तु विद्यामद तथा पांडित्य द्वारा उपार्जित और संचित धन के मद ने उनके मस्तिष्क को ऐसा बिगाड़ डाला था कि ईश्वरभक्ति को वे घृणा की दृष्टि से देखते थे। यदि जी चाहा, तो केवल दिखाने के लिए कभी कुछ वेदान्त की चर्चा कर मन बहला लेते थे। मद्य-मांस के समर्थन करनेवाले धर्म और विधि में अधिकांश लोग अधिकतर ध्यान देते थे। गौराङ्ग के नामकीर्तन का प्रभाव और उसकी ओर सर्वसाधारण का झुकाव देख उन लोगों के हृदय में दाह होने लगा। निमाई महाशय की कार्य सफलता में अपनी मानहानि तथा चिरकालार्जित प्रतिष्ठा में बट्टा लगते देख वे लोग इनके व्यवहार में अहिन्दूपन बतलाते, इनकी निन्दा में तत्पर हुए।

उलूकवत् इनके तेज रवि के सम्मुख होने का तो किसीको साहस नहीं होता था पर अपने वासागार में छिपे बैठे कभी कभी "चें चूं" कर दिया करते थे। इनके नाम से दुर्जनों को ज्वर होता था; अकस्मात् देखने से जूड़ी आती थी; कोप कफ का प्रकोप होता था, बुद्धि में वायु विकार उत्पन्न होता था। ईर्ष्या से उनका चित्त सदा जर्जरित रहता था। धीरे धीरे यह श्लेष्मा रोग पराकाष्ठ को पहुंच गया। अतएव हिन्दू नामधारी अविचारी पुरुष अपने कतिपय मुसलमान हितकारी के संग स्थानीय क़ाज़ीजी के पास इस रोग की चिकित्सा के लिए गये। इस रोग की तो बस एक ही औषधि थी—कीर्तन का बन्द हो जाना। जहां तक बन पड़ा गौराङ्ग और उनके नामकीर्तन के दूषण दिखलाये गये। उसे शास्त्रविरुद्ध बतलाया गया। केशव मिश्र के आगमन काल में इन शास्त्रज्ञों की विद्या बुद्धि कहां हवा खाने गई थी, कि धोती ढीली कर, पीठ दिखा, नेवता खाने निकल गये थे? नवद्वीप का मान-रक्षण करने वाला युवक आज इनके नेत्रों में कांटों सा चुभने लगा और उसके कार्यकलाप अशास्त्रीय बतलाये जाने लगे।

क़ाज़ी सदवंशीय थे। गौराङ्ग के नाना को ग्राम के नाते चचा कहते थे फर्यादी लोगों की बातें सुन कर वे इस कार्य में हस्तक्षेप करना नहीं चाहते थे; किन्तु अधीनस्थ कर्मचारियों की उत्तेजना से और इन दुराचारी दुर्जनों की बातों में पड़ कर अपनी इच्छा के विरुद्ध कीर्तन बन्द कराने पर उद्यत हुए। आदि ही से ईर्ष्या और द्वेष सब देशों में, और विशेषतः भारतवर्ष में, सर्वनाश के मूल कारण हुए है। और आज भी कितने धर्मशील, करुणाहृदय तथा न्यायपरायण राज्यकर्मचारी अपने अधीनस्थ लोगों के षड्यन्त्रों और झूठी सच्ची बातों के प्रभाव से कभी कभी कैसी अनुचित और कठोर आज्ञा प्रचारक देते हैं।

क़ाज़ी भी अचानक दल बादल सहित नगर में एक रात पहुंच गये। सर्वत्र कीर्तन सुन कर क्रोधित हो एक भक्त (१) के घर में घुस कर, मृदंगादि तोड़-फोड़ और कितनों को मारपीट कर आज्ञा दे गये कि "यदि निमाई शान्तिभङ्ग करनेवाले इस अपूर्व धर्म के शोर गुल से बाज़ न आवेंगे तो हम उन्हें तथा उनके सहचरों को अपना धर्म स्वीकार कराने के लिए बाध्य होंगे।

इस घटना की बात श्रीगौराङ्ग से निवेदन किये जाने पर इन्होंने भक्तों को निर्भीक भाव से संकीर्तन करने को आदेश किया और कहा कि जो कोई बाधक होगा वह उनके द्वारा दंड पावेगा।

इससे भक्तों को सन्तोष और उनके भय का ह्रास तो हुआ, पर कीर्तन करने का साहस नहीं हुआ, क्योंकि प्रति रात्रि को क़ाज़ी सैनिकों के संग नगर नगर घूमने लगे, जिसमें कीर्तन न होने पावे।

तब भक्तों ने प्रभु से विदा मांगी; जिसमें लोग वह नगर परित्याग कर कहीं संकीर्तन के उपयुक्त स्थान में जा बसें। इसपर महाप्रभु ने श्रीनित्यानन्द को आज्ञा की, कि वे सर्वत्र यह आज्ञा प्रचार कर दें कि आज सन्ध्या में नगर के सब प्रान्तों और पल्लियों में संकीर्तन होगा; आज क़ाज़ीका दर्प चूर्ण किया जायगा; आज नदिया में प्रेम की लहरें चतुर्दिक लहराएंगी; सब लोग एक एक मशाल लिये संध्या को एकत्र हों। यह ख़बर वायुवेग सी सर्वत्र पहुंच गई।

होवतहीं सम्वाद प्रचार। भक्तन मन आनन्द अपार॥
लै करताल मँजीरा ढोल। दौड़े हँसत कहत "हरिबोल"॥
तेलपात्र कटि करनमसाल। आये वृद्ध युवा अरु बाल॥
झुंड झुंड गौराङ्ग दुआर। खड़े भये तिइठां चहुँवार॥

१, श्रीयुत केदारनाथ विद्याविनोद ने श्रीवास के घर में घुसना कहा है; पर वहां के संकीर्तन में तो निमाई सर्वदा उपस्थित रहते थे। उनके होते इस ढग से क्य आज्ञा-प्रचार किया जाता ? अतएव किसी अन्य भक्त के ही घर यह घटना होनी मानना ठीक है।

करत गदाधर गौर सिँगार। विष्णुप्रिया शचि हरख निहार॥
कहत "हरि, हरि" बारम्बार। कोउ न विलम्ब सकत उर धार॥
बाहर निकसि उदय भयो, गौराचन्द अमन्द।
हर्षित चित चितवत सकल, जिमि चकोर नभचंद॥

उस समय नदिया महासमृद्धिशाली नगर था। आज का कलकत्ता भी उससे टक्कर नहीं लगा सकता था। क़ाज़ी के घर जाने का कोई पथ प्रभु ने निर्दिष्ट नहीं किया था। न जाने किस मार्ग से निकल पड़ें, किधर से होकर जायं। इससे समूचे नगर में प्रभु के दर्शन का सुख लूटने और संकीर्तन का ठाटबाट देखने के लिये तैयारियां होने लगीं। लोगों ने अपने अपने द्वारों पर कदली खम्भ आरोपित किया; वन्दनवार लटकाया; जलपूर्ण कलश रखा; दीपावली की शोभा की; सुगन्धित वस्तुएं जलाने लगे। घर, बाहर और सामने के उद्यानों को साफ सुथरा किया। स्त्रियां, बालकों और बालिकाएं सुन्दर वस्त्रों और आभूषणों से सुशोभित सड़कों पर, छतों पर, बरामदाओं पर समय के बहुत पहले से बैठी हुईं वा खड़ी प्रतीक्षा करने लगीं। कितने साधारण जन पेड़ों पर, भग्न प्राचीरों पर, दिवालों पर जा बैठे। वैष्णवों और भक्तों के घर यथाशक्य विशेष तैयारियां की गईं।

कोऊ आप घर द्वार झाड़ैं बुहारैं।
कोऊ सेवकों को हँकारैं पुकारैं॥
गली वीथि त्यों राजपथ जल छिटाते।
कुसा कांट मारग से सब हैं हटाते॥
कहूं कदली खम्भ डोलैं दुआरैं।
कहूं झूलते फूल वन्दन निवारैं॥
कहूं वारिपूरित घटैं सोहते थे।
टँगे चित्र दीवार मन मोहते थे॥

दुहूं ओर सड़कों पै थी भीड़ भारी।
भरी नारियों से सुकोठा अटारी॥
सजी फूल तुलसी धरी थीं चँगेरी।
बतासा लवा-धान पूरित घनेरी॥
जिधर नाचने नाचते लोग जाते।
उधर जन गृही शंख भेरी बजाते॥
कुसुम तुलसी लावा बतासा बरसतीं।
वृधा बाल युवति हरखि "होहु" करतीं॥
सकल नारिनर प्रेम विह्वल हैं रोते।
कलुष जन्म का आज आंसु हैं धोते॥
चतुर्दिक छवी दीपमाला दिखाती।
कवी के हिये याह उपमा लखाती॥
नहीं दीपमाला, सुउड़गन सुहाए।
विमल चन्द गौराङ्ग लखि भूमि आए॥
चरन धारि उर सिव निहोरैं उचारैं।
दयामय प्रभु दीन हूं को उधारैं॥

हां! विपक्षियों के घर सजावट और रोशनी का प्रबन्ध क्यों होने लगे? उल्टे यह नगरोत्सव देख उनका दिल मरोड़ खाने लगा। कलेजा मुंह को आने लगा। होश हवा होने लगा अभी, अभी, अल्पकाल में, निमाई क़ाज़ी का दर्प चूर्ण करने निकलेंगे। वही क़ाज़ी-देश का शासनकर्त्ता; वही क़ाज़ी-शस्त्रधारी सेना से वेष्टित। नगर में सब सोच रहे हैं कि कैसे दर्पचूर्ण करेंगे—न हाथ में तलवार, न कमर में कटार, ये एक, वह हज़ार-बेशुमार ऐसे से कैसे पार पावेंगे।

उधर निमाई का घर, वहां का उद्यानप्रान्त, सर्वजनाकीर्ण हो रहा है। सब के हाथों में मशाल, कमर में बँधा तेलदान। शरीर में शक्ति और मन में अदमनीय उमंग। रहरह कर गगनभेदी

' हरि हरि" ध्वनि होरही है। गौराङ्ग के गण उनके शृङ्गार में लगे हुए हैं। मानों वे ससुराल जारहे हों। उनके अङ्गों की ऐसी सजावट कभी नहीं हुई। थी जब आप मोहनजूड़ा बांधे, चन्दनचर्चित गात में पाटम्बर फहराते और घुठनों तक माला झुलाते निकले तब लोगों को ज्ञात हुआ कि इसी पुष्पमाल से ये क़ाज़ी के रुधिरपिपासित करवाल की धार कुंठित करेंगे। आपने अपने दल के चतुर्दिक जब सहास्य निरीक्षण किया तब गगनचुम्बी आनन्द की लहरें उठने लगीं।

संकीर्तन दल चौदह भागों में विभक्त किया गया। इसके प्रधान अद्वैत, श्रीवास, हरिदास इत्यादि हुए। पहले क्रमशः वे ही लोग अपना अपना गोल लेकर निकले। पीछे स्वयं निमाई और इन्हींके संग निताई तथा गदाधर थे।

जगाई मधाई के उद्धार के दिन बहुतेरे नगरनिवासियों को कीर्तन देखने का सौभाग्य न हुआ था। आज सब का भाग्य सूर्य उदय हुआ। वैष्णवगण तो चिरकाल से यह आनन्द अनुभव करही रहे थे। आज शाक्त, वेदान्ती, अन्य सब सम्प्रदायी लोग वरन् विपक्षी जन भी यह रंग देखने आये। पूर्व संस्कार उदय होने से इस कीर्तन का ढंग देख जिनके हृदय का रंग बदलता जाता था वे भी विह्वल हो इसी दल के संग हो जाते एवं ढल-मल करने नृत्य करने लगते थे।

संकीर्तनदल क्रमशः निमाई घाट ,मधाई घाट और बारकोना जाकर नगर की ओर चला।

जिस राह से संकीर्तनदल जाना है, उधर के निवासी शंख बजा बजा हरिध्वनि करते हैं और स्त्रियां लावा, फूल तथा बतासा की वृष्टि के साथ "हू हू" कर अपने ढंग से आनन्द प्रकट करती हैं।

महाप्रभु का नृत्य और दर्शकों पर उसका प्रभाव देखिये।

देखहु आवत मोर गोराई।
अंग अंग प्रति सोभा सरसत, दमकत गात गुराई॥
उर माला सिरमौर कुसुम कँह, बसन छटा छहराई।
नुपुर पगन सुर मधुर स्वनित, पांखिन तान सुहाई॥
सीस हिलत लच कत कटि रहरह, निरतत बांहु उठाई।
उडु गन सँह जिम निसुपति राजत, तिमि मधि लोग लुगाई॥
हँसनि हरति चित बैरिनहूं कँह, बोलनि लेत लुभाई।
उर उमहात प्रीति हरि हरिजन, मन पछतात अघाई॥
प्रभु जुगनैन अश्रुधारा लखि, मनो मेह झरिलाई।
चित विह्वल रोवत अधीर जन, धोवत अघ समुदाई॥
जिहि मों भक्तिभाव कँह लेशहु, लख्यो न कोउ कदाई।
जय गौराङ्ग, विसंभर जय जय, बोलत सो हरषाई॥
कोउ कहत धन पिता, मातु धन, जिन इन गोद खेलाई।
कोउ कहत यह आप नरायन, जगजीवन सुख दाई॥
पाहि पाहि कह शिवनन्दन हूं, पगतल परत लोटाई।
अब जिन देरि करहु करुनामय, चरनन लेहु लगाई॥

इनके नृत्य से जन समुदाय ऐसा प्रभावान्वित हुआ कि बहुत से विपक्षियों के मुख से भी निकलने लगाः—

धन्य मिश्र, धन्यशचि, धन्य सुसन्तान।
नदिया के भागधन, करै को बखान॥

संकीर्तनदल नृत्य कीर्तन में अपनापन खो बैठा था। किसी को कुछ सुधि नहीं थी। कृष्णानन्द में सब आत्मविस्मृत हो रहे थे। कीर्तन की तरंग बढ़ती ही जाती थी। जो दर्शक केवल दर्पचूर्ण का दृश्य देखने को उत्सुक थे, वे घबड़ाने लगे कि वह रंग कब देखने में आवेगा। प्रतीत होता है निमाई अपने रंग में वह बात ही भूल गये। पर ये भूले नहीं थे। नृत्य करते करते इन्होंने क़ाज़ी की पल्ली की राह ली।

पाठकवृन्द ! जब तक ये लोग धीरे धीरे क़ाज़ी के घर पहुंचते हैं तब तक हमलोग दौड़ लगा कर देख लें कि जनाब क़ाज़ी साहब क्या कर रहे हैं और उन्हींके घर के समीप खड़े हो जायं। नहीं, तो पीछे पड़ जाने से वहां का रंग नहीं देख सकेंगे।

वाह ! यह देखिये, क़ाज़ी जी चुप बैठे हैं, जैसे अफ़ीम की पिनक में हों। प्रतीत होता है आज न यह स्वयं नदिया में संकीर्तन रोकने गये और न इनके सैनिक गये। वेभी तो अपने स्थान ही पर नज़र आ रहे हैं। पर कारण क्या ? कारण हम क्या बतावें ? स्वयं क़ाज़ी साहब या उनके लोगों के सिवाय और कौन बतावेगा। ज़रा सब्र कीजिये। अब आप ही सब बातें खुल जाती हैं। सुनिये, "हरिबोल, हरिबोल" और "मार, मार" करते लोग आ ही पहुंचे।

अबतक संकीर्तन मण्डली वाले क़ाज़ी की बात भूल ही गये थे। जब गौराङ्ग ने उधर की राह ली, तब सब को स्मरण हुआ और लाखों मनुष्य "मार क़ाज़ी को मार क़ाज़ी को" कह कर चिल्लाने लगे। क़ाज़ी साहब की मानो पिनक टूटी। चौंक कर, उन्होंने सैनिकों को समाचार लाने को भेजा और स्वयं निकल देखा कि मिशअलों की रोशनी से दिन सा हो रहा है।

प्रथम भेजे गये सैनिकों को ख़बर लाने में विलम्ब होने से उन्होंने और सेना पठाई। पर उस जनसागर में सब सेना विलीन हो गई। संकीर्तन दल में बहुत से उपद्रवी लोग रास्ते में आ मिले थे ; जिसकी ख़बर गौराङ्ग तथा उनके भक्तों और स्वजनों को भी नहीं थी। वे ही लोग वृक्षशाखा लिए क़ाज़ी के घर पहुंच वहां उत्पात मचाने लगे। क़ाज़ी तो सेनाविहीन हो जाने से घर में भाग गये थे ; पर वह स्थान भी सुरक्षित नहीं था। ये उत्पाती लोग न जाने क्या कर देते, पर इतने में स्वयं गौराङ्ग वहां पहुंच गये। एवं सब नृत्यवाद्य बंद कर शान्त भाव

से बैठ गये। उनका रंग देखते ही दल में एकदम सन्नाटा छा गया। क़ाज़ी को भीतर से बुलवा कर इन्होंने सप्रेम उनके साथ देर तक बातचीत की। अनन्तर आपने स्नेहपूर्वक उनका शरीर स्पर्श किया और उन्हें सब प्रकार से सन्तुष्ट किया। इनके दर्शन, इनके संग सम्भाषण एवं इनके द्वारा निज शरीरस्पर्शन से काज़ी के हृदय में हरि-भक्ति जाग्रत हो गई। गौराङ्ग के नृत्य करते वहां से चलने के समय वे भी नाचते नाचते और "हरिबोल" कहते इनके साथ चले; किन्तु प्रभु ने उन्हें लौटा दिया।

क़ाज़ी ने प्रभु के पूछने पर कहा था कि "हमने अपनी इच्छा के विरुद्ध हिन्दुओं की उत्तेजना एवं निजअधीनस्थ लोगों की प्रेरणा से यह कार्य किया था। दो चार दिन के बाद स्वप्न में देखा कि एक नररूप सिंह हम पर कीर्तन बन्द करने के कारण गरज रहा है। और जिस सैनिक को कीर्तन रोकने के लिए भेजते थे, वही नाचते और हरि बोलते आता था और पूछने पर कहता था कि बाधा देने जाने के समय से ही उसकी ऐसी दशा हो रही थी और छोड़े नहीं छूटती थी।" क़ाज़ी ने यह भी कहा कि अब उन्हें कौन कहे, उनके वंश में कोई कीर्तनारोध नहीं करेगा।

तब से क़ाज़ी गौराङ्ग को पूर्णब्रह्म मानने लगे। पण्डितों ने उन्हें हिन्दू समाज में नो नहीं लिया, पर उनका और उनके वंशधरों का आचार व्यवहार हिन्दुओं का सा हो गया। उस काल में आज के समान "हिन्दू (शुद्धि) सभा" होती तो क़ाज़ी बहुत राज़ी होते।

उनकी समाधि (कब्र) के पास आज भी वैष्णवगण लोटपोट करते और वहां की धूलि माथे पर धरते हैं।

विपक्षियों ने देखा कि गौराङ्ग ने क़ाज़ी का कैसे और कैसा दर्पचूर्ण किया।

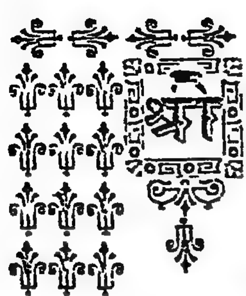
हमारे पाठक वृन्द गौराङ्ग का ईश्वरत्व स्वीकार करें या नहीं; पर जनसमुदाय पर इनका प्रभुत्व तो अवश्य स्वीकार करेंगे। एक साधारण आज्ञा प्रचार कर नगर भर को अपने साथ कर लेना सहज नहीं। दो चार बातों में कट्टर द्रोहियों पर प्रभाव डाल कर उन्हें स्वपक्षी बना लेना यह भी हंसी खेल नहीं।

कतिपय पाठक गौराङ्ग के इस कार्य में सत्याग्रह का रंग देखेंगे। बहुत से बंगवासी कहते भी हैं कि बंगाल में सत्याग्रह कोई नई बात नहीं। यह तो गौराङ्ग के समय से ही आरम्भ हुआ है।

फिर आप लाखपाड़ा, तत्वापाड़ा होते एवं श्रीधर की कुटी के निकट जा उनके वर्त्तन का जलपान कर नृत्य करते अपने दल के साथ घर आये।

द्वादश परिच्छेद

नूतन भाव



गौराङ्ग पहले सुरसरिसेवन, संकीर्तन, भजन, पूजन, देवस्थानमार्जन, प्रभृति भक्ति उत्पादक तथा भक्तिवर्धक सत् कार्यों में स्वयं लगे और इन्होंने अपने गणों और जनों को लगाया पुनः सर्वदा स्वयं दीनता, नम्रता, सरलता और ईश्वर परायणता प्रदर्शन द्वारा उन्हें शिक्षा दे दे कर उनके चित्त को महा उन्नत और हृदय को भक्तिभावपूर्ण करदिया। अर्थात् कार्यों द्वारा उन्हें सिखलाया कि भक्ति किस तरह की जाती है और भक्ति करके कैसे अपनेको भगवान की प्राप्ति के योग्य बनाना होता है।

पुनः श्री भगवान के नाना रूपों में और कई एक देवों के भावों में प्रकाश पा कर अधिकारियों के भगवान को दर्शन का सुख भी प्राप्त कराया। साथ ही साथ यह दिखलाया कि आप वस्तुतः स्वयं क्या वस्तु हैं।

इनके भक्तों के चित्त पर भक्ति का रंग कैसा जम गया था, ईश्वर कृपा में वे कैसे अटल विश्वासी हो गये थे, यह बात आगे के विवरण से परिलक्षित होगी।

इन दिनों यद्यपि ये संकीर्तन में सदैव सम्मिलित नहीं होते थे, तौभी कभी कभी संकीर्तन स्थान में गमन करते थे। एक दिन संकीर्तनकाल में ये श्रीवास के घर जा पहुंचे। इनके जाने से भक्तों का उत्साह बहुत बढ़ गया। अतिप्रेम से लोग नृत्य करने लगे। श्रीवास का पुत्र बहुत बीमार था। दासी के भीतर बुला ले जाने पर उन्होंने देखा कि उनका पुत्र इस संसार से विदा हो गया है। उन्होंने यह कह कर और समझा कर कि जिस समय हरि की-

र्तन की ध्वनि से आकाश गूंज रहा है और स्वयं गौराङ्ग आंगन में नृत्य कर रहे हैं, इस लड़के ने प्राणत्याग किया, इससे बढ़कर इस जगह में कौन भाग्यवान होगा" स्त्रियों का रोने को निषेध कर स्वयं बाहर आ दूने उत्साह से संकीर्तन में प्रवृत्त हुए। पर बुरी खबर को पर होता है। किसी प्रकार इस घटना का हाल कीर्तनकारी लोगों को तथा गौराङ्ग को ज्ञात हो गया। मृत बालक के शव को आंगन में मंगवा कर इन्होंने उस बालक से दो चार बातें पूछीं; जैसे कि वह सोया हो। इस मृत शरीर में पुनः सांस आ गया। लड़के ने कहा "प्रभो, हमारा इस संसार में अब काम हो गया; अब हम उत्तम स्थान में जा रहे हैं; कृपा कीजिये, जिसमें आपका चरण विस्मृत न हो।" यह कह कर वह पुनः सदा के लिए मौन हो गया।

प्रभु ने श्रीवास को धैर्य, तथा विश्वासादि की प्रशंसा कर उन्हें आश्वासन देते हुए कहा कि अब आप नित्यानन्द जी को और हमको अपना पुत्र समझिये।

क्या इस घटना से आप इन भक्तों के चित्तों के भाव की अटकल नहीं लगा सकते? इनके संग और शिक्षा का प्रभाव उनपर कितना पड़ा था यह नहीं समझ सकते? ओः इतना धैर्य! इतनी भक्ति!! इतना विश्वास!!! तभी तो गौराङ्ग ने कहा था "तुमने आज कृष्ण को मोल ले लिया हम किस प्रकार ऐसे का संग त्याग करेंगे।"

गौराङ्ग अपने भक्तों तथा गणों को भक्तिमार्ग में अटल कर अब उन्हें प्रेमरस चखाते और स्वयं चखने के उद्योग में लगे।

भक्ति प्रेम, प्रेमभक्ति इत्यादि शब्द इस ढंग से प्रयोग किये जाते और समझे जाते हैं मानों उनमें कुछ भेद ही न हो। पर प्रेम और भक्ति में विशेष विभिन्नता है। यह आवश्यक नहीं कि जिसकी हम भक्ति करते हों, उससेप्रेम भी करते हों। हम किसीकी भक्ति करते हैं; किसीसे प्रेम करते हैं और किसी

से प्रेम भक्ति दोनों ही करते हैं। विचारपूर्वक देखने से विदित होगा कि भक्ति से प्रेम का दर्जा बढ़ा हुआ है और जहां दोनों हैं, वहां सोना में सुगंध। विशेष विशेष व्यक्ति के प्रति भक्ति प्रदर्शन अयोग्य और अनुचित भी होगा। हमारे गुरुजन हमारी भक्ति नहीं कर सकते। उनके ऐसे विचार ही से हमारा हृत्कंप होगा। उनका ऐसा करना हमें घोर नरक के प्रज्वलित अग्नि में डालेगा। वे हम पर प्रेमप्रदर्शन करेंगे। हम उनसे प्रेम करेंगे और उनके चरणों में भक्ति करेंगे। आपका सेवक आपसे भक्ति-प्रेम कर सकता है। पर न सब सेवक अपने स्वामी से प्रेम ही रखते और न सब स्वामी उसका प्रेमपात्र बनने की योग्यता ही रखते हैं।

पूजापाठ, अर्चना वन्दन, नामस्मरण इत्यादि सब की गणना भक्ति में हैं। एवं ये सब करना भक्ति का साधन कहलाता है। इस व्याख्या से आप समझ गये होंगे कि प्रेम क्या पदार्थ है और उसका दर्जा भक्ति से बड़ा है।

पहले आप भक्तों के संग भक्तिसाधन के प्रक्रिया में प्रवृत्त थे। अब आप प्रेमभाव में विभोर हुए। प्रेमरसास्वादन में लगे ; इन्हीं को देख भक्तगण भी प्रेमरस का आस्वादन करना सीखेंगे।

प्रेम भिन्न भिन्न भाव का होता है। विशेष विशेष व्यक्तियों के प्रति और व्यक्तियों में विशेष विशेष ढंग और परिमाण का प्रेम देखा जाता है ; पर उससे सुखानन्द अनुभव में कसर नहीं होता। क्या पिता और पुत्र में एक प्रकार का प्रेम भाव होने से, भाई भगिनी में अन्य प्रकार का, इष्टमित्रों में दूसरे ढंग का, सेवक स्वामी में कुछ और रङ्ग का एवं पति और पत्नी में भिन्न ही रीति का प्रेम होने से कहीं सुखानन्द अनुभव में कसर पड़ता है? नहीं, अपने अपने ढंग से सभी सुख देते हैं।

इसीसे हमारे सद्ग्रंथों का कथन है कि जिस भाव से भगवान को भजिये, उसी भाव से वे आपका मनोरथ सफल करेंगे।

वृज में भिन्न भिन्न व्यक्तियों का कृष्ण में भी विभिन्न प्रकार का प्रेम था। श्रीराधा तथा गोपियों का उनमें पति भाव से प्रेम था। वरन् कह सकते हैं कि श्रीराधा का कृष्ण प्रेम दाम्पत्य प्रेम से कहीं अधिक था।

अब श्रीगौराङ्ग स्वयं राधा भाव ग्रहण कर भक्तों को उसका स्वरूप दिखाते हैं और वह प्रेम कविकल्पित नहीं ; यह अपने कार्यों से प्रमाणित करते हैं, जिसमें उन्हें आदर्श बना कर भक्तगण वैसा प्रेम करना सीखें और उसका सुख भोग करें।

राधाकृष्ण का प्रेम पदों में, छन्दों में, पुस्तकों में और श्रीमद्भागवतादि पुराणों में वर्णित है। हम उसे पढ़ते हैं। कितने भागवत की कथा बांचते और श्रवण करते हैं; भजनगान किया करते हैं, पर उसका उनके दिल पर या श्रोतावर्ग के दिल पर कितना प्रभाव पड़ता है? शकुंतला वा शेक्सपियर का पाठ पाठकों के दिल पर उतना असर न डालेगा, जितना उसका अभिनय। और इससे भी कहीं अधिक असर होगा जब कोई हमारे पास बैठा, चलता फिरता, उसका रंग दिखलाया करेगा। अतएव श्रीकृष्ण लीला-गर्भित ग्रंथ जो काम न कर सके थे, श्रीगौराङ्ग के राधाभाव ने कर दिखलाया।

इन्होंने नाटक के पात्रों के समान श्रीराधा कृष्ण के प्रेम का अभिनय नहीं दिखलाया ; वरन् सचमुच आत्मविस्मृत हो राधा रंग में ऐसे रंगे कि बाह्यज्ञान एकदम जाता रहा। सर्वदा यही समझने लगे कि वे ही श्रीराधा हैं और वही वृन्दावन है।

गौराङ्ग के भक्तों का कथन है कि श्रीराधाप्रेम में क्या माधुर्य तथा श्रेष्ठता है ; कृष्ण में क्या सौंदर्य्य और माधुर्य है ; जिसका ऐसे अनुराग से श्रीराधा आस्वादन किया करती हैं तथा कृष्णप्रेम

से उन्हें कितना आनन्द मिलता है, इन्हीं बातों का अनुभव करने के लिए श्रीकृष्ण भगवान ने गौराङ्ग रूप में शची के गर्भ से जन्म धारण किया। यथाः—

"श्रीराधायाः प्रणयमहिमा कीदृशो वानयेवा
स्वाद्यो यातोमद्यु मधुरिमा कीदृशो वा मदीयः।
सौख्यं चास्यामदनुभवतः कीदृशं वेति लोभा-
तद्विज्ञातं समजनि शचीगर्भसिन्धौ हरीन्दुः॥"

अतएव कृष्ण के प्रथमदर्शन से राधा को जो नवानुराग उत्पन्न हुआ था उससे लेकर सब सात्विक भावों का उदय और वासक-सज्जा, उत्कंठा प्रभृति का रङ्ग, उद्वेग, मथुरागमन जनित कृष्ण-विरह-दुःख पर्य्यन्त सब कुछ इन्होंने राधाभावकार्य द्वारा निज भक्तों तथा जनों को दिखलाया और उन्हें उनके हृदय में प्रवेश कराया।

सात्विक भावों का कुछ हाल अन्यत्र कहा गया है। वासक-सज्जा उत्कंठा इत्यादि का आशय पाठकगण वे ही नायिकाभेदवाले ग्रंथों को पढ़ कर हृदयङ्गम कर सकेंगे; जिन्हें आज लोग अश्लील बता कर घृणा की दृष्टि से देखते हैं, यद्यपि वे "रेनाल्ड" के नावल् तथा कतिपय अन्य उपन्यासों से घृणित नहीं। इसका सरल प्रमाण यही है कि वे ग्रंथ लोग गुरुजनों ही के निकट अध्ययन करते हैं। यदि अश्लीलता के कारण वे दृष्टिपात के योग्य नहीं होते, तो लज्जावश, न पोता उसे पितामह के सामने पेश करने को उद्यत होता और न पितामह पढ़ाने को। जो हो, पूर्वोक्त बातों का विवरण उन्हीं पुस्तकों मे पाइयेगा, खड़ी बोली की कविताओं में नहीं।

गौराङ्ग इस भाव में ऐसे विभोर हुए कि इनके सेवक और भक्त इनकी अवस्था अवलोकन कर व्याकुल होने लगे। शची के चित्त की दशा तो कहने ही की नहीं। रह रह कर ये "कृष्ण, कृष्ण"

बोल उठतीं। गदाधर से पूछतीं "कृष्ण कहां हैं? उन्हें देखा है? आये क्यों नहीं?" इत्यादि। यह विरह-प्रलाप की अवस्था थी।

एक दिन गोपीनाथ सिंह नामक एक व्यक्ति के इनके दर्शनार्थ आने पर ये अधीर हो कहने लगे कि "अक्रूर आये और कृष्ण को मथुरा ले गये।" उस समय इन्हें यही धुन समाई। "हा कृष्ण, हा कृष्ण!" कह कर रोने लगे। उन्हें पुकारने और बुलाने के लिए सब से अनुरोध करने लगे।

पहले ये कृष्ण तथा कृष्णभक्त का भावप्रदर्शन करते थे। अब ये राधा एवं कृष्ण दोनों भावों को दिखाने लगे। कभी राधाभाव और कभी कृष्णभाव।

इन्हीं दिनों में इनके घर केशव भारती का आना हुआ। इन्हें देख उनका चित्त महा आनन्दित हुआ। अङ्गों में पुलक हो आया। इन्हें ध्यानपूर्वक देख उन्होंने कहा थाः—

"तुमि प्रभु भगवान, जानिनू निश्चय
सर्वजन प्राण तुमि, नाहिक संशय।"

वह महाराज संन्यासी और परमभक्त थे। काञ्चन नगर (कायोया) में गंगा किनारे एक वटवृक्ष के तले वास करते थे। उनके वंशवाले चेले उसीके आसपास में एक जगह अबतक विद्यमान हैं। उनके आने पर इन्हें कुछ बाह्यज्ञान हुआ था। इन्हें आपने भोजन भी कराया था। पीछे उन्होंने इनको संन्यास दिया।

यह ध्यान आने से कि कृष्ण अक्रूर के साथ चले गये, पहले ये विरहवारिधि में डूबने लगे। पीछे यह सोच कर कि "कृष्ण ऐसे निर्दयी एवं कठोरहृदय हैं कि जिन गोपियों ने उनके प्रेम में कुल मर्यादादि पर लात मार अपना सर्वस्व उनके चरणों में अर्पण किया, उनकी प्रीति रीति एकदम भुला कर वे मथुरा में जा बैठे; उनकी खोज खबर तक भी नहीं लेते, ऐसेके भजन से क्या लाभ?" ये अब गोपियों ही का नाम जपने लगे।

इसी अवसर में वहां कृष्णानन्द आगमवागीश का आगमन हुआ। वे एक महान् विद्वान एवं तंत्रशास्त्र के सुविख्यात प्रधान आचार्य थे। इनके विद्याध्ययन काल में वे भी गंगादास के टोल में पढ़ते थे। यह खबर पाकर कि निमाई पंडित सब काम छोड़ अब केवल भजन में लगे हुए हैं, इन्हें देखने समझाने और इनसे तर्क करने के लिए इनके घर आये।

गौराङ्ग का सरल स्वभाव देख उन्हें कुछ पूछने और प्रश्नकरने का तो साहस नहीं हुआ, पर आप थे एक महान पंडित और आये थे एक विद्वान के घर। विना कुछ शास्त्रार्थ किये लौट जाने में अपना अपमान मान, यही कहने लगे कि गोपी नामोच्चारण अशास्त्रीयकार्य है; उसे छोड़ कृष्ण का नाम जपना कल्याण कारक और शास्त्रसम्मत है। उन्होंने यह नहीं ख्याल किया कि निमाई भी शास्त्रों की बातों से अवगत थे। यदि कृष्णानन्द अपनी विद्या का प्रदर्शन और मान वर्द्धन के लोलुप थे तो गौर भी नदिया के मानरक्षक थे। उस समय निमाई किस रंग में रंजित थे; इसका कृष्णानन्दन ने लक्ष्य नहीं किया और न उस विशेषावस्था में गौराङ्ग ही उन्हें पहचान सके।

इनके मन में पैठ गया कि वे उद्धव के समान कृष्ण के कोई दूत हैं, इसीसे उनके पक्ष की बातें करते हैं। गोपियों ने तो कृष्ण और उद्धव पर व्यंग की बौछारें कर उनका होश ठंढा किया था और उन्हें अपने ज्ञान की गठरी यमुना में बहानी पड़ी थी। यहां गौराङ्ग उनकी बातों से महा अधीर हो छड़ी द्वारा उनकी पीठ गरम करने पर उद्यत हुए और उन्हें ज्ञान लेकर गंगापार भागना पड़ा; उनके अनुयायियों को भी सब हाल ज्ञात हुआ। वे लोग श्रीगौराङ्ग का उद्भव और प्रभाव देख पूर्व ही से जल रहे थे। अब उनके रोषानल में आहुति पड़ गई।

अतएव कुछ काल के पश्चात् कुलिया (१) के ईर्ष्यादग्ध तथा नीच-प्रकृति के ब्राह्मणों ने इनसे झगड़ा और विरोध के लिए जनता का एक दल तैयार किया। स्वभावतः इनका हृदय कोमल था। परन्तु ये थे बड़े दृढ़प्रतिज्ञ, इन्होंने सोचा—"पक्षपात एवं कोरा साम्प्रदायिक विचार उन्नति और सुधार के भारी शत्रु हैं। जब तक हम एक-मात्र नवद्वीप के ही होकर रहेंगे, हमारे उद्देश्य की पूर्ण सफलता न होगी। हम अब अपने परिवार से असहयोग कर संसार भर से सहयोग करें, एवं संसार को अपना परिवार बनावें। यह काम सँन्यास ग्रहण करने ही से होगा। हमें इन घमंडी पंडितों का भी उद्धार करना परमावश्यक है। हमें सँन्यासी रूप में देख ये निश्चय ही प्रचलित पुरातन परिपाटी के अनुसार हमारे सामने झुकेंगे। तब इनके हृदय को विशुद्ध करने और उसमें भक्ति-भाव संचार करने का सुअवसर और अवकाश मिलेगा।"

इन्होंने अपने मन की बात नित्यानन्द को जनाई और कहा कि "हम समझते थे कि हमारे सुखी रहने से लोग सुखी रह कर सानन्द हरिभजन में लगेंगे और इस रूप से उनका उद्धार होगा। पर यह देखने में नहीं आता। हमारी सुखवृद्धि के साथ साथ उनकी द्वेषवृद्धि होती जाती है। अब हमारे सँन्यास बिना लिए और हमें द्वार द्वार भिक्षाटन करते बिना देखे, लोगों का मन कोमल न होगा और न उनका कल्याण होगा और न उद्धार। हमारे इस कार्य से हमारे जनों तथा परिवार को पराकाष्ठा का क्लेश होगा। बहुत से लोग हमारी निन्दा करेंगे। सम्भवतः अनेकजन हमें त्याग भी देंगे, पर हम क्या करें? हम केवल जीवों के उद्धार के विचार से यह करना चाहते हैं। तुम्हारी क्या सम्मति है? हम तुम लोगों को प्रसन्न करते रहें या कठोर कलुषित जीवों के उद्धार पर इस रीति से कटिबद्ध हों?"

१—वर्त्तमान नदियाकी उस समयका कुलिया है।

नित्यानन्द ने उत्तर दिया कि "आपके कार्य में हस्तक्षेप का किसको सामर्थ्य है, तौभी और भक्तों के संग परामर्श कीजिये और ऐसा हो कि जिसमें आपके जाने के पहले ही सब का प्राण पयान न कर जाय।"

यह स्पष्ट है कि इन्होंने अपनी कोई विशेष इच्छा से सँन्यास ग्रहण करने को नहीं ठाना। पर इसमें भी सन्देह नहीं कि इन्होंने किसीके भय से ऐसा नहीं किया। जब जगाई मधाई का इन्हें भय नहीं हुआ, जब क़ाज़ी से ये भयभीत नहीं हुए, तब दूसरों की कौन गिनती ? जीवों ही के कल्याण के लिए इसके पूर्व भी इनके मन में ऐसा विचार निश्चय उठता था। पर अपने जन और परिवार को यह क्लेशकर होगा, इससे अब तक ये चुप बैठे थे। श्रीवास के घर उस दिन की घटना के अवसर पर इनके इस कथन में कि "इनलोगों को कैसे परित्याग करेंगे ?" इसकी झलक देखी जाती है। पर अब ये उसे टाल न सके। दो कारणों से अब इन्हें यह करना ही पड़ा—एक जीवों के उद्धार का विचार; दूसरा कृष्ण के लिए इनका मतिच्छन्न होना ; जैसा कि इन्होंने स्वयम् सारभौम से कहा था।

इनके संन्यास ग्रहण करने का विचार धीरे २ अन्य लोगों पर भी विदित हो गया था। मुकुन्द तो सब से पहले इन के हावभाव से इनकी मनसा को समझ गये थे। और दूसरे लोगों ने उस दिन जाना ; जिस दिन इन्होंने कहा कि "रात स्वप्न में एक ब्राह्मण ने हमारे कानों में संन्यास का मंत्र दिया और कहा 'तुम्हीं वह हो' तब से हमारा मन व्याकुल है ; क्योंकि जब हमीं वह हुए तो रहा क्या ? न भक्ति रही, न कृष्ण। समझते हैं इतने दिनों के बाद घर से बाहर होना पड़ेगा।"

शची को भी यह बात ज्ञात हो गई थी। केशव भारती के उस दिन आने और गौरांग द्वारा महा-आद्धित किये जानें से एवं इनकी

दशा देख शची के मन में चूहा कूदने लगा था कि कहीं ये भी विश्वरूप की तरह सँन्यासी न हो जांय।

एक दिन अपनी बहन को बुलाकर उससे सम्मति ले, जब उन्होंने इनसे असल बात पूछी तो इन्होंने निष्कपट भाव से कह दिया कि "हमारे मन पर हमारा वश नहीं। परंतु यदि कहीं जायंगे तो तुमसे कह कर और तुम्हारी आज्ञा लेकर और जाने पर भी तुमसे मिलेंगे।"

इसी समय इन्हें यह बात भी ज्ञात हुई कि इनके भाई इनके लिए एक पोथी दे गये थे। इनकी माता ने इस भय से कि उसे पढ़ कर कहीं ये भी सँन्यासी न हो जायं, उसे अग्नि को सौंप दिया था।

बिना सँन्यासी हुए ही इन्होंने असंख्य संसारियों को भक्ति-रसास्वादन कराकर भक्तिमार्ग में अटल कर दिया था; परन्तु महा कठोर हृदय वाले संसारियों, ईश्वर का अस्तित्व न स्वीकार करनेवाले नास्तिकों और अपने को ही ईश्वर माननेवाले सँन्यासियों को सुधारने और मार्ग में लाने तथा आरूढ़ करने के लिए इन्हें संन्यास ग्रहण करना था। सँन्यास से इन्हें अपना कोई विशेषलाभ नहीं था; वरन् अपने जनों तथा वृद्धा माता एवं युवती पत्नी को दुःखसागर में डुबोना था।

सँन्यास भक्ति पथ का विरोधी है। इन्होंने स्वयं कहा था कि "संन्यास से हमें क्या काम? हमारा अमूल्यधन तो कृष्णप्रेम है।" इससे इन्होंने मन में ठान लिया था कि जीव उद्धार के लिए सँन्यासजनित सब कष्ट उठावेंगे, पर योगाभ्यास आदि न कर के श्रीकृष्ण की खोज करेंगे।

श्रीवास के घर में यही कह कर इन्होंने भक्तों से विदा मांगी थी, कि ये अपने प्राणेश्वर कृष्ण की खोज में वृन्दावन जांयगे। और रोते रोते संज्ञाशून्य हो गये थे। उसी समय राधा-कृष्ण का

साथ ही साथ प्रकाश भी हुआ था, जो बात इनकी आविष्टावस्था के कथनों से प्रकटित होती थी।

आप उसीदम वृन्दावन जाने को उठ खड़े भी हुए थे। परंतु मूर्छित हो कर पृथ्वी पर गिर पड़े।

वहां सबों से विदा मांगने के अनन्तर सन्ध्या में हरिदास को लेकर पहले मुरारि से मिले और उन्हें कहा कि हमारे पीछे अद्वैताचार्य की सेवा से कृष्ण कृपा करेंगे। इसी प्रकार सब भक्तों के घर जा जा कर और उन्हें समझा बुझा कर आपने विदा मांगी।

इन्होंने सब भक्तों से कहा था कि जहां ये रहेंगे वहां वे लोग विना रोक टोक जा सकेंगे उनके संकीर्तनों मे ये उनके संग नाचा करेंगे; उनकी माता, भार्या, भगिनी आदि जो कृष्ण का भजन करेंगी, इन्हें देख सकेंगी। इन बातों को भक्तों के सामने इन्होंने स्वीकार किया था और श्रीवास को कहा था कि वे अपने मन्दिर मे इन्हें सदैव देख सकेंगे।

इस प्रकार से समझा बुझा कर इन्होंने भक्तों से तो विदा ली, पर अभी माता तथा विष्णुप्रिया से अनुमत्ति लेनी बाकी थी।

त्रयोदश परिच्छेद

माता की आज्ञा प्राप्त

नगर में गौराङ्ग के संन्यास ग्रहण करने की खबर बहुत गरम होने से शची अधीर हो अपने लोगों से इसकी सत्यता के विषय में पूछताछ करने लगीं। लोगों ने इस बात को स्वयं इन्हींसे पूछने की सम्मति दी। अतएव एक दिन शची ने व्यथित चित्त हो, गौराङ्ग से बहुत कातरभाव से इस बारे में प्रश्न करने का साहस किया।

इन्होंने इस खबर को सत्यतास्वीकार की। इस अवस्था में माता को दुःखसागर में डुबोने के विचार पर आपने महादुःख प्रकाश किया, माता की सेवा तथा उनका ऋण परिशोध से वञ्चित होने से अपने भाग्य को कोसा; उनके अकथनीय वात्सल्य की महती प्रशंसा की; उस स्नेह की याद में आंसुओं की झड़ी लगाई, उनके भविष्य हृदयविदारक क्लेश को स्मरण कर इनका कलेजा फटने लगा। बड़ा धैर्य धारण कर आपने उन्हें समझाया बुझाया। उनके यह कहने पर कि "तुम हमारे विष्णुप्रिया के तथा अपने भक्तगण के निमित्त सब पर दया दृष्टि करते हो, और हम तो चिर दिन से दुःख मानो पाती हैं, पर विष्णुप्रिया की क्या दशा होगी?" इन्होंने उत्तर दिया कि "यदि हम अपने सुखानन्द के निमित्त उन्हें परित्याग करते अथवा किसी अन्य की प्रीतिफन्द में फंसते वा हमारा शरीरपात हो जाता, तो निश्चय उन्हें क्लेश का कारण होता। हम तो रहेंगे संसार ही में, पर उनसे कुछ दूर। तुम दोनों कृष्ण भजन में लगी रहना। उससे असीम सुख प्राप्त होगा। तुम सानन्द हमें छुट्टी दो। इसमें हमारा और संसार के जीवों का मङ्गल है।"

सब माताएं सर्वदा सन्तान की मङ्गलकामना करती हैं। श्रीगौराङ्ग के समान सद्‌गुणसम्पन्न पुत्र हो, साधारण हो, वा कुपुत्र ही हो, माता उसकी भलाई ही चाहेगी। पुत्र के द्वारा उसे कष्ट पहुंचता हो वा पुत्रवधु के गुणों से उसका सुखमय सदन नरक के सदृश उसे पीड़ित कर रहा हो, उसे चित्त में न रख वह पुत्रहित साधन का ही ध्यान रखेगी अतएव इनके मुख से यह सुनते ही कि इसमें इनका मङ्गल होगा, शची ने सहर्ष कहा "तब जाओ; हम अपना शेष दिन दुःख में गँवाने को तैयार हैं। पर तुम्हारे मङ्गल के कार्य में बाधक नहीं हो सकती।"

यह तो उन्होंने कह दिया; पर तुरत ही प्रेम ने कान में कहा "अरी मा! तू ने यह क्या किया? अपने मुंह से निमाई को सदा के लिए घर से निर्वासित किया? रामचन्द्र को तो विमाता ने अपना हित साधन के निमित्त केवल चौदह वर्ष के लिए बनवास दिया था और तूने, इनकी गर्भधारिणी माता होकर जन्म भर के लिए इन्हें घर से निकाल दिया। तेरी आज्ञा न होने से इन्हें तुझे छोड़ने का कदापि साहस नहीं होता। विश्वरूप के जाने से तेरा एक नेत्र तो फूट ही गया था। किन्तु उसमें तेरा दोष नहीं। वह चक्षु उन्होंने फोड़ा और उस समय जब तेरे सहायक पति वर्त्तमान थे। पर इस वृद्धावस्था में शेष नेत्र में तू ने स्वयं कांटा चुभाया।

बस, करुण रस उमड़ चला। शची आंखों से मेह बरसाती इन्हें घर रखने की बातें करने लगीं। अनेक उपदेशों तथा उपायों का उन्होंने सहारा लिया। गौराङ्ग विनीत भाव से बोले "माता, हम स्ववश नहीं। यदि हमारा वश होता, तो इस समय तुम्हें या अन्य किसी को वियोगाग्नि में डालने का कुसंकल्प नहीं करते। संयोग वियोग के कर्त्ता श्रीभगवान हैं। वरन् संसार में इन्हीं संयोग वियोग का सर्वत्र खेल देखा जाता है:—पर इसे कोई नहीं समझता।

"संयोग वियोग दोउ कार चलावै,
लेखे आवहिं भाग।" श्रीगुरुनानक।

सबका यही कर्त्तव्य है कि उन्हीं कृष्ण भगवान का भजन करें। वही कृष्ण हमें खींचे लिये जाते हैं। तुम हमें उन्हींको सौंप दो। इसीमें तुम्हारा हमारा और सब का कल्याण है। अनन्तर इन्होंने ऐश्वर्य्य द्वारा भी यह दिखलाया कि संसार के सब जीवों से भगवान ही का गाढ़ा सम्बन्ध है वही जीवों के जीव तथा प्राणों के प्राण हैं।

तब शची को ज्ञान प्राप्त हुआ और वे बोलीं कि हम अब समझ गयीं कि तुमने कृपा कर मुझे अपनी माता बनने का जगदुर्लभ सौभाग्य दिया है। नहीं तो तुम्हीं सबके माता पिता हो; स्वच्छन्द हो। हम खुशी से तुम्हें जाने की आज्ञा देती हैं।

अनन्तर इन्होंने जैसे भक्तों को कृष्ण भजन करने की आज्ञा दी थी, वैसे ही शची को भी सम्मति दी और यह भी कहा कि "तुम आज जैसे भोजन तैयार कर जहां बैठकर हमको खिलाती हो, उसी प्रकार आगे भी करना। हम वहीं भोजन कर के प्राण रक्षा करेंगे। और हमारे ऐसा करने के प्रमाण में तुम हमें बीच बीच में प्रत्यक्ष देखोगी। इस सबके देखने से उस भेंट का आनन्द कहीं बढ़ कर होगा।" प्रतीक्षा के अनन्तर प्रियवस्तु की प्राप्ति से अकथनीय सुख प्राप्त होता है।

यह भी कहा कि "हम आज ही नहीं चले जाते हैं। तुम्हारे आज्ञानुसार कुछ काल संसारसुख का आनन्द लेंगे। तब देखा जायगा।"

वात्सल्य ने शची पर फिर रंग जमाया। और यह बड़ा ही उत्तम हुआ। यह भगवान की कृपा थी कि ज्ञान चिरस्थायी नहीं रहा। एक तो माता होने का दुर्लभ पद स्थिर रहा। दूसरे इसी भावके उदय होने से विरह में अश्रु बरसाने का सुख सौभाग्य पुनः प्राप्त हुआ।

जिस समय रामचन्द्र जी ने कौशल्या माता को विश्वरूप का दर्शन कराया था, वे उसे सहन न कर सकी थीं। आंखें मूंद कर बैठ गयी थीं। भगवान वह रूप गोपन कर पुनः बाल स्वरूप धारण कर उन्हें वात्सल्य का सुख अनुभव कराने लगे थे।

चतुर्दश परिच्छेद

विष्णुप्रिया का अनुमति लाभ

माता की अनुमति तो इन ढंगों से प्राप्त हुई, अब विष्णुप्रिया से सामना करना था। दोनों की दशा में महाप्रभेद था। शची वृद्धा थीं। संसार की बहुत सी ऊंची नीची सीढ़ियों को पार कर चुकी थीं। उनकी गोद से आठ कन्याओं को यमराज चुरा ले गये थे। महाविद्वान्, गुणवान तथा रूपवान सोलह वर्ष के युवा पुत्र को सँन्यास अपहरण कर ले गया था। उनके नेत्रों के सामने से पति परलोक चले गये थे। ये सब देख चुकी थीं। इन सब दुःख क्लेशों को झेल चुकी थीं। विष्णुप्रिया अभी बालिका थीं; उन्होंने कभी दुःख का नाम भी न सुना था। माथे पर ऐसा कठोर वज्र लटका हुआ देख वे कांप उठीं। मायके में यह कुसम्वाद लोगों के मुंह से सुन कर विना बुलाये दौड़ा दौड़ पति के गृह आईं। खाना पीना तो वस्तुतः हराम हो गया था, तौभी रसम तामील करने के लिए दो चार दाना मुंह में रख पति के शयनालय में गयीं।

पति को निद्रित पाकर धीरे धीरे उनका पांव सुहलाने लगीं। आंखों से दो चार अश्रुबुन्द चरणों पर गिरे। उनके पड़ते ही गौराङ्ग चौक उठे। प्रिया के साथ आमोद प्रमोद में निशा व्यतीत हुई।

"कटी रात हर फो ख्यालात में।
सुबह हो गई बात हीं बात में॥

और बातों ही बात में असल बात भी खुल गई। प्रिया ने इन्हें घर त्याग करने से निषेध किया; क्योंकि माता को उससे क्लेश होगा। यदि आवश्यक हो, तो इनके सुख के लिए इनकी आंखों की ओट स्वयं पितालय में रहने की इच्छा उन्होंने प्रकट की। माता

के इस अवस्था में दुःख पाने से लोग इनकी निन्दा करेंगे और साथ ही साथ प्रियाजी की भी निन्दा होगी कि इन्हींके कुव्यवहारों से पति ने घर द्वार त्याग कर सँन्यास ग्रहण किया। अपनी निन्दा की इन्हें उतनी चिन्ता नहीं थी पर किसीके मुख से पति की निन्दा धर्म्मपत्नियों को महा असह्य होता है।

गौराङ्ग ने इन्हें अपनी बेवशी का हाल सुनाया एवं अपने और उनके हितसाधन का उपाय एकमात्र कृष्ण भजन बतला कर उन्हें कृष्णभजन करने का उपदेश दिया।

वह व्यग्रचित हो शची को यह बात सुनाने चलीं; किन्तु यह सुनकर कि माताजी अनुमति दे चुकी हैं, उन्हें महाश्चर्य तथा अनिर्वचनीय दुःख हुआ। संज्ञाशून्या हो गईं। पति ने प्रेमपूर्वक उन्हें अङ्क में लगाया। विविध भांति से उनको आश्वासन दिया। बोले "यदि तुम सचमुच हमें सुखी रखना चाहती हो, तो घर रहने से हमें सुख नहीं होगा, तुम हमें छोड़ दो, हम वृन्दावन जायंगे।"

तब प्रिया जी ने कहा "अच्छा जंहां सुख मिले तो वहां जाइये। हमें भी साथ लेते चलिए जैसे श्रीराम जानकी जी को वन में साथ लेते गये थे।

यहां प्रिया जी ने यह नहीं विचारा कि राम के संग जाने से श्री-जानकी और रामचन्द्र दोनों को क्लेश सहना पड़ा था। और ये तो सँन्यासी होने जा रहे हैं, जिन्हें स्त्री को साथ रखना और उसका मुख देखना तो दूर रहे, स्त्री शब्द उच्चारण करने का भी निषेध है।

जब किसी प्रकार दाव लगते न देखा तो आपने उन्हें शंखचक्र-धारी अपने ऐश्वर्यमय रूप का दर्शन कराया। ज्ञानप्रदान के सिवाय यह रूप प्रदर्शन का कदाचित् यह भी अभिप्राय था कि इनके सब स्वजन और प्रियजन इनके ऐश्वर्य का दर्शन कर चुके थे केवल प्रिया ही जी को अभी तक यह सौभाग्य प्राप्त न हुआ था। वे भी आज दर्शन कर लें एवं जान लें कि उनके परम प्रिय प्रीतम वस्तुतः

क्या हैं ? क्योंकि वियोग होने पर फिर इस संसार में इनसे मिलने का संयोग उन्हें नहीं होगा।

पर प्रेम के सामने ऐश्वर्य्य प्रदर्शन पर पानी पड़ गया। प्रभु को यहां भी परास्त होना पड़ा।

उन्होंने गले मे वस्त्र बांध, हाथ जोड़ स्तुति कर निवेदन किया कि "हमारी समान बालिका पर यह रंग क्या? हमारे पूज्य स्वामी काहा हैं ? क्या आपही हमारे स्वामी हैं ? यदि आप ही हैं, तो हमारी यही प्रार्थना है कि आप और अधिक क्षण हमारे पति न हों।। हम अपना वही पति चाहती हैं। हम उन्हीं से सन्तुष्ट हैं।"

गौराङ्ग ने कहा "धन्य प्रिया! धन्य!! तुमने हमारे लिए नारायण को परित्याग किया। हम तुम्हें परित्याग नहीं कर सकते। तुम जिसदम हमारे विरह से व्यथित होगी हम उसी क्षण आकर तुम्हें छाती से लगावेंगे।"

अन्त में प्रियाजी ने कहा "आपने मुझे अपनी दासी बनाया है: वह पद स्थिर रहे। जब आप जीवों के उद्धार के निमित्त अपने ऊपर यह कष्ट उठाना चाहते हैं तब मैं इसमें बाधा न दूंगी: आप का सहाय करूंगी। मैं खुशी से आपको निजेच्छानुसार कार्य करने को सम्मति देती हूं।"

आपने यह भी कहा था कि "तुम हमारी हो, हम तुम्हारे हैं। जीवों का दुख देख कर हम इस कार्य पर उद्यत हुए हैं। तुम पतिपरायणा साध्वी स्त्री हो। हम तुमसे इस काम में सहायता की आशा करते हैं।" इसीसे प्रिया जी सम्मति और सहायता दोनों सहर्ष देने को उद्यत हुई।

इन्हीं प्रकारों से गौराङ्ग ने अपने सब लोगों से अनुमति प्राप्त की। मुख्य बात तो यह है कि जिससे जब जो काम कराना होता है, उसे भगवान करा ही लेते हैं।

"उमदारुयोषित की नाईं।
सबहिं नचावत राम गोसाईं॥

पञ्चदश परिच्छेद

गृहस्थी सुखभोग



नुनय विनय करके एवं समझा बुझा कर सँन्यास ग्रहण करने के लिए निजजनों से अनुमति ले गौराङ्ग गृहस्थी का सुख भोग करने में लगे। इनके दो कारण थे—अपनी माता की इच्छापूर्ण करना और सँन्यास के पूर्व गृहस्थाश्रमी होने का नियमपालन।

जब आप गृहस्थ बने, तो पूरी रीति से। अब न भाव ,है न प्रकाश है; न भजन और न सँकीर्तन। घर के सहन में, गृह के चतुःपार्श्व में, ग्राम के आस पास की सब पल्लियों में संकीर्तन हो रहा है, पर आपको उससे कुछ सम्बन्ध नहीं। बोध होता है कि उस की ध्वनि भी आपके कानों तक नहीं पहुंचती।

अब गंगास्नान, पूजन, भोजन, शयन यही सब काम थे। भक्तों के संग कथोपकन और सन्ध्या में सज धज कर नगरभ्रमण होता था। माता के स्नेहपूर्वक वर्तालाप में दिन एवं प्रिया के संग आमोद प्रमोद में निशा व्यतीत होती थी।

तीसरे पहर में हरिकथा और कभी कभी चौपड़ का भी रंग जम जाता था। पहले बंगाल बिहार आदि प्रान्तों में बड़े बाबू लोग भोजनानन्तर चौपड़, शतरंज और गंजीफे का शगल करते थे। पर अब तास उन खेलों को घर घर से निकाल रहा है। अबके शिक्षित तथा अन्य लोग तासही को पसन्द करते हैं। यह सभ्यता का खेल है। क्योंकि साहबों की मंडली में यही प्रचलित है। पर पुराने बंगवासियों को अब भी चौपड़ ही में आनन्द पाते देखते हैं।

भक्तगण तो स्नानानन्तर नित्य दर्शन को आते ही थे। अन्य लोग भी जो गंगातट से लौटते इनका दर्शन करते जाते। कोई सुन्दर

सुगन्धित पुष्पों की माला, कोई स्वच्छ चन्दन तथा कोई सुमिष्ठ पुष्ट स्वादिष्ट भोज्य पदार्थ, मेवादि, आपके चरणों में अर्पण करता। श्रीधर के समान पुरुष कोहड़ा, लौका, भाजी सागही प्रस्तुत करता और आप उन्हें सप्रीति अंगीकार करते उन्हें भोजन भी करते।

एक भक्त का पहनाई हुई माला आप दूसरे के गले में डाल देते, सबोंसे दो चार मधुर बातें करते और कहते कि कृष्ण भजन करना ही इनके प्रति प्रीति का चिन्ह है और जो भजन करे वही इनका स्नेहपात्र है। कोई सांसारिक सुख का भी मनोरथ करते इनके दर्शन को आते थे। जैसे आजकल किसी नगर वा ग्राम में किसी साधुवेषधारी पुरुष का अथवा वास्तविक महात्मा का शुभागमन होने से उनकी सेवा में और कोई पीछे वा विलम्ब से उपस्थित हो, पर मोकद्दमेवाज लोग जय की मनोकामना से और गांजे वाज भँगेड़ी गांजा की चिलम और सोंटा लिए तुरत पहुंच कर उनकी सेवा सत्कार में लगजाते हैं और अतिदीन भाव से उनके चरणों में अपने को अर्पण करते हैं।

साधु वेषधारी धूर्त्त भी ऐसे लोगों पर हाथ साफ करने में नहीं चूकते। और महात्मा तो समदर्शी होते ही हैं। उनके भावों को देख उनके यथार्थ कल्याण के निमित्त आशीर्वाद करते और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं। श्री गौराङ्ग भी सबको कृष्णभजन का उपदेश देते, चाहे कोई किसी मनसा से उनके दर्शन को आवे और कृष्ण में नेह रखनेवाले को अपना प्रेमभाजन होने के योग्य मानते थे।

घर की अवस्था तो चिरकाल से अच्छी होही गई थी। अब जैसी आय थी वैसा व्यय। नित्य प्रति पचासों इष्ट मित्रों का और अतिथि अभ्यागतों का शिष्टाचार और सेवा सत्कार हुआ करता था। शची और विष्णुप्रिया प्रतिवालियों तथा भक्तों

के गृह महिलाओं की सहायता से लोगों के भोजनादि का कार्य समाधान किया करती थीं।

घर का काम काज दामोदर पंडित करते थे। ईशान और गोविन्द घर के दो भृत्य थे।

दामोदर जी सुपंडित और श्रीगौराङ्ग के परमभक्त थे। इन के सिवाय किसी देव देवी को नहीं मानते थे। ये तथा इनकेचार भाई सभी विरक्त थे।

गोविन्द का हाल ही में आना हुआ था। वे अच्छे कवि और संस्कृतज्ञ एक कायस्थ थे। शिशिरकुमार घोष महोदय लिखते हैं कि "उस समय कायस्थ तथा वैद्यों में अच्छे अच्छे संस्कृतवेत्ता पंडित होते थे। उनमें बहुत से "महामहोपाध्यय" की उपाधि से भी भूषित थे।"

गोविन्द की स्त्री के परलोक होने पर उनकी पतोह की और उसी के कारण पुत्र की, कृपादृष्टि से उन्हें अपना बोरिया बस्ता उठा कर घर से बाहर होना पड़ा था। यह काम उन्होंने अपनी इच्छा से नहीं किया था, वरन् "लाठी के हाथ" उनसे कराया गया था।

केवल उन्हींको ऐसा कर्म भोग भोगना नहीं पड़ा था। कुलाङ्गारों तथा कलहकारिणी कर्कशाओं के कारण कितने माता पिताओं को ऐसा कष्ट भोगना पड़ता है। आज की सुसभ्यता और सुशिक्षा माता पिता के प्रति पुत्र स्नेह का और भी ह्रास करती जाती है।

हमारे विचार में तो इनके लिए यह महा सौभाग्य का कारण हुआ क्योंकि ऐसा होने ही से वे प्रभु के पादपद्मों तक पहुंचे और जन्म भर इन्हींके चरणों की सेवा और दर्शन करते रहे।

घर से निकले तो सही, पर किधर जांयं और कौन सी राह लें, इस सोच ने उन्हें आघेरा। अन्ततः वे श्रीगौराङ्ग को स्मरण कर

नदिया गंगातट पर उपस्थित हो, इनका घर लोगों से पूछने लगे उस समय ये भक्तों के संग जलकेलि का आनन्द ले रहे थे। किसीने इनकी ओर इंगित करके कहा—जिसे खोज रहे हो वह वहीं स्नान कर रहे हैं।

गोविन्द ने गौराङ्ग की ओर दृष्टि की। देखते ही इनके रूप-लावण्य पर चित्त मोहित हो गया। मन हाथ से जाता रहा। दृष्टि हटाने का जी नहीं चाहता था। पर सौन्दर्यछटा आंखों को ठहरने नहीं देती थी।

"फिसलती थी निगाह अपनी" यह अंगो की सफाई थी।

ऐसा भी मनुष्य का सौन्दर्य होता है, यह स्वप्न में भी उन्हें ध्यान में नहीं आया था। ध्यान में आवे तो कैसे? जिसकी सौदर्यकणा से संसार सौन्दर्यमय दीखता है; उसके केन्द्रविशेष का ध्यान किसीको कब आ सकता है। जब स्ननानन्तर गौराङ्ग भक्तों के सहित घर चले तो जैसे मन को कोई रस्सी बांधे खींचता जाता हो, वे इनके पीछे पीछे लगे इनके गृह तक आये। भक्तगण तो अपने अपने घर गये। महाप्रभु ने उन्हें इशारे से आंगन में बुला कर स्नान और भोजन के लिए कहा। तब से वे बराबर महाप्रभु के चरणों के आश्रित रहे और इनके अन्तर्हित होने के अनन्तर इनके गुणगान तथा पाद पद्मों के ध्यान में रत रहते उन्होंने अपना जीवन विसर्जन किया।

प्रभु प्रायः डेढ़ महीने तक गृहस्थाश्रम का आनन्द लेते रहे। इसी अवसर में एक दिन अगहन के महीने में एक परम सुन्दर ब्राह्मण युवक जेसोरान्तर्गत तालखाड़ी निवासी पद्नाभ चक्रवर्त्ती का पुत्र महाप्रभु के आंगन में आकर चुप मूर्ति सा खड़ा हो गया। भक्तों के मध्य से उठकर, यह कहते हुए कि "लोकनाथ आ गये" (१) इन्होंने उसे छाती से लगाया। पांच दिन साथ रख कर उसे

१ श्रीमान शिशिरकुमार घोस ने इस बालक का वृत्तान्त स्वकृत "नरोत्तम चरित्र" में वर्णन किया है।

आपने यह कह कर विदा किया कि "तुम वृन्दावन में जाकर वास करो, हम अतिशीघ्र सँन्यासी हो कर वहां पहुंचते हैं।" कदाचित् वह युवक इन्हें सँन्यास की बात याद कराने आया था।

वृन्दावन जाने पर इनको उससे भेंट नहीं हुई। उस समय वह इनकी खोज में निकला था।

इन्हें इस प्रकार गृहस्थाश्रम का आनन्द भोग करते देख सबको इनके सँन्यासी होने की बात भूल गई थी। सब सुखपूर्वक समय व्यतीत करते थे। परन्तु ये अपना कर्तव्य कैसे भूल सकते थे? पूस महीने के अन्त में एक दिन घड़ी रात रहते सामान्य वस्त्र पहन, गृहत्याग कर और गंगा तैरकर आपने काटोया की राह ली।

इसी रात को आमोद प्रमोद से आपने प्रियाजी को प्रेमरस में सराबोर कर दिया था। चलते समय चुप चापः—

अति आदर अरुप्रेम सों, प्रियमुख चुम्बन कीन्ह।

और तब मन ही मनः—

करि प्रणाम जननी, भवन, जन्मभूमि, चल दीन्ह॥

जिस घाट से आप गंगा पार हुए थे, उस दिन से उसका नाम "निर्दय घाट" हुआ।

तिहिं घाट को भो नाम "निर्दय" वाहि दिन सों जानिए।

ज्योहीं विष्णुप्रिया की निन्द्रा भंग हुई, शय्या को पीतमविहीन पा उनके माथे वज्र टूट पड़ा। शची बावली सी "निमाई निमाई" चिल्लाती बाहर निकलीं। पतिपरित्यक्ता बेचारी विष्णुप्रिया उनका वस्त्र पकड़े साथ चलीं। क्षणमात्र में यह हृदयविदारक सम्वाद सर्वत्र फैल गया। वियोगाग्नि की भयंकर ज्वाला वनदाह सी भभक उठी। नगर निवासी वन के जीव जन्तुओं और पशुपक्षियों के समान व्याकुल-चित्त, जर्जरित हृदय दौड़ दौड़ इनके द्वार पर पहुंचने लगे। निताई, श्रीवास, वासुदेव घोष इत्यादि सब एकत्र हो गये। वहां जलन सहस्रगुणा अधिक था। वहां की वायु में वड़वानल

की लपट थी। दाहज्वाल से माता और पत्नी दोनों का अङ्ग प्रत्यंङ्ग भस्म हो रहा था। विष्णुप्रिया वेहोश भीतर पड़ी थीं। शची द्वार पर मूर्छा खा खा कर रो रही थीं और क्या कह रही थीं, वह सुनिये:—

शची रोती पड़ी भूतल विचारी।
अरे विध! बात सब तूने विगारी॥
हमारे रत्न को किसने चुराया?
अरे किस राहु ने ससि को छिपाया?
वसन भूषन यहीं सब धर गया है।
कहां? इस भांति क्यों? तज घर गया है।
विना उसके ये जीवन क्या करूंगी?
अरे हट. डूब गंगा में मरूंगी॥
निकल अब भेष योगिन का करूंगी।
जहां पांउंगी वां जाकर धरूंगी॥
निमाई को मेरे जो फिर मिलावै।
मुझे विन मोल वह दासी बनावै।
जुगल कर जोर शिवनन्दन सुनावें।
नहीं माता तनिक दुख आप पावें॥
जगत् के काज सँन्यासी हुए हैं।
तेरि तो अनुमति ले कर गये हैं॥

यह सुन कर निताई ने कहा "मा! धैर्य धारण करो, हम तुम्हारे निमाई को तुमसे मिला देने की दृढ़ प्रतिज्ञा करते हैं।" और सब लोगों से परामर्श करके वक्रेश्वर, मुकुन्द, चन्द्रशेखर तथा दामोदर को संग लेकर वे तुरंत गौराङ्ग की खोज में निकल पड़े। श्रीवास अन्य लोगों के संग शची तथा विष्णुप्रिया की रक्षा के निमित्त घर ही रहे: जिसमें वे शोकाकुल हो गंगा में डूब कर या आग में जल कर प्राण त्याग न कर दें।

हमने ऊपर कहीं इनके स्वभाव को नम्र सरल और कोमल कहा है। कोमलहृदय वाले पुरुष के कार्यों में ऐसी कठोरता निश्चय आश्चर्य की बात कही जायगी। परन्तु विचार पूर्वक देखने से ज्ञात होता है कि किसीमें विरुद्ध गुणों का मिश्रण उसके महत्व का प्रदर्शक है। जितना ही जिसमें यह मिश्रण पर्यलक्षित हो उतना ही उसे महान मानियेगा। भगवान् में सब विरुद्ध गुणों का मिश्रण है। अतएव उनके तुल्य कोई नहीं; उनका प्रतिपक्षी कोई नहीं। देखिये वे निर्गुण होने पर भी सगुण हैं; निराकार होने पर भी सर्वाकारमय हैं। उनका कोई स्थान न होने पर भी वे सर्व व्यापी हैं। (१) नेत्र न होने पर भी वे सहस्राक्षी हैं। प्रति वस्तु को प्रतीक्षण निरीक्षण किया करते हैं। कर्ण न रहने पर भी वे सबका विनय और प्रार्थना सुनते रहते हैं। पादहीन होने पर भी वे सर्वस्थल गामी हैं। न्यायपरायण होने पर भी वे दयालु हैं। Justice tempered with mercy की बात वस्तुतः उन्हींमें सार्थक है। यदि ऐसा नहीं होता, तो उनके कोरे न्याय पर कमर कसने से किसीका ठिकाना नहीं मिलता और किसीका निस्तार नहीं होता। करुणामय होने पर भी वे कठोरहृदय हैं। अपने जनों को दुःखाग्नि में तपा तपा कर उन्हें विमल स्वच्छ स्वर्ण सा बनाना यह तो उनका नित्य का खेल है।

स्मरण कीजिये, दशरथ जी शोकाकुल पड़े हैं, चाह रहे हैं कि श्रीरामचन्द्र किसी प्रकार वन न जायं; माता भी व्यथित चित्त हैं; सर्व नागरिक-आबाल-वृद्ध-शोक से जर्जरित हैं; पर इन बातों पर कुछ ध्यान न देकर और दो चार इधर उधर की बातें लोगों को

१, एक मुसलमान कवि कहते हैं:—

"ऐ कि दरहेच जान दारीजा।

कुल अजब मुन्दे अम कि हरजाई॥"

अर्थ—जिह को ठौर न ठाव कहीं है। अति अचरज सब ठांव वही है

कह सुन कर, वे वन को निकल जाते हैं। नगरनिवासी जो संग लगे हैं, उन्हें भी निद्रावस्था में छोड़ चुप चाप आगे बढ़ जाते हैं और पता लगाने का चिन्ह भी मिटवाते जाते हैं।

जिस जानकी जी के विरह में वनवन रोते फिरते थे, जिनके लिए भालु बन्दरों से प्रीति रीति बढाई, घनघोर संग्राम मचाया, एक देशाधिपति का सर्वनाश कर दिया, उन्हीं जानकी को वन-वास देते उनके कोमल कलेजे पर चोट न आई।

श्रीकृष्ण भगवान नन्द, यशोदा गोपों और गोपियों तथा श्रीराधा जी के प्रेम की कुछ पर्वाह न कर कठोर चित्त हो मथुरा जा बैठे और उन लोगों की कभी सुधि भी न ली। एक बार उद्धव को भेजा भी तो ज़खम पर नमक छींटने के लिए।

महात्मा बौद्ध को पिता, पत्नि पुत्र और परिवार को परित्याग करते क्या चित्तपीड़ा हुई थी ? वे तो चुपचाप बिना किसी से कहे घर से निकल पड़े थे और ये तो जनाकर एवं येनकेन प्रकारेण सबों की अनुमति लेकर बाहर हुए थे। आज या किसी दिन कहकर जाते तो क्या कभी जाने पाते ?

कठोर जीवों के उद्धार के निमित भक्तों के आनन्दप्रद सहवास, गृहस्थाश्रम का सुख और सम्पत्ति परित्याग कर आप सँन्यास लेकर स्वयं कष्ट उठाने को उद्यत हुए हैं और इसी कार्य में सहायता के लिए इन्होंने वृद्धा माता और युवती पत्नी को दुखसागर में भसाया है। देखिये आज इनके गृह परित्याग का सम्वाद सुनकर, इन अबलाओं का आर्त्तनाद श्रवण और स्मरण कर विपक्षियों का भी हृदय विदीर्ण हो रहा है। उस दिन वे इर्ष्यादग्ध हृदय से इन से द्वेष करते थे, आज पश्चात्ताप तप्त हृदय से अपने को कोस कोस कर, इन लोगों के दुःख पर आंसू बहा बहा कर, अपने अघों को धो रहे हैं। उससे उनका हृदय निर्मल हो रहा है; वे कृष्ण प्रेम की ओर आकृष्ट होते हैं। यदि ये अविवाहितावस्था अथवा

माता के परलोक गमन के पीछे सँन्यास ग्रहण करते तो यह दृश्य और ऐसी कार्यसफलता कहां देखने में आती? विश्वरूप के सॅन्यासी होने पर कितने आदमियों ने आंसू बहाये थे? कितने लोग इन्हें खोजने गये थे? दूसरे को कौन कहे, उनके पिता जगन्नाथ मिश्र भी घर से एक डेग बाहर न निकले थे। भारतवर्ष में इतने सँन्यासी हुआ करते हैं, उनके लिए कौन रोता है।

और शची तथा विष्णुप्रिया का यह शोक स्वाभाविक है यह संसार की शिक्षा ही के लिए है। इससे मातृवात्सल्य और पत्नी प्रेम की शिक्षा प्राप्त होती है। नहीं तो जैसे श्रीकौशल्या तथा नन्द, यशोदा श्रीजानकी, श्रीराधा श्रीराम और कृष्ण भगवान का वियोग जनित दुःख सहन करने को समर्थ हुईं, शची और प्रियाजी भी इसे सहन करने को समर्थ हैं। ऐसा नहीं होने से वे इनकी गर्भधारिणी और अर्धाङ्गिनी होने के योग्य कदापि नहीं होतीं। इन लोगों की योग्यता का प्रमाण अभी दो ही चार दिनों में मिलेगा।

ये लोग उनके स्वरूप को जान चुकी थीं। और जब वे इनलोगों से कह गये थे कि इच्छा करने ही से ये उनका दर्शन पावेंगी, तब इनके दुःख का कोई विशेष कारण नहीं था। पर इनका दुःख न करना भी निन्दनीय होता। कोई हो संसार में जन्म ग्रहण करने से उसे संसार का नियम पालन करना परमावश्यक है।

—:o:—

तृतीय खण्ड

प्रथम परिच्छेद

सँन्यास ग्रहण



गंगा पार हो भीगा ही कपड़ा पहने दौड़ादौड़ कोटोया के गंगातट के निकट वटवृक्ष के तले जाकर श्रीगौराङ्गने केशव भारती को करसम्पुट किये साष्टांग प्रणाम किया। इनकी तेजोमयी मूर्ति देख भारती तो पहले इन्हें पहचान नहीं सके, पर इनके कथोपकथन से उन्हें सब पुरानी बातें स्मरण हो आईं। उन्होंने कहा कि "पहले सावधान और स्वस्थ हो, तब सँन्यास की बातें होंगी।" भारती ने पूर्व में इन्हें सॅन्यास देने की प्रतिज्ञा की थी। पर उन्हें ऐसा ख्याल नहीं हुआ था कि ये तुरत इस युवावस्था में सँन्यासी बनने चलेंगे। इससे उन्होंने इनकी यह अभिलाषा पूर्ण नहीं करने का दृढ़ विचार किया।

उनकी कुटी तो गङ्गा की राह पर थी ही। जो स्त्री पुरुष उस मार्ग से गंगास्नान या जल लाने को जा रहे थे अथवा तट से प्रत्यागमन कर रहे थे, इनका अतुल्य मनोहर रूप देख चकित और मोहित हो वहीं ठिठक जाने लगे। इन्हें छोड़ लोगों का न इधर जाने का जी चाहता था, न उधर।

इतने में नित्यानन्द प्रभृति इनकी दर्शनप्राप्ति की मन में प्रार्थना करते, आ पहुंचे और इन्हें सिर नीचा किये बैठे देख महा आनन्दित

तथा आत्मविस्मृत हो हरिध्वनि करने लगे। उन्हें देख गौराङ्ग ने चित्त प्रसन्न हो, इन लोगों को अपने पास बुलाया।

उधर नगर में भी ऐसे नागर के भारती के पास आने का समाचार अन्य नगरनिवासियों को मिला। दशा वैसी ही हुई जैसी श्रीरामचन्द्र के भाई के संग जनकपुर में धनुर्यज्ञ का स्थल देखने जाने से, वहां के अधिवासियों की हुई थी। अर्थात् जबः—

"समाचार पुरबासिन्ह पाए।" तबः—

"धाए धाम काम सब त्यागी। मनहु रंक निधि लूटन लागी॥
अनुलित छबि अँग अँगनिकाई। निरखन लगे एक टक लाई॥

और कहने क्या लगे? श्रवण कीजिए:—

"सुर नर असुर नाग मुनि माहीं। सोभा असकहु सुनिअति नाहीं॥

अब हमसे सुनिए:—

ठट्ट ठट्ट लोग खड़े निकट भारति बट,
कहत चकित चित्त खोय मति गति को।
नैनन लख्यौ ना कहु' कानन सुन्यौ न कबौं,
असरूप आगे छबि पति पावै छति को॥
कवन सुकर्म कियो कवन अराध्यो देव,
जिन गर्भ मांहि धार्‍यो, जग पुन्यवति को?
धन धन भाग धन भाग सो युवति केर,
पायो सिव पति मानो त्रिभुवन पति को।

और इस निरीक्षण का प्रभाव क्या हुआ:—

"प्रभु निज रूप मोहनी डारी। कीन्हें स्ववस नगर नर नारी॥"

सब मन में सोचने लगे "इस विप्र कुमार को देख हमारी छाती क्यों फटी जाती है? हमारा मन क्यों रो रहा है? हमारा चित्त क्यों उनकी ओर आकृष्ट हो रहा है? यह स्वयं भगवान तो नहीं? निश्चय भगवान ही हैं।" बात यह है। एक तो सौंदर्य ही चित्ताकर्षक, दूसरे यह गौराङ्ग का सौंदर्य। लोगों की गति मति ऐसी क्यों न हो? लोग आत्म विस्मृत क्यों न हों?

इसी बीच में गौराङ्ग तथा भारती के कथोपकथन से जनता को यह बात जान पड़ी कि यह युवक यहां सँन्यासी होने को आया है। तब नर नारी सबका चित्त महा दुखित हो गया। लोग अधीर हो प्राणपण से इन्हें इस कार्य से विरत करने के यत्न में लगे। पृथक पृथक, दो चार मिल मिल कर, वृद्धवृद्धावृन्द बचुआ बचवा कह, युवकगण भाई भैया कह तथा लाड़ प्यार कर, युवतियां हाव भाव दिखा दिखा, इन्हें समझाने बुझाने लगीं। कोई सँन्यास का दुःख तथा गृहस्थी का सुख वर्णन कर, कोई इनकी माता के क्लेशों का चित्र खींच कर, कोई इनकी अर्द्धाङ्गिनी की अनिर्वचनीय विपत्तियों का स्मरण करा कर, इनका मन फेर, इन्हें घर फेरने की चेष्टा करने लगे।

यथा जनता वाक्य :—

कोमल सुगात उर कठिन कठोर कत,
　　बुझत हो नाहिँ कहा बन्धु दुख भोरे को।
होयगी कहां धौं गति मातु पतनी हि सिव,
　　वेधत जों सूल अस हियरो हमारे को॥
जोर जुगकर पांव परकै निहोरों करौं,
　　दया कर हेरो हम नर नारी बारे को।
बात हिये धारो घर आपने सिधारो, जिन
　　सोकसिंधु डारो प्रियजन परिवारे को॥

पर ये दोनों हाथ जोर कर सबों से यही विनती करते थे कि "आप लोग कृपया इस दास को आशीर्वाद कीजिये कि यह अपने प्राणेश्वर कृष्ण का वृन्दावन में दर्शन पा कर सफल मनोरथ हो।" यह कहते कहते आनन्द में विभोर हो आप नृत्य करने तथा नेत्रों से जल बरसाने लगे। मुकुन्द प्रभृति भी उसमें सम्मिलित हो गये। जनता पर भी उसका रंग जमा। उनमें से भी कोई नाचने और कोई गाने लगे।

लोग इस बात पर उद्यत थे कि यदि भारती इन्हें सँन्यास मंत्र देने चलेंगे तो उनके गले में हाथ डाल कर लोग वहां से उन्हें निकाल देंगे अथवा "या ब दस्ते दिगरे, दस्त ब दस्ते दिगरे" का दृश्य दिखावेंगे। अर्थात् टांग कर गांव के बाहर कर देंगे; किन्तु भारती स्वयं सँन्यास देने में सम्मत नहीं हुए।

उन्होंने कहा कि "यद्यपि हमने सँन्यास देने की प्रतिज्ञा की है, किन्तु तुम्हारी माता जीवित हैं, युवा स्त्री है, कोई सन्तति नहीं, हम तुम्हें सँन्यास मंत्र नहीं देंगे, तुम कोई अन्य स्थान देखो।" और यह सुनने पर कि इनकी माता तथा पत्नी ने इन्हें सँन्यासी होने की अनुमति दे दी है, वे बोले कि "संन्यास क्या वस्तु है, यह नहीं जानने ही से उनलोगों ने ऐसा किया है। यदि तुम स्पष्ट रूप से सब बातें उन लोगों को जना कर और तब उनकी अनुमति पाकर आओ, तो तुम्हें संन्यासमंत्र दे सकेंगे।"

भारती ने सोचा कि ये घर से भागकर आये हैं और अब उन के पास जाने का साहस नहीं करेंगे। इस उपाय से उनकी जानकी छुट्टी होगी और हो सकेगा, तो तब तक वहां से वे स्वयं नौ दो ग्यारह हो जायंगे।

पर यहां तो रंगही दूसरा नज़र आया। गौराङ्ग चट उठ कर पुनः अनुमति लेने चले। इनका साहस देख भारती के मन में इनके स्वयं कृष्ण होने की पुरातन धारणा फिर जाग्रत हो गई। सोचा कि इनकी इच्छा के विरुद्ध कार्य करनेवाला कोई इस संसार में नहीं है। अतएव वे संन्यास देने पर राज़ी हो गये। परंतु उन के मन में इस लोभ का उदय हुआ कि यदि ये इन्हें सँन्यास मंत्र देंगे, तो ये उन्हें प्रणाम करेंगे और वह उनके पतन का कारण होगा। इससे उन्होंने गौराङ्ग से प्रार्थना की, कि इन्हें चेला बनाने से उनका परलोक खराब न हो।

भारती की यह चिन्ता अमूलक थी। जब श्रीराम के वशिष्ठ जी को प्रणाम करने से, एवं विश्वामित्र का पैर दबाने से, तथा कृष्ण भगवान के सुदामा की सेवा करने से उन लोगों का धर्म नष्ट नहीं हुआ तथा परलोक न बिगड़ा, तो भारती के धर्मभ्रष्ट होने का भय न था।

जो हो, दूसरे दिन सँन्यास ग्रहण का दिन स्थिर हुआ। आप ने सानन्द भारती को प्रणाम किया और मुकुन्द को आनन्द मङ्गल गाने की आज्ञा की। आप नित्यानन्द से वृन्दावन का वृत्तान्त पूछने लगे। अब इनकी जान में जान आई।

परन्तु भक्त लोग प्राण रहित से होगये। जनता जिन्दगी से हाथ धो बैठी। मन में मनसूबा करने लगी कि भारती से शास्त्रार्थ करके पहले इस प्रकार के सँन्यास को अशास्त्रीय प्रमाणित करेंगे; और जो न मानेंगे, तो उन्हें कान पकड़ कर गांव से बाहर करना होगा।

इधर मुकुन्द ने आज्ञापालन कर कृष्ण मंगल गान आरम्भ किया। उपस्थित ग्रामवासी भी उसमें योगदान करने लगे। जब संकीर्तन की मनोहारिणी मधुर ध्वनि वायु के कंधे पर सवार हो चतुर्दिक भ्रमण करने लगी, तो उस ग्राम के तथा आस पास के अन्यगावों के लोग भी ढोल, करताल इत्यादि लिए झुंड के झुंड वहां टूट पड़े। रात भर संकीर्तन का आनन्द रहा।

पर ऐसे समय में भी संकीर्तन ? वाह ! क्यों नहीं ? श्रीरामचन्द्र के समान प्रबलशत्रु के दल बादल के सहित सिर पर पहुंच जाने पर भी, दससिर ने नाच रंग का ठान दिया था। यहां तो इसी संकीर्तन के द्वारा हरिनाम प्रचार और जीवों के उद्धार का यत्न होता रहा है तथा यह सँन्यास भी इसी कार्यसाधन के निमित्त ग्रहण किया जा रहा है तब श्रीगौराङ्ग अथवा भक्तगण इस संकीर्तन

को क्यों भूलें ? संन्यास ग्रहण की पूर्वरात्रि में इसका इस समारोह से होना तो निश्चय शुभ सूचक समझिये। देखिये तो, यहां इनका संन्यास लेने तथा कीर्तन करने से एक ही रात में सहस्रोंमनुष्यों का हृदय द्रवीभूत हो कर उनमें कृष्णभक्ति का संचार हो गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल गदाधर और नरहरि भी आ पहुंचे। उधर से हरिदास हजाम भी इनका मुंडन करने को लाया गया। उसने इस कार्य में बड़ा अड़चन डाला। जैसे गंगा पार उतारने में कैवट ने बखेड़ा उठाया था, इसने मुंडन में हुज्जत आरम्भ किया। इस कार्य से इन्हें निरस्त करने की चेष्टा करने लगा। वहां घाट पर तो श्रीरामचन्द्र चुप मुस्कुराते खड़े रहे। यहां गौराङ्ग इसे बहुत समझाने बुझाने लगे। हजाम तो बातचीत में स्वभावतः चतुर और "हाज़िर जवाब" होते हैं, इसका दरजा और भी बढ़ा था। यह वहां के सब हजामों का सरदार भी था। यह गौराङ्ग के संग इस प्रकार उत्तर प्रत्युत्तर करने लगा कि लोगों को इसके विजयी होने की पूरी आशा बँधने लगी। इसने यहां तक कह दिया कि इस नगर में और भी हजाम हैं, उनसे अपना काम कराइये। वह कृष्ण भक्त था। इनके यह कहने पर कि "हम तुम्हारे ही प्रभु के खोजी हैं तुम इसमें हमारा साहाय्य करो" उसने उत्तर दिया कि तभी तो हमारा चित्त आपके लिए व्यग्र हो रहा है और आपने क्या हमारे वध ही के लिए यह अवतार धारण किया है ? हम इन हाथों से लोगों का नख छूते हैं। इनसे आपका पवित्र मस्तक छुएं और फिर इन्हींसे सभी का चरण। हम आप नरक में जायं और अनपराधी अन्य लोगों को भी लेते जांय, यह हमसे न होगा। अन्ततः ऐश्वर्यवल से इन्हें उसको राज़ी करना पड़ा। और आपने कहा कि "तुम हमारा मुंडन कर, हमें संसार से रहाई देकर मिठाई बेचने का काम करना। हजाम का काम परित्याग करना।

क्षौर होने के समय का रंग कुछ और हो था। छुरा रख कर कभी हरिदास नाचता, कभी आप नृत्य करते, कभी दोनों हाथों मिलाकर नृत्य करते। किसी प्रकार क्षौर विधि समाप्त हुई और भारती द्वारा गौराङ्ग को दंड कमण्डलु और लंगोटादि प्राप्त हुआ, अर्थात् आप सँन्यासी हुए। आपने २४ वर्ष की अवस्था में माघ शुक्ल में सँन्यासग्रहण किया।

अब इनका नाम भी नया रखा गया। अब ये निमाई, गुराई, गौरहरि तथा गौराङ्ग इत्यादि नहीं रहे। कृष्ण चैतन्य इनका नाम पड़ा। एवं चैतन्य वा चैतन्य महाप्रभु कर के प्रसिद्ध हुए। अब इनका नूतन जन्म हुआ और भारती इनके पिता हुए।

संन्यास ग्रहण करने में इन्हें बड़ी बड़ी रुकावटों को दूर करना पड़ा। आज के किसी काउँसिल वा सार्वजनिक सभा के सदस्य होने के लिए उमीद्वारों को जो कठिनाइयां झेलनी पड़ती हैं, जो कष्ट उठाना पड़ता है और दौड़ धूप करना पड़ता है, उनसे इनकी कठिनाइयां सहस्रगुणी अधिक थीं। यहां तो द्रव्य लुटाने, मीठी मीठी बातों से लुभाने, रिश्वत देने, एवं कभी कभी भय दिखाने से भी काम चल सकता है; पर वहां भक्तों को, स्त्री को, माता को, भारती को रिश्वत देकर वा किसी प्रकार का लालच दिखा कर कार्य साधन करना असम्भव था। जहां हजाम भी सौभाग्य और वैकुंठ के लोभों को तृणवत् तिरस्कार करता था। पर ऐसा होते हुए भी सब बाधाएं दूर हुईं। अपना अपना रङ्ग दिखा कर सब को मौन धारण करना पड़ा। दूसरों को कौन कहे, पितृस्थानीय सुबोध पण्डित इनके मौसा चन्द्रशेखर आचार्यरत्न का भी कुछ वश न चला। इन्हें फेर ले जाने आए थे; पर इनके इच्छानुसार विना जीभ हिलाये उन्हें सँन्यासकार्य में इनका प्रतिनिधि बन कर काम करना पड़ा। ऐसा क्यों हुआ। इनमें निश्चय कोई असाधारण दैवी शक्ति थी, इसमें सन्देह नहीं। इनमें जो ईश्वरीय

बुद्धि रखते थे वे भ्रम में नहीं पड़े थे। सब इनके हाथ के खिलौने बने थे। जिसे जैसे चाहते थे नचाते थे।

इनका मुंडन होते ही और इनके संन्यास लेते ही सबत्र "हाहा कार" मच गया कितने संज्ञाशून्य हो भूतल पर गिर पड़े; कितने छाती फाड़ कर रोने लगे; कितने छटपटाने लगे; कितने विधाता को दूषण देने लगे; कितने अपने भाग ही को कोसने लगे। भारती को भी सहस्र मुखों से कुवचन सुनने का अवश्य भाग्य हुआ होगा।

भक्तों की जो बुरी दशा थी वह तो अवश्यमेव होनी ही चाहती थी। वे इनके अपने आदमी थे। उसके विरुद्ध होने ही से आश्चर्य होता। किन्तु काटोया निवासी अथवा उसके निकटवर्ती अन्य स्थानों के लोगों का इनसे क्या सम्बन्ध था, जो जनता में ऐसा करुणा वारिधि उमड़ आया? इसका कारण मनुष्यभाव तथा इनका प्रभाव दोनों ही था। सहृदयता और सहानुभूति मनुष्यत्व के मुख्य लक्षण हैं। जिसमें इनका अभाव हो उसकी गणना पशुओं में होगी। पर-दुःख-सुखी तथा रुधिरपिपासित मनुष्य, चाहे वह नरपति क्यों न हो वस्तुतः बड़ाही हेय गिने जाने के योग्य है। किसी उर्दू कवि ने कहा है:—

"दर्द दिल के वास्ते पैदा किया इनसान को।
वरन ताअत के लिए कम थे नहीं करोंबियां॥"

अर्थात् मनुष्य का जन्म ही परदुःखकातर होने के लिए हुआ है। नहीं तो ईश्वर गुणगान के लिए यक्ष, किन्नर, गन्धर्व तथा देव-गण कम नहीं थे।

गौराङ्ग का ऐसे वयस, में, वृद्धा माता एवं युवती पत्नी को छोड़ कर, जीवों के उद्धारार्थ संन्यास ग्रहण करना अल्प त्याग नहीं कहा जायगा। धर्मार्थ त्याग से सब मनुष्यों का चित्त न्यूनाधिक द्रवीभूत होता है। "नारिमरि अरु सम्पत्ति नासी। मूंड़ मूंड़ाय भये

संन्यासी ॥" ऐसे के लिए कोई आंसू नहीं बहावेगा। लोगों का चित्त द्रवित कर, लोगों की आंखों से आंसू की झड़ी लगवा कर, उससे उनके हृदयों का कलुष धो उन्हें कृष्णभक्ति में लगाने के लिए ही तो इन्होंने यह उपाय रचा था। और उसका फल इसी समय से देखने में आने लगा।

गौराङ्ग के केश की और उस हजाम की "मधुमोदक" नाम की समाधियां अभी तक काटोया में विद्यमान हैं। उन स्थानों में दर्शक-गण लोट पोट कर अपनी आत्मा को पवित्र करते हैं।

द्वितीय परिच्छेद

शान्तिपुर आगमन



दंड कमंडलु धारण करने के अनन्तर श्रीगौराङ्ग श्रीराधा-भाव से कृष्ण की खोज में वृन्दावन जाने के अभि-प्राय से पश्चिम ओर दौड़े। इनके भक्त नरहरि, दामोदर, तथा वक्रेश्वर तो अचेत होकर पड़ गये। गदाधर को इन्हें निषेध करने का साहस नहीं हुआ। वे काठ से अपने स्थान पर खड़े रह गये। किन्तु नित्यानन्द, चन्द्रशेखर, गोविन्द तथा मुकुन्द इनके पीछे पीछे दौड़ चले। काटोया के हज़ारों मनुष्य भी इन्हें पुकारते दौड़े; पर इनके पांव क्या थे, मानो बाइसिकिल के पहिये। दौड़ में इनकी लोग समता न कर सके और ये शीघ्र ही अरण्य में प्रवेश कर वनपथ से जाने लगे।

अगत्या नगरनिवासियों को अवधबासियों के समान क्लान्तचित्त महा उदास हो मन मारे फिरना पड़ा; पर दोनों जनसमूहों में प्रभेद था। उन्हें बारह वर्ष के पश्चात् श्रीरामचन्द्र से मिलने की आशा थी। इन्हें गौराङ्ग के दर्शन की आशा एकदम जाती रही।

प्रभु तो गये, पर सदा उनलोगों के मन में जाग्रत रहे। इनका सँन्यास ग्रहण देखने से उन लोगों का मन निर्मल हो गया और उनके दर्शन से अन्य व्यक्तियों का चित्त पवित्र और शुद्ध होने लगा। उसका प्रभाव काटोया और उसके निकटवर्ती ग्रामों पर ऐसा पड़ा कि उनमें पवित्रकारिणी शक्ति आ गई। आज भी वहां जाने से तथा सँन्यासग्रहणस्थान के दर्शन से पत्थर सदृश कठोर हृदय भी मोम हो जाता है।

गौराङ्ग के वियोग में तो वहां के कितने लोग एक दम पागल से हो गये। सात दिनों तक गंगाधर महाचार्य कोई बात पूछने और कहने से केवल "चैतन्य चैतन्य" ही करते थे। उनके मुंह से कोई अन्य शब्द निकलताही नहीं था। और चेतना लाभ करने पर उन्होंने अपना नाम 'चैतन्यदास" रखा।

पुरुषोत्तमाचार्य गौराङ्ग को पूर्णब्रह्म मानते थे। इनके प्रकाश काल ही से उन्होंने गुप्तरूप से इन्हें अपना आत्मसमर्पण किया था। वे इनके अन्तरङ्ग सेवक थे। प्रभु के अतिरिक्त यह बात और किसी पर प्रगट नहीं थी।

भक्तों का परित्याग कर इनके सँन्यासग्रहण करने से महा-कुपित हो काशी में जाकर वे श्रीशङ्कराचार्य के सम्प्रदाय के सँन्यासी हो गये। उनका नाम स्वरूप दामोदर रखा गया। उन्होंने यज्ञोपवीत उतार कर माथ तो मुड़ाया था सही, किन्तु सँन्यासवस्त्र धारण नहीं किया था। उनके गुरु चैतन्यानन्द ने उन्हें वेदान्त पढ़ने और उसके प्रचार करने का आदेश किया था, किन्तु उन्होंने उधर ध्यान नहीं दिया। वे नवद्वीप ही के रहनेवाले थे।

अच्छा, अब इधर का हाल सुनिए। नित्यानन्दादि चार भक्तों के सिवाय गौराङ्ग के संग कोई डेग न मिला सके; परन्तु पीछे उन लोगों के पैरों ने भी जवाब दिया।

चलते समय मार्ग में चन्द्रशेखर को देख कर इन्होंने कहा कि "आप घर जाकर कह दीजियेगा कि जिसके निमाई थे, अब उन्हीं के हुए।" यह कहते कहते ये सारे संसार को भूल गये। "हम आये" यह कह कर आगे दौड़े। भक्तगण पीछे पड़ गये। सन्ध्याकाल में एक ग्राम के निकट ये अदृश्य हो गये। घर घर खोजने पर भी कहीं पता न लगा। बिना अन्न दाना के रात कटी। प्रातःकाल रोने का शब्द सुन कर लोग उसी ओर चले और

सबों ने इन्हें एक अश्वत्थ वृक्ष के तले (१) बैठे और अधीर हो कृष्ण के लिए रोते देखा; पर इन्हें यह सुध नहीं कि भक्त भी इनके पास पहुंच गये हैं।

वहां से ये फिर आगे दौड़े। आप खाना पीना एक दम भूल गये हैं। राधा भाव से कृष्ण की खोज में जाते हैं, इस बात को भी भूल गये हैं। केवल मन में यही हो रहा है कि वृन्दावन जाकर श्रीमुकुन्द का भजन कर भवसागर पार होंगे और यही अभिप्राय मुख से भी बाहर निकल रहा है।

उधर सन्ध्या पर्यन्त कोई सम्बाद नहीं पाने से नदियानिवासी श्रीवास प्रभृति सब व्याकुल हो उठे। केवल मुरारि धैर्य धारण कर सबका प्रबोध कर रहे थे। विष्णुप्रिया "हे हरि! हे प्रभु! कृपा कर दर्शन दीजिये" कह कह आर्त्तनाद से पुकारने लगीं। यह आर्तनाद न जाने कैसे, गौराङ्ग के कानों तक पहुंच, इनकी गति का अवरोध करने लगा। इनकी चौकड़ी बन्द कर दी।

दिल से दिल को राह है। एक दूसरे को आकर्षण करता है। आकर्षण ही का जगत में सब खेल है। इसीकी नींव पर विज्ञान (साइंस) की भित्ति खड़ी है। परिवार, संसार, समाज, लोक, परलोक में सर्वत्र आकर्षण का प्रभुत्व विराज रहा है। तभी तो देवगण को देवलोक से तथा पितृगण को पितृलोक से लोग आवाहन करते हैं। भक्तों के प्रेम के वशीभूत हो जैसे प्रभु उन्हें अपने चरणों की ओर आकर्षित करते हैं, वैसेही आपभी प्रीति की रज्जु से, आर्तनाद से, भक्तों की ओर आकर्षित हो जाते हैं। आकर्षण तथा प्रीति एक ही वस्तु है। इसी आकर्षण ने इस समय अपना बल दिखलाया। जाते जाते एक बार शरीरकम्पित हो ये गिरने

१ यह स्थान "विश्राम तल्ला" के नाम से प्रसिद्ध है और "को" ग्राम के समीप अवस्थित है। इस घटना की स्मृति में वहां एक मन्दिर भी बना हुआ है। "चैतन्य मंगल" के प्रणेता लोचनदास का घर वहीं था।

गिरने हो गये ; पर नित्यानन्द ने इन्हें पकड़ लिया। ये भी उनके देह पर पड़े रहे। फिर उठ कर आंसू पोंछ कर, आगे चले। पर चलेंगे क्या ? ये जोर बांध कर आगे बढ़ते हैं, भक्तों का प्रीतिपूर्ण आर्त्तनाद इन्हें पीछे खींच लेता है।

दशा उस छात्र के कथन के समान हो रही थी ; जिसने अपने शिक्षक से, पाठशाला में पहुंचने में विलम्ब होने का कारण पूछे जाने पर, कहा था "क्या करूं, वर्षा होने से मार्ग में फिसलन ऐसी हो गई थी कि जो आगे एक डेग धरता था तो पीछे दो डेग फिसल जाता था, अन्ततः विपरीत गति से चल कर किसी प्रकार यहां पहुंचा।"

पहले दिन आपने कुछ दौड़ लगाई थी। फिर तीन दिन बिना अन्न पानी, निद्रा, विश्राम कृष्ण प्रेम में विभोर—चक्कर लगाते रहे, परन्तु परिमित परिधि के बाहर न जा सके। संगी भक्तगण इस उपाय में थे कि किसी प्रकार इन्हें शान्तिपुर ले चलें। उन लोगों का भी खाना पीना हराम हो गया था।

यह इनकी शक्ति का प्रभाव था कि कभी कभी इन्हें देख सयाने तथा बालक "हरिबोल" की ध्वनि करने लगते थे। मार्ग में, जब ये नेत्र बन्द किये जा रहे थे, कुछ गोचारक "हरिबोल" की ध्वनि करने लगे। यह ध्वनि कानों में पड़ते ही इनकी आंखें खुल गईं। आपने सविनय उन से हरि बोलने और कीर्तन करने को कहा; उनके माथों पर हाथ फेरा। उन लोगों ने इनकी आज्ञा का पालन किया। तब यह समझ कर कि वे व्रज के गोपालक थे और अब व्रज निकट ही था, आपने उन सबों से व्रज का मार्ग पूछा। नित्यानन्द ने सुअवसर पाकर संकेत किया और बालकों ने इन्हें शान्तिपुर की राह ही को वृन्दवन का मार्ग कह दिया। शान्तिपुर के निकट आने पर नित्यानन्द ने चुपके चन्द्रशेखर को नौका लिए अद्वैत के बुलाने का भेजा। वे आये और उनके आने से गौराङ्ग को पूरी चेतना हुई

और इन्होंने तब समझा कि नित्यानन्द गंगा को यमुना बताते इन्हें भुलावा देकर वहां लाये थे।

इससे गौराङ्ग के बहुत शोक और क्रोध हुआ। आपने नित्यानन्द की कुछ मधुर मधुर भर्त्सना की। वे सिर झुकाये बैठे रहे; पर मन में प्रसन्नता थी कि शची से जो निमाई को लाकर मिलाने की बात कही थी, वह अब पूरी होगी।

सब लोग नाव पर चढ़ कर अद्वैत के घर शान्तिपुर आये। अद्वैत ने भोजन की बड़ी तैयारी की थी जिसका सविस्तर वर्णन "चैतन्य चरितामृत" में देखा जाता है। कुछ काल स्वस्थ होने के अनन्तर अद्वैत ने आग्रहपूर्वक हाथ पकड़ कर संन्यासी के नियम के विरुद्ध इन्हें खूब भोजन कराया। सन्ध्या में कुछ कीर्तन हुआ जिसमें ये भी सम्मिलित हुए।

दूसरे दिन गंगास्नान के अनन्तर प्रभु के दर्शनार्थ दर्शकों की बड़ी भीड़ हुई। आपने छत पर जाकर वहीं से एक बार ही सबको दर्शन सुख प्राप्त कराया। सब को महाआनन्द हुआ। सबको यही प्रतीत होता था कि प्रभु उन्हींको ओर देख रहे हैं और वहां अन्य कोई नहीं। इसीसे सब लोग मन खोल खोल कर अपनी अभिलाषा, दुःख तथा प्रार्थना निवेदन कर रहे थे।

उधर आपसे आज्ञा लेकर निताई नवद्वीप से शची माता तथा अन्य इच्छुक लोगों को लाने गये। वहां से भक्त, शत्रु, मित्र, शची सब का आना हुआ। इनका सँन्यास लेना सुन कर तथा इनकी माता और युवती पत्नी की दशा देख शत्रुओं का कलेजा अधिकतर फटने लगा। वे पश्चाताप करने लगे; अपने को धिक्कार देने लगे कि वे ही लोग इनके दुःख के कारण हुए और उन लोगों ने अपनी मूर्खता वश ऐसे महापुरुष के गुणों पर ध्यान न देकर इनसे अकारण द्वेषवर्द्धन किया। अब वहां इनका कोई शत्रु न रहा।

वहां से लोगों के संग शची डोला पर शान्तिपुर आईं। विष्णुप्रिया के जाने की आज्ञा नहीं थी। सँन्यासी को स्त्री को निकट बुलाने से कलंक लगता है और उनकी निन्दा होती है। प्रियाजी ने भी आने का आग्रह नहीं किया। उन्होंने विचारा कि "हमें दर्शन न हुआ तो कोई चिन्ता नहीं। हमतो उनके आधा अङ्ग ही हैं। वे हमारे छोड़ कर दूसरे के तो नहीं हैं। हमारे धन को, रत्न को लोग दर्शन करने जाते हैं, यह क्या हमारे लिए कम सुख और गौरव की बात है?" निश्चय गौराङ्ग की प्रिया ही के योग्य प्रियाजी का यह विचार था।

शची शान्तिपुर पहुंचीं। डोला देखते ही आपने माता को स्वयं उतारा; बांह धर कर उन्हें स्थान पर लाकर बैठाया। उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। उनकी बारम्बार प्रदक्षिणा की, आप अनिर्वचनीय स्नेह प्रदर्शन करते उनसे मिले।

इनके सँन्यासी होकर इस प्रकार प्रणाम करने से संकुचित हो शची ने कहा "निमाई! तुम हमको प्रणाम करते हो। इससे यदि हमें अपराध की सम्भावना होती, तो तुम अवश्य ऐसा नहीं करते।" ऐसा कहने का कारण यह था कि सँन्यासी के लिए सँन्यासी के सिवाय अन्य किसीको प्रणाम करना मना है; पर आपने माता की भक्ति के सामने इस नियम को ताक़ पर रखा और अद्वैत के घर भोजन में भी ये सँन्यास नियम का पालन न कर सके। कुछ दिनों के बाद नित्यानन्द के द्वारा इनका दंड भी तीन खंड हो जायगा। सच पूछिये तो सँन्यास नियमों के पालन के लिए ये सँन्यासी नहीं हुए थे। इन्होंने केवल जीवों को भक्तिमार्ग में लाने ही के लिए यह काम किया था; क्योंकि इसके बिना इन्हें यह कार्य्य साधन का पूरा अवकाश और सुविधा नहीं मिलती। नहीं तो, इनके धर्म्म से और सँन्यास से तो सर्वथा विरोध था। उसका सिद्धान्त "हम तुम और तुम

हम" अर्थात् ईश्वर से अभिन्नता; और इनका सिद्धान्त "हम तुम्हारे और तुम हमारे।"

इनका केशरहित कपाल, कोपीनवेष्टित कटि और कमंडलुयुत कर देख माता को महाक्लेश हुआ और उनका हृदय विदीर्ण होने लगा।

लाइ गरै बुक फारि कै रोवति, अश्रु बहै जिमि मेघन धारा।
धारि दुहुं कर पुत्र निजे उर चूमत हैं मुख बारहि बारा॥
हाय पढ़ाय कियो तुव पंडित ता फल आज दियो करतार।
मोर कपार जर्यौ सो जर्यौ पर विष्णुप्रिया किमि होई उवार॥
दंड कमंडल लै कर मों अरु धारि कुपिन तु भीख चहैगो।
देश देशान्तर धावत डोलत आतप वात कलेश सहैगो॥
"धान धनो घर, पूत दशा अस," व्यंगन सों सिव चित्त दहैगो।
ता पर विष्णुप्रिया दुख दारुन मात हिये किह भांत सहैगो॥

माता को रोते और महादुःखित देख इनके नेत्रों से भी अश्रु-धारा बह चली और आपने कहा—"मा! यह शरीर तुम्हारा है। तुम जो आज्ञा करोगी हम वही करेंगे; सँन्यास छोड़ पुनः संसार में भी प्रवेश कर सकेंगे।" चलती समय इन्होंने यह भी कहा कि "हमने पहले भी कहा है और अब भी कहते हैं कि हम आकर तुम्हारे चरणों का पुनः दर्शन करेंगे।"

हम ने ऊपर कहा है कि इनके हृदय में माता की महती भक्ति थी। इसका प्रमाण इन ऊपर के कथनों में पाया जाता है।

इन्होंने भक्तों से भी कहा था कि "जब हमने माता को देखा तो उनकी दशा अवलोकन से हमने अपने सँन्यास धर्म्म को धिक्कार दिया और सोचा कि कृष्णप्रेम ही परम पुरुषार्थ है और जब उस के निमित्त सँन्यास का प्रयोजन नहीं तब हमने यह भीषण आश्रम क्यों ग्रहण किया? अस्तु।

शान्तिपुर में कुछ काल घर ही के समान हरि-कीर्तन की धूम रही। क्योंकि नदिया से सब लोग वहां पहुंच गये थे। एक दिन आपने नदियावासियों से स्नेहपूर्वक कहा "हम तुमलोगों के दुःख से बहुत दुःखित हुए। माता के निकट हमारे जाने से उन्हें संकोच होगा। वे स्वतंत्रतापूर्वक कुछ न कह सकेंगी। हम उनसे प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि उनका आदेश हमें शिरोधार्य है। यदि वे नदिया जाने को कहें, तो हम अभी प्रस्तुत हैं। तुमलोग उनसे पूछो, क्या आज्ञा करती हैं?"

श्रीरामचन्द्र के श्रीभरत ही के विचार पर सब भार देने से जैसे उन्होंने रामचन्द्र को प्रतिज्ञा-भ्रष्ट होने से बचाया था, वैसी ही शचीने भी अपने पुत्र की रक्षा की। उन्होंने कहा—'निमाई के घर जाने से सुख तो सबको निश्चय होगा, किन्तु जगत में बड़ा उपहास होगा और उसका धर्मनष्ट होगा। मैं मर जाऊंगी, पर ऐसी आज्ञा न दूंगी, जिससे निमाई धर्मच्युत हो। वह नीलाचल (श्री जगन्नाथपुरी) में रहे। वहां लोग जाया ही करते हैं। तुम लोग भी जाकर भेंट कर सकोगे, एवं कभी गंगास्नान के लिए आने से मुझे भी मिलने और देखने का अवसर मिलेगा।" यह सुनते ही भक्तों की बुद्धि चकरा गई। वे सन्न हो गये।

शची देवी-जिन्होंने अपने पवित्र कोख से दो दो सँन्यासियों को उत्पन्न किया, जिनमें एक श्रीकृष्ण भगवान के अवतार ही माने जाते हैं—इसके सिवा और क्या कहतीं? जीवित रहने से जगन्नाथ मिश्र भी इन्हें धर्म भ्रष्ट करने की चेष्टा नहीं करते। विश्वरूप के सँन्यासी होने के समय पाठक उनके विचार का परिचय पा चुके हैं।

निदान माता की आज्ञा मान आपने नीलाचल में रहना स्वीकार किया और वहां जाने को उठ खड़े हुए। स्वदेश तथा परिवार परित्याग करते समय आप कहते गये—"हे जीवगण! दुःख की

एक मात्र औषधि भगवद्गुणकीर्तन है। वही कीर्तन करो। सुधा समुद्र लहराने लगेगा; उसी समय अवगाहन करना। फिर दुःख कहां?" सबों को यही उपदेश देकर और अपनी माता को दंडवत और उनकी प्रदक्षिणा कर आपने वहां से प्रस्थान किया। नित्यानन्द पं जगदानन्द, पं दामोदर और मुकुन्द दत्त इनके साथ हुए। "चैतन्य भागवत" गोविन्द और गदाधर का भी साथ जाना बतलाता है। परन्तु "अमिय निमाई-चरित" से जाना जाता है कि जब ये दक्षिण यात्रा में गये थे, तब इनके पीछे गदाधर नीलाचल पहुंचे थे।

अद्वैताचार्य भी रोते रोते प्रभु के पीछे लगे; परन्तु इन्होंने हाथ जोड़कर अपनी माता तथा वैष्णवमण्डली की रक्षा के निमित्त उन्हें नवद्वीप में ही रहने के लिए विनय किया।

पाठकों को स्मरण होगा कि सिलहट में शची ने अपनी गर्भस्थ संतान को देखाने के लिए अपनी सास से प्रतिज्ञा की थी। (१) इस समय याद आने से उन्होंने गौराङ्ग को वह बात जनाई। कहते है कि इन्होंने एक देह शान्तिपुर में रख कर दूसरी देह से दादी को दर्शन दिया। (२)

आज से तीस पैंतीस वर्ष पूर्व वर्तमान अवधवासी कायस्थ कुल दिवाकर श्रीसीताराम शरण भगवान प्रसाद सुविख्यात विद्वान् तथा महान साधु से सम्बन्ध रखनेवाली एक ऐसी ही घटना हुई थी। उस समय आप पटना में स्कूलों के डिपुटी इन्सपेक्टर का काम करते थे। जिन्हें उस घटना का पूरा वृत्तान्त जानने की इच्छा हो, वे इस प्रबन्धलेखक लिखित उनकी जीवनी (३) का पाठ करें।

१, प्रथम खंड का चतुर्थ परिच्छेद देखिये।

२, श्रीगौरांग के चचेरे भाई प्रद्युम्न मिश्र कृत "श्रीकृष्ण चैतन्य उदयावली" में इस का सविस्तर वर्णन है।

३, यह जीवनी पटना के खड्गविलास छापेखाने से प्राप्त हो सकती है।

तृतीय परिच्छेद

नीलाचल (श्रीजगन्नाथपुरी) गमन

भूमि-सयन, कर-तकिया, तरुतर-वास ।
कहुँ-कहुँ अलप अहरवा, कहुँ उपवास ॥
नयनयुगल वह निरवा, निरखत आस ।
कृष्ण-कृष्ण कह, रह रह लेत उसास ॥



य शची के दुलारे इसी प्रकार मार्ग में जा रहे हैं। जगदानन्द आपका दंड एवं दामोदर आपका कमंडलु लिए हुये हैं। गोविन्द के सिवा सभी अल्पवयस्क सँन्यासी-रूपधारी हैं। किसीके पास कोई वस्तु नहीं है। मुकुन्द के पास अवश्य एक फटा कम्बल है।

जैसे बन्धन टूट जाने से पशु सानन्द खेत, उद्यान की ओर दौड़ मारता है, आप भी अब गृहबन्धन रहित हो बड़े हर्ष से श्रीक्षेत्र की ओर जा रहे हैं; किन्तु बन्धन का कुछ अंश गले में लगे रहने से जैसे उसे असुविधा होती है और वह सिर इधर उधर कर उसे भी दूर करने की चेष्टा करता है, वैसे ही इन कई भक्तों के संग जाना इन्हें भी असह्य हो रहा है एवं कभी कभी इनसे दूर भागने का यह भी यत्न करते हैं। यद्यपि ये बेचारे भक्त इनकी बातों और कार्यों में चूँ भी नहीं करते, चुपचाप केवल इनका रक्षणावेक्षण करते पीछे पीछे जा रहे हैं। हां! इन्होंने जो नासिका ही द्वारा खाद्य वस्तुओं का स्वाद लेकर (अर्थात् अति अल्प भोजन कर) जीवन धारण का विचार किया है, उसमें वे निश्चय मार्ग के कंटक स्वरूप होते हैं। वे यथावश्यक इन्हें भोजन कराने के यत्न में सदा लगे देखे जाते हैं।

शान्तिपुर से चल कर "जगन्नाथ अब कितना दूर है, "जगन्नाथ कब दर्शन देंगे" इसी प्रकार की बातें करते, आप भक्तों के संग दो

पहर के समय आठिसारा गांव में पहुंचे। वहां के अनन्त पंडित आपके स्वरूप दर्शनमात्र से आपके शरणापन्न हुए और प्रेम भक्ति लाभ कर महानन्दित हुए। रात भर वहीं कीर्तन का आनन्द रहा।

वहां से चल कर सब लोग गंगा के किनारे किनारे चौबीस परगना के सबडिवीज़न डायमंड हार्बर के मथुरापुर थाना के अधीन छत्रभोग तीर्थस्थान में पहुंचे, जो खाड़ी ग्राम में अवस्थित है। यह स्थान जयनगर मजिलपुर से लगभग तीन कोस पर है। उस समय गंगा इसी राह से आकर यहीं सागर में प्रवेश करती थीं।

वह छत्रभोग, गंगा की तत्कालीन शेष सीमा, एक पीठस्थान तथा समृद्धि शाली नगर था। वहां गौड़राज्य का सरहद भी था। गंगा के उस पार उड़ीसा के परमप्रतापी प्रतापरुद्र का राज्य था। यहां एक विष्णु-प्रतिमा भी थी; जो अब जयनगर में विराजमान है। अम्बुलिङ्ग घाट में जलमग्न शिव हैं। शैव और वैष्णव दोनों के ही लिए वह एक पवित्र स्थान है। अम्बुलिङ्ग घाट पर इनलोगों ने स्नान किया। उधर गंगाधारा बहती थी, इधर गौराङ्ग के नेत्रों से जलधार प्रवाहित हो चली मानों दोनों में होड़ होने लगी। जब ये रोने लगते थे, इनके चक्षुओं से अश्रु नहीं ढलते, वरन् श्रावण भादों के मेह बरसने लगते थे। श्रीप्रिया दास जी ने भी भक्तमाल में ऐसा कहा है एवं "चैतन्य भागवत" में श्रीवृन्दावन दास इस समय के रोने के विषय में कहते हैः—

"पृथ्वी ते वहे एक शतमुखी धार।
प्रभुर नयने वहे शतमुखी आर॥"

प्रभु का यह रोदन और भाव देख घाट पर सहस्रों मनुष्यों की भीड़ लग गई और गगनभेदी हरिध्वनि होने लगी। गौड़ाधिप के अधीनस्थ उस प्रान्त के राजा रामचन्द्र खां भी यह कोलाहल श्रवण कर पालकी पर सवार वहां आ पहुंचे। वे शाक्त थे, दूर ही

से प्रभु को देख कर पालकी से उतर इनके चरणों में गिरे; परन्तु गौराङ्ग का मन तो श्रीजगन्नाथ के पादपद्मों में लगा था। उन्हें किसी के प्रणाम की क्या सुधि थी। भक्तों के सावधान कराने पर आपने उनकी ओर दृष्टि की और उनका परिचय पा उनसे जगन्नाथ क्षेत्र जाने में सहाय करने की आज्ञा की।

रामचन्द्र ने कहा "इस युद्धकाल में किसीको पार करने में प्राण का भय है, पर हम खड्ग के हवाले किए जायं, या सूली पर चढ़ाये जायं; हमारा सर्वनाश हो तो हो, पर हम यह आज्ञा अवश्य पालन करेंगे।" और सचमुच इन लोगों को एक ब्राह्मण के घर ठहरा कर, उन्होंने इनके पार जाने के लिए सब प्रबन्ध ठीक कर के प्रातःकाल इन्हें नौका पर चढ़ा विदा किया। रात को ब्राह्मण ही के घर कीर्तन का आनन्द हुआ। रामचन्द्र ने भी कुछ उसका सुखभोग किया।

प्रभु ने हंस कर रामचन्द्र की ओर दृष्टि की। लोग कहते हैं कि रामचन्द्र ने तो अपनी जान पर खेल कर इनके पार करने का प्रबन्ध किया और उसके पुरस्कार में इन्होंने इनकी ओर हंस कर देखा तो इससे क्या हुआ? इससे यही हुआ कि उनका राज बन्धन क्षय हो गया; वे श्रीकृष्ण भगवान के चरणकमलों तक पहुंचने के अधिकारी हो गये। उन्होंने इनलोगों को गंगापार होने का प्रबन्ध कर दिया तो इन्होंने उन्हें भवसागर से एकदम ही पार उतार दिया।

नाव पर आपने तथा भक्तों ने नृत्य आरम्भ कर दिया था। मल्लाहों को प्रतिक्षण नौका के जलमग्न होने का भय होने लगा। वे मना करते और भय दिखाने लगे। पर मना करने से मानता है कौन? किसी प्रकार नांव उस पार प्रयागघाट पहुंची, जो मिदनापुर जिला में अवस्थित है।

स्नानानन्तर आज आप स्वयं भिक्षा मांगने गये। इन्हें इतनी भिक्षा मिलने लगी कि आवश्यकता से कहीं अधिक होने के कारण, इन्हें कई लोगों की भिक्षा अस्वीकार करनी पड़ी। इससे

उन लोगों के मन में कुछ क्लेश होते देख आपने फिर स्वयं भिक्षा के लिए कहीं जाना बन्द कर दिया।

आज के समान उस समय भिक्षुक, साधु, महात्मा, अतिथि और अभ्यागत को देख लोग नाक भौंह नहीं चढ़ाते थे। वरन् ऐसे व्यक्तियों के आगमन से लोग आनन्द मानते और उनका यथोचित सेवा सत्कार करते थे। सर्वत्र 'धर्म्मशालाएं' भी थीं। आज के सदृश नहीं। वहां यात्रियों को स्थान, भोजन सब कुछ मुफ्त मिलता था। एक द्रव्यहीन भी इच्छा और चेष्टा करने से सर्वत्र भारतवर्ष में तीर्थाटन और देशाटन कर सकता था।

घाटवालों के कारण उस समय उड़ीसा के यात्रियों को नदी पार होने में बड़ी कठिनाइयां होती थीं। बिना खेवा दिए पार होना सबको असम्भव था। साधु सन्तो के साथ भी यही बर्ताव था। एक स्थान में पहले तो घाटवाले ने इन लोगों से पैसा न पाने के कारण, इन लोगों को दूर कर दिया था। कुछ देर के बाद प्रभु को पार कर देने का विचार करके उसने पूछा "आप कितने आदमी हैं?" इन्होंने उत्तर दिया "इस संसार में हमारा कौन? हम अकेले हैं।" अतएव उसने इनको घाट पर बैठाया, पर इनके संगी भक्तों को वहां तक जाने नहीं दिया। थोड़ी देर में इन्हें घुटनों पर सिर दिए महा करुण स्वर से रोदन करते सुन कर उसने नित्यानन्द प्रभृति से उसका कारण पूछा। सब वृत्तान्त अवगत होने पर इनके चरणों की शरण ले उसने अपना कल्याण साधन किया और सब लोगों को पार उतार दिया। (१)

एक स्थान में नाव से उतर कर जाते जाते आप रुक कर पीछे लौटे और नदी के घाट पर आ पहुंचे। वहां सैकड़ों यात्री, जो घाटवालों से पीड़ित हो रहे थे, इनके चरणों पर रोते हुए गिरे।

१, रामपुर में गोस्वामी तुलसीदास के भी एक घाटवाल से उत्पीड़ित होने की बात उन की जीवनी में देखी जाती है।

यह दृश्य देख घाटवान को दया आ गई और उसने यात्रिगण को पार कर दिया। तब आपने फिर अपनी राह ली।

एक घाट पर घाटवाल ने इनलोगों से कुछ न पाने से, मुकुन्द का फटा कम्बल लेकर रोष में उसका छः टुकड़ा कर डाला।

आज भी घाटवाल कहीं कहीं लोगों को बड़ा क्लेश देते हैं और उचित से कहीं अधिक खेवा लेकर यात्रियों को पार करते हैं। सरकार से उन्हें वही खाता रखने की कदाचित् कोई आज्ञा नहीं, और कोई कभी देखने पूछने वाला भी नहीं। इससे उन्हें मनमाना अत्याचार करने की सुविधा रहती है।

गतवर्ष १९२४ ई० के ज्येष्ठ महीने में हमें अपने साले (१) के पौत्र के विवाह में ग़ाज़ीपुर के कारो ग्राम में बारात जाना पड़ा था। बारात बक्सर में गंगा पार हुई। इधर से पार होने में कदाचित् शहर ही में घाट होने से, हाकिमों के कानों तक शिकायत पहुंचने के भय से, घाटवाल ने चार रुपेये लेकर सबको सवारी आदि के साथ पार कर दिया; परंतु उधर से आने में तीन घंटा कहा सुनी के बाद उजियारभरौली में घाटवाल ने चौबीस रुपेये लेकर पार उतारा। खेवा चुकाने की रसीद मांगने पर उसने रसीद भी न दी। समझा कि रसीद देने से उसके बल पर मामला मुकद्दमा होने से उसका सब "भंडा फूट" जायगा। यदि घाटवालों के कामों का निरीक्षण हुआ करे, तो यात्रियों का बहुत कुछ कष्ट निवारण हो। घाटवालों की बात घाटों ही पर छोड़िए। अब धोबी की पाट की कथा सुनिए।

इसी यात्रा में राह में जाते जाते आप एक धोबी को कपड़ा धोते देख उसके पास पहुंच गये और उसे आपने हरि बोलने को

१. मु० प्रजापति लाल के पुत्र मु० रामचन्द्र लाल हमारे साले थे। उन्हींके पुत्र ब्रजबिहारी सहाय के लड़के ओंकार (ललन) का विवाह था। ये लोग बलिया जिला के हल्दी ग्राम से आकर डुमरांव में बसे है।

कहा। यह विचार कर कि साधु लोग उससे कुछ चाहते हैं। वह सिर नीचे किए अपना काम करता रहा। इन्होंने फिर हरिबोलने की आज्ञा की और यह भी कहा कि "हमलोग तुमसे कुछ चाहते नहीं; और यह तुम्हारे कार्य में भी बाधक नहीं होगा; तुम अपना काम भी करते जाओ और "हरि, हरि" भी बोलते जाओ। यदि दोनों न हो सके तो तुम हरि बोलो और हम तब तक तुम्हारा कपड़ा धोवें।" इसपर इनके भक्तों को हँसी आई। धोबी को भी हँसी आई। उसने सोचा कि "ऐसे विचित्र आदमी से तो कभी भेंट नहीं हुई थी। किसी प्रकार इनसे जान छुड़ाना ही अच्छा है।" अब तक उसका मस्तक अवनत ही था। अब उसने सिर उठा कर इनके चेहरे की ओर दृष्टि की। देखा, कि इनके नेत्रों से जल बहरहा है। पूछा कि "कहिए, क्या कहें, ?" इन्होंने हरिबोलने को कहा। उसने कहा "हरिबोले" इन्होंने फिर हरिबोलने की आज्ञा की। वह फिर बोला,। बस अब क्या था ? उसे हरिबोलने की धुन सी सवार हो गई। फिर दोनों हाथ उठाकर नाचने, रोने और हरिबोलने लगा। आप कुछ दूर जाकर भक्तों के संग पेड़ों की ओट में बैठे रंग देखने लगे।

यह नाचही रहा था कि इसकी स्त्री भोजन लेकर वहां आ पहुंची। इसका रंग देख पहले उसे हँसी आई उसने इसपे हंसी की। पीछे इसे भूतग्रस्त समझ भयभीत हो वह रोती चिल्लाती गांव की ओर दौड़ी। उसका रोना चिल्लाना सुन कर गांववाले वहां टूट पड़े और धोबी का ढंग देख सब चकित हो गये। किसीको इसे धरने पकड़ने का और इससे कुछ बोलने का साहस नहीं होता था। अन्ततः एक युवक ने साहस करके इसे पकड़ा। इससे इसको कुछ बाह्य ज्ञान हुआ और जैसे होली में मदमस्त व्यक्ति "हो हो, होली" कहता दूसरे से लिपट जाता है, यह भी उसे अंक में लगाकर "हरिबोल हरिबोल" कहने कगा। अब उसकी भी यही दशा हुई।

यह संक्रामक ऐसा फैला कि उपस्थित सब लोग "हरिबोल, हरिबोल" कह कर नाचने और रोदन करने लगे, यहां तक कि धोबिन भी इस कार्य में उनकी संगिनी हो गई।

उधर प्रभु ने अपनी राह ली, इधर कुछ काल के बाद सब शान्त हुए। पर इसका गाढ़ा रंग उनके हृदय पर जमा रहा। गौराङ्ग सर्वदा उनकी आखों में नाचते रहे और उन्हें नचाते रहे। ऐसे शक्तिसंचार की आलोचना आगे की जायगी।

फिर स्वर्णरेखा नदी में स्नान कर गौराङ्ग आगे बढ़े। राह में एकाएक भक्तों से बोल उठे "तुमलोग क्या हमारे साथ जाते हो? हमारा कोई संगी नहीं। तुमलोग आगे जाओ, अथवा हम।" भक्तों ने हँसी दबा कर कहा "आप ही जाइए।" बस वहां से आप एक दौड़ लगा कर जलेश्वर पहुंचे।

यह स्थान एक प्रधान शिवस्थान था। वहां बहुत से मन्दिर थे। आरती का समय था। आप जलेश्वर के मन्दिर में पहुंच कर नृत्य करने लगे। सब भक्तिरस में सराबोर हो गये। सबको यही प्रतीत होने लगा कि स्वयं भोलानाथ प्रकट हो कर भक्तों को भजन का भाव बता रहे हैं। "चैतन्य भागवत" कहता है:—

"देखि शिवदास सबे हइल विस्मित।
सबेइ बलेन शिव हइल विदित॥
आनन्दे अधिक करे सबे गीतवाद्य।
प्रभु नाचिते छेन तिलार्धेक नाहि बाह्य॥"

तब तक भक्तगण भी पहुंच गये। उन लोगों के योगदान से नृत्य और भी मधुर हो चला; सबोंका आनन्द भी दूना बढ़ गया। नृत्य समाप्त होने पर सबोंसे मिलजुल कर आप आगे की राह तय करते, रेमुना पहुंचे।

यहां गोपीनाथ मुरलीधर की मूर्ति है। लोग उसे उद्धव द्वारा स्थापित बताते हैं। इसीसे "उद्धव, उद्धव" पुकारते गौराङ्ग ने

मन्दिर में प्रवेश किया और "उद्धव के कृष्ण" कह कर आपने श्री-गोपीनाथ को नमस्कार किया। फिर प्रदक्षिण करते करते ऐसा नृत्य करने लगे कि लोगों को इनके स्वयं गोपीनाथ होने का भ्रम होने लगा। नाचते नाचते जब आपने गोपीनाथ के चरणों में मस्तक नवाया तो उनके पुष्प मुकुट से कुसुम का एक गुच्छा आपके माथे पर आप ही आप गिर पड़ा। इन्होंने सानन्द उससे अपने मस्तक को आभूषित किया। दिन भर नृत्य होता रहा। [illegible] भक्तों के यत्न से आपने विश्राम लिया। ये क्षीर-प्रसाद पाने की इच्छा से रात को वहीं ठहर गये।

यह गोपीनाथ जी क्षीरचोर भगवान् के नाम से प्रसिद्ध थे। इसका कारण पाठकों को आगे के परिच्छेद में ज्ञात होगा।

चतुर्थ परिच्छेद

श्रीगोपीनाथ क्षीरचोर तथा माधवेन्द्रपुरी



मा धवेन्द्र पुरी का नाम पाठकों को स्मरण होगा। आप एक महान महात्मा थे। तीर्थ स्थलों में भ्रमण करते आप व्रजदेश में गोवर्द्धन की प्रदक्षिणा तथा गोविन्दकुंड में स्नान कर सन्ध्या समय एक वृक्ष के नीचे बैठे थे। एक अतीव सुन्दर बालक एक कटिया दूध उनके सामने रख एवं उसे पान करने की प्रार्थना कर चला गया और कहता गया कि वह फिर आकर बर्तन ले जायगा। उसकी मधुर बातों ही से आपका पेट भर गया और उसके रूप-पानीय पान से ही आप की पिपासा निवारण हो गई। पुरी उसीके ध्यान में निमग्न रहे।

वह बालक बर्तन लेने तो नहीं आया, पर स्वप्न में प्रकट हो और उनका हाथ धरे एक कुंज में ले जाकर तथा एक स्थान दिखा कर बोला कि "हमीं गिरधर गोपाल हैं; इस स्थान में रहने से शीत, ग्रीष्म तथा वर्षा से दुःख पा रहे हैं; नगरनिवासियों की सहायता से हमें यहां से ले जाकर किसी सुरक्षित स्थान में स्थापित करो। हम दिनों से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे थे।"

पुरी के उद्योग से यह कार्य बड़े समारोह से सम्पन्न हुआ। बड़े उत्साह से उत्सव किया गया। कई दिनों तक सहस्रों ब्राह्मण एवं अन्य नर नारियों को भोजन कराया गया। जवार तथा अन्य प्रान्तों के लोग दर्शन पूजन के निमित्त आने लगे। एक धनाढ्य क्षत्रीय ने मन्दिर निर्माण कराया, किसीने भोजनागार और किसीने प्राचीर बनवाया।

पुनः गिरिधर ने नीलाचल (जगन्नाथ) से चन्दन लाकर उनके अंग प्रत्यंग में लेपन करने के लिए स्वप्न में पुरी को आदेश

दिया। आप वहां के पूजादि का प्रबन्ध करके उठ खड़े हुए और पूर्वदेश की यात्रा को चले।

शान्तिपुर में पहुंचने पर उनकी धर्मनिष्ठा तथा ध्यान पूजा से मोहित हो अद्वैताचार्य उनसे दीक्षित हुए। फिर आप रेमुना गये। वहां उक्त श्रीगोपीनाथ का सौन्दर्य देख आप परम विह्वल हो नृत्य गान करने लगे। तदनन्तर वहां के पुजारी से आप उस स्थान की पूजा पद्धति के विषय में पूछताछ करने लगे। उनके मुख से बारह पात्रों में "अमृत-केलि" अर्थात् "क्षीर प्रसाद" का नित्य भोग लगाये जाने की बात सुन कर उनके मन में यह बात आई कि यदि इस क्षीर का स्वाद उन्हें एक बार ज्ञात हो जाय, तो अपने ठाकुर को भी वह यही भोग लगाया करें। पर ऐसी इच्छा से वे लज्जित हुए और उन्होंने भगवान से क्षमा-प्रार्थना की।

भोग और आरती समापन्न होने के अनन्तर वे मन्दिर से दूर रात को एक निर्जन स्थान में बैठे भजन करने लगे। श्रीगोपीनाथ ने अपने पुजारी को यह स्वप्न देकर कि क्षीर का एक बासन उनके चीर के भीतर छिपा है, उसे माधवेन्द्र जी के पास रात ही को भेजवा दिया जाय।

पुरी ने अनिर्वचनीय प्रेमानन्द से वह क्षीर पान किया और उस बासन को चूर चूर कर बहिर्वास (ओढ़ने के कपड़े) में बाँध लिया। उसका एक कण आप नित्य पाया करते थे।

इसी कारण से रेमुना के श्रीगोपीनाथ का " क्षीरचोर " नाम पड़ा था।

फिर श्रीजगन्नाथ का दर्शन कर एवं वहां के पुजारियों की सहायता और उद्योग से एक मन चन्दन तथा बीस तोला कपूर प्राप्त कर आपने वहां से प्रस्थान किया। स्थानीय राजा ने एक ब्राह्मण

तथा एक नौकर को राहखर्च और राज्यकर्मचारियों तथा घाट-वालों के नाम आज्ञापत्र देकर, इनके साथ भेजा।

आप रेमुना में लौट आये। वहां उन्हें पुनः क्षीर प्रसाद मिला। रात को गोवर्द्धननाथ ने उन्हें फिर स्वप्न दिया कि "हमें चन्दन और कर्पूर समस्त प्राप्त हो गया। तुम अपने पास का चन्दन कर्पूर श्रीगोपीनाथ को नित्य लेपन करो और कराओ। हम दोनों में अभिन्नता जानो।"

ग्रीष्म भर लेपन कर, कराकर और पुनः नीलाचल जा कर पुरी ने वहीं वर्षाकाल व्यतीत किया।

रेमुना के मन्दिर में बैठे प्रभु ने भक्तों से कहा था कि "देखो माधवेन्द्र पुरी कैसे महान पुरुष और भाग्यवान थे। कृष्ण भगवान ने उन्हें एक वार साक्षात् वालक रूप में और तीन वार स्वप्न में दर्शन दे उनको कृतार्थ किया। एवं उनके लिए इन्हीं गोपीनाथ ने क्षीर चुराया और अपना "क्षीरचोर" नाम रखाया।

अंतकाल में निज शिष्य ईश्वरपुरी की अहर्निश सेवा से अतिप्रसन्न हो आपने अपना सब कृष्णप्रेम उन्हींको दिया था एवं यह श्लोक पढ़ते अपना प्राण विसर्जन किया था.—

"अयि दीनदयार्द्र नाथ हे मथुरानाथ कदावलोक्यसे।
हृदयं त्वदलोककातरं दयित ? भ्राम्यति किं करोम्यहम्॥"

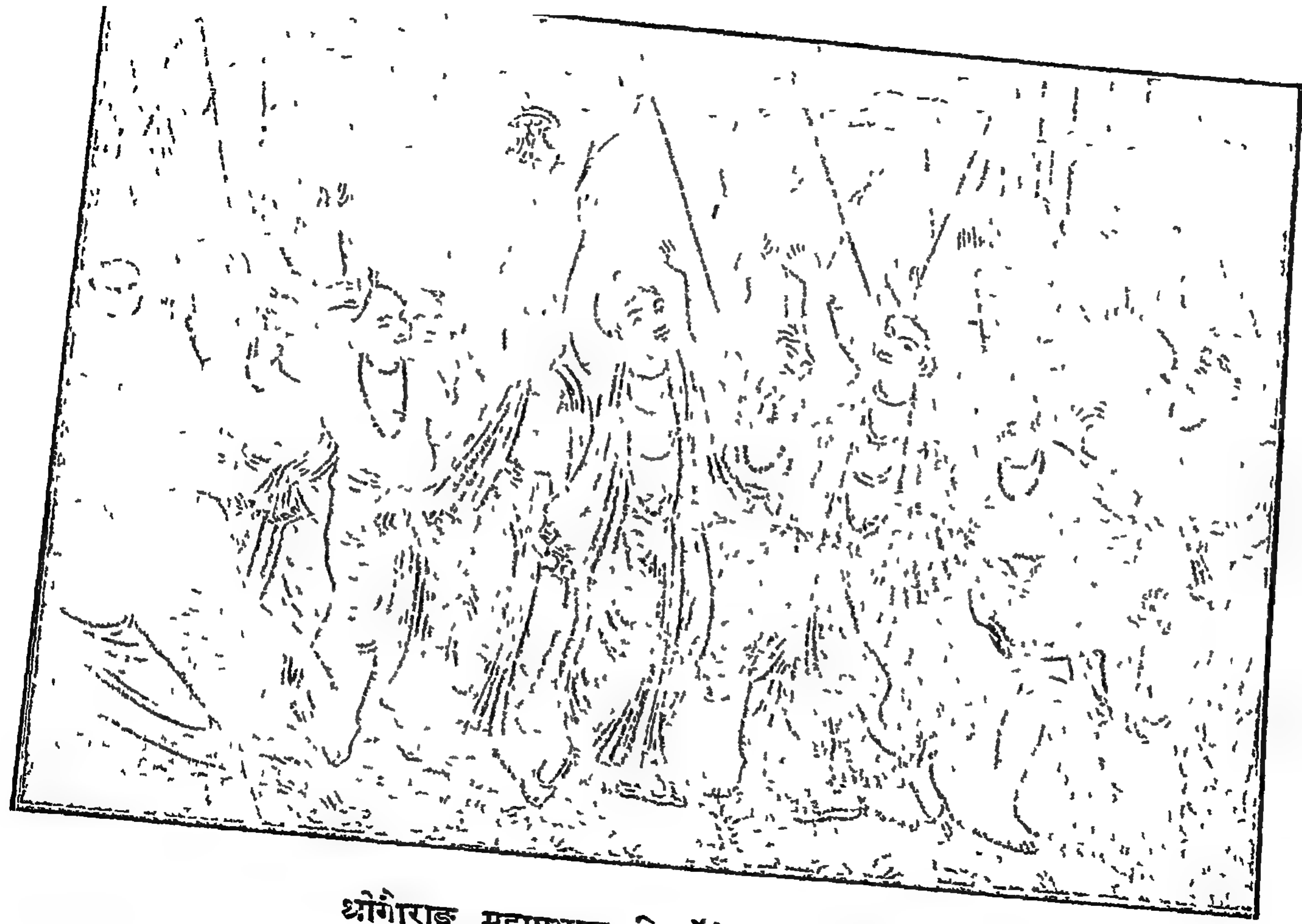
आशय यह कि "हे प्रभु! दीन जन को देख आपका हृदय दया-पूर्ण हो जाता है। हे प्रिय! आपके दर्शन के लिए हमारा दिल वेचैन हो आपकी खोज में इधर उधर घूम रहा है। हे मथुरानाथ! आपके दर्शन का हमें कब सौभाग्य होगा?"

अन्तसमय ऐसा श्लोक और वचन केवल महापुरुष ही के मुख से स्फुरित हो सकता है, अन्य के मुख से नहीं।

यह श्लोक भक्तों को सुनाते हुए प्रभु प्रेम में विह्वल हो अचेत हो गए। नित्यानन्द ने इन्हें अंक में लगाया। तब ये आनन्द में रोते,

चिल्लाते, हंसते नाचते और गाते इधर उधर दौड़ने लगे। माने इस श्लोक ने इनके प्रेम का किवाड़ खोल दिया ; किन्तु लोगों के अधिक एकत्र हो जाने से ये चैतन्य हुए। भोग आरती की गई। क्षीर प्रसाद के सब पात्र आपके सामने रखे गये। आपने अपने और अपने भक्तों के लिए एक एक रख कर शेष पात्रों को लौटा दिया।

रात को संकीर्तन का आनन्द रहा। दूसर दिन मङ्गलारती देख आपने वहां से प्रस्थान किया।



श्रीगौराङ्ग महाप्रभुका शिष्योंके साथ हरिकीर्तन ।

पञ्चम परिच्छेद

साक्षी गोपाल



मुना से सब लोग जाजपुर गये। उस समय यह स्थान बड़ाही समृद्धिशाली था। यहां देवस्थानों का भरमार था। कारण कि उस समय तक इस प्रान्त में अन्य प्रान्तों के समान बुतशिकनों को मन्दिरों पर कृपादृष्टि करने का पूरा अवसर नहीं प्राप्त हुआ था। यहां के प्रधान देवता आदिवराह थे। यहां विरजादेवी का मन्दिर था। यहां सब देवताओं का मन्दिर था। यह शैवों का मुख्य अखाड़ा था। ६०० ई० में यह राजधानी भी था।

यहां वैतरनी नदी भी बहती है। उसीमें स्नान के बाद सब लोगों ने वराह भगवान का दर्शन किया। प्रभु ने कुछ काल वहां नृत्य भी किया। विरजा देवी के निकट आपने कृष्णभक्ति के लिए गोपीभाव से प्रार्थना की। सब देवालयों का अकेले दर्शन करने के अभिप्राय से आप चुपके भक्तों से विलग हो गये। बहुत खोजने के अनन्तर निराश होकर उन लोगों ने वहीं एक स्थान में रात बिताई। दूसरे दिन आपने स्वयं आकर भक्तों का आनन्द वर्द्धन किया।

फिर सब लोग कटक[1] में साक्षीगोपाल के स्थान पर विराजमान हुए। गोपाल के दर्शन के समय उनका सौन्दर्य देख और आनन्द-

---

१. ईस्वी सन से ३ शतक पूर्व उडीसा प्रदेश मगधाधिप के अधीन था। अशोक की शिलालिपियां यथावधि यहां विद्यमान हैं। वहां के राजा दिनों तक बौद्धधर्मानुयायी थे। ४७३ ई० में ययाति केसरी नामक वेदधर्म्म का माननेवाला राजा यहां का अधिपति हुआ। वह शैव था। भुवनेश्वर का मन्दिर उसीका निर्माण कराना हुआ है। उस वंश का एक महा प्रतापी राजा मकर केसरी ने कटक नगर बसाया और उसीको अपनी राजधानी बनाया। ११३२ ई० तक इस वंश का राज्य रहा।

मग्न हो नाचने गाने लगे। उसी अवस्था में आपने उनकी बड़ी स्तुति की। श्रीगोपाल की मूर्ति तथा गौराङ्ग के रूप में ऐसा सादृश्य था कि देखनेवालों को यह भ्रम होने लगा कि इन्हींकी पत्थर की मूर्ति बना कर वहां स्थापित हुई है। जब ये एकटक मूर्ति का अवलोकन कर रहे थे तब दर्शकों को ऐसा प्रतीत होता था मानो एक ही व्यक्ति दो रूप धारण कर चुपचाप नेत्रों के द्वारा बातें कर रहा है।

रात को लोग वहीं ठहरे। नित्यानन्द इसके पहले भी वहां गये थे। उन्होंने गोपाल की कथा लोगों को सुनाई। कथा यह है:—

एक बार विद्यानगर के दो (१) ब्राह्मण घर से तीर्थयात्रा के लिए निकल कर गया, काशी, प्रयाग इत्यादि स्थानों में देवदर्शन करते श्रीवृन्दावन जाकर श्रीगोपाल मन्दिर में कुछ दिन ठहरे। उनमें से एक कुछ वृद्ध और दूसरा युवक था मार्ग में युवक ने वृद्ध ब्राह्मण की बड़ी सेवा की। इन्हें किसी प्रकार का क्लेश नहीं होने दिया। वृद्ध ने उसके बर्ताव से अति प्रसन्न हो एक दिन उससे कहा कि "हम इस सेवा के कारण तुम्हारे बहुत बाधित हैं। इसके पुरस्कार में तुम्हें और क्या दे सकते हैं? घर लौटने पर अपनी कन्या से तुम्हारा विवाह कर देंगे।" युवक बोला "आप असम्भव बातें क्यों कर रहे हैं? आपके समान न हम कुलीन हैं, न धनी; और न हम बहुत पढ़े लिखे ही मनुष्य हैं, आपके घरवाले कभी यह सम्बन्ध पसन्द नहीं करेंगे। वृद्ध ने गोपाल को साक्षी रख कर विवाह की प्रतिज्ञा की।

घर लौटने पर वह वृद्ध सोचने लगा कि "हमने प्रतिज्ञा तो की, पर उसका पालन कैसे होगा? घरवाले क्या सहमत होंगे? अच्छा उन लोगों पर पहले यह बात प्रकट तो करें।" जब उसने अपनी

- सम्भवतः यह वह विद्यानगर है; जहां के हाकिम रामानन्द राय थे। वह स्थान उड़ीसा राज्य के अधीन था।

स्त्री और पुत्र से यह बात कही, वे मार मार कर दौड़े और पत्नी विष खाने पर तैयार हुई।

कुछ दिन बीतने पर जब वह युवक वृद्ध के पास जाकर प्रतिज्ञा पूर्ण करने की प्रार्थना की, तब वृद्ध का पुत्र लाठी लेकर उसे मारने दौड़ा। पञ्चों के एकत्र होने पर उसने कहा कि "इसने हमारे पिता को राह में धतूरा खिला कर, उनके पास का सब रुपया पैसा ले लिया और अब यहां आकर यह प्रतिज्ञा की बातें करता है।"

युवक ने कहा कि "यह प्राणी सर्वथा मिथ्या भाषण कर रहा है। इसके पिता के बारम्बार आग्रह करने पर हमने विवाह करना स्वीकार किया है और श्रीगोपाल को साक्ष्य रखा है। वही हमारे साक्ष्य हैं; जिनका कथन त्रयलोक में सत्य है।"

वृद्ध ने कहा कि "हां! यदि वे यहां विराजमान होकर साक्षी दें तो हम अपनी कन्या तुम्हें अवश्य देंगे।" और अपने मन में समझा कि "कृष्ण भगवान् निश्चय हमारा वचन सत्य करेंगे।" उसका पुत्र भी इसपर राज़ी हुआ।

अन्ततः एक प्रतिज्ञा-पत्र पर दोनों ने सही की। युवक के वृन्दावन जाकर बहुत अनुनय विनय और प्रार्थना करने से गोपाल इस प्रतिज्ञा पर उसके साथ आने को राज़ी हुए कि "मार्ग में नूपुर ध्वनि होती चलेगी और उसीसे युवक को ज्ञात होगा कि श्रीगोपाल उसके संग आ रहे हैं और यदि वह राह में पीछे फिर कर देखेगा तो वह मूर्त्ति वहां से आगे नहीं बढ़ेगी और उसे नित्य एक सेर अन्न भोग लगना होगा।

युवक वहां से लौटा और श्रीगोपाल भी पीछे पीछे चले। नगर के निकट पहुंचने पर युवक ने एक बार पीछे देख निश्चय कर लेने के अभिप्राय से जो उलट कर पीछे की ओर दृष्टि की, तो मूर्त्ति वहीं स्थिर हो गई और गोपाल हँस कर बोले "अब तो आगे न जायंगे।"

युवक के श्री गोपालके आगमन का सम्वाद देने से नगर निवासी सब चकित हो वहां उपस्थित हुए। उनका सौन्दर्य देख परमानन्द को प्राप्त हुए। वृद्ध ने सहर्ष साष्टांग प्रणाम किया। कन्या युवक को प्राप्त हुई। प्रभु ने प्रसन्न होकर दोनों ब्राह्मणों से कहा कि "तुम लोग जन्म जन्म हमारे भक्त सेवक होगे।" आज्ञा होने पर दोनों ने यही वर मांगा कि "अब आप यहीं विराजिए, जिससे संसार में इन दीनों पर आपकी दया की बात प्रकट होती रहे।"

श्रीगोपाल वहीं ठहर गये और दोनों ब्राह्मण उनको सेवा में तत्पर हुए। वहां के राजा दर्शन से अत्यन्त आह्लादित हो एक मन्दिर निर्माण कराया और भोग सेवा के निमित्त सम्पत्ति अर्पित की। श्रीगोपाल, "साक्षीगोपाल के नाम से ख्यात हुए।

परम-कृष्णभक्त उड़ीसा के राजा पुरुषोत्तम, वह देश विजय करने पर, बहुत प्रार्थना करके गोपाल को अपनी राजधानी में ले गये।

एक बार साक्षीगोपाल का दर्शन करते समय रानी की यह अभिलाषा हुई कि "यदि गोपाल की नाक छेदी होती, तो वह अपना बहुमूल्य मोती उन्हें पहना देती। रात को उन्हें नाक में छिद्र होने का स्वप्न होने से, उन्होंने अपने पति के संग जाकर वह मोती गोपाल की नाक में सप्रेम पहना दिया।

प्रातःकाल की आरती का आनन्द लेकर गौराङ्ग सहचरों के संग वहां से आगे बढ़े और भुवनेश्वर पहुंच कर श्रीशिव भगवान का दर्शन करने गये। प्रभु ने प्रेमयुत शिव जी के सम्मुख नृत्य गान किया।

यहां की मूर्त्ति के विषय में अमिय निमाई चरित में श्रीयुत शिशिर कुमारघोष लिखते हैं कि "इसके समान सुन्दरमूर्त्ति

जगत में कहीं नहीं है। यूनान, रूम में अनेक मनोहारिणी मूर्तियां हैं सही, किन्तु देव-मूर्ति में जो भावभंगी उचित है, वह युरोप में कहां? इसके निर्माण में कारीगरी के साथ प्रेम-भक्ति भी दरकार है।"

फिर कमलपुर में भागीनदी स्नान कर प्रभु कपोतेश्वर महादेव के दर्शन को गये; किन्तु नित्यानन्द नहीं गये और उसी ओर भिक्षा करने के अभिप्राय से दंडवाहक जगदानन्द प्रभु के दंड को नित्यानन्द के हवाले कर प्रभु के साथ हुए। इधर नित्यानन्द ने उस दंड का तीन खंड करके उन्हें उसी नदी में फेंक दिया।

मन्दिर से प्रत्यागत होने पर श्रीजगन्नाथ के मन्दिर का शिखर अवलोकन करने से प्रभु भावाभिभूत हो प्रेम में साष्टांग दंडवत और नृत्य करने चले। कभी नाचते कभी हँसते कभी रोते, चिल्लाते और गरजते थे। भक्तगण भी नाचते गाते पीछे पीछे जा रहे थे। इसीमें तीन कोस को आपने हज़ार कोस कर डाला।

अठारह नाला पहुंचने पर आपको वाह्यज्ञान हुआ; तब आप ने दंड की खोज की। नित्यानन्द ने कहा कि "आप के भावावेश में आपको धरते समय हम दोनों लुढ़क पड़े, दंड टूट गया; इसमें हमारा अपराध है। दंड तो गया, आप हमें जो चाहिए दंड दीजिये।" किन्तु जगदानन्द ने यथार्थ बात प्रभु को कह सुनाई।

प्रभु ने कहा 'तुम लोगों ने हमारे साथ खूब भलाई की। एक दंड को भी रक्षा न कर सके। अच्छा, श्रीजगन्नाथ के दर्शन को तुम लोग आगे जाओ, या हमको जाने दो।" मुकुन्द ने कहा "प्रभु आप ही आगे जायं; हम सब पीछे जाकर दर्शन करेंगे। बस प्रभु ने वहां से दौड़ लगाई।

क्यों एक ने दंड तोड़ा, दूसरे ने तोड़ने दिया और फिर ये क्यों क्रुद्ध हुए, कोई नहीं कह सकता।

षष्ठ परिच्छेद

सार्वभौम का उद्धार



अठारह नाला से सिंह के समान आकर आप श्रीजगन्नाथ के मन्दिर में प्रवेश कर गये। द्वार रक्षकों को निवारन करने का अवकाश भी नहीं मिला। इन्हें देख जब तक वे मार मार कर इनको ओर दौड़े, तब तक पुरुषोत्तम भगवान के दर्शनमात्र ही से प्रेमोन्मत्त हो उन्हें अपने हृदय में ले लेने या स्वयं उनके हृदय में समा जाने के अभिप्राय से ज्यों ही आपने छलांग मार कर उन्हें स्पर्श किया, आप अचेत हो गच पर गिर पड़े।

संयोगवश सार्वभौम, वासुदेव उस समय वहीं मन्दिर में थे। उन्होंने रक्षकों को मना किया, और उन सबोंका रंग बेरंग देख उन्होंने स्वयं इनके शरीर को निज शरीर से ढक लिया, जिससे किसीको हाथ चलाने का साहस नहीं हुआ।

सार्वभौम से हमारे पाठक पूरी रीति से परिचित हैं। आप अपने समय के विद्यादिग्गज, वेदान्ती तथा नैयायिक जगद्विख्यात महान पंडित थे। आप भी नवद्वीप के विद्या नगर में उत्पन्न हुए थे और वहां अपनी पाठशाला में बहुत से विद्यार्थियों को न्यायशास्त्र की शिक्षा देते थे। उनके पिता विशारदजी गौराङ्ग के नाना के सहपाठी थे और इनके पिता जगन्नाथ मिश्र (पुरंदर) का बहुत सम्मान करते थे। पुरन्दर सार्वभौम के सहाध्यायी थे। सार्वभौम की सुख्याति सुन कर उड़ीसा के महाराज प्रताप रुद्र आग्रहपूर्वक उन्हें पुरी में लाये थे। यहां भी उन्होंने एक पाठशाला खोली थी। यहां उनके शिष्यों की संख्या बहुत अधिक थी। आप काशी में अध्ययन कर के वेदों में भी पारंगत हुए थे। सैकड़ों दंडी

काशी न जाकर उनसे वेद पढ़ते थे। धनधान्न पूरा था, नाम भी बहुत बड़ा था। एक प्रकार से पुरी के शासनकर्त्ता वेही थे। इसीसे मन्दिर के कर्मचारीगण एवं सर्वसाधारण उनका दाब मानते थे।

सार्वभौम को प्रभु के सौन्दर्य तथा प्रेमानन्द से महा आश्चर्य्य हुआ। भोग का समय निकट होने तक, इन्हें चैतन्य लाभ करते न देख, वे इन्हें अपने घर ले जाकर एव एक स्वच्छ स्थान में लिटाकर, इनको चैतन्य करने की चेष्टा में लगे।

वे इन्हें देख रहे हैं। और मनही मन कह रहे हैं 'यह कृष्ण का सात्विक प्रेम है। जिस पुरुष को नित्यसिद्धि प्राप्त है उसीमें यह गुण परिलक्षित होता है। जिसकी साधना पराकाष्ठा की हो उसीके हृदय में ऐसा आनन्द सम्भव है। एक साधारण युवक में इसका प्रकाश हमें आश्चर्य में डाल रहा है। जो हो, शास्त्र कथित कृष्ण प्रेम कल्पित नहीं; वह सर्वथा सत्य है, यह बात इन्हींके कार्य से प्रमाणित होती है। इन्हें पाकर हम अपनेको महा भाग्यमान समझते हैं।"

वे तो उधर ये बातें सोच रहे थे, इधर नित्यानन्द आदि मन्दिर के फाटक पर पहुंचे तो, वहां उन लोगों को प्रभु के भावावेश का वृत्तान्त प्राप्त हुआ। ईश्वर कृपा से थोड़े ही दूर आगे बढ़ने पर लोगों को सार्वभौम के बहनोई गोपीनाथ आचार्य से भेंट हुई। उन्हें मुकुन्द से बहुत आत्मीयता थी और वे प्रभु के भक्त भी थे। दण्ड प्रणाम के अनन्तर प्रभु का सब हाल जानने से वे इन लोगों को सार्वभौम के घर ले गये।

यथायोग्य अभिवादन के पश्चात्, ये लोग सार्व्वभौम के पुत्र चन्द्रशेखर के संग श्रीजगन्नाथ के दर्शन को गये। वहां से लौट आने पर लोग जोर जोर से हरिनामोच्चारण करने लगे। उससे अल्पकाल में प्रभु को पूर्णरूपेण बाह्यज्ञान प्राप्त हुआ और आप "हरि हरि" कहते उठ बैठे।

फिर समुद्र स्नान के अनन्तर लोगों का भोजन हुआ। सार्व्वभौम ने प्रभु से कहा कि "आप हमारे या हमारे किसी आदमी के संग दर्शन को जाया कीजियेगा, अकेले न जाइयेगा।" प्रभु ने कहा कि "हम गरुड़द्वार से दर्शन किया करेंगे, भीतर प्रवेश नहीं करेंगे।" पुनः सार्वभौम ने अपनी मौसी के घर लोगों को ठहराने और सर्वदा साथ ले जाकर दर्शन कराने के लिए गोपीनाथ को आदेश किया। यह उनके मनही की बात हुई।

फिर अपने भोजन के समय गोपीनाथ के मुख से सब बातें सुन कर भट्टाचार्य को महाआनन्द हुआ कि युवक संन्यासी उनके ग्रामवासी उनके स्वजन और ऐसे सुजन हैं। उन्होंने प्रभु के नाना तथा पिता से अपने पिता का तथा अपना सम्बन्ध कथन कर बहुत हर्ष प्रगट किया।

फिर प्रभु के पास आकर भट्टाचार्य ने निवेदन किया कि "आप परम सद्वंशीय हैं एवं आपके नाना और पिता से हम लोगों का सदैव घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। आप हमारे योंही पूज्य हैं और उस पर सँन्यासी हुए। अतएव आप हमें अपना दास समझ कर हम पर सदा कृपा दृष्टि रखियेगा।"

प्रभु ने कानों पर हाथ रख कर कहा "आप यह क्या कह रहे हैं? हम सँन्यासी हुए हैं सही, पर आप सँन्यासियों के शिक्षागुरु हैं। आप परम दयालु हैं। जगत् के उपकारार्थ सब को शिक्षा देते हैं। हमें भला बुरा का ज्ञान नहीं। आपका आश्रय लिया है। हमें बालक समझ, हमें उपदेश कीजियेगा।

पहले प्रभु का महाभाव देख सार्व्वभौम के मन में इनके प्रति बहुत ऊंचा ख़्याल हुआ था; परन्तु इनका वृत्तान्त तथा इन की बातें सुन कर उनके मन से वह बात जाती रही। हां! कुछ वात्सल्य का अवश्य उदय हुआ। सँन्यासी होने से घर के बालक को प्रणाम करना पड़ता है, इसकी कुछ ईर्ष्या मन में निश्चय अंकुरित हुई।

दूसरे दिन, प्रातःकाल गोपीनाथ इनलोगों को श्रीजगन्नाथ का दर्शन कराकर सार्वभौम की सभा में ले गये। उनके प्रणाम करने पर जब, इन्होंने "कृष्णमतिरस्तु" कहा, उनके विद्यार्थी सब ठहाका लगाने लगे कि "सँन्यासी हो कर ऐसा कहते हैं। ये पागल हैं या मूर्ख।" यह बात भट्टाचार्य को बहुत बुरी लगी; क्योंकि किसी भद्रपुरुष को देख कोई शिष्य गुरु के सामने ही उसकी हँसी उड़ावे, तो उसका आक्षेप गुरु पर ही होता है। अतएव सार्वभौम इन लोगों को एकान्त में ले जाकर वार्तालाप करने लगे। प्रभु ने कहा कि 'हमने आपका आश्रय लिया है। आप जगदुपदेष्टा हैं। देखियेगा और उपदेश कीजियेगा; जिस हम भवकूप में न पड़ें'"।

सार्वभौम ने कहा कि "उपदेश की आवश्यकता नहीं। आप को जो कृष्णभक्ति हुई है, वह आज के मनुष्यों में दुर्लभ है; परन्तु इस वयस में सँन्यास ग्रहण अच्छा नहीं हुआ।"

इसके अनन्तर और लोग तो चले गये; परन्तु सार्वभौम, गोपीनाथ तथा मुकुन्द वहां रह गये।

पूछने से यह जानकर कि प्रभु का संन्यास नाम "कृष्णचैतन्य" है और ये "भारती" सम्प्रदायके सँन्यासी है—सार्वभौम ने कहा किनाम तो बड़ा सुन्दर है पर सँन्यासियों में यह सम्प्रदाय निकृष्ट है। इन्होंने किसी उत्तम सम्प्रदाय के सँन्यासी को अपना गुरु क्यों नहीं बनाया?" बस दोनों साले बहनोई में इसी बात पर तर्क बितर्क और हुज्जत हवाजत आरम्भ हो गया।

गोपीनाथ—स्वामी जी को बाह्याडम्बर का ध्यान नहीं। सँन्यास लेना था किसीसे ले लिया।

सार्वभौम—तुम बाह्यावेद्या किसे कहते हो?

गोपी०—इसीको कि कौन सम्प्रदाय अच्छा है कौन नहीं। ये असार विषयों को आप मन में स्थान नहीं देते।

सार्व०—तुमने ठीक नहीं कहा। जब सँन्यास लेना था, तब बूझ समझ कर गुरु करना चाहता था।

गोपी०—ये सब बातें दम्भ से उत्पन्न होती हैं। ऐसी वासना की वृद्धि न करनी ही उत्तम है।

सार्वभौम—गौरव की वासना में दोष क्या है? संसार के सब कामों ही में गौरव लगा हुआ है। बालकों सी बातें मत करो। हमारा कहना तो उचित न होगा; तुम लोग इन्हें राय दो। हम एक योग्य महात्मा बुलाकर इनका पुनः सँन्यास संस्कार करा देंगे।

गोपी०—उनके सामने पांडित्य काम नहीं आवेगा। आप बार बार उनके प्रति उदारता दिखाने की बातें कहते हैं। उन्हें किसीकी सहायता की अवश्यकता नहीं। वे स्वयं भगवान हैं।

इस पर जैसे बिडाल को देख कौवे सब "कांव कांव" करने लगते हैं, सर्वभौम के सब विद्यार्थी चिल्लाने लगे 'क्या प्रमाण? क्या प्रमाण?" नैयायिक शिरोमणि के शिष्य, स्वयं न्याय पढ़नेवाले छात्र, भला बिना प्रमाण के कोई बात क्यों मानने लगे? वे तो कदाचित् बिना प्रमाण के पिता को भी पिता समझने के इच्छुक नहीं हो सकते।

अपने शिष्यों का यह व्यवहार भट्टाचार्य को बहुत बुरा लगा। उनके बहनोई के साथ क्या उनके शिष्य और सेवक, और वह भी एक ऐसे महात्मा के विषय में जिन्हें वे आन्तरिक स्नेह और अति आदर की दृष्टि से देखते हैं, बहस करने का साहस करेंगे? विशेषतः जबकि वे महाशय स्वयं उन्हींसे बातें कर रहे हैं। निश्चय यह कुशिक्षा का परिचायक होगा, परन्तु यह समझ कर भी सार्वभौम ने उन लोगों को निवारण नहीं किया।

गोपीनाथ ने कहा कि 'आप इनकी महिमा नहीं जानते; परंतु शीघ्र ही आप भी जानेंगे कि वे क्या हैं?

इधर इन दोनों में आलाप होता था। उधर "क्या प्रमाण" का कोलाहल था।

गोपीनाथ ने अपने साले से कहा "प्रमाण यही कि इनमें ईश्वरीय सब लक्षण और गुण वर्तमान हैं। शिष्यों के यह कहने पर कि "यह कथन किस अनुमान से सिद्ध होगा" उन्होंने उत्तर दिया कि "ईश्वर तत्व का ज्ञान अनुमान से नहीं होता। उसके जानने का उपाय केवल ईश्वरकृपा है। आप जगद्गुरु अद्वितीय पंडित हैं सही, शास्त्रसमूह आपके हाथों के खिलौना हैं सही, पर उस शक्ति से आप ईश्वर को पहचान नहीं सकते, जब तक कि स्वयं ईश्वर कृपा न करें।"

अब प्रमाण का संक्रामक भट्टाचार्य को भी छू गया। गोपीनाथ पर भगवान की कृपा कैसे है, इसका प्रमाण पूछने लगे।

गोपीनाथ उनके दाव में न आकर बोले "जो घटनाएं आपको आंखों के आगे हुई हैं, उन्हें भी देख कर जब आपने इनको अब तक नहीं पहचाना तो निश्चय आपपर प्रभु की कृपा लेशमात्र भी नहीं है।

सार्वभौम रंग बेरंग देख कर बोले "भाई! शास्त्रों में कलियुग में अवतार की बात नहीं। इसीसे ईश्वर का नाम त्रियुग पड़ा है; परन्तु सँन्यासी परम भागवत हैं इसमें सन्देह नहीं। हम इसे स्वीकार करने को अवश्य तैयार हैं।"

गोपीनाथ ने कहा कि "आपको शास्त्रज्ञ होने का अभिमान है, पर भागवत तथा महाभारत की ओर ध्यान नहीं देते। दोनों में कलियुग में अवतार की बातें हैं। और आप इसके विरुद्ध कथन कर रहे हैं। कलि में भगवान मारकाट के निमित्त जन्म नहीं ग्रहण करेंगे। केवल धर्म्म संस्कार के लिए प्रादुर्भूत होंगे। इसीसे उन

का नाम त्रियुग कहा गया है। भला इन श्लोकों (१) का आप क्या अर्थ करते हैं? आपसे इस विषय में बातें करनी ऊसर खेत में बीज बोने के समान है। जब उनकी कृपा होगी आप स्वयं समझ जाइयेगा। आपके शिष्य जो हँसी उड़ा रहे हैं, उनका दोष नहीं। वे माया के हाथ में लट्टू हो रहे हैं।

सार्वभौम ने हँस कर कहा "अच्छा अब बस करो। प्रभु को हमारी ओर से निमन्त्रण कर उन्हें पहले भोजन कराओ। पीछे हमें शिक्षा देने का बहुत समय मिलेगा।

मुकुन्द मन में बड़े दुःखित थे; पर आचार्य गोपीनाथ के तर्क से उनका चित्त बहुत कुछ शान्त हुआ।

फिर दोनों ने प्रभु को भट्टाचार्य का निमन्त्रण दिया और वहां जो बातें हुई थीं। उसका भी हाल कहा। मुकुन्द ने यह भी निवेदन किया कि "गोपीनाथ को इस बात का बहुत दुःख हुआ है कि वे इनके कुटुम्ब होकर ऐसी बातें कहते हैं और इसीसे गोपीनाथ ने आज उपवास भी किया है।" प्रभु ने कहा कि "वात्सल्य और स्नेह के कारण जिसमें वे हमारी भलाई समझते हैं वही कहते हैं, इसमें तुम्हारे क्लेश का क्या कारण है? अच्छा जाओ भोजन करो। तुम श्रीजगन्नाथ के भक्त हो,

---

१, श्रीमद्भागवत स्कं० १०, अ० ८, श्लो० १३,

"आसन्वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः॥"

उसी ग्रन्थ का स्कं० ११, अ० ५, श्लो० ३२,

"कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्।
यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः॥"

पुनः महाभारत अनुशासन पर्व दान धर्मः—

"सुवर्णवर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी।
संन्यासकृच्छमः शान्तो निष्ठाशान्तिपरायणः॥"

जब तुम अपने कुटुम्ब का कल्याण चाहते हो, तो उनका कल्याण ही कल्याण है।"

इस न दूसरे दिन सार्वभौम के संग श्रीजगन्नाथ का दर्शन कर प्रभु उनके घर गये। भट्टाचार्य इनके सरल स्वभाव और इनकी नमूना देख इनपर मोहित तो अवश्य थे। इनके प्रति उनके मन में स्नेह भी निश्चय था। इनकी अवस्था तथा अतुल्य सौंदर्य देख उनके मन में सन्देह और भय भी हो रहा था कि उनसे सँन्यास-धर्म जन्म भर कदाचित् किसी प्रकार नहीं निबहेगा; क्योंकि वे इनके ईश्वरावतार होने में विश्वास नहीं करते थे जैसा कि ऊपर की बातों से स्पष्ट विदित होता है। अतएव चाहे सचमुच वात्सल्य की प्रेरणा से हो, चाहे जगद्गुरु होने से इनपर भी गुरुआई का रंग जमाने के अभिप्राय से हो, उन्होंने इनसे वेदव्याख्या सुनने को कहा। आपने उनके परामर्श को स्वीकार किया।

आपने सहर्ष सात दिनों तक व्याख्या सुनी और आप कभी कुछ न बोले। आठवें दिन सार्वभौम भट्टाचार्य के यह कहने पर कि 'बोध होता है आप वेदान्त नहीं समझते, मेरी व्याख्या सुन कर आपने कभी सिर भी नहीं हिलाया" इन्होंने उत्तर दिया कि "सूत्रों को तो खूब समझते हैं, किन्तु आपके भाष्य का अभिप्राय अवश्य समझ में नहीं आता।" अब तो उनकी बुद्धि हवा हो गई। जो बात आज तक किसीके मुख से कभी सुनने में न आई थी, आज एक युवक सँन्यासी के मुख से सँन्यासियों के शिक्षा गुरु को सुनने में आई।

मन का भाव गोपन करके, उन्होंने उन सूत्रों के अर्थ करने के लिए इनसे बहुत अनुरोध किया। इनकी व्याख्या सुनने पर उन्होंने यथासाध्य नैयायिकों का सर्व अस्त्र प्रयोग कर इन्हें पराजित करना चाहा। पर वे सर्वथा विफलमनोरथ हुए। मन ही मन

प्रभु की प्रशंसा भी कर रहे थे। इनपर उनकी श्रद्धा क्षण क्षण बढ़ती जाती थी। अब इन्हें वे अपने समकक्ष समझने लगे।

प्रभु ने कहा—"भट्टाचार्य! भगवद्भक्ति ही जीव का परम साधन है। समस्त बन्धनों से रहित मुनिगण भी इसकी कामना किया करते हैं और इस सम्बन्ध में आपने अन्यश्लोकों के साथ साथ श्रीमद्भागवत का निम्नोद्धृत श्लोक भी कहाः—

"आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्य हैतुकीं भक्तिमित्थं भूतो गुणो हरिः॥"

भट्टाचार्य ने इसका अर्थ कहने के लिए आपसे विनय किया। प्रभु ने कहा कि "आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, परन्तु आप महान पंडित हैं, आपके मुख से इसका अर्थ सुनने के अनन्तर यह दीन भी जो कुछ समझता है निवेदन करेगा।"

सार्वभौम ने इस सुयोग को हाथ से न जाने देकर और इसके द्वारा अपनी खोई गई प्रतिष्ठा पुनः स्थापित करने को महती इच्छा से अपनी सब बुद्धि खर्च करके इसका अतिचमत्कृत नौ प्रकार का अर्थ किया।

प्रभु ने उनकी उचित प्रशंसा करते हुए कहा कि 'निश्चय आप इस काल के अद्वितीय पंडित हैं। अपने पाडित्यबल से बहुत कुछ कर सकते हैं और उसी बल से इसका ऐसा अर्थ किया है; किन्तु इसके सिवाय इसका और भी तात्पर्य हो सकता है।"

इसपर भट्टाचार्य चौंक कर बोले—"क्या इसका और भी अर्थ हो सकता है? अच्छा कृपया वह अर्थ सुना कर हमें कृतार्थ कीजिए।

आपने उनके अर्थों को छोड़ कर उसका अठारह (१) प्रकार से अर्थ किया सब नूतन और सब एक अभिप्रायबोधक।

१, "चैतन्य चरितामृत में यह विस्तारपूर्वक वर्णित है।

सार्वभौम इनका अमानुषिक पांडित्य देख महा विस्मित हुए। मन में कहने लगे कि "यह क्या स्वयं बृहस्पति हैं ? हमारा मदमर्दन करने आये हैं?" गोपीनाथ के कथनानुसार क्या ये "सचमुच वही हैं ? निश्चय ऐसा रूप, तेज और गुण अन्यत्र नहीं हो सकता।" यह ध्यान आते ही उनकी आंखें खुल गईं; हृदय निर्मल हो गया; अभिमान तथा ईर्ष्यादि ने विदा ली। अब रहा नहीं गया। पश्चात्ताप करते आप युवक सँन्यासी के चरणों पर गिरने लगे; पर संन्यासी कहां? उनके स्थान में एक षड्भुजी मूर्ति का दर्शन हुआ—ऊपर वाले दुर्वादल के रंग के हाथों में धनुर्बाण, मध्यवाले नीलकान्त मणि के समान हाथों में मुरली और स्वर्ण के सदृश नीचे वाले हाथों में दंड और कमंडलु।

यह देखते ही सार्वभौम मूर्छित हो गिर पड़े। प्रभु ने उनके शरीर को स्पर्श किया। अर्द्ध चेतना होने पर उन्होंने प्रभु के पादपद्मों को हृदय में लगाया उनके पूर्ण रूप से चैतन्य होने के पूर्व ही आप वहां से अपने स्थान पर चले गये।

जिस मूर्ति का उन्हें दर्शन हुआ था, उसे उन्होंने श्रीजगन्नाथ के मन्दिर में तथा अपने घर में अंकित कराया था। श्रीशिशिरकुमार घोष ने यही लिखा है। (१)

बोध होता है कि प्रभु के जीवित काल में मूर्ति अंकित नहीं कराई गई थी यदि कराई गई होती तो रघुनाथ दास जी ने उसे अवश्य देखा होता और उसकी बात कृष्णदास प्रभृति से कहा होता एवं दास महोदय उसीके अनुसार उसका वर्णन करते। परंतु उनका वर्णन इससे विभिन्न पाया जाता है। उसके हिसाब से दो मूर्तियां होनी चाहियें। वर्णन देखियेः—

१, "अमिय निमाई चरित" ख० १, पृ० १८० षष्ठ संस्करण तथा तृतीय खंड ५०।७८ तृतीय संस्करण देखिये।

"निज रूप प्रभु तारे कराइल दर्शन।
चतुर्भुज रूप प्रभु हइला तखन॥
देखाइल ताँरे आगे चतुर्भुज रूप।
पाछे श्यामवंशी मुख स्वकीय रूप॥ (४)"

सार्वभौम के सम्बन्ध में "चैतन्य चरितामृत" में और भी प्रभेद देखते हैं। लिखा है कि सार्वभौम ने दंडवत् कर और पुनः हाथ जोड़ कर प्रार्थना की। प्रभु की कृपा ने उनके हृदय को ज्ञानपूर्ण कर दिया। अब उन्हें कृष्णनाम तथा भक्ति आदि की महिमा ज्ञात हुई। एक क्षण में उन्होंनें ऐसे सैकड़ों श्लोकों की रचना की, जैसा बृहस्पति भी नहीं कर सकते। प्रभु ने प्रसन्न होकर उन्हें आलिङ्गन किया। वे प्रेम विह्वल हो रोते हुए, अचेतावस्था में इनके चरणों में गिरे। इससे गोपीनाथ को बड़ी प्रसन्नता हुई। सार्वभौम के नृत्य पर सब हंसने लगे। गोपीनाथ के यह कहने पर कि "आपने भट्टाचार्य का कायापलट कर दिया" प्रभु ने उत्तर दिया कि "तुम भक्त हो, तुम्हारी संगति का यह प्रताप है।" आपने भट्टाचार्य को शान्त किया। उन्होंने इनका गुणानुवाद किया। तब प्रभु अपने स्थान को गये। सार्वभौम ने गोपीनाथ के द्वारा इन्हें प्रसाद भोजन कराया।

दूसरे दिन प्रातःकाल अकेले मन्दिर में जाकर गौराङ्ग ने शय्योत्थान का दर्शन किया और वहां से माला और अटका प्रसाद पाकर

(४) व्यास पूजा के दिन वाले षड्भुज रूप के वर्णन में भी भिन्नता पाते हैं। यथा,

"प्रथमे षड्भुज तारे देखाइल ईश्वर।
शंखचक्र गदापद्म शार्ङ्ग वेणुधर॥
पाछे चतुर्भुज हइल तीन अंगे वक्र।
दुइ हस्ते वेणु बजाय दुइ हस्ते चक्र॥
तेबत द्विभुज केवल वंशी वदन।
श्यामअङ्ग पीतवस्त्र व्रजेन्द्र नन्दन॥"

ये सीधे सार्वभौम के घर गये। वहां के महल के दूसरी कक्षा के भीतर पहुंच कर वहां सोये हुए एक ब्राह्मण बालक के द्वारा एवं स्वयं पुकार कर आपने उन्हें जगाया। वे आंख मलते और "कृष्ण कृष्ण" कहते बाहर आये। बिना मुंह हाथ धोये प्रभु की आज्ञा से उन्होंने प्रसाद भोजन किया।

प्रसाद खाते ही अचेत हो भूमि पर गिर कर वे लोटने लगे। प्रभु ने उन्हें उठा कर अंक में लगाया। फिर दोनों पुरुष एक दूसरे की बाह पकड़ कर देर तक नृत्य करते रहे। उस समय प्रभु के भक्तगण भी वहां पहुंच गये। भट्टाचार्य को नाचते देख लोग हँसी नहीं रोक सके। गोपीनाथ कहने लगे "भट्टाचार्य! क्या कर रहे हैं? आपके शिष्यगण क्या कहेंगे? वे आपको पागल समझेंगे।"

भट्टाचर्य ने उस पर यह श्लोक पढ़ाः—

"परिवदतु जनो यथा तथावा,
ननु मुखरोयं (?) न विचारयामः।
हरिरसमदिरामदातिमत्ता,
भुवि विलुठाम नाटम निर्विशामः॥

भावार्थ यहः—कछु निन्दकनिन्दा कान न करिहों।
अब हरिरस मदिरा छाकि विचरिहों॥
लोटिहों नाचिहों भुव पर परिहों।
सिव निन्दकनिन्दा कानन करिहों॥

इसके अनन्तर सबोंने सार्वभौम को शान्त किया। प्रभु भी अपने स्थान पर गये।

थोड़ी देर के बाद सार्वभौम श्रीजगन्नाथ जी का दर्शन न कर के पहले प्रभु की सेवा में उपस्थित हुए। दण्डवत करके खड़े हुए। नेत्रों से प्रेमधारा बह रही थी। हाथ जोड़ स्वरचित दो श्लोक सुना कर उन्होंने अपने मन का भाव प्रकट किया और कहा कि

"गोपीनाथ ने हमें सब कुछ कहा था, पर हमारी तार्किक बुद्धि में बात नहीं आई। इसीसे आपको उपदेश देने चले थे।" इत्यादि।

भट्टाचार्य ने गोपीनाथ को प्रणाम किया और कहा कि "आप के सम्बन्ध और कृपा से प्रभु ने हमारा उद्धार किया है।"

उनके प्रभु से भक्ति विश्वास का सर्वोत्तम उपाय पूछने पर, आपने हरिनाम-कीर्तन का उपदेश किया और उसका पूरा अर्थ समझाया।

पुनः श्रीजगन्नाथ का दर्शन कर सार्वभौम ने जगदानन्द तथा दामोदर के साथ अपने आदमियों के हाथ प्रभु के पास उत्तम उत्तम प्रसाद भेजा; और उसके साथ दो श्लोक। उन्हें पढ़ कर प्रभु ने फाड़ दिया। परन्तु मुकुन्द ने पहले ही उनकी दिवार पर नकल कर ली थी। वे श्लोक (१) ये हैः—

"वैराग्यविद्यानिजभक्तियोगः शिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः
श्रीकृष्णचैतन्यशरीरधारी, कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये ॥ १ ॥
कालान्नष्टं भक्तियोगं निजं यः प्रादुष्कर्तुं कृष्णचैतन्य नामा।
आविर्भूतस्तस्य पादारविन्दे, गाढं गाढं लीयतां चित्तभृङ्गः॥२॥

अब सार्व्वभौम का विद्यामद सर्वथा उतर गया। यह दीनातिदीन, महाविनयी भक्त हो गये। केवल भक्ति विश्वास की ही व्याख्या करने लगे। एवं जीवन पर्यन्त सपरिवार श्री कृष्णचैतन्य के चरण कमलों के चंचरीक बने रहे। बात बात में प्रमाण चाहनेवाले उनके चेले चकित हो चुपचाप यह रङ्ग देखते रहे। सारांश यह कि दो चार दिनों में ही ये परम वैष्णव हो गये। यह समाचार फैलते ही सारा उड़ीसा प्रदेश प्रभु का गुणगान करने लगा। काशीमिश्र आदि सैकड़ों इनके शिष्य हो गये।

---

१. श्रीचरितामृत में लिखा हैः—

" एइ दुइ श्लोक भक्त कंठमणिहार।
सार्व्वभौमेर कीर्त्ति घोषे ढक्का वाद्यकार॥"

सार्वभौम के महा प्रसाद भोजन कर, कृष्ण प्रेमोन्मत्त हो, नृत्य करने पर गौराङ्ग ने महाआनन्द प्रकाश किया था जैसा कि "चैतन्य चरितामृत" कथित छन्दों के निम्नलिखित भावार्थ से विदित होता है:—

आज मनोरथ सफल हमारो।
विजय कियो त्रिभुवन हम सारो॥
आज लह्यो सुख स्वर्ग अपारा।
कृपा देवगन परम उदारा॥
आज पूर्ण भई मम अभिलाषा।
सार्व्वभौम तुव लखि विश्वासा॥
निःछल कृष्ण सरन तुम आये।
आज कृष्ण तोहिं कंठ लगाये॥
आज खँस्यो देहादिक फन्दन।
आज छिन्न तुव माया वन्धन॥

इनका महानन्द प्रकट करना निश्चय उचित था। एक तो उस समय के विद्वान भक्ति को घृणा की दृष्टि से देखते थे। वेदान्त ही की चर्चा सर्वत्र होती थी। दिल से उसे मानते हों या नहीं, पर मुख से वेदान्त ही छांटते थे। नैयायिक गण अभी सन्ध्या हुई, अभी भोर हुआ है, हमें नाक और कान है या नहीं, इन बातों का भी प्रमाण खोजते थे। सार्वभौम जगद्विख्यात पंडित वेदान्तियों के शिक्षागुरु और नैयायिकों के नायक थे। दूसरे उस समय समाज बन्धन तथा शारीरिक नियम बन्धन बड़ाही कठिन था। अछूतों के पात्र की या उनके स्पर्शित जल की छींट पड़ने से उपवास, चन्द्रायण और प्रायश्चित्त करना पड़ता था। समाज के शासनकर्त्ता यही पंडित चूड़ामणि लोग थे। अतएव इन्हें बड़ी सावधानी से इन नियमों को स्वयं पालन करना पड़ता था; जिसमें अन्य लोग देखादेखि इनके पालन में शिथिलता न

दिखलावें। बिना दन्तधावन, स्नान पूजा, अन्नजल, ग्रहण करना अधर्म था। दिन में बारम्बार पांव हाथ प्रक्षालन करना होता था। आज का समय नहीं था कि स्लीपर पहने, मुंह में दतुअन लिए घर आंगन में एवं सड़कों पर घुमा करें। जूता ही से खड़ाऊं का काम लें। जैसे तैसे, जहां तहां, खाना पीना करलें ऐसे काल में सार्वभौम के समान महामान्य और प्रधान पुरुष का भक्तिमार्ग अवलम्बन करना एवं सामाजिक नियमों का उच्छेदन करना भक्तिमार्ग प्रदर्शक के लिए निश्चय अनिर्वचनीय आनन्द का कारण हो सकता है।

हमें समाजबन्धन तथा उच्छृंखलता दोनों के हास्यजनक उदाहरण देखने का अवसर मिला है। पटना में पढ़ने के समय रामलगन लाल (२) के बाग में हमारा डेरा था। उसमें एक ओर एक बहुत लम्बा सायवान और कई एक कोठरियां थीं। एक दिन उस सायवान में पूर्व किनारे एक मैथिल ब्राह्मण विउरा दही भोजन कर रहे थे, उसी समय एक मुसलमान सायवान में पश्चिम ओर आ बैठा। ब्राह्मण देवता चट भोजन छोड़ कर नीचे उतर गये। और हाथ मुंह धोने लगे। पूछने पर बोले कि "भोजन करते समय ये मुसलमान महाशय इसी सायवान के छप्पर के नीचे आ बैठे, खाना छू गया, कैसे खायं?"

और एक बार बीरभूमि ज़िला के ईसवपुर वस्तुतः (ईसुफ़पुर) ग्राम से सिउड़ी आते समय देखा कि सड़क से कुछ दूर जंगल के निकट एक "भद्रलोक" पायखाना भी फिर रहे थे और दतुअन भी कर रहे थे और पुनः उठकर उन्होंने आबदस्त और मुंह धोने का काम दोनों साथ ही साथ अंजाम किया।

१ मुहल्ला या गांज मगोस म लिमा' में कम्मनख लिफा के अखाड़े से दो चार मकानों के दक्खिन सड़क पर एक बाग था। अब इसका नामे निशान नहीं है। वहां एक मुहल्ला ही बस गया है।

सप्तम परिच्छेद

विश्वरूप के ढूंढ़ने का बहाना।



माघ के शुक्ल पक्ष में सँन्यास लेकर फागुन के कृष्ण पक्ष में चैतन्य महाप्रभु पुरी पहुंचे। चैत मास में सार्वभौम का उद्धार कर वैसाख में आपने निज भक्तों से अपने भाई की खोज में जाने के लिए अनुमति मांगी, परन्तु जिसे खोजने जाते हैं उनका हाल आप लोग शिवानन्द सेन से सुन लीजिए। तब जानियेगा कि भाई के अनुसन्धान का केवल बहाना कर के ये कुछ दिनों के लिए अकेले अन्यत्र जाना चाहते हैं। शिवानन्द ने स्वरचित भक्तमाल में जो कहा है उसका भावानुवाद नीचे दिया जाता है:—

गौराङ्ग सुअग्रज विश्वरूप। पंडित महान सुन्दर स्वरूप॥
नहिं कीन्ह व्याह तजि दीन्ह गेह। सँन्यास लीन्ह उमड़त सनेह॥
परचार्‌यो भक्ति दक्षिण परांत। भे पाण्डरपुर मँह जाय शान्त॥
ईश्वरपुरि कँह निज शक्ति दीन्ह। श्रीगौरहरि जिन्हें गुरु कीन्ह॥
नित्यानन्द पायो सो तेज। जिहि पुरी दीन्ह नवद्वीप भेज॥
करि विचार शिवनन्दन बखान। करिहैं सु कहां तिहिकर सँधान॥

इससे स्पष्ट विदित होता है कि विश्वरूप उस समय इस संसार में नहीं थे। कथित है कि सँन्यास ग्रहण करने के दो वर्ष बाद अठारह वर्ष की आयु में, पूना नगर निकटवर्ती पांडरपुर में उन्होंने शरीर त्याग किया। उक्त सेन उस काल में वहीं थे। उन्होंने देखा था कि उनकी आत्मा सूर्य्य के तेज के समान देह से निकल गई, जिससे सेन आनन्द से नाचने लगे थे। शची के सिवाय यह बात सब पर प्रकट थी। विश्वरूप ने शरीर त्याग तो किया, परन्तु उनकी आत्मा संसार ही में रही। पहले गौराङ्ग के गुरु ईश्वरपुरी की देह में और उन के देहान्त के पश्चात् वह

नित्यानन्द के शरीर में प्रविष्ट हुई। उन्हींसे गौराङ्ग यह कह रहे हैं कि वे भाई के अन्वेषण में जायंगे; यह उनका कर्तव्य कार्य है।

एक शरीर से दूसरे जीवधारी के देह में कोई आत्मा कैसे प्रवेश करती है इसका वर्णन शिशिरकुमार महोदय ने स्वप्रणीत "अमिय-निमाई-चरित" (१) में विस्तार और योग्यता से किया है। उसीमें उन्होंने नर नारियों के भूतग्रस्त होने का भी कारण वर्णन किया है। जिसकी इच्छा हो उसे पढ़कर अपना कौतुहल शान्त करे। हमें तो देव या भूतग्रस्त होने की दो एक घटनाओं की स्वयं जानकारी है।

विश्वरूप के शरीर त्याग का हाल जानने पर भी ये उन्हें खोजने क्यों और कहां जाते थे? तो "चैतन्यचरितामृत" ग्रंथ हमलोगों से कहता है:—

"विश्वरूप अदर्शन जाने न सकल।
दक्षिणात्य उद्धारिते यातेन पइ छल॥"

अर्थात् दक्षिण जाने में इनका उद्देश्य दूसरा ही था। अपने संगी भक्तों की अनुमति चाहने पर नित्यानन्द ने कहा कि 'आप तो नीलाचल रहने की प्रतिज्ञा कर आये हैं, अब यह क्या ढंग निकालते हैं? अच्छा, हमलोगों में से दो आदमियों को साथ लीजिए। उधर के तीर्थस्थान हमारे जाने हुए हैं, हम साथ चलेंगे।" प्रभु ने कहा "हां! आप तो हमें खूब नाच नचाइयेगा। सँन्यास ग्रहण करने पर आपने हमें वृन्दावन भी पहुंचाया। रास्ते में हमारे दंड की भी खूब रक्षा की। आपका हमारे प्रति गहरा प्रेम हमारे जीवनकर्तव्य को विनष्ट कर रहा है। जगदानन्द हमें पुनः गृहस्थ बनाना चाहते हैं, उनके भय से, वे जो कहते हैं हमें वही करना पड़ता है; नहीं करने से वे मुंह फुलाते हैं।

(१) इस ग्रंथका खण्ड ३ पृ० २०६—२४१, तृतीय संस्करण देखिए।

मुकुन्द को हमारा कठिन सँन्यास-नियम, शीतकाल में त्रिकाल स्नान और भूमिशयन आदि बहुत दुखद हो रहा है। वे कुछ बोलते नहीं, पर उनका मौन हमें द्विगुण क्लेशकर होता है। हम सँन्यासी हैं और दामोदर ब्रह्मचारी। तौ भी वे अहर्निश हमें उपदेश ही दिया करते है। हम पहले इनके स्वभाव से परिचित नहीं थे। इनके प्रभाव से हमारे आचार व्यवहार में परिवर्त्तन हो गया है। स्वयं ईश्वर के कृपापात्र होने से अन्यलोगों की चिन्ता नहीं करते। हम जनता को नहीं भूल सकते। तुमलोग यहीं रहो। हम अकेले जायगे।"

इनलोगों की यह निन्दा स्तुति थी। इन्ही गुणों के कारण ये गौराङ्ग के परम प्रीतिपात्र बने हुए थे।

नित्यानन्द के यह निवेदन करने पर कि "आपके हाथ तो नाम जपने मे सदा थमे रहेंगे, आप का तुम्बा और लंगोटादि कैसे जायगा," आप उनकी सम्मति से कृष्णदास ब्राह्मण को साथ लेने पर सम्मत हुए।

सार्वभौम के इच्छानुसार आप उनके यहां ५ दिन ठहरे। श्रीजगन्नाथ की आज्ञा ले और आज्ञास्वरूप माला पाकर तथा भट्टाचार्य के संग मन्दिर की प्रदक्षिणा कर आपने समुद्र के किनारे किनारे अलालनाथ की राह ली।

चलते समय भट्टाचार्य ने निवेदन किया कि "आप गोदावरी के तटवर विद्यानगर (वर्तमान राजमहेन्दरी) के शासनकर्ता रामानन्द राय को अवश्य दर्शन दीजियेगा। उन्हें शूद्र समझ उन से घृणा मत कीजियेगा। वे अपने गुणों से सर्वथा आपके दर्शन पाने के योग्य हैं।"

गौराङ्ग के चलने पर सार्वभौम अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। नित्यानन्द उन्हें घर भिजवा कर शीघ्र प्रभु से जा मिले। उधर से गोपीनाथ भी वस्त्र तथा प्रसाद लिये आगये।

अलालनाथ में पहुंच कर प्रभु ने देर तक नृत्य और नाम-कीर्तन किया। इनके नाचने, गाने और अश्रु बहाने का जनसमुदाय पर बड़ा प्रभाव पड़ा। नर नारी, बाल वृद्ध जो आये कीर्तन में सानन्द सम्मिलित हुए। घर द्वार भी भूल गये। दर्शकों की भीड़ लग गई। बड़े बड़े उद्योग से नित्यानन्द ने इन्हें स्नान और भोजन कराया। सन्ध्या तक लोग इनके दर्शनार्थ आते जाते रहे। वे सब के सब वैष्णव हो गये।

प्रातःकाल स्नान कर के आप भृत्य के संग आगे बढ़े। भक्तगण वहीं उपवास कर दूसरे दिन पुरी लौटे।

प्रेमानन्द पूर्ण आप दोनों हाथ उठाये "कृष्ण कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, कृष्ण हे," "राम राघव, रामराघव, रामराघव रक्ष मां" इत्यादि कीर्तन करते जा रहे हैं।

चलते चलते, एक यात्री को देख आपने उसे "हरिबोलने" को कहा। प्रेमोन्मत्त हो वह 'हरे कृष्ण, हरेकृष्ण" कहता हुआ इनका दर्शन करते इनके साथ लगा। कुछ देर के बाद आपने दृढ़ालिङ्गन कर और उसमें शक्तिसंचार कर उसे विदा किया।

घर जाकर उस मनुष्य ने अपने सब ग्रामवासियों को वैष्णव बना दिया। वह सदा कृष्णकीर्तन करता, हंसता, रोता और नाचता एवं सब के सब उसके साथ साथ ऐसा ही करते। जिस ग्राम में ये रात को ठहरते, वहां के निवासी सब दर्शन को आते और इनकी कृपादृष्टि से भक्त बन कर घर जाते। जो शक्ति संचार इन्होंने नवद्वीप में नहीं किया, वह दक्षिण देश में किया।

बहुत दिन कठिन मार्ग में गमन कर, जहां अहार की भी सुविधा नहीं थी और प्रतिक्षण हिंसक पशुओं का भय था, आप कूर्मक्षेत्र में विराजमान हुए। वहां आपने बहुत नृत्य गान किया। झुंड के झुंड दर्शक इनके दर्शनार्थ एकत्र हुए। इनका भव्य रूप तथा भक्ति देखने ही से लोग वैष्णव बन कर इन्हींके सदृश ऊर्द्ध बाहु हो

नृत्य गान करने लगे। पीछे इन्हीं लोगों के द्वारा अन्य गांववाले भी वैष्णव हुए। इन के संसर्ग से दूसरे वैष्णव होने लगे। इसी प्रकार उस प्रान्त में तथा दक्षिण देश के भिन्न भिन्न भागों में कृष्णनामामृत की धारा प्रवाहित हुई। कूर्मस्थान के महंथ ने इनका बहुत आदर सम्मान किया।

कूर्म नामक वहां के एक वैदिक ब्राह्मण ने इन्हें सादर अपने घर ले जाकर उनका पांव पखारा, चरणोदक लिया, इन्हे भोजन करा कर सपरिवार उनका जूठा प्रसाद ग्रहण किया। वह इनके संग चलने को तैयार था। पर इन्होंने उसे घर रह कर कृष्णभजन का उपदेश किया और आज्ञा की कि "तुम अन्य लोगों को हरिनाम का उपदेश किया करो, तुम सर्व बन्धनों से मुक्त हो जाओगे। यहां तुम्हें पुनः हमारा दर्शन प्राप्त होगा।

पुरी में लौटने तक आप मार्गस्थ जिस गांव में, जिस घर या मन्दिर में ठहरे या जहां आपने भोजन वा निद्रा किया, सर्वत्र लोगों का उद्धार करते उन्हें यही आदेश करते गये।

उसी ग्राम में वासुदेव नामक एक कुष्ठ रोग-ग्रस्त ब्राह्मण था। उसके अङ्गों में पिल्लू पड़ गये थे। शरीर से सदा दुर्गन्ध निकलती थी; परन्तु वह परम भक्त था। कोई कीड़ा जो कभी उसके किसी अङ्ग से गिर पड़ता, तो उसे फिर उठाकर वह अपने तत्स्थान में रख देता था। (१)

वह प्रभु के दर्शन को उठते बैठते महा कष्ट के साथ कूर्म के घर तक गया। वहां उसे ज्ञात हुआ कि प्रभु वहां से प्रस्थान कर गये। यह सुन कर "हा भगवन्! हम आपका दर्शनलाभ न कर सके" कहते कहते मूर्च्छित हो गया। उस समय प्रभु वहां से एक कोस

१, प्रोफेसर यदुनाथ सरकार लिखते हैं कि इस्लामी धर्म ग्रन्थ में भी ऐसी कथा है कि १९५ का एक सन्त कीड़ों को कहता था "खाओ भाइयो! खाओ!"

निकल गये थे ; परंतु यह आर्तनाद होते ही, क्षण भर में वासुदेव के निकट पहुंच उसे उठा कर उन्होंने अपने अंक में लगाया। अंक लगाते ही उसका कुष्ठ तथा जन्म जन्मान्तर का कलुष विनष्ट हो गया।

उसने आपका चरणकमल हृदय में लगा कर आपकी बड़ी स्तुति की और कहा कि "जिसके निकट खड़े होने से लोगों को घृणा होती थी, उसे सिवाय दयावान के कौन इस प्रकार से अंक में लगा सकता है, पर जब तक हम दुःख में थे, आपको स्मरण करते थे अब भय हो रहा है कि अभिमान हमें धर दबावेगा और हम आप को सर्वथा भूल जायंगे। यह चिन्ता हमारे हृदय को दग्ध कर रही है।" प्रभु ने उसे आश्वासन देकर कहा कि "तुम्हें अभिमान छू न सकेगा। तुम सदा कृष्ण नाम जपते रहो, उनके नाम का उपदेश करते रहो। कृष्ण भगवान् तुम्हें शीघ्र अपनावेंगे।"

प्रभु तो आगे चले। ये दोनों ब्राह्मण परस्पर एक दूसरे का आलिङ्गन कर इनका गुणानुवाद करते आनन्दाश्रु बहाते रहे।

इसी वासुदेव सम्बन्धी घटना के विचार से कूर्मक्षेत्रवालों ने आपको "वासुदेवामृत" पद से भूषित किया।

वहांसे प्रस्थान करके आप जियड़ के नरसिंह स्थान में उपस्थित हुए। यह जान कर कि वहां के श्री नरसिंह भगवान स्वयं प्रह्लाद द्वारा स्थापित हुए हैं "जय प्रह्लाद के भगवान की, जय प्रह्लाद के भगवान को" कहते आपने महाआनन्द और परम भक्ति भाव प्रकाश किया, और एक रात वहां ठहर कर आप आगे बढ़े।

अष्टम परिच्छेद

श्री रामानन्द राय से भेंट

इसी प्रकार मार्ग में कितने ही भाग्यशालियों को दर्शनादि से कृतार्थ करते, सार्वभौम के प्रार्थनानुसार गोदावरी के तटस्थ विद्यानगर के अधिकारी रामराय से मिलने के लिए आपने उधर की राह ली।

गोदावरी के दर्शन से यमुना का, और वहां का वन अवलोकन से वृंदावन का, ध्यान आने से आप वहीं अरण्य में नृत्य करने लगे।

तत्पश्चात् नदी पार हो स्नान कर घाट से कुछ दूर बैठे आप नाम जप रहे थे, इतने में रामानन्द राय गाजे बाजे तथा वैदिक ब्राह्मणों के संग एक पालकी पर सवार, वहां स्नान करने आये। स्नान और तर्पणादि के अनन्तर उनकी दृष्टि जो प्रभु की ओर आकृष्ट हुई तो उन्होंने देखा कि एक सँन्यासी महापुरुष विराजमान हैं और उनके शरीर से दैवी तेज प्रकाश पा रहा है।

आप रामानन्द को तो पूर्वही पहचान चुके थे और उनके संस्कारानुसार उन्हें अंक में लगाने को भी व्यग्र हो रहे थे; परन्तु उनके दंडवत करने पर आपने उनसे पूछा कि "क्या तुम रामानन्द हो ?" उन्होंने उत्तर दिया—"हां! हमी वह शूद्राधम व्यक्ति हैं।" बस इतना सुनते ही जैसे कोई चिरविछोही प्रेम पात्र को पाकर उसके साथ दौड़ कर मिले, आपने लपक कर, महा अधीर हो, उन्हें अंक में लगाया और प्रेम विह्वल हो दोनों महापुरुष अचेत पृथ्वी पर गिर पड़े। उनके अङ्गों से कम्प, अश्रु, स्वेद तथा रोमाञ्चादि सात्त्विक भाव परिलक्षित होने लगे।

राजा के संगीगण यह दृश्य देख महा चकित हुए कि वह ब्रह्मतेजपूर्ण सँन्यासी एक शूद्र को अंग में लगाकर क्यों रोने लगे, और इस महागम्भीर तथा विद्वान राजा की दशा उनके छुतेही क्यों पागल सी हो गई? पुनः भक्तिभाव से गद्गद् हो वे लोग भी अश्रुवर्षण करने लगे और एक क्षण में सबों का चित्त द्रवीभूत हो गया।

फिर दोनों मन के वेग को रोक कर बैठे। प्रभु ने सार्वभौम के इच्छानुसार अपने आगमन का कारण बताया और अनायास रामानन्द से भेंट हो जाने पर प्रसन्नता प्रकट की। राय ने कहा कि "भट्टाचार्य की दयादृष्टि इस दास पर अवश्य रहती है। असीम करुणा प्रदर्शन कर, आपने इस दीन को दर्शन दिया और इस संसाररत हीन अस्पृश्य शूद्र को अंक में लगाकर आज कृतार्थ किया। वेद हमारी ओर दृष्टिपात करने का भी निषेध करते हैं। दयासिंधु और पतित पावन आपके अतिरिक्त ऐसी दया दिखलाने को दूसरा कौन समर्थ है? ब्राह्मणादि हमारे सैकड़ों सहचरों का चित्त आपके दर्शनमात्र से भक्तिपूर्ण हो गया है सब सानन्द "हरि हरि; कृष्ण, कृष्ण" उच्चारण कर रहे हैं। सबों के नेत्र प्रमाश्रुपूर्ण हो रहे हैं।"

फिर एक वैष्णव वैदिकब्राह्मण आपको सादर अपने घर ले गये। आपने रामानन्द से पुनः कृष्णकथा सुनने की और भेंट की अभिलाषा प्रकट की। इस रीत की बातें आपने और किसीसे कभी नहीं की थी।

कुछ दिन कृपया वहीं विराज कर उनके कलुषित हृदय को विमल कर देने की प्रार्थना करते, रामानन्द साष्टांग दंडवत कर वहां से बिदा हुए।

सन्ध्याकाल में रामानन्द अपने एक नौकर के संग प्रभु के स्थान पर उपस्थित हुए। उन्होंने प्रभु को प्रणाम किया

और इन्होंने उन्हें छाती से लगाया। तब एकान्त में बैठ दोनों महापुरुषों में बातें होने लगीं।

प्रभु ने रामानन्द से जीवों के उद्धारार्थ साधन भजन का उपाय पूछा।

राय ने अपना मत गोपन रखकर कहा कि 'विष्णु पुराण' (१) के देखने से ज्ञात होता है कि "अपना अपना धर्म पालन करने से ईश्वर की भक्ति तथा प्रसन्नता प्राप्त होती है। अन्य उपाय नहीं।"

प्रभु ने कहा यह तो बाह्य और मोटी बात है। कुछ गूढ़ बात तो कहिए? तब राय ने कर्मफल ईश्वर को समर्पण करना बतलाया। (२)

प्रभु के पुनः आपत्ति करने पर, राय ने कहा कि "स्वधर्मत्याग कर जो ईश्वर के शरणापन्न हो वही सच्चा साधक है।" (३)

इसे भी प्रभु के स्वीकार न करने पर राय ने ज्ञान मिश्रित भक्ति का ईश्वराराधना को उत्तम साधन बताया। (४)

इसपर आपत्ति होने से, राय ने "ज्ञानशून्य भक्ति" को साधन का सार बतलाया (५) प्रभु ने कहा "हां! यह अच्छी बात है; पर क्या इससे भी कुछ उत्तमतर बता सकते हैं?" तब राय ने "प्रेमभक्ति" की बात कही।

इसी प्रकार प्रभु के पूछते जाने पर रामराय ने क्रमशः दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा कान्ताभाव की बातें कहीं। (६)

१, तृतीयांश, अष्टमाध्याय, अष्टम श्लोक। (२) गीता नवमाध्याय। २७ वां श्लोक।

३ श्रीमद्भागवत, एकादशस्कन्ध, एकादशाध्याय ३२ श्लोक (४) गीता, १८ अध्याय, श्लोक ५४

५ भागवत १० स्कन्ध, ४ अ०, ३ श्लोक।

६ इन सबों का वर्णन श्री मद्भागवत के नवम तथा दशम स्कन्धों में है।

रामराय ने यह भी कहा कि ईश्वरप्राप्ति के अनेक उपाय हैं। जिस प्रकार से जिसका ईश्वर में मन लगे, उसके निकट वही सर्वोत्तम है; किन्तु पूर्वोक्त भावों को क्रमशः उत्तरोत्तर उत्तमतर समझने से कान्ताभाव ही उच्चतम भक्ति की अवस्था है; क्योंकि माधुर्य (कान्ता) भाव में शान्त, दास्य, सख्य, और वात्सल्य सब भावों का सम्मिलन हो जाता है। श्रीकृष्ण की पूर्णप्राप्ति इसी अन्तिम भाव से होती है।

जिस भाव से हमलोग प्रभु की भक्ति करते हैं उसी भाव से वे भक्तों को पुरस्कृत करते हैं। पर प्रेम के लिए वे भक्तों ही का ऋणी रहते है।

कृष्ण का सौन्दर्य परम उच्चावस्था का है; पर उसकी और भी वृद्धि हो जाती है जब वे श्रीवृन्दावन के सौन्दर्य के मध्य विराजमान होते हैं।

राय के कथन को स्वीकार कर आपने कहा कि "सचमुच यह उच्च श्रेणि की भक्ति है पर इससे भी कुछ अधिक हो, तो उसे वर्णन कीजिये।" राय ने कहा कि "आज तक हमें इसका ज्ञान नहीं था कि इससे भी आगे का पूछनेवाला इस संसार में कोई व्यक्ति है। हां! सब मधुर भावों से श्रीराधा का प्रेम ग्रन्थों में सर्वोत्तम कहा गया है।" फिर रास की संक्षिप्त आख्यायिका कह कर इन्होंने श्रीराधा के गुणों की श्रेष्ठता दिखलाई।

प्रभु ने कहा कि "आपके पास आने से तत्वज्ञान तो हमें कुछ हो गया और सेव्य साधन का भी निर्णय हुआ। अब आपने कृष्ण और राधा का स्वरूप रस और प्रेम इन बातों की व्याख्या कीजिये। आपके अतिरिक्त अन्य कोई इन बातों को नहीं बता सकेगा।"

राय ने कहा "हम क्या कह सकते हैं। जो आप कहलवा रहे हैं वह हम तोते के समान कहते जाते हैं।"

प्रभु ने कहा "हम मायावादी संन्यासी हैं; सार्वभौम की सुसंगति से हमारा चित्त कुछ शुद्ध हुआ है। उन्हींके आदेश से और उन्हीं से आपकी सुख्याति सुन कर हम आपके पास कृष्णकथामृत पान करने आये और आप हमें संन्यासी के वेष में देख हमारा स्तुतिवाद कर रहे हैं। हम तो संन्यासी हैं, कोई ब्राह्मण, योगी अथवा शूद्र ही क्यों न हो, जिसे कृष्ण के गूढ़ तत्वों का ज्ञान है, वही गुरु है। आप हमें ठगिये मत। राधाकृष्ण के गूढ़ तत्वों का वर्णन कीजिये।"

इस पर राय ने कहा "हम नृत्यकर और आप सूत्रधर हैं; हमारी जिह्वा वीणायन्त्र और आप वीणाधारी हैं। आपके मन में जो बातें उठती हैं वेही हमारे मुंह से निकलती हैं।" यह कह कर उन्होंने कृष्ण का रूप गुण वर्णन किया और अन्त में कहा कि 'अपने माधुर्य पर वह आप मोहित होते हैं, और वे अपने आप से आलिङ्गन करने की इच्छा करते हैं।"

फिर उन्होंने राधा के प्रेम का रूप भी बतलाया और कहा कि "सखियों (अर्थात् गोपियों) का प्रेम अकथनीय है। उन्हें कृष्ण के सङ्ग स्वयं लीला की इच्छा नहीं। राधाकृष्ण के संयोग लीला देख उन्हें कोटिशः सुख प्राप्त होता है। अपने सुख से बढ़ कर अन्य के सुख में आनन्द मानने ही से कृष्ण उनसे सन्तुष्ट रहते थे। राधा का प्रेम कल्पतरु है और गोपियां उसके फूल पत्ते के समान हैं। प्रेमरस से मूल के पोषित होने ही से डाल पल्लव आदि हरे भरे और फुलेफले रहते हैं। गोपियों के प्रेम की गणना प्राकृत "काम" में नहीं की जा सकती। निजेन्द्रिय सुख की लालसा रहने से काम से उसका तात्पर्य हो सकता है; किन्तु गोपियों के भावार्थ का तात्पर्य कृष्ण को सुख देना है। निजेन्द्रिय सुख की सब वाञ्छा परित्याग कर वे कृष्ण के सुख की कामना रखती है। यदि वे सेवनमिलती है तो उन्हींके सुख के लिए। बिना गोपीभाव

धारण किये; कृष्ण की कितनी ही आराधना करने पर भी कोई उन्हें प्राप्त नहीं हो सकता।"

इसपर प्रभु ने उन्हें अङ्क में लगाया। दोनों गले लग कर बहुत रोये और विलग हो अपने अपने स्थान को गये।

राय ने दस दिन ठहरने की प्रार्थना की। प्रभु ने कहा "हम जीवनपर्यन्त तुमसे विलग न होंगे। चलो, हम दोनों पुरी में कृष्णकथा कहते कालक्षेप करें।"

फिर सन्ध्या से दोनों में ज्ञानगोष्ठी होने लगी। दूसरी सन्ध्या में मिलन होने पर, कुछ कृष्णकथा होने के अनन्तर राय ने कहा 'जब हमें आपका पहले दर्शन हुआ, तब आप संन्यासी प्रतीत हुए। अब हम आपमें वृन्दावन विहारी गोपालक कृष्ण का दर्शन पा रहे हैं। हैं! आपके सम्मुख एक स्वर्ण मूर्ति विराजमान है। उसकी स्वर्णप्रभा आपके शरीर के चतुर्दिक फैलती जा रही है। आपको इस ढंग से देख हमें आश्चर्य हो रहा है। 'इसका कारण बताइये।" (१)

प्रभु ने कहा "यह तुम्हारे कृष्ण प्रेम का प्रभाव है; सजीव निर्जीव सब पदार्थों में तुम्हें वही दृष्टिगोचर होते हैं।

राय ने अतिविनीत भाव से विनय किया कि "प्रभु अब आप हमसे मत छिपाइये। श्रीराधा का कान्ताभाव अङ्गीकार कर आप स्वयं अपना रस आस्वादन करने को प्रकट हुए हैं" इस पर प्रभु ने उन्हें रसराजादि अपने स्वरूप का दर्शन कराया।

---

(१) "अमियनिमाई-चरित" में इस दर्शन का वर्णन इस प्रकार पाते हैं कि एक दिन नियमानुसार रामानन्द राधाकृष्ण का ध्यान करते समय हृदय में युगलमूर्ति के दर्शन का आनन्द ले रहे थे। एकाएक उनके अदृश्य होने से व्याकुल हो जब इन्होंने आँखें खोलीं तब राधाकृष्ण को सामने विराजमान देखा। पुनः कृष्ण को धीरे धीरे राधा के अंग में प्रवेश करते देखा। तत्पश्चात् इन्होंने देखा कि एक गौरवर्ण संन्यासी उपस्थित हैं और वह संन्यासी अन्य कोई पुरुष नहीं है। वही कृष्ण राधा के अंग से ढके हुए हैं।

दस दिनों के बाद आप वहां से विदा हुए और रामानन्द से काम छोड़ कर पुरी चलने का आदेश करते गये।

प्रातःकाल प्रभु को हनुमान का दर्शन हुआ। उन्हें प्रणाम कर आपने वहांसे प्रस्थान किया। वहांके सब लोग वैष्णव हो गये।

घाट किनारे का वह स्थान जहां रामानन्द ने इनका प्रथम दिन दर्शन किया था, अब महा सुसज्जित तीर्थस्थान हो गया है और लोग वहां दर्शन को जाया करते हैं।

नवम परिच्छेद

दक्षिण भ्रमण



स भ्रमण में आपने दक्षिणस्थ प्रायः सब तीर्थों का दर्शन किया और कितने स्थान आपके पदार्पण से तीर्थस्थान बन गये। आप दक्षिण में कन्याकुमारी तक एवं पश्चिम-दक्षिण में द्वारका तक गये थे। इस भ्रमण में आपने उस प्रदेश के निवासियों का उद्धार और महाकल्याण किया। भ्रमण के सिलसिलेवार वर्णन करने की चेष्टा नहीं की गई है। अमुक स्थान से अमुक स्थान गये, ऐसा वर्णन कदाचित् रोचक नहीं होता। उसके पाठ में पाठकगण सम्भवतः उकता जाते। पर यह न समझिये कि कोई घटना अथवा आवश्यकीय बातें परित्यक्त हुई हैं। इस परिच्छेद को इन के भ्रमणक्षेत्र का मानचित्र कहना अनुचित नहीं होगा।

इस यात्रा में आपको दार्शनिक, वैदिक, पौराणिक, तार्किक मायावादी, बौद्ध, जैन प्रभृति सबलोगों से मुठभेड़ की बारी आई थी और सबको इनका लोहा मानना पड़ा था। कितने बौद्ध, जैन, मायावादी वैष्णव बन कर कृष्णप्रेम में रत हुए। किसी धर्म के अनुयायी क्यों न हों, बुद्धिमान इनके संग आलाप ही से इन्हें महापुरुष, वरन्, स्वयं भगवान, समझने लगते थे, पर कोई ऐसे भी मिलते थे : जो इनके प्रति कुत्सित व्यवहार करने में संकोच नहीं करते थे। एक बौद्धाचार्य इन्हें वैष्णव जानकर इनके संग घृणित बर्ताव करने को उद्यत हुए थे।

कहते हैं कि उन्होंने अपनी मंडली में सम्मति करके कोई अपवित्र पदार्थ आपके भोजनार्थ, आपके सम्मुख रखा था। पर उसी समय गरुड़ के समान एक विशाल पक्षी झपट कर वह

पात्र अपने चोंच में ले उड़ा। भात तो उनके अनुयायियों के अङ्गों पर गिरा और पात्र उनके मस्तक पर गिरा जिससे वे मूर्च्छित हो गये। उनके शिष्यगण व्याकुल हो प्रभु के चरणों में शरणापन्न हुये। प्रभु ने उन्हें आचार्य के कानों में उच्चस्वर से "कृष्ण, कृष्ण," उच्चारण करने की आज्ञा दी। उधर वे "हरि, हरि" कहते उठे और इधर ये वहां से अदृश्य हो गये।

यह कथा "चैतन्यचरितामृत" में वर्णित है; किन्तु श्रीशिशिर कुमार घोष इसपर विश्वास नहीं करते। वे कहते हैं कि "गोविन्द उस समय वहां उपस्थित थे, उन्होंने इस घटना का उल्लेख नहीं किया है। और विशेषतः प्रभु की लीलाओं में इस प्रकार की अलौकिक घटना नहीं पाइयेगा। और इस अवतार में दंड देवबल प्रयोग, और भयप्रदर्शन नहीं पाये जाते। और गोविन्द के कड़चा में तो बौद्धों के साथ विचार में इनका पहले 'कृष्ण, कृष्ण' कहके पुकारना, पुनः भावोन्मत्त होना और बौद्धों का उसी तरंग में पड़कर इनके चरणों का आश्रय लेना लिखा है; और यह बात मानने योग्य है।" (१)

वास्तविक घटना जो हो, परन्तु हम उक्त घोष बाबू के 'अमिय निमाई-चरित" में ही देखते हैं कि प्रभु ने जगाई और मधाई के भय प्रदर्शन के निमित्त चक्र का आह्वान, किया था तथा सन्यास ग्रहण के लिए निज माता और पत्नी की अनुमति प्राप्त करने में देवबल का भी प्रयोग किया था। आपकी लीलाएं अलौकिक घटनाओं से भी खाली नहीं है। उक्त पुस्तक के प्रथम खंड में "आम्र महोत्सव" की बात और द्वितीय खंड में "मजीरा से मेघ भगाने" की कथा देखते हैं। घटनाएं इस प्रकार वर्णित हैं।

नवद्वीप में आप "आम्रमहोत्सव" करते थे। आपने एक गुठली आगे रख कर ताली बजायी। देखते देखते वह वृक्ष हो गया

१, "अमिय निमाई चरित" खंड षष्ट पृ० ३४ (तृतीय संस्करण) देखिये।

और उसमें २०० फल लग गये ; जिन्हें भगवान को अर्पण कर भक्त लोगों ने प्रसाद पाया। यह कार्य प्रति दिन हुआ करता था। हां ! कोई कोई उसे बाजीगर का खेल अवश्य समझते थे।

एक वार जेठ की सन्ध्या को संकीर्तन के समय आकाश घोर मेघाच्छन्न हो गया। यह रंग देख भक्तों का चित्त महादुखित हुआ। तब आप बाहर खड़ा होकर मंजीरा बजाने और नाम-कीर्तन करने लगे। कुछ देर में हवा बादल को उड़ा ले गई।

गोविन्द के उस समय वहां उपस्थित रहने के विषय में, यह बात है कि "चरितामृत" के लेखक कृष्णदास ब्राह्मण का दक्षिण यात्रा में साथ जाना बताते हैं और स्वयं घोष बाबू अपने ग्रन्थ के तृतीय खंड में केवल भृत्यशब्द लिखते गये हैं और षष्ठ खंड में "गोविन्द" का नाम देते हैं।

मालाबार के इलाके में जहां भटमारी लोग रहते हैं, एक भट मारी सीधे सादे कृष्णदास को एक सुन्दरी स्त्री दिखा कर बहका ले गया। प्रभु तुरंत वहां पहुंच कर, उससे बोले "तुम लोगों ने क्यों मेरे आदमी को रोक रखा है ? देखते हो कि हम भी तुम्हारे समान सँन्यासी हैं, तब हमको व्यर्थ कष्ट देने से क्या लाभ ?" इसपर वे सब अस्त्र शस्त्र लेकर, इन्हें चारों ओर से घेर कर मारने पर उद्यत हुए ; परन्तु हथियार उनके हाथों से छूट छूट कर उन्हींका अङ्ग भङ्ग करने लगा। तब वे रोते कलपते भयभीत हो वहां से भागे और आप कृष्णदास को बाल पकड़ घसीट लाये। एवं पयस्विनी में स्नान कर आपने केशव के मन्दिर में खूब नृत्य गान किया ; जिसे देख दर्शकों को महाआश्चर्य हुआ। सबोंने इनका बहुत आदर सत्कार किया। आपने भी भक्तों के संग में आनन्द मनाया।

"सिद्धान्त शास्त्र" का अद्वितीय ग्रंथ "ब्रह्म संहिता" इन्हें वहीं प्राप्त हुआ। आप उसकी नकल साथ लेते आये।

इस यात्रा में त्रिवांकुड़ के राजा रुद्रपति, बड़ोदा के राजा, एवं महानदी तीरस्थ रत्नपुर के राजा शान्तीश्वर स्वयं सेवा में उपस्थित हो आपके दर्शन से कृतार्थ हुए थे।

इन्होंने वगुलावन-निवासी पथ भील नामक दस्यु का उद्धार किया। वह इनकी दो चार ही उपदेशमयी बातें सुन कर निज दल समेत अस्त्र शस्त्र सब फेंक, कोपीनधारी हो, हरिनाम कीर्तन में मस्त हो गया। और नौरोजी नाम का एक डाकू था, जिसका आपने चोरानन्दी में उद्धार किया था, आपके साथ ही हो गया था। बड़ोदा में आकर उसका देहान्त हुआ था और अन्तकाल में आपने स्वयं उसके कान में कृष्ण नाम प्रदान किया था।

मल्लिकार्जुन में श्रीमहेश्वर का एवं आहोवल में रामदास महादेव तथा नरसिंह भगवान् का दर्शन करते सिद्धवट में आकर आपने श्रीराममूर्ति का दर्शन किया वहां एक ब्राह्मण ने आपका निमन्त्रण किया था। वह ब्राह्मण सदा रामनामोच्चारण किया करता था।

दिन भर उसके घर रह कर आप आगे बढ़े। स्कन्द क्षेत्र में कार्तिकेय का और त्रिमठ में त्रिविक्रम का दर्शन कर आप पुनः उसी ब्राह्मण के घर लौट आये। तब आपने उसे कृष्ण का नाम जपते पाया। पूछने पर ब्राह्मण ने कहा कि वे बालकाल ही से राम का नाम जपा करते थे, परन्तु जब से प्रभु ने कृष्ण नाम उच्चारण कराया तब से वही नाम जिह्वा पर बैठ गया।

उन्होंने यह भी कहा कि 'हम बाल्यावस्था ही से नाम महिमा सम्बन्धी कथनों का संग्रह करते थे। 'पद्मपुराण" तथा "महाभारत" का उद्योग पर्व देखने से पहले हमें राम और कृष्ण का नाम समान ज्ञात हुआ। पर पीछे दोनों में विभिन्नता प्रतीत हुई। तौ भी हमें राम का ही नाम उच्चारण करने में आनन्द मिलता था; पर आज आप के कारण हमारा रंग ही बदल गया।" यह कह कर वे

प्रभु के चरणों में गिरे और प्रभु उन पर कृपादृष्टि कर दूसरे दिन वहां से रवाने हुए।

इससे कोई ऐसा न अनुमान कर बैठे कि आप राम के विरोधी थे और चाहते थे कि कोई राम का नाम न ले और न राम की उपासना करे। आपने मुरारि को स्पष्ट कहा था कि "तुम्हारा मन राम के चरणों में लगा है, तुम उन्हींका भजन करो।"

दूसरों को कौन कहे, ये स्वयं श्रीराममूर्ति का श्रीकृष्ण के समान सानन्द दर्शन करते थे। अभी इसी सिद्धवट स्थान में आपने सीतानाथ की मूर्ति के सामने नृत्य गान किया है। इसी यात्रा में आपने त्रिपदी में राममूर्ति का एवं रामनगर में श्रीराम के चरण का दर्शन किया है।

श्रीराम ही का नहीं वरन् अन्य सब देवों का दर्शन करते थे। आपने गिरीश्वरलिंग को अपने हाथों से बिल्वपत्र चढ़ाया था। वहां पर इन्होंने एक सदा ध्यानमग्न मौनी संन्यासी का ध्यान भंग कर उसे प्रेमदान दिया था। शिवकांची में शिव का; विष्णु कांची में श्रीलक्ष्मीनारायण का एवं वहां से ४ कोस पर त्रिकोणेश्वर शिव का दर्शन किया। पुनः श्रीरामेश्वर नाथ का दर्शन करते और तीन दिन के बाद साध्वीवन में एक तपस्वी से मिलकर एवं इन्हें कृतार्थ कर आप कन्याकुमारी पधारे थे। पूना से चलकर पट्टम ग्राम के समीप गोराघट नामक स्थान में आपने भोलेश्वर का एवं सोमनाथ में सोमनाथ का दर्शन किया था और रो रो कर वहां यही प्रार्थना करते थे :—

" एस प्रभु सोमनाथ अन्तरे आमार।
हृदयेर मध्ये हेरि मूरति तोमार॥"

"अमिय-निमाइ-चरित" में "अक्षयवट" स्थान आपके वटेश्वर शिव के दर्शन की बात लिखी है। सम्भवतः "चैतन्य चरितामृत" कथित सिद्धवट तथा यह "अक्षयवट" दोनों एक ही स्थान का नामान्तर है। यदि नहीं भी हो तो कोई चिन्ता नहीं।

इसी अवसर में तीर्थराम नामक एक धनिक वणिक सत्यबाई तथा लक्ष्मीबाई दो वेश्याओं को साथ लिये आपकी परीक्षा के निमित्त आया था। परन्तु आपका प्रेमवेग देख उन लोगों की बुद्धि चकरा गई। उन लोगों ने तथा उस वणिक की स्त्री कमल-कुमारी ने भी आपके चरणों की शरण लेकर अपने अपने जन्म को सुधारा। ढुन्डीराम स्थान के ढुन्डीराम भी आपके शरणापन्न हुए थे। वे पीछे " हरिदास " के नाम से प्रसिद्ध हुए।

अहमदाबाद में कुलीन ग्राम निवासी रामानन्द वसु तथा गोविन्द चरण नामक दो बंगालियों से भेंट होने पर उन दोनों को संग लेकर जब आप द्वारका चले थे तो शुभ्रमति नदी पार योगा गांव में भी वारमुखी नाम की एक वेश्या का आपने उद्धार किया था।

आपने पन्ना में श्रीनरसिंह देव का काल (वृद्धकाल) तीर्थ में श्वेतवराह का एवं त्रिकालहस्ति, पक्षितीर्थ, कावेरीनदी तटस्थ गोसामज तथा वेदावां (१) में शिव मूर्तियों का दर्शन किया।

तंजोर में श्रीकृष्ण भक्त धनेश्वर ब्राह्मण के घर गये। फिर चान्डूल गिरि में जा कर आपने भट्ट नामधारी ब्राह्मण तथा सुरेश्वर सँन्यासी पर कृपा दिखलाई थी।

पद्मकोट में आपने बालकों तथा बालिकाओं को संग लेकर अष्टभुजा देवी के सम्मुख महानन्द से कीर्तन किया था। यहां पुष्पवृष्टि हुई थी, यहीं पर आपने एक अन्धे ब्राह्मण को चक्षुप्रदान किया था; परन्तु आपका दर्शन करने के बाद ही उसने अपना शरीर त्याग किया। प्रभु ने बड़े समारोह से उसका समाधिकार्य सम्पन्न कराया।

आपने रङ्गक्षेत्र में वेंकट भट्ट के घर वर्षाकाल (२) व्यतीत किया और उनके सब परिवार को कृष्ण-भक्ति के रस में डुबो दिया

१, यहां के शिव अमृतलिंग के नाम से प्रसिद्ध थे।

२, शिशिर कुमार बाबू प्रभु के इस स्थान में चार मास रहने में सन्देह करते हैं।

यह स्थान कावेरी के तट पर अवस्थित है; उसीमें आप नित्य स्नान किया करते थे।

यहां झुण्ड के झुण्ड लोग आपके दर्शन को आते थे एवं आप की अतुल्य सौम्य मूर्ति अवलोकन से परमानन्द को प्राप्त होते थे। आपके दर्शनमात्र से कीर्तनकारी और कृष्णभक्त बढते जाते थे।

उसी पवित्र स्थान में विष्णुभक्त एक ब्राह्मण थे; जो सर्वदा देवालय में गीता का पाठ किया करते थे। आनन्दमग्न हो वह अठारहों अध्यायों का, शुद्धाशुद्ध का विचार न करके, पाठ किया करते, जिस पर कोई उनकी हँसी उड़ाते, कोई ठहाका लगाते और कोई डांट डपट भी करते थे; पर अपने ध्यान में मस्त वे किसीकी बातों पर ध्यान नहीं देते थे। प्रभु उनका प्रेमाश्रु, स्वेद और पुलक देख महा प्रसन्न हुए और आपने पूछा कि "कौन सा गूढ़तत्व आपके हृदय को ऐसा आनन्दपूर्ण कर देता है।" उन्होंने उत्तर दिया "प्रभु! हम मूर्ख हैं, मानी मतलब नहीं समझते। शुद्ध अशुद्ध जो हो, अपने गुरु की आज्ञा से पढ़ा करते हैं। जब तक हम पाठ करते हैं, कृष्ण भगवान को अर्जुन के रथ पर बैठे और उन्हें ज्ञान उपदेश करते देख हमारा चित्त प्रफुल्लित रहता है। हम इसका पाठ करना नहीं छोड़ सकते।"

प्रभु ने उन्हें छाती से लगाकर कहा, "तुम्हीं गीतापाठ के अधिकारी हो; तुम्हीं इसके गूढ़तत्व से अवगत हो। उन्होंने आपके चरणों को हृदय से लगाया बोले—"आपके दर्शन से हमें दूना आनन्द होता है। आप निश्चय स्वयं कृष्ण भगवान हैं।" जब तक आप वहां रहे, वे आपका संग नहीं छोड़ते थे।

वहां से ऋषभपर्वत पर जाकर आपने श्रीनारायण का दर्शन किया। वहीं परमानन्द पुरी चतुर्मासा व्यतीत कर रहे थे। आपने उनका दर्शन किया और चार दिनों तक उनके संग कृष्णकथा का

आनन्द लेते रहे। इनका विशेष वृत्तान्त आगे के परिच्छेद में लिखा जायगा।

वहां से चलकर आप श्रीशैल में शिवदुर्गा नामक ब्राह्मण के घर तीन दिन अतिथि रह कर, कामकोष्ठी होते दक्षिण मथुरा गये। वहां पर एक महा विरक्त रामभक्त ब्राह्मण, कृत्यमाला नदी में स्नान करने के अनन्तर आपको घर ले गये। प्रभु के यह कहने पर कि "अब दो पहर हो गया, और आपने पाक का कार्य आरम्भ नहीं किया" उन्होंने कहा कि "महाराज! हम वन में निवास करते हैं, यहां रसोई करने को कुछ नहीं मिलेगा। लक्ष्मण कुछ कंद मूल ला देंगे और सीतामाता उसे बना देंगी।" उनकी उपासना से प्रभु महा प्रसन्न हुए। तीसरे पहर को जल्दी जल्दी कुछ बना कर उन्होंने प्रभु को भोजन कराया। परन्तु उन्होंने स्वयं उपवास किया। कारण पूछने पर बोले कि "सुनते हैं कि जगज्जननी श्रीसीता को राक्षस ने स्पर्श किया था, इस दुःख से शरीर दग्ध हो रहा है। अब जीवन धारण कर क्या करेंगे?" प्रभु ने कहा कि "आप विद्वान होकर विचार नहीं करते। ईश्वर की प्रियपत्नी श्रीसीता चिदानन्द स्वरूपा को प्राकृतइन्द्रिय देख तो सकती ही नहीं, स्पर्श की बात तो दूर रहे। रावण के आने के पूर्वही वे अन्तर्धान हो गई थीं। वेद पुराण सर्वदा यही कहते हैं कि अप्राकृत वस्तु प्राकृत के अगोचर है। आप निश्चिन्त भजन भोजन कीजिए।

कृतमालामें स्नान कर आप दुर्वसन में श्रीरघुनाथ का और महेन्द्रपर्वत पर परशुराम का दर्शन करते सेतबन्ध पहुंचे। वहां आपने धनुतीर्थ में स्नान एवं रामेश्वर का दर्शन किया। वहां आप ब्राह्मण समाज में रहे। एक दिन कूर्मपुराण की कथा के समय उसमें माया की सीता हरे जाने की बात सुन कर आपने उस विशेष पन्ना को नकल कराकर उसे तो उस पोथी में रखवा दिया

और पुरातन पन्ना लाकर और उसे उक्त ब्राह्मण को दिखला कर आपने उन्हें पूर्णरूपेण सन्तुष्ट कर दिया।

इस पर वह ब्राह्मण रामदास रोते हुए आपके चरणों में प्रणाम कर हाथ जोड़ कर बोले कि "आप सँन्यासी का रूप धारण किये निश्चय श्रीराम हैं। उस दिन हम चञ्चलचित्त थे। आज जब आपने कृपापूर्वक हमें पुनः दर्शन दिया है तो यहीं इस दीन के घर जूठन गिराइये।" और उन्होंने साग्रह इनका भोजन सत्कार किया।

पुनः धियतला आदि अनेक स्थानों में भ्रमण करते, तुंगभद्रा में स्नान के पश्चात् आप उडीपी में श्रीमाध्वाचार्य के स्थान पर पहुंचे। वहां आपने बहुत अभिमानी तत्ववादियों का घमंड चूर्ण किया।

फिर अनेक स्थानों का दर्शन करते, पंडरपुर में जाकर आपने श्रीविट्ठल के मन्दिर में उपस्थित हो वहां देर तक नृत्यगान किया। एक ब्राह्मण ने आपको सादर भोजन कराया। वहीं एक दूसरे ब्राह्मण के घर में विराजमान माधवेन्द्रपुरी के शिष्य रङ्गपुरी का आपने दर्शन किया। ये रोते, कांपते और स्वेद से भींजे उनके चरणों में गिरे। यह कहते हुए कि अवश्य आपको हमारे गुरु से सम्बन्ध है, नहीं तो ऐसी दशा देखने में नहीं आती। उन्होंने इन्हें अंक में लगाया। दोनों गले लग कर देर तक प्रेमाश्रु बहाते रहे। पुनः आपने ईश्वरपुरी से अपने सम्बन्ध की बात कही। एक सप्ताह तक दोनों आदमी सानन्द कृष्णकथा का आनन्द लेते रहे। यह सुन कर कि आपकी जन्मभूमि नवद्वीप है; उन्होंने माधवेन्द्र पुरी के संग वहां जाने का और शची तथा जगन्नाथ मिश्र द्वारा प्रेमपूर्वक सत्कारित होने का वृतान्त वर्णन किया। उन्होंने यह भी कहा कि "मिश्रजी के एक पुत्र शंकरारण्य नाम धारण कर सँन्यासी हुए थे, उनका इसी स्थान पंडरपुर में शरीरपात हुआ है।" तब प्रभु ने उन्हें जनाया कि गृहस्थाश्रम में वे इनके ज्येष्ठ भ्राता तथा मिश्रजी इनके पूज्य पिता थे।

इसी पंडरपुर में आपने तुकाराम जी में शक्ति संचार किया था। उनके वृत्तान्तका इस पुस्तक के चतुर्थ खंड के नवम परिच्छेद में उल्लेख किया गया है।

कृष्णवीणा में स्नान कर उसके किनारे किनारे जाने से उसी प्रान्त में आपको "कृष्ण कर्णामृत" ग्रंथ हस्तगत हुआ। उसे आप नकल कराकर साथ लाए। कृष्णभक्ति उत्तेजक कदाचित् ऐसा कोई ग्रंथ नहीं। उस प्रान्त के वैष्णव उसका सदा अध्ययन करते थे।

पूना नगर पहुंचने पर, आप तद्धार सरोवर के तट पर कृष्ण-विरह में विभोर रोदन कर रहे थे। सहस्रों मनुष्य आपको घेरे खड़े थे। एकने हँसी में कहा "श्री कृष्ण इसी जलाशय में हैं।" बस आप चट उसमें कूद पड़े। हाहाकार मच गया। किसी प्रकार लोगों ने जल से इनका उद्धार किया।

खाण्डवा में आप ने खांडव देव का दर्शन किया। इस स्थान में जिस कन्या का विवाह नहीं होता उसे लोग देवसेवा के निमित्त अर्पण कर देते हैं। वे "मुरारी" कहलाती हैं। उनमें बहुत सी भ्रष्टाचारिणी भी थीं। प्रभु ने उनका उद्धार किया।

वहां से चोरान्दी वन में प्रवेश कर १५ दिन के बाद सुराट पहुंचे। वहां तीन दिन ठहरे। वहां आपने अष्टभुजा भगवती के सम्मुख बलिप्रदान की प्रथा को निवारण किया।

चैतन्य-चरितामृत में आपके द्वारका जाने की बात नहीं; वरन् लिखा है कि रङ्गपुरी द्वारका गये और ये पंडरपुर में रुक गये। किन्तु "अमिय निमाई-चरित" से ज्ञात होता है कि पूर्वोक्त दोनों बंगालियों के संग सोमनाथ का दर्शन करके, आपने गिरिनार पर कृष्णचरणचिन्ह का दर्शन किया; जिससे आपकी ठीक वैसी ही दशा होगई, जैसी गया में विष्णुपद के दर्शन से हुई थी।

वहां आपने गर्भदेव नामी किसी प्रतापशाली सँन्यासी को पीड़ा से मुक्त कर उन्हें प्रेमदान किया था। वहां से गर्भदेव तथा अन्य सोलह भक्तों के साथ वनपथ से कीर्तन करते सात दिन चल कर आप अमरापुरी गोपीताला में पहुंचे। इसीको "प्रवास तीर्थ भी कहते हैं।"

वहां से द्वारका जाकर एक पक्ष के बाद लौट आये। फिर नर्मदातट से आपने गर्भदेवादि को विदा कर दिया; किन्तु दोनों बंगाली आपके साथ रहे।

महलपर्वत पर देवी का दर्शन कर विद्यानगर में रामानन्द राय से जा मिले। वहां इनके आगमन पर लोगों ने महोत्सव मनाया। वहां कुछ दिन ठहर कर आपने उन्हें अपना यात्रावृत्तान्त सुनाया और दोनों पुस्तकें दिखाईं। उन्होंने उनकी नकल कराली और कहा कि "आप आगे चलिये, हम दस दिन में पुरी पहुंचते हैं।"

"चैतन्य चरितामृत" के अनुसार 'कृष्ण कर्णामृत" ग्रन्थ प्राप्त होने पर, राह में नर्मदा, तापती तथा निर्विन्ध्या में स्नान करते, ये दण्डकारण्य में ऋष्यमूक पर्वत पर गये। वहां श्रीरामावतार के समय का सप्तताल इनकी अङ्कमालिका से अदृश्य हो गये; जिसे देख सब लोग कहने लगे कि ये सँन्यासी राम के अवतार हैं और अब ताल समूह स्वर्ग को चले गये।

तब आप पम्पा, पंचवटी, नासिक, त्र्यम्बक, ब्रह्मगिरि, कुशावर्त्त आदि तीर्थों का दर्शन कर विद्यानगर पहुंचे। जिस राह से आप गये थे, उसी राह से वहां से लौटे और राह में सब ठौर लोगों को कृष्णकीर्तन में रत देख महानन्दित हुए थे।"

दक्षिण में अनेक प्रकारों से कृष्णभक्ति का प्रचार और प्रसार करके दो वर्ष के बाद आप श्रीक्षेत्र के निकट प्राप्त हुए। तब आपने निजागमन का सम्वाद अपने नौकर द्वारा पुरी के भक्तों को दिया।

दशम परिच्छेद

पुरी में चैतन्य प्रत्यागमन



गौराङ्ग के दक्षिण जाने के बाद नित्यानन्द तथा सार्वभौम प्रभृति अति व्याकुल चित्त केवल उन्हीं की बातें कह सुन कर किसी प्रकार कालक्षेप करने लगे। नीलाचलवासी भक्तगण भी उनके दर्शन के लिए अधीर हो गये। भट्टाचार्य ने उनके शीघ्र आगमन की आशा देकर उनलोगों को सान्त्वना दी।

इसी मध्य में प्रतापरुद्र को प्रभु के पुरी में वास का सम्वाद मिला। उन्होंने सार्वभौम को तुरत कटक में बुला कर इस विषय में सन्धान किया। जैसे यह जान कर कि आप स्वयं कृष्ण भगवान के अवतार हैं, उन्हें आनन्द, और इनके पादपद्मों के दर्शन का अनुराग हुआ, वैसे ही इनके दक्षिण जाने की बात सुन कर उनका चित्त व्यथित भी हुआ। भट्टाचार्य ने यह कह कर कि "प्रभु सत्वर आकर पुरी ही में निवास करेंगे," महाराज को शान्त किया। इसी वार्तालाप में इनके लौटने पर महाराज के गुरु काशीमिश्र के घर में इनके रहने का निश्चय किया गया।

उधर आपके चले आने पर नवद्वीप निवासी भक्तगण जल-विहीन मीन के समान व्याकुल हो उठे। बहुत से लोग इनके संग संग उसी दम जाते। पर आपके निषेध करने से किसीको जाने का साहस नहीं हुआ। जैसे कृष्ण के मथुरा चले जाने पर गोपियों को वियोग-दुःख दग्ध करने लगा था, वैसे ही इस समय नवद्वीप निवासी भी वियोगाग्नि में जलने लगे थे। प्रतीत होता है इसी वियोगानल में तपाकर अपने भक्तों को स्वर्ण के समान सर्वथा

स्वच्छ मलिनतारहित बनाने के ही अभिप्राय से आपने सँन्यास ग्रहण किया था।

व्याकुल तो सभी हो रहे थे ; परन्तु कोई कोई महा अधीर हो गये। उन्हें नवद्वीप की जलवायु, वहां का दृश्य दु-खद हो चला। इसीसे गदाधर, उनके अभिन्न मित्र नरहरि, मुरारी, श्रीरामभट्ट तथा (खंज) भगवान पुरी में जा उपस्थित हुए और प्रभु के दक्षिण जाने का समाचार सुन कर दुखितचित्त श्रीनित्यानन्द प्रभृति के साथ वहीं रह कर दिन काटने लगे। ये सभी नवीन ब्रह्मचारी थे।

गदाधर के संग अतुल्य प्रेम ही के कारण गौराङ्ग का एक नाम "गदाधर प्राणनाथ" हुआ। यह सौभाग्य और किसीको प्राप्त न हुआ। गदाधर का रंग रूप भी प्रायः प्रभु के ही सदृश था। इन्हें लोग श्रीराधा करके मानते थे एवं राधाकृष्ण के समान "गदाई गौराङ्ग भी कहते थे।

जब प्रभु के प्रत्यागमन का सम्वाद आया, तब उसके सुनते ही गौड़ीय प्रथमागत तथा नवागत भक्तगण तुरत अलालनाथ में जा पहुंचे। पीछे से सार्वभौम डंका, निशान, बाजा गाजा के साथ बड़े समारोह से उनका स्वागत करने को आगे बढ़े। समुद्रतट पर भेंट, दंड प्रणाम, तथा प्रेमालिङ्गन होकर सबके सब श्रीजगन्नाथ के दर्शन को गये।

दर्शन के अनन्तर मालादि प्रसाद पाकर प्रभु सबके संग सार्व भौम के घर गये। रात को वहीं रहे। भट्टाचार्य ने अपने हाथों से आपकी पादसेवा की। उस रात्रि में उनके घर, भीतर बाहर, सर्वत्र आनन्दोत्सव होता रहा। प्रभु ने भट्टादि को अपना वृत्तान्त सुनाया। दोनों पुस्तकों (१) की हाल कही।

दूसरे दिन प्रभु पूर्वनिश्चयानुसार काशीमिश्र के घर में विराज मान हुए। काशीमिश्र प्रभु के चरणों में दंडवत् करते हुए बोले

१. इनमें से "कृष्ण कर्णामृत" के रचयिता विल्वमंगल जी है।

"कृपानिधान! आप यह घर और इसके साथ इस दास को भी ग्रहण कीजिये।" उनका परिचय पाने से प्रभु ने उन्हें आलिङ्गन किया, आलिङ्गन पाते ही वे प्रेमविह्वल हो गये। उन्हें तत्काल ही शंखचक्रधारी भगवान का दर्शन लाभ हुआ।

पुनः सार्वभौम ने आपसे नीलाचल के भक्तों का तथा श्रीजगन्नाथ के सेवकों का पृथक् पृथक् परिचय कराया। ये जनार्दन श्रीभगवान के अन्तरङ्ग सेवक, ये कृष्ण दास भगवान के स्वर्ण वेतधारी प्रहरी, ये शिखी माहतो कायस्थ दीवान और इनके ये भाई और बहन मुरारी तथा माध्वी, ये दास महाशय पाकशाला के प्रबन्धक, ये परम वैष्णव प्रद्युम्न मिश्र (१) तथा ये भागवतोत्तम प्रहरिराज महापात्र हैं। इसी प्रकार नाम कह कर भट्ट ने अन्य लोगों को भी प्रभु के सामने पेश किया।

फिर उक्त रामानन्द राय के पिता अपने चार पु[त्रों] के संग आपके चरणों पर पड़े। प्रभु ने उन्हें अंक में लगाया, रामानन्द का गुणानुवाद किया और कहा कि तुम्हारे पांचों पुत्र पांडवभ्राता के समान हैं।" राय ने अपना घर द्वार, साज सामान एवं पांचो पुत्रों को आपके चरणों में अर्पण किया तथा अपने छोटे पुत्र वाणी-नाथ को प्रभु की सदा सेवा के लिए रख कर वे घर गये। प्रभु ने कहा "तुम्हारे ऐसा करने में कोई आश्चर्य नहीं। तुम सपरिवार जन्म जन्मान्तर से हमारे सेवक हो।"

फिर कृष्णदास की भट्टमारीवाली करनी करतूति का बखान कर के आपने कहा "हम इन्हें मुक्त करते हैं, जहां इच्छा हो जायँ, अब इनसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं।" इसपर वह महा व्याकुल हो छाती फाड़ कर रोने लगे। पर नित्यानन्द ने प्रभु से आज्ञा लेकर उन्हींको महाप्रसाद के साथ आपके प्रत्यागमन का सम्वाद देने को शची माता के पास नवद्वीप भेजा।

१. ये आप के चचेरे भाई थे, जिनका हाल अन्यत्र लिखा गया है, भिन्न पुरुष हैं।

कहते हैं किः—

जिह सरवर जल स्वच्छ सुमिष्ट।
पशु पक्षी जन जुरैं घनिष्ट॥

अथवा

सब नद नदी सिन्धु दिक धावत।
कोउ निज गति, कोउ संग लहि आवत॥

अब यही दशा नीलाचल की हुई। सब ओर से महात्मा और भक्तगण वहां एकत्र होने लगे। एक तो जगद्विख्यात श्रीजगन्नाथ का स्थान, दूसरे गौराङ्ग विराजमान।

कहा है किः—

"राम विरह सागर महं, भरत मगन मन होत।
विप्र रूप धरि पवनसुत, आय गये जनु पोत॥"

वैसे ही जब नदिया नगरनिवासीगण गौराङ्ग विरह-सागर में डूब रहे थे तथा दुःख ताप बड़वानल के समान उनके चित्तों को दाह रहा था, ब्राह्मण कृष्णदास दुःखिनी शची के द्वार पर आकर उपस्थित हुए।

सिन्धुतटस्थ नीलाचल में गौराङ्ग के प्रत्यागमन का सम्बाद भागीरथी, कूलवती नदिया में पहुंचते ही, वियोगवारिधि विशुष्क हो वहां आनन्दाम्बुधि लहराने लगा। श्रीराम लक्ष्मण के समान गौरहरि का नगर में आना न हुआ, परन्तु पूज्य प्रेमपात्र कुशल से हैं; प्रेमियों के लिए यही जानना क्या अल्पानन्द का विषय है?

शची के लिए तो "सूखत बिरवा पर्‌यौ ज्यों पानी" की बात हुई। उनके मृतप्राय शरीर में पुनः प्राण आ गयें। और कहीं रहैं जुगजुग जीयें, हैं तो मेरे हि नाथ—ऐसे कहनेवाली तथा समझनेवाली विष्णुप्रिया के आँवा से दहकते चित्त को इस सु-सम्बाद ने सर्वथा शीतल कर दिया। क्योंकि उन्हें तो अब इसीमें आनन्द अनुभव होता थाः—

प्रेमपूर्ण प्राननाथ, नाचैं सिंधुकूल।
हरी बोलि लोग सबै, पावैं सुख अतूल॥

भक्तों का आनन्द अनुभवनीय है। जो लोग अपना सर्वस्व प्रभु के पादपद्मों में निछावर कर बैठे थे, जिनका शरीर कहीं रहे चित्त इन्हींके चरणों का चंचरीक बना हुआ था, उनकी चर्चा कौन करे? उनकी कथा अकथनीय है।

सम्वादवाहक प्रसाद भी लाये थे। शची तथा श्रीवासप्रभृति को सम्वाद और प्रसाद देकर वे अद्वैत को समाचार सुनाने गये। यह शुभ सम्वाद आने के थोड़े ही काल पहले श्रीपरमानन्द पुरी शची के घर दक्षिण से गौराङ्ग का ठौर ठिकाना जानने ही के लिए आये थे। उन्हें देख शची को बहुत आनन्द हुआ था कि उनसे निमाई के कुशलक्षेम का कुछ हाल जाना जायगा; परन्तु किसी से किसीको इस विषय में कुछ सहायता नहीं मिली थी। दोनों विफलमनोरथ हुए थे। इतने ही में उक्त दूत का शुभागमन हुआ था।

विश्वरूप के सँन्यसी होने के बाद से शची को संन्यासियों को देख महाभय होता था। डरती थीं कि कही कोई गौराङ्ग को भी सँन्यासी न बना लें। पर जब इन्होंने भी सँन्यास ग्रहण किया, तबसे वे सर्वथा निर्भीक हो गई थीं। समझती थीं अब उनका कोई सँन्यासी क्या विगाड़ सकता है। अब वे, वरन्, सँन्यासियों से स्नेह रखती थीं। अपने घर रख उनकी सेवा शुश्रूषा करती थीं। कौन जाने किससे सँन्यासधारी पुत्र का कुछ हाल चाल मालूम हो जाय।

परमानन्द पुरी दक्षिण से गंगा किनारे किनारे नदिया पहुंचे थे। दक्षिण में ऋषभ पर्वत पर उन्हें गौराङ्ग से भेंट हुई थी और दोनों महापुरुषों का तीन दिन तक साथ भी रहा था। प्रभु ने इनसे

नीलाचल चल कर साथ रहने के लिए भी कहा था, चैतन्य चरितामृत में ऐसा ही लिखा है।

भेंट की बात "अमिय-निमाइ-चरित "के खंड ३ अध्याय ७ पृ० ३२६, तृतीय संस्करण में भी लिखी हैं। पर न जाने क्यों उसी ग्रंथ के पृ० ३४८ में लिखा है कि "प्रभु को इनसे भेंट परिचय नहीं था।"

उसमें यह भी लिखा है कि ये तिहुतवासी और माधवेन्द्र पुरी के शिष्य थे। उनमें विश्वरूप की शक्ति थी। उन्हें देख शचि को बोध हुआ था कि विश्वरूप ही आये हैं।" क्या उस समय के सब सँन्यासियों में विश्वरूप की शक्ति राज रही थी? शिवानन्द सेन ने तो स्वरचित "भक्त माल" में केवल ईश्वरी पुरी तथा नित्यानन्द में ही विश्वरूप की शक्ति होने की बात कही है।

जो हो, आप देखने मे बहुत सुन्दर, सरलस्वाभावी और भारत के एक सुविख्यात सँन्यासी थे।

नदिया में दूत के मुख से प्रभु का समाचार जान कर और नदिया निवासियों के प्रभु की सेवा में जाने में किञ्चित् विलम्ब देख, वे पहले ही श्रीगौराङ्ग के एक भक्त कमलाकान्त ब्राह्मण को साथ लेकर नीलाचल रवाने हुए।

पुरी में पहुंच कर पुरी प्रभु की खोज की धुन में चले जाते थे। इतने में उन्हें स्मरण हुआ कि श्रीजगन्नाथ का पहले दर्शन नहीं कर लेना भूल है और पश्चात्तापपूर्वक वे दर्शन के निमित्त फिरे। उन्होंने दूर ही से देखा कि मन्दिर के पास एक महान रूपवान जवान सँन्यासी विराजमान हैं और उनके चतुर्दिक जनसमुदाय दंडायमान। आपने अनुमान किया कि यही गौराङ्ग भगवान हैं। नहीं तो ऐसा रूप लावण्य और तेज कहां पाय जायगा और इतनी भीड़ क्यों होगी? बस आपके नेत्रों से आनन्दधारा वहने लगी; क्योंकि ईश्वर के भक्त तथा ईश्वर के दर्शन से बढ़ कर और सुख संसार में नहीं।

पुरी की भेंट से प्रभु को परम प्रसन्नता हुई। प्रभु ने उनके चरणों में प्रणाम किया। उन्होंने प्रभु को छाती से लगाया। प्रभु ने उनसे नीलाचल ही में वास करने की प्रार्थना की और उन्होंने कहा कि "हम केवल आप ही की सत्संगति की अभिलाषा से यहां आये भी हैं।"

प्रभु ने अपने वास स्थान में उन्हें रहने को एक कोठरी दी और उनकी सेवा के निमित एक सेवक दिया।

पुरुषोत्तमा चार्य (संन्यास नाम स्वरूप दामोदर) जो प्रभु के सँन्यास ग्रहण करने से कुपित हो कर काशी में जाकर स्वयं सँन्यासी हो गये थे, पुरी के आने के बाद दूसरे ही दिन प्रभु की सेवा में उपस्थि हुए।

ये नीलाचल में बराबर प्रभु के साथ रहे। सोते, जागते, उठते बैठते, खाते पीते ये सर्वदा उन्हींके निकट देखे जाते थे। ये प्रभुमें सेवक, सखा तथा वात्सल्य भाव रखते थे। राधाभाव का आवेश होने से प्रभु इन्हें ललिता मान इनके गले में लिपट कर रोदन करते। बारह वर्ष यत्न करके प्रभु ने जो कुछ किया और ब्रज की जो निगूढ़ लीलाएं प्रगट की, यदि स्वरूप दामोदर नहीं होते तो जनता में आज उसकी चर्चा भी नहीं होती। जहां की तहां ही रह जातीं। परन्तु प्रभु जो कुछ जहां कहते, सुनते और करते उसे स्वरूप दामोदर अपने कड़चा (दिन चार्या) में लेख बद्ध कर लिया करते थे। इन्हींने प्रभु का तत्व पहले पहल अपने ग्रंथ में प्रकाशित किया है।

ये एक महान पंडित थे। किसीसे अलाप कलाप नहीं करते। एकान्त में कृष्णध्यान में मग्न और इन्हींके प्रेम अहर्निश विभोर रहते थे। कृष्णप्रेम का गूढ़तत्व इन पर प्रकट था। स्वरूपदामोदर प्रेम के स्वरूप और प्रभु के "प्रतिरूप" वा द्वितीय स्वरूप थे।

कोई पुस्तक, पद वा काव्य विना इनके देखे और परीक्षा किये प्रभु के सम्मुख प्रस्तुत नहीं किया जाता था। भक्तिशून्या अथवा भक्तिविरोधिनी पुस्तक से प्रभु को घृणा थी। मैथिल कोकिल विद्यापति और चन्डीदास के पदों में तथा गीतगोविन्द और कृष्णाकर्णामृत में आपको परमानन्द प्राप्त होता था।

ये गान विद्या में गन्धर्व के समान थे। संकीर्तन के उन्मादकारिणी सुर के यही कर्त्ता माने जाते हैं। श्रीअद्वैत, नित्यानन्द, श्रीवास प्रभृति सभी इनसे प्रेम रखते थे।

इनके आगमन से प्रभु को बड़ी प्रसन्नता हुई। बोले "तुम्हारे विना हम नेत्रहीन से हो रहे थे। कल तुम्हारे आगमन का हमने स्वप्न भी देखा था। अच्छा किया चले आये।" स्वरूप ने कहा "हम स्वयं नहीं आये, आपका प्रेमपाश हमें खींच लाया।"

एक दिन प्रभु सार्वभौम आदि के संग बैठे सुखदालाप कर रहे थे। इतने में गोविन्द नामक एक व्यक्ति आकर और साष्टांग दंडवत् करके बोले "हम ईश्वरपुरी के सेवक हैं। उनकी सिद्धि प्राप्ति (शरीर त्याग) के समय के आदेशानुसार आपकी सेवा के निमित्त यहां उपस्थित हुए हैं और हमारे साथी काशीश्वर भी तीर्थाटन करते शीघ्र उपस्थित होंगे। पुरी ने हमसे यह भी कहा था कि आपके गृहस्थाश्रम काल में आपका मधुर नटवर रूप उन्होंने अपने चित्त में अङ्कित किया था। अब उस रूप का दर्शन नहीं होता, उनका प्राप्त धन भी हाथ से चला जाता, इसीसे वे फिर आपसे कभी न मिल सके।"

प्रभु ने प्रसन्न होकर कहा कि "हम पर उनका असीम वात्सल्य था, इसमें सन्देह नहीं।" और भट्टाचार्य के यह कहने पर कि "गोविन्द के कायस्थ होने पर भी पुरी इनसे अपना कार्य सम्पन्न कराते थे; यह कैसी बात?" आपने कहा कि "बड़े लोगों की दृष्टि माहात्म्य और गुणों पर रहती है, वे जातिविचार पर ध्यान नहीं देते।"

फिर आपने भट्टाचार्य से इस विषय में परामर्श चाहा कि "गोविन्द हमारे गुरु के सेवक होने से हमारे पूज्य हैं और इधर उन्हें अपनी सेवा में रखने की गुरु आज्ञा है, ऐसी दशा में क्या कर्तव्य है।"

भट्टाचार्य की सम्मति जान कर कि "गुरुआज्ञा पालन ही धर्म है" आपने उठकर गोविन्द को अङ्क में लगाया। जैसे स्वामी वैसे ही सेवक मिले। स्वयं उदासीन भक्त, और अन्य लोगों की सेवा ही अपना धर्म, यही उनका सिद्धान्त था। गोविन्द के समान विरला ही भाग्यमान होगा। ये प्रभु के प्रिय सेवक हुए।

एक दिन केशव भारती के परमार्थ भाई ब्रह्मानन्द भारती के आने का समाचार पाकर आप भक्तों के संग उनके स्वागत के लिए बाहर हुए। उन्हें चर्माम्बर धारण किये देख आपने मुकुन्द से पूछा कि "भारती कहां हैं?" मुकुन्द के उनकी ओर इशारा करने पर आपने कहा "तुम भूल करते हो, भारती होकर वे चर्माम्बर क्यों धारण करेंगे?" भारती ने उदास हो मुखाकृति से क्षमाप्रार्थना का भाव प्रदर्शन किया और प्रभु के संकेतानुसार दामोदर के एक नवीन वहिर्वास देने पर उसे पहनते पहनते उन्होंने कहा, "निश्चय चर्माम्बर दम्भ का चिह्न है।"

अनन्तर प्रभु ने उनके चरणों में प्रणाम किया। भारती ने कहा "आप फिर हमें दंडवत मत कीजिये। इससे हमें भय होता है। अब यहां दो ईश्वर हैं—एक जङ्गम और एक स्थावर, एक कृष्ण और एक गौर।" प्रभु ने कहा "बहुत ठीक। आपके आगमन से यहां दो पुरुषोत्तम विद्यमान हुए। आप ब्रह्मानन्द, गौर तथा जंगम; एवं श्री जगन्नाथ कृष्ण तथा स्थावर।"

भारती ने तब भट्टाचार्य को सम्बोधन करके कहा "आप नैयायिक हैं। आप ही निर्णय कीजिये। व्याप्त जीव, व्यापक भगवान यही शास्त्र का वचन है। इन्होंने हमारा चर्माम्बर उतरवा लिया।

अतएव हम व्याप्य हुए और ये व्यापक।" भट्टाचार्यने भारती की डिग्री दी और कहा कि "हां! प्रभु को हार हुई।" प्रभु ने कहा "ठीक है नैयायिक विवाद में शिष्य गुरु से हारता ही है।" ब्रह्मानन्द ने कहा "सो नहीं, भगवान् सर्वदा भक्त से हारते आते हैं।" और आप एक बात और सुनिये—"हम सदा निराकार के उपासक थे; किन्तु आपके दर्शनमात्र से हमारा भाव सर्वथा पलट गया। श्रीकृष्ण भगवान हमारे हृदय में उदय हुए हैं। हमारे जिह्वाग्र पर विराजमान हुए हैं। आपके रूप में भी हम उन्हींका दर्शन कर रहे हैं।" प्रभु ने उन्हें वही पुराना उत्तर दिया, जो सब को देते थे। अर्थात् "कृष्ण में आपकी गाढ़ी प्रीति होने से आपको सर्वत्र कृष्णमय दीखता है।"

भट्टाचार्य ने कहा—"बात तो यथार्थ है परन्तु जिसके हृदय में प्रेम न हो, उसे भी यदि साक्षात् अथवा छद्मवेश में कृष्ण दर्शन का सौभाग्य हो तो उसको भी यही दशा हो जाती है।" प्रभु ने कानों पर हाथ देकर कहा "श्रीविष्णु! आप क्या भूल गये कि लम्बी चौड़ी स्तुति और निन्दा में कुछ भेद नहीं है।" अनन्तर, भारती के भोजनादि और वास का सब प्रबन्ध ठीक किया गया।

दूसरे दिन काशीश्वर गोस्वामी भी आकर उपस्थित, जब प्रभु श्रीजगन्नाथ के दर्शन को जाते तब ये आगे आगे भीड़ को हटाते जाते थे। इनका यही काम रहा। आगे काशीश्वर दाहिनी ओर पुरी, बाईं ओर भारती, पीछे स्वरूप तथा गोविन्द और मध्य में आप। इसी प्रकार आप दर्शन को जाया करते थे।

एकादश परिच्छेद

पुरी में गौरभक्त सम्मेलन



जब नवद्वीप के भक्तों का हृदय प्रभु वियोगताप से जेठ की भूमि के समान तप्त हो रहा था, ज्येष्ठमास में श्याममेघ के सदृश काले कृष्णदास ने दर्शन देकर प्रभु के कुशलक्षेम की मधुर ध्वनि सुनाई। वह ध्वनि ही कानों में पड़ने से लोगों का ही-तल शीतल हो गया। दूब से सूखे शरीर हरे हो गये। चेहरों में विद्युत की चमक आगई। सब नीलाचल चलने की मनसा करने लगे। मनसा ही नहीं, उसकी तैयारियों में तत्पर हुए। दूत के संग ही शान्तिपुर गये।

प्रभु के प्रत्यागमन का सम्वाद सुन कर एवं मेघवर्ण दूत को देख अद्वैत, भक्तों के संग सपरिवार मयूर की नाईं नृत्य करने लगे। ऐसा आनन्दोत्सव वहां कई दिनों तक होता रहा। उन्हें धनधान्य की कमी नहीं थी, और समय भी दूसरा था। उस समय न आज सा भारत दरिद्र ही था, न अन्न का अकाल ही था, और न भारतवासियों को ऐसे पुरुषों का संसर्ग ही था जहां पिता, पुत्र तक के आगमन पर भी दो चार वेला भोजन करा देने के बाद फिर उनके सामने खाने के खर्चे का हिसाब उपस्थित किया जाता है। उस काल में अतिथिसेवा सौभाग्यसूचक कार्य समझा जाता था। तब उन्हें चिन्ता किस बात की होती ?

फिर सब लोगों के साथ अद्वैताचार्य शची माता का दर्शन कर और उनकी पदधूलि लेकर पुरी जाने के लिए प्रभु के घर उपस्थित हुए। यहां लोगों ने प्रभु के घर भी आनन्दोत्सव किया। भगवान् की दया से शची के घर भी खाने पीने का अभाव नहीं था। भक्तगण सदैव उनके यहां ढ़ेर का ढ़ेर आवश्यकीय खाद्य पदार्थ भेजा करते

थे। इतनी आय होती थी कि नित्य जो अनेक प्राणी प्रभु के स्थान का दर्शन करने आते थे; वहीं प्रसाद पाते थे।

नीलाचल जाने का समाचार सुन कर अन्यस्थानों (१) से भी लोग वहां एकत्र होने लगे। प्रभु के निकट भेंट देने के निमित्त जिसने जो उचित समझा साथ लिया। शची तथा विष्णुप्रिया को जो कुछ देना था उनलोगों ने श्रीवास के हवाले किया और एकबार पुनः प्रभु के दर्शन पाने की अभिलाषा प्रकट की। सब मिल कर २०० भक्त श्रीगौराङ्ग के और साथ ही साथ रथयात्रा (२) के दर्शन के लिए चले।

इनमें जो जगत से उदासीन थे; वे तो वहां सदा रहने के विचार से चले। इनमें मुसलमान हरिदास भी थे। गृहस्थ भक्तगण घर में सब बातों का चार मास के लिए प्रबन्ध कर वहां पर चतुर्मासा बिताने की मनसा से चले।

जेष्ठ का महीना ; बीस दिन की यात्रा: राह बीहड़ और दुर्गम, उस पर खाने पीने को जिन्स, एवं, मृदङ्ग करताल, मंजिरा इत्यादि नृत्य सहकारी पदार्थ और उसपर पांव प्यादे जाना। ऐसी यात्रा के दृश्य का ध्यान उन लोगों को निश्चय भयंकर प्रतीत होगा और इस से उनका कलेजा अवश्य कांपेगा, जिन्हें बैठकखाना से रसोई घर जाते छाता की, और शहरों से दस पन्द्रह मिनिट की राह जाने के निमित्त फिटन और मोटर की आवश्यकता होती है : पर उस समय तीर्थाटन की यही रीति थी। उस युग में पांव ही पांव तीर्थयात्रा तथा तीर्थभ्रमण धर्म समझा जाता था।

(१) कंचन पाड़ा से शिवानन्द सेन, कुलीन ग्राम से गुणराज खां प्रभृति, श्रीखंड से नरहरि के बड़े भाई मुकुन्द सुलोचन इत्यादि, पुराने भक्त। और बिना प्रभु के दर्शन पाये उन्हें आत्मसमर्पण करने वाले भक्त भी चले, यथा, मुकुन्द के बड़े भाई वासुदेव दत्त, दामोदर के छोटे भाई शंकर; दामोदर पंडित के पांचों भाई सब उदासी इत्यादि।

२ गौड़ीयगण यही पहली बार रथयात्रा देखने चले थे। पहले लोग नहीं आते थे। सच पूछिये तो श्रीक्षेत्र की रथयात्रा श्रीगौरांग ही के कारण अधिक विख्यात हुई है।

उधर जब स्नानयात्रा के अनन्तर १५ दिनों के लिए श्रीजगन्नाथ का दर्शन बन्द (३) हो गया तो प्रभु दर्शनसुख से वञ्चित होने के कारण अधीर हो रोने लगे और फिर अलालनाथ चले गये। भक्तों को परित्याग कर चला जाना ही इस बात का पता बताता है कि दर्शन में इन्हें कितना सुख प्राप्त होता था। श्रीजगन्नाथ का मुख, जिन्हें रेवरेन्ड लालविहारी दे ने कदाचित् "बङ्गाल पीजेन्ट लाइफ़" में हिन्दुओं के सर्वदेवों से छविहीन (wgliest of all the Hindu dities) लिखा है, इन्हें महा सुखप्रद प्रतीत होता था।

नीलाचल के भक्तगण इनके पीछे पीछे गये। महाराज भी इनके चले जाने से बहुत व्याकुल हुए। उनके आदेश से सार्वभौम अलाल नाथ जाकर और गौड़ीय भक्तों के आगमन का सम्वाद सुना कर बहुत अनुनय विनय कर के इन्हें पुनः श्रीक्षेत्र लाये।

उस समय नियमानुसार स्नानोत्सव के उपलक्ष में महाराज तीन दिन पहले से पुरी ही में विराजमान थे।

महाराज की प्रभु के चरणों में परमभक्ति और आपके पादपद्मों के दर्शन की अतीव उत्कंठा देख, उनके आदेश से महाचार्य डरते ने डरते एक दिन प्रभुसे अभयदान मांग कर निवेदन किया कि "महाराज प्रतापरुद्र आपके दर्शन के निमित्त अति व्याकुल हो रहे हैं और उन्होंने इस दास को बुलाकर आपसे विनय करने की आज्ञा दी है।" यह सुनते ही प्रभु ने कानों पर हाथ देकर कहा कि "आप विज्ञ हो कर ऐसा कैसे कहते हैं? हम सँन्यासी हैं, हमें राजदर्शन सा अवैध कार्य में रत करने का आप विचार नहीं करेंगे।"

सार्वभौम ने निवेदन किया कि "आपका कथन शास्त्रसम्मत है; परंतु राजा भक्त तथा श्रीजगन्नाथ के सेवक हैं। इसीसे निवेदन का साहस किया।"

३ ग्रीष्म स्नान करके श्रीजगन्नाथ १५ दिन अन्तःपुर में रहते हैं। इसीसे फाटक बन्द रहता है, किसीको दर्शन नहीं होता।

कुछ और बातें होने पर प्रभु ने कहा "हम आपकी आज्ञा का उल्लंघन करना नहीं चाहते, परन्तु जब ऐसी अन्यायी आज्ञा करने लगेंगे, तो हमें पुरी से भागना पड़ेगा।"

इस पर भट्ट मौन हो रहे; किन्तु महाराज का पत्र पाकर उन्हें पुनः कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण होना पड़ा। उन्हें स्वयं कुछ कहने सुनने का साहस नहीं हुआ: परन्तु बहुत प्रार्थना के साथ प्रभु के गणों को मिला कर, उन्हींलोगों के मुख से आपने यह चर्चा चलाई। फल यह हुआ कि राजा के सन्तोषार्थ आपको एक गांती भेजी गई। इस से राजा को आनन्द हुआ, पर उनकी दर्शनपिपासा नहीं बुझी।

जगन्नाथ स्नान के समय महाराज के संग रामानन्द भी आये थे और प्रभु की सेवा में अहर्निश उपस्थित रहते थे। महाराज ने उनके द्वारा भी बहुत विनय प्रार्थना कराई। रामानन्द ने कहा कि "राजा में आपके चरणों का प्रेम देख हमें अचम्भा हो गया। उस प्रेम का लेशमात्र भी हममें नहीं है।"

प्रभु ने कहा—"तुम श्रीकृष्ण के भक्त हो। जो तुम्हारी भक्ति करेगा वही भाग्यमान। इसी गुण से वह कृष्ण का कृपापात्र होगा।"

रामानन्द ने कहा—"विधि पालन आपका कर्तव्य है: क्योंकि इससे जीवगण शिक्षा पावेंगे; किन्तु राजा वास्तव में भक्त हैं।" इस विषय में उनके बारम्बार वार्तालाप करने का यह फल हुआ कि प्रभु ने कहा कि "शास्त्रानुसार पुत्र आत्मा ही है। हम राजकुमार से मिलेंगे, राजा इसीपर सन्तोष करें।"

एक दीन रामानन्द राजकुमार को खब सजा कर आपकी सेवा में ले गये। राजकुमार श्यामवर्ण और पीताम्बर तथा आभूषणों से आभूषित होने से श्रीकृष्ण के समान मनोहर दीख रहे थे। प्रभु ने उन्हें प्रेमालिङ्गन दिया। वे तुरत प्रेमावेश में सब सात्विक भाव प्रदर्शित करके नृत्य करने लगे। प्रभु ने उन्हें शान्त कर विदा किया। वे प्रेम में मस्त राजमहल में गये। उनको अंक में लगाने से राजा भी

प्रेमविह्वल हुए। प्रभु के आज्ञानुसार राजकुमार प्रभु के दर्शन को नित्य जाने लगे और उनकी गणना प्रभु के भक्तों में होने लगी।

प्रभु ने जब संन्यास ग्रहण किया था तब उसके विधिपालन की ओर इनका ध्यान रखना नितान्त आवश्यक था। इनमें कोई छिद्र होने ही से जनसाधारण की दृष्टि उधर तुरत जाती। इससे इनके अभिप्रायसिद्धि में भी बाधा पड़ती; क्योंकि एक उज्वल बर्फ के टुकड़े पर तिलका एक दाना होने से बर्फ की उज्ज्वलता उसे छिपा नहीं सकती, प्रत्युत उसे अधिक देदीप्यमान कर देती है और राजा की भी अभी पूरी परीक्षा नहीं हुई थी। इससे वे अद्यापि पुरस्कार के भी अधिकारी नहीं हुए थे।

देखिये एक बार एक बहुरूपिया सँन्यासी का अति उत्तम वेष धारण कर एक भलेमानस के पास गया। वे प्रसन्न हो उसे इनाम देने लगे; किन्तु रुपया छूना और लेना अस्वीकार कर वह अपने स्थान पर चला गया। दूसरे दिन वह उनके पास इनाम मांगने लगा। उससे उस दिन इनाम नहीं लेने का कारण पूछे जाने पर उसने उत्तर दिया "बाबू साहब! उस समय हम सँन्यासी वेष में थे। सँन्यासी को द्रव्य छूने का निषेध है। 'हम सँन्यासकर्तव्य में कैसे धब्बा लगाते?" लोगों ने उसके विचार की बड़ी प्रशंसा की। पुरस्कार भी उसे पहले से अधिक मिला।

जब बहुरूपिया का ऐसा आचार था तब महाप्रभु का ऐसा विचार क्यों न हो? धन्य बहुरूपिया! धन्य धन्य! तुमसे आज के घर घर घूमनेवाले सँन्यासियों को शिक्षा लेनी चाहिये।

पुरी आने पर जब सार्वभौम के मुख से राजा को ज्ञात हुआ कि प्रभु अब तक उन्हें कृतार्थ करने को सम्मत नहीं हुए तब उन्होंने कहा "कि सब अधमों और नीचों के उद्धार के निमित्त प्रभु इस संसार में आविर्भूत हुए हैं। उन्होंने जगाई मधाई का कल्याण किया। क्या केवल प्रतापरुद्र को ही छोड़कर जगदुद्धार के लिए

आपने शरीर धारण किया है? अच्छा! यदि आपने हमें दर्शन नहीं देने की प्रतिज्ञा की है और हम उनके प्रेम के धनी नहीं हैं, तो इस राज्यधन को धिक्कार है, इस शरीर को धिक्कार है। हम यह राज्य परित्याग कर प्राण विसर्जन करेंगे।"

इससे भट्टाचार्य महा सशंकित हुए। राजा को धैर्य्य देते हुए उन्होंने यह उपाय बतलाया कि "आगामी रथयात्रा के समय आप साधारण वेष में रहें। जब प्रभु श्रीजगन्नाथ के सम्मुख नृत्य करते करते प्रेमावेश में बैठें, तब आप 'कृष्ण रास पञ्चाध्यायी' के श्लोकों को पढ़ते दौड़ कर उनके चरणों को हृदय से लगाइये। उस समय निश्चय आप पर कृपा होगी" इससे राजा को बहुत संतोष हुआ।

इसी समय गोपीनाथ आचार्य ने सभा में उपस्थित होकर भट्टाचार्य से निवेदन किया कि "प्रभु के दो सौ भक्त परम वैष्णव बङ्गाल से इस नगर में अभी आ पहुंचे हैं, उनके प्रसाद, भोजन तथा निवासादि का शीघ्र प्रबन्ध होना चाहिये।"

राजा ने कहा "पड़िछा को अभी सब कुछ ठीक कर देने की आज्ञा कर दी जाती है। भट्टाचार्य! आप एक एक कर के प्रभु के भक्तों को दिखते तथा उनका गुणानुवाद करते जाइये।" भट्टाचार्य ने कहा कि आप महल के छत पर जायँ, गोपीनाथ आपकी आज्ञा का पालन करेंगे, ये सबको पूर्ण रीति से जानते हैं। इस पर तीनों महानुभाव छत पर चढ़े।

अब प्रभु के भक्तों के आगमन का वृत्तान्त सुनिये। प्रभु के निवास स्थान के अतिसमीप "नरेन्द्र" सरोवर के तट पर पहुंच कर सब के सब "प्रभु प्रभु!" कह कर गर्जन करने लगे। मृदङ्ग, मादल आदि बाजों का शब्द होने लगा। सबों ने पैरों में नूपुर धारण किया और दो सौ भक्त एक साथ श्रीकृष्णमङ्गल का गीत गाते और नाचते आगे चले।

इस सम्बन्ध में शिशिरकुमार घोष महोदय भक्तों को सम्बोधन कर के कहते हैं—"भले आदमी आंखें बन्द कर ध्यान करना, मंत्र पढ़ना,

अक्षत पुष्पादि द्वारा प्रभु का पूजन करना यही सब भजन और साधन के मानी समझते हैं; किन्तु पैरों में नूपुर पहन कर, हाथे उठा कर, नाच नाच कर और जोर जोर से गीत गा गा कर भजन करना भव्य पुरुष कैसे सहेंगे? और तुम लोग जो इस प्रकार, इस भिन्न तथा अपरिचित स्थान में नाचते गाते चले हो, तो तुम्हीं लोगों को ऐसा साहस कैसे होता है?" जैसे पागलों और सुरापायियों को देख लोग ठहाका लेते हैं, तुम लोगों की भी हँसी उड़ावेंगे।"

यह ठीक है। यदि उन लोगों पर आज की सभ्यता का रङ्ग चढ़ा होता तो उन्हें ऐसा करने का कदापि साहस नहीं होता। जिन शिक्षित महाशयों को कहीं संकीर्तन में, यात्रा में, रासलीला और रामलीला के समय एवं रामायण तथा भागवत की कथा के स्थानों में "हरि, हरि" बोलने और जयध्वनि करने में लज्जा और संकोच होता है; जिनके मुखों पर "जावियां" पड़ जाती हैं, कण्ठ नहीं खुलते, और यदि जयध्वनि करने का साहस भी हुआ तो ऐसी दवी आवाज से बोलेगें जैसे गवने की आई कोई नव-वधु बोलती हो, वे ऐसा करने का अवश्य साहस नहीं कर सकते; किन्तु वहां का रंग ही दूसरा था। वे लोग, प्रायः सभी, थे तो महान पंडित और विद्वान् एवं आज के विद्वानों से कहीं अधिकतर बुद्धिमान्, पर सब के सब रंग मे रँगे हुए थे। उनपर श्याम रंग गाढ़ा चढ़ा था। उस पर दूसरा रंग नहीं चढ़ सकता था। वह पवित्र अथवा अपवित्र साबुन से धोए भी नहीं छुट सकता था। "सूरदास की कारी कमरिया, चढ़े न दूजो रंग" की बात थी।

और यह भी है कि यदि आज का समय होता, तो इस समारोह से नगरसंकीर्तन के लिए, उन्हें वहां के कर्म्मचारियों से कदाचित् आज्ञा भी लेनी पड़ती और जनता की शान्तिभङ्ग के विचार से और राहों के रुक जाने के ख्याल से उन्हें आज्ञा प्राप्त होती कि नहीं इसमें भी सन्देह ही है।

उनलोगों के चित्त का भाव इस कविता से पूरा प्रदर्शित होता है:—

हौं प्रेमनगर के बासी। काउ कियो करै उपहासी।
दुहुं लोकन दिक नहिं हेरों। विचरों जगमाहिं उदासी।
सिव लाज न भय किहि केरो। नित ध्यान मगन सुखरासी।
श्रीकृष्ण प्रेम अभिलासी। हौं प्रेमनगर के बासी॥

उक्त सरोवर पर तैयार होकर भक्तों ने हरिकीर्तन आरम्भ किया। गान, वाद्य, हुंकार तथा हरिध्वनि की गूंज चतुर्दिक व्याप्त हो गई। नृत्य तथा गान करते भक्तगण आगे बढ़ने लगे। पुरी के प्रभु-भक्त गौड़ीय भक्तों का दर्शन करने पहले से गये थे। कीर्तन आरम्भ होते ही समूचा नगर टूट पड़ा। ऐसा कीर्तन कभी किसी को देखने सुनने की वारी नहीं आई थी। उसी समय सार्वभौम ने इसके वर्णन में यह श्लोक रचा था।

"आनन्दहुङ्कारगभीरघोषो हर्षानिलोच्छ्वासितताण्डवोर्म्मिः।
लावण्यवाही हरिभक्तिसिन्धुश्चलः स्थिरं सिन्धुमधःकरोति॥"

भक्तों के निकट आने पर प्रभु की आज्ञा से दामोदर स्वरूप तथा गोविन्द ने आगे जा कर माला तथा प्रसाद द्वारा भक्तों का स्वागत किया। पहले स्वरूप, पश्चात् गोविन्द, ने अद्वैताचार्य के गले में माला डाल कर दंडवत किया और आचार्य के पूछने पर दामोदर ने उन्हें गोविन्द का परिचय दिया।

ये सब दृश्यों को देख राजा ने सार्वभौम से कहा कि, "ऐसा रंग हमने कभी नहीं देखा। न ऐसे तेजस्वी वैष्णवों के दर्शन का हमें कभी सौभाग्य हुआ। इनके आगे प्रभाकर ऐसा प्रभाहीन दीखता है; जैसे उसके सामने दीपक ज्योतिहीन हो जाता है। हमें कृष्ण-मङ्गल गीत श्रवण करने का अवसर मिला है: परन्तु हमने ऐसा मधुर संकीर्तन ऐसा नृत्य और ऐसी सुमिष्ट हरिध्वनि कभी नहीं सुनी। गीत का आशय समझे विना ही केवल सुर ही कानों में

पढ़ने से मन बेहाथ हो जाता है। अर्थ समझने से न जाने कैसी दशा होगी? ऐसे संकीर्तन की किसने सृष्टि की है ?"

सार्वभौम ने कहा कि "श्रीचैतन्य ने इसकी सृष्टि की है। उन्हों ने धर्म प्रचार के लिए जन्म ग्रहण किया है। कलिकाल में कृष्ण नाम कीर्तन ही धर्म है। जो संकीर्तन द्वारा ईश्वराराधना करते हैं, वेही बुद्धिमान, दूसरे तो कलि के किंकर के समान हैं। "जैसा कि भागवत स्क० ११, अ० ५, श्लोक ३२-में कथित है। (१)

राजा ने फिर कहा कि "शास्त्र में ऐसे अवतार का प्रमाण रहते हुए भी बहुत से पंडित लोग प्रभु से क्यों विद्वेष करते हैं?" उत्तर में सार्वभौम ने निवेदन किया कि "विना हरि कृपा के महान् पंडित होने पर भी कोई भगवान को नहीं जान सकता। वे ब्रह्मा को भी अगम हैं। श्रीमद्भागवत स्क०-१०, अ० २४ श्लोक २९ में ब्रह्मा श्रीकृष्ण भगवान से कहते हैं:—

"अथापि ते देव पदाम्बुजद्वयप्रसादलेशानुगृहीत एव हि।
जानाति तत्वं भगवन्महिम्नो न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन्॥

पुनः राजा के पूछने पर उन्हें प्रायः सब भक्तों का परिचय दिया गया। भक्तों को श्रीजगन्नाथ का दर्शन किये विना, आगे बढ़ते देख राजा ने साश्चर्य उसका कारण पूछा। उसपर भट्टाचार्य ने कहा कि "प्रेम की तरङ्ग विधि विधान के बांध को भङ्ग कर देती है। और फिर लोगों का चित्त प्रभु के चरणों में लगा हुआ है। ऐसी अवस्था में जो दर्शन को जाते तो लाभ के बदले अपराध ही होता। अतएव पहले प्रभु का दर्शन कर शान्तचित्त से श्रीजगन्नाथ के दर्शन का आनन्द लेंगे।"

इसी मध्य में भवानन्द के पुत्र वाणीनाथ को पांच छः वाहकों के द्वारा प्रभु के निवास स्थान पर महाप्रसाद लिवा जाते देख,

१ इसी खण्ड के पष्ट परिच्छेद का नोट १ देखिये।

राजा को बड़ा अचम्भा हुआ और उन्होंने सार्वभौम से कहा कि "तीर्थ में आकर क्षौर, उपवास, स्नानादि करके प्रसाद पाने की रीति है, ये लोग क्या इसी समय भोजन करेंगे ?" भट्टाचार्य ने कहा कि "निश्चय शास्त्र की ऐसी ही आज्ञा है ; परन्तु भगवान की प्रत्यक्ष आज्ञा का उल्लंघन करके भक्तगण शास्त्र की परोक्ष आज्ञा को क्यों मानने लगेंगे ? जब प्रभु खाने को कहेंगे, उन्हें प्रसाद पाना ही होगा।"

इन कथनोपकथनों के अनन्तर, राजा काशीमिश्र तथा पड़िछा को उचित आज्ञा देकर अपने स्थान पर गये। सार्वभौम तथा गोपीनाथ ने दूर से भक्तों के संग प्रभु के मिलने का आनन्द अवलोकन किया।

जब भक्तों ने काशीमिश्र के घर की राह ली, तो प्रभु सेवकों के संग आकर मार्ग में ही उनसे मिले। अद्वैत ने प्रभु के चरणों में प्रणाम किया और इन्होंने उन्हें अंक में लगाया। आप सब पुराने भक्तों से मिले। नवीन भक्तों के प्रणाम करने पर, आपने प्रत्येक को गले से लगाया, कुशल सम्बाद पूछा और भीतर घर में ले जाकर सबको अपने पास बैठाया, एवं उन्हें स्वयं तिलक और माला दी। तब तक भट्टाचार्य और गोपीनाथ भी वहां जा पहुंचे और उन लोगों ने सभों को यथा योग्य दंड प्रणाम किया।

प्रभु ने सानन्द अद्वैत की ओर देख कर कहा "आज हम आप के दर्शन से पूर्ण हुए।" उन्होंने उत्तर दिया कि "भगवान तो सदैव पूर्ण और ऐश्वर्य्य पूर्ण हैं ; परन्तु भक्तों के संग उनकी उल्लासवृद्धि अवश्य होती है एवं उनके संग क्रीड़ा में वे निश्चय आनन्द पाते हैं।"

पुनः वासुदेव की पीठ पर हाथ फेर कर आपने कहा कि "मुकुन्द तो बालकाल ही से हमारे सखा हैं, परन्तु तुम्हें देख हमें विशेष आनन्द हो रहा है।" वासुदेव ने उत्तर दिया कि "आपकी

संगति में मुकुन्द का पुनर्जन्म हुआ है। अतएव हमारे ज्येष्ठ होने पर भी हमसे उनका दर्जा बड़ा है आपकी कृपा से वे सबगुणों में उन्नत्यवस्था को प्राप्त हुए हैं।

फिर आपने उन दोनों पुस्तकों को नकल कर लेने की आज्ञा दी, जिन्हें ये दक्षिण से लाये थे। प्रत्येक गौड़ीय वैष्णव ने उनकी नकल उतार लीं और इस प्रकार उनका सर्वत्र प्रचार हो गया।

आपने इसी ढंग से श्रीवास तथा उनके चारों भाइयों से, शंकर के सम्बन्ध में उनके बड़े भाई दामोदर से तथा शिवानन्द आचार्य रत्न प्रभृति से प्रेमपूर्वक आलाप किया।

मुरारिगुप्त द्वार के बाहर ही दीनभाव से पड़े थे। प्रभु के उन्हें याद करने पर भक्तगण उन्हें खोज लाये। वे दांतों में तृण धारण किये अति नम्रतापूर्वक सामने उपस्थित हुए। उनके मना करने और पीछे हटते जाने पर भी प्रभु ने उन्हें पकड़ कर अंक में लगाया।

हरिदास बहुत दूर सड़क किनारे पड़े थे। जब भक्तगण उन्हें लाने गये तो उन्होंने कहा—"हम जातिहीन, नीच व्यक्ति एवं मन्दिर के निकट जाने के योग्य नहीं। यदि बाग में हमें थोड़ा एकान्त स्थान मिले तो हम वहीं शान्तभाव से समय व्यतीत करें, जिसमें श्री जगन्नाथ के सेवकों का हमसे छूआछूत न हो।"

इस बात से प्रभु को बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर गोपीनाथ तथा वाणीनाथ के स्थान और भोजनादि की ठीक व्यवस्था करने पर, प्रभु ने भक्तों को अपने अपने निर्दिष्ट स्थान पर जाने तथा समुद्रस्नान और चक्रदर्शन कर पुनः अपने पास आने की आज्ञा की।

तब आप हरिदास को लाने गये, जो सानन्द नाम जप रहे थे। वे आपके चरणों पर गिरे और आपने उन्हें छाती से लगाया। दोनों प्रेमावेश में रोने लगे। प्रभु सेवक के गुणों से और सेवक प्रभु के गुणों से विह्वल हो गये। हरिदास ने कहा कि "हम अस्पृश्य पामर हैं; हमारा शरीर आप स्पर्शमत कीजिये।" प्रभु ने कहा कि "हम

स्वयं पवित्र होने के लिए तुम्हें छूएंगे, क्योंकि हममें तुम्हारी सी पवित्रता नहीं। तीर्थ, स्नान, यज्ञ, तप, दान तथा वेदपाठ के कारण तुम प्रतिक्षण अधिक अधिक पवित्रता प्राप्त कर रहे हो। तुम ब्राह्मण तथा सँन्यासी से भी बढ़ कर हो। यह कह कर आपने निम्न लिखित श्रीमद्भागवत के ३ सं० ३३ अ० का सातवां श्लोक पढ़ा। यथा:—

"अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृह्णन्ति ये ते ॥"(५)

फिर प्रभु ने उन्हें बाग की एक कोठरी में रख कर कहा कि "तुम यहीं बैठे नाम जपा करो और यहीं से चक्र का दर्शन किया करो; हम नित्य आकर तुमसे मिला करेंगे।"

पुनः समुद्रस्नान के अन्तर सब लोगों ने प्रभु को साथ लेकर भोजन किया। तत्पश्चात् प्रभु ने प्रत्येक भक्त को तिलक और माला दी। तब सबके सब सब निज निज वासस्थान में आराम करने गये।

सन्ध्या में सब लोग प्रभु के निकट उपस्थित हुए। उसी समय रामानन्द के आ जाने से सबसे उनका परिचय कराया गया, तब लोग मिल कर श्रीजगन्नाथ के दर्शन को गये। सन्ध्या-आरती के अनन्तर संकीर्तन की चार मंडलियां ठीक की गईं। आठ ढोलों तथा बत्तीस करतालों के साथ "हरिहरि" कह कर संकीर्तन आरम्भ हुआ। प्रेमधारा प्रवाहित हो चली। चतुर्दिक से भक्त और दर्शक गण इस परमानन्द का रसास्वादन के निमित्त वहां एकत्र हुए। सबको ऐसे नृत्य गान से आश्चर्य हो रहा था। ऐसा प्रेमोद्गार लोगों को कभी देखने का सौभाग्य नहीं हुआ था।

(५) जिस की जिह्वा के अग्र भाग में तुम्हारा नाम वर्त्तमान रहे वह चंडाल होने पर भी सर्वश्रेष्ठ है। जो तुम्हारा नाम लेता है, वही तपस्या करता है, वही योग करता है, वही तीर्थाटन करता है वही आर्य्य है और वही वेदाध्ययन करता है।

प्रभु संकीर्तन करते मन्दिर की प्रदक्षिणा करने लगे। कीर्तन मंडलियां उनके आगे पीछे संग संग घूम रही थीं। लोगों को प्रभु का रोदन, कम्प, स्वेद और हुंकार देख देख महाश्चर्य हो रहा था। पिचकारियों से जल छूटने के समान आंखों से अश्रु के फ़ौवारे छूट रहे थे।

पुनः नित्यानन्द अद्वैताचार्य, वक्रेश्वर पंडित तथा श्रीवास का नृत्य होने लगा। प्रभु मध्यस्थ हो कर देखने लगे। तमाशा यह था कि प्रत्येक व्यक्ति समझता था कि प्रभु केवल उसी की ओर देख रहे हैं। नृत्य करते करते जो इनके समीप पहुंच जाते थे उन्हें, ये छाती से लगाते थे। वहां के लोग आज आनन्द सागर में तैर रहे थे।

राजा भी खबर सुनकर छत से इनके दर्शन का आनन्द ले रहे थे और इससे प्रभु के दर्शन का अनुराग उनके मन में और भी वृद्धि पा रहा था।

संकीर्तन समाप्त होने पर सब लोग श्रीजगन्नाथ देव पर पुष्प वर्षण करके प्रभु के घर आये एवं प्रसाद पाकर शयन करने गये।

जब तक भक्तगण, वहां रहे, संकीर्तन का आनन्द नित्य होता रहा। नित्य प्रभु ही भक्तों को भोजन नहीं कराते थे। गौड़ीय भक्त लोग भी एक एक करके प्रभु का निमन्त्रण करते थे। प्रभु की रुचि की वस्तुएं वे लोग अपने संग लाये थे।

द्वादश परिच्छेद

श्रीजगन्नाथ के गुण्डिका (वाटिकाभवन) का मार्जन



भक्तों के संग संकीर्तन तथा स्नान भोजन में कुछ काल सानन्द व्यतीत हुआ, तब रथयात्रा का समय आ पहुंचा आपने सार्वभौम, तुलसी पड़िछा (भंडारी) तथा काशीमिश्र को बुलाकर कहा कि रथयात्रा के पूर्व गुण्डिका मन्दिर की सफाई आवश्यक है और वह काम करने को आप स्वयं उद्यत हुए। लोगों ने कहा कि "ऐसा तुच्छ काम आपके करने के योग्य तो नहीं; पर जब आपकी इच्छा ऐसा कौतुक करने की है तो इसमें बाधा कौन दे सकता है? प्रयोजनीय, झाड़ू खुर्पी और घड़े आदि मन्दिर में अभी प्रस्तुत करके दिये जाते हैं।

दूसरे दिन प्रातःकाल प्रभु अपने गौड़ीय तथा उड़िया भक्तों को तीलक, माला दे कर अपने संग मन्दिर में ले गये और तीन सौ के लगभग भक्तगण खुर्पी, झाड़ू आदि लेकर अपने कार्य में प्रवृत्त हुए। बीच बीच में "हरिध्वनि" भी होती जाती थी। काम करते करते कोई नाचने भी लगता था। एक के नृत्य आरम्भ करने पर बहुत से उसका संग देने लगते थे।

ऐसे काम में स्वयं लगने और प्रधान प्रधान भक्तों को लगाने का तात्पर्य यह था कि लोग यह पूर्णरूप से समझ जायं कि भगवत् सेवा सम्बन्धी कोई कार्य तुच्छ नहीं। सब ही समान सुखद और फलदायक हैं। मन्दिर के लिए जल लाना, मन्दिर का झाड़ बुहार करना, श्रीठाकुर तथा भक्तों के भोग भोजन के निमित्त प्रसाद प्रस्तुत करना, आरती पूजा के समान ही है। वहां का कोई काम छोटा बड़ा नहीं।

जब श्रीजगन्नाथ का रथ मन्दिर से सुन्दराचल को चलता था, तो स्वर्णमार्जनी से राह साफ करने और चन्दनजल छींटने का काम कटकाधिप प्रतापरुद्र गजपति ही करते थे। हमारे बहुत से पाठकों को स्मरण होगा कि आज से दो तीन ही वर्ष पूर्व सिक्खों के गुरुद्वारा सुप्रसिद्ध अमृत सर के मन्दिर का तालाब साफ किये जाने के समय स्वयं पटियाला नरेश ने सर्वसाधारण के संग टोकरियों में मिट्टी निकालने का काम किया था।

प्रभु ने आज्ञा की थी कि अपना अपना साफ किया हुआ कूड़ा करकट प्रत्येक व्यक्ति विलग रखता जाय। उसीसे अन्दाज़ लगेगा कि किसने कितना काम किया और उसीके अनुसार प्रत्येक प्राणी पुरस्कार और तिरस्कार का अधिकारी होगा।

ऊपर नीचे और भीतर बाहर सर्वत्र खुर्पी और झा॰ से परिष्कार करने के अनन्तर लोग हाथों से साफ कर कर कूड़ा करकट एकट्ठा करने लगे। अन्त में देखा गया कि प्रभु ने सर्वाधिक और वयोवृद्धादि के कारण अद्वैताचार्य ने सबसे कम काम किया। इस पर हँसी मज़ाक भी होने लगा। प्रभु ने कम काम होने से अद्वैत को दण्डाई बताया। स्वरूप ने उत्तर दिया कि "दूध मक्खन चाभनेवाले ग्वाले से कोई तपस्वी ब्राह्मण कैसे समता कर सकता है?" प्रभु ने कहा "जो संसारसंहारी है, उसे भगवान कैसे जय दे सकेंगे?" स्वरूप ने फिर कहा "जो पिलावे स्वस्तन का दूध, उस का वधिक, महासाधु हैं न?" प्रभु ने कहा "इसके साक्षी तो स्वयं जगन्नाथ ही हैं। उन्होंने मुझ निर्दोष को जय, और जगसंहारी अद्वैत को पराजय दिया है।" अब अद्वैत ने कहा" खूब! भलामानस ही तो अपने काम का अपने को ही साक्ष्य मानता

है'। आपही गबाइ जगन्नाथ, और जगन्नाथ के आप. निश्चय, आपलोग बड़े सुजन हैं।" (१)

ठीक है "मनतुरा हाजी बुगोयम, तू मरा हाजी बुगो।".

मन्दिर के धोने का काम अब आरम्भ हुआ। तालाब और कुओं से लोग दौड़ादौड़ पानी लाने लगे। परस्पर धक्का के कारण घड़े फूटने लगे और नये काम में आने लगे। कोई जल लानेवाला प्रभु के पैरों पर जल गिरा देता है और जब वह चलता है उसे उठाकर पान कर लेता है। यह काम लोग चुप चाप कर लेते थे। पर एक सीधा सादा गौड़ीय ब्राह्मण भक्त प्रत्यक्ष ही एक घड़ा जल आपके चरणों पर गिराकर, उसे चिल्लू चिल्लू पान करने लगा। प्रभु ने स्वरूप से कहा "तुम अपने गौड़ीय को देखो। मन्दिर के बीच में इसने हमारा पैर धोकर चरणामृत लिया। श्रीजगन्नाथ के निकट हमारा यह अपराध कैसे शमन होगा? तुम्हारे बंगला मानुष ने हमें यह दुःख दिया है।" भक्तगण तो श्रीजगन्नाथ तथा प्रभु में कुछ प्रभेद नहीं मानते थे, अतएव उन्हें उस प्राणी पर वास्तविक क्रोध नहीं हुआ, वरन वे मन में प्रसन्न हुए। तौभी प्रभु के लेहाज से स्वरूप उसे गर्दन पकड़ कर बाहर कर आये। वह व्यक्ति यह दंड पाकर बहुत खुश हुआ और भक्तों की सम्मति से उसने पुनः भीतर जाकर और प्रभु के चरणों में पड़कर क्षमा-प्रार्थना की। आप हँस कर रह गये।

इसी प्रकार श्रीजगन्नाथ मन्दिर तथा नरसिंह मन्दिर के भीतर बाहर खूब परिष्कार किया गया।

अनन्तर अल्पकाल विश्राम करके लोगों ने नृत्य आरम्भ किया। भक्तगण चारों ओर घेर कर प्रभु को मध्य में करके नाचते थे। प्रभु के उद्दंड नृत्य का ढंग देख भयभीत हो भक्तों ने नृत्य बन्द किया।

१ इस ढंग के बातचीत का कारण यह है कि गौरांग को। भक्तगण श्रीकृष्ण (जगन्नाथ) का अवतार और अद्वैत को जगसंहारकर्ता शिव का अवतार मानते थे।

फिर लोग तालाव में जलक्रीड़ा में प्रवृत हुए। पश्चात् श्रीनरसिंह देव को प्रणाम करके उपवन में जाकर श्रीकृष्ण के पुलिन भोजन का अनुभव करते और आनन्द लेते लोगोंने प्रसाद पाया। महाराजकी आज्ञा से वहां पांच सौ आदमियों के भोजन के योग्य प्रसाद पहले ही से प्रस्तुत था।

स्वरूप, जगदानन्द, दामोदर, काशीश्वर, गोपीनाथ, शंकर तथा वाणीनाथ परोस रहे थे। प्रथमोक्त दो पुरुषों ने नाना प्रकार की युक्तियों से प्रभु को खूब भोजन कराया। अन्य लोगों ने स्वयं इतना खाया कि कंठ तक भर गया। पेटों में पाचक की गोली रखने का भी स्थान नहीं रहा। इन खानेवालों में सार्वभौम भी थे। वे प्रभु की ही पंक्ति में बैठे थे जहां पुरि, भारती नित्यानन्द, अद्वैताचार्य, आचार्य रत्न तथा श्रीवास प्रभृति विराजमान थे। उनके बहनोई गोपीनाथ वहां जाकर बोले "कहिये महाशय! आप यहां कहां? यह क्या किया? आपके आचार व्यवहार और वेदविचार किस पहाड़तली में गये? क्या थे, क्या हुए? कहिये तो यह उत्तम कि वह उत्तम?

भट्टाचार्यने कहा—' भाई! यह सर्वसुख तुम्हारे बदौलत है। आपके कारण प्रभुकी दया हुई। प्रभु ने काक को हंस कर दिखाया। हम तार्किक कुबुद्धि, शृगाल की नाईं भूका करते थे। कहां उन तार्किक शृगालों का संग और कहां यह सुख की तरङ्ग।"

प्रभु ने कहा—"यह बात नहीं है। आपकी पूर्व साधना सिद्ध थी। इसीसे कृष्णनाम आपको स्फुरित हुआ। आपकी पवित्र संगति से नाम में हमलोगों की भी रति हुई है।

भोजन के समय चिरप्रथा के अनुसार नित्यानन्द तथा अद्वैत में भी कुछ रङ्ग ढङ्ग होता रहा। पीछे परोसने वालों ने भोजन किया और प्रभु का जूठन हरिदास के पास भेजा गया। उन्होंने पंक्ति में

बैठना स्वीकार नहीं किया था। जूठन में से कुछ भक्तों ने तथा गोविन्द ने भी लिया।

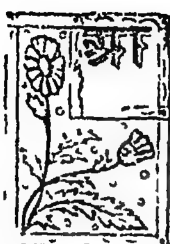
इसके दूसरे दिन "नेत्रोत्सव" था। १५ दिनों तक श्रीजगन्नाथ का दर्शनसुख किसीको प्राप्त नहीं हुआ था। (१) आज लोगों को वह सुख लाभ हुआ। प्रभु अपने भक्तों के संग दर्शन को गये। प्रातःकाल से दो पहर तक दर्शन का सुख लेते रहे। वे श्रीजगन्नाथ की मूर्ति में राधा भाव से श्रीश्यामसुन्दर के दर्शन का आनन्द भोग कर रहे थे। दर्शन काल में नरहरि आपके निकटही खड़े थे। उन की कविता से बोध होता है कि आप नरम नरम श्रीभगवान कृष्ण को कुछ ऐसा उलाहना भी दे रहे थे।

तुम्हें देखे बिना प्यारे, हमारी जान जाती है।
महा दुख, पर उलट कर भी, न तुम तुझ पर नज़र करते।

१, शास्त्रों के अनुसार पन्द्रह दिनों तक एकान्त में महालक्ष्मी के संग वास करने के कारण लोगों को श्रीजगन्नाथ का दर्शन नहीं होता। किन्तु प्रोफेसर यदुनाथ सरकार कहते हैं कि मूर्तियों पर रंग चढ़ाये जाने के कारण दर्शन बन्द हो जाता है।

त्रयोदश परिच्छेद

रथयात्रा–उत्सव


ज रथयात्रा का महोत्सव है। उधर सागर तरङ्गित हो रहा है, इधर जनता के मन में आनन्द की लहरें लहरा रही हैं। भारत के भिन्न भिन्न भागों से लाखों मनुष्य दर्शनार्थ एकत्र हुए हैं। सबके सब प्रेमोन्मत्त से दीखते हैं। आज बड़े छोटे का विचार नहीं। स्वयं कटकाधिप अपने प्रधान प्रधान कर्मचारियों के संग साधारण वेष में उपस्थित हैं। महीनों से इसकी तैयारियां हो रहीं थी। महीनों से लोग इस दिन के आगमन के लिए लालायित थे।

यह उत्सव अब भी पुरी में बड़े समारोह से सम्पन्न होता है। उड़ीसाप्रदेश के अन्य प्रान्तों में तथा छोटानागपुर, मानभूमि और सम्बलपुर के जिलों में भी इस उत्सव का आनन्द होता है।

रथयात्रा और उलटा रथयात्रा के लिए वहां की कचहरियां भी बन्द होती हैं। पटने में भी यह उत्सव होता है; पर वहां के आफिस बन्द नहीं होते।

और जगहों में ठाकुर जी अपने स्थान को परित्याग कर रथ पर सवार हो किसी अन्य स्थान में जाते हैं। नव दिनों तक वहां वास कर पुनः अपने मन्दिर में आते हैं। पुरी में श्रीजगन्नाथ, बलभद्र तथा सुभद्रा जी अपने मन्दिर से जाकर "गुन्डचा" अर्थात् वाटिकाभवन में विराजमान होते हैं। प्रथम गमन "रथयात्रा" एवं प्रत्यागमन "उलटा रथयात्रा" के नाम से प्रसिद्ध है।

यह उत्सव चिरकाल से इस देश में मनाया जाता है। सुप्रसिद्ध चीन देशीय बौद्ध यात्री फाहियान का इसी रथयात्रा के ही दिन पटने में आगमन हुआ था। अपने यात्रावर्णन में उसने इसका सविस्तर उल्लेख किया है।

रथयात्रा का नाम तो प्रायः सभी जानते हैं। पर इस उत्सव का कारण कदाचित् सब किसीको ज्ञात नहीं होगा। ग्रीष्मस्नान के अनन्तर श्रीजगन्नाथ पन्द्रह दिनों तक एकान्त में श्रीलक्ष्मी के साथ सुखानन्द भोगकर, उनकी अनुमति से सुन्दराचल जाकर एक सप्ताह श्रीराधा के संग विहार करते हैं। यही गमन तथा प्रत्यागमन रथयात्रा के नाम से ख्यात है और इसीके उपलक्ष्य में यह उत्सव मनाया जाता है।

आज वही रथयात्रा का उत्सव है। गत रात्रि में इसके उल्लास में प्रभु को नींद नहीं आई है। रात रहते ही प्रभु आप उठे हैं और आपने अपने भक्तों को जगाया है। सब लोग स्नानादि से निवृत्त हो 'पांडु विजय" अर्थात् श्रीजगन्नाथ के सिंहासन परित्याग कर, रथ पर विराजमान होने को शोभा का दर्शन करने को बाहर हुए हैं। प्रतापरुद्र ने अपने दरबारियों के संग आपके भक्तों को इस का यत्नपूर्वक दर्शन कराया है। आपने भी उनके मध्य खड़ा होकर इस दर्शन का सुख लाभ लिया है।

रथ की सजावट देख दर्शकवृन्द महा चकित हुए हैं। रथ मेरु सा उच्च स्वर्णमय दीखता है। सैकड़ों सुन्दर चंवर और दर्पण उसके चतुर्दिक लटक रहे हैं। ऊपर ध्वजा पताका फहरा रही है और जरतारी की चंदोवा शोभायमान है; जिसकी ओर दृष्टि करने से आंखे तिरमिरा जाती हैं। घागर, किङ्किणी और घन्टों की सुखदायिनी ध्वनि हो रही हैं। विविध भांति के चित्रपटों से रथ विभूषित है।

ठाकुरजी रथ पर शोभायमान हुए। महाराज प्रतापरुद्र ने अपने हाथों से स्वर्ण झाड़ू से मार्ग परिष्कार कर उसपर चन्दन जल छिड़का है। राजा को इसी नीच सेवा से श्रीजगन्नाथ की उन पर पूर्ण कृपा थी। प्रभु भी उनकी यह सेवा देख महाप्रसन्न और दयार्द्र हुए और इसका पुरस्कार भी उन्हें शीघ्र ही प्राप्त होगा।

सूक्ष्म वालुकामय पथ यमुना की, और उसके उभयपार्श्व के बाग उपवन, वृन्दावन की शोभा दरसाते और स्मरण कराते थे। श्रीजगन्नाथ दोनों ओर के दृश्यों का आनन्द लेते चले। "जय ध्वनि" होने लगी ? परन्तु बाजों के गर्जन के आगे " जय ध्वनि " नक्कारखाने में तूती की आवाज़ की कहावत थी।

रथ, घोड़ा, हाथी के द्वारा क्यों नहीं खिंचवाया गया ? आदमी लोग उसे क्यों खींचने लगे या अब भी खींचा करते हैं ? जैसे प्रेमप्रदर्शन तथा सम्मानवर्द्धन के विचार से कभी कभी कांग्रेस के अधिवेशनों के अवसर पर श्रीमान् स्वर्गीय सुरेन्द्रनाथ, गोखले, महात्मा गांधी, आदरणीया बिसेंट इत्यादि की गाड़ियों के घोड़ों को खोल कर उन गाड़ियों को स्टेशनों से स्वयम्सेवकों के खींचकर लेजाने की बात सुनने में आई है, वैसे ही भक्तिभाव से अभिभूत हो लोग रथ खींचने में लगजाते और उसमें एक दूसरे की स्पर्धा करने लगते हैं। जब मनुष्यों का सत्कार इस प्रकार हुआ करता है तब श्रीजगन्नाथ की सेवाभक्ति में संकोच और प्रश्न का क्या प्रयोजन है !

रथसब चले। आगे के रथ पर श्रीजगन्नाथ शोभायमान और अन्य दो रथों पर श्रीहलधर तथा सुभद्रा विराजमान। रथ कभी शीघ्र चलते, कभी मन्दगति धारण करते और कभी एकदम ठहर जाते, चलाय नहीं चलते। जैसी जगन्नाथ की इच्छा होती, वैसीही रथों की गति।

इधर प्रभु ने अपने भक्तों को निज करों से मालाएं पहनाईं और उनके ललाटों पर तिलक लगाया। पुनः आपने संकीर्तन की चार मण्डलियां बनाईं। उनमें चौबीस गायक और आठ मृदङ्ग बजानेवाले हुए। प्रथम मण्डली में मुख्य गायक स्वरूप दामोदर और उनके सहायक दामोदर (द्वितीय) नारायण, गोविन्ददत्त तथा राघवपण्डित हुए। इस मण्डली में नर्तक अद्वैताचार्य हुए।

दूसरी मण्डली के मुख्य गायक श्रीवास और उनके सहायक छोटे हरिदास गङ्गादास. श्रीमान् शुभानन्द तथा पण्डित श्रीराम। इसमें नर्तक नियत हुए श्रीनित्यानन्द। तीसरी में मुख्य गायक मुकुन्द और अन्य गायक उनके बड़े भाई वासुदेव दत्त गोपीनाथ, मुरारि श्रीकान्त तथा वल्लभसेन एवं नृत्यकारी हरिदास ठाकुर थे। चौथी में, मुख्यगायक थे गोविन्द घोष और उनके सहायक थे हरि दास, विष्णुदास, राघव माधव घोष तथा उनके भाई वासुदेव घोष। इसमें वक्रेश्वर नृत्यकारी थे।

इनके अतिरिक्त कुलीन ग्राम, श्रीखंड तथा शान्तिपुरवाली तीन मंडलियां पहले सी थीं। इनके प्रधान क्रमशः रामानन्द बसु, नरहरि सरकार, ठाकुर एवं अद्वैतचार्य के ज्येष्ठ पुत्र अच्युतानन्द थे। चार मंडलियां रथ के आगे, दो बग़लों में और एक पीछे की ओर संकीर्तन करने लगीं। सर्वसमेत चौदह मृदंग बजने लगे। बयालिस गायक गाने और सात नर्तक नृत्य करने लगे।

कीर्तन आरम्भ होते ही सब उपस्थित जन आनन्द में मग्न हो गये। सबोंके नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी। अन्य सब बाजे आप ही आप बन्द हो गये। प्रभु हाथों को ऊपर उठाये "हरि हरि" और "जय जगन्नाथ" की ध्वनि करते सातों मण्डलियों में विचरण करते लोगों का उत्साहवर्द्धन कर रहे थे। एक ही समय सातों गोलों में विराजमान पाये जाते थे और सब सम्प्रदायवाले यही कहते थे कि "प्रभु हमारे समीप हैं; हम पर दया के कारण कहीं दूसरी जगह नहीं गये हैं।

राजा भी वहां विराजमान हैं, पर इस समय कोई उनकी ओर उलट कर भी दृष्टि नहीं करता है। सबकी टकटकी प्रभु की ओर लगी है। स्वयं महाराज आत्मविस्मृत हो प्रभु का दर्शन कर रहे हैं। देखते, देखते, आप क्या देखते हैं कि रथ को ठहरा कर श्री-जगन्नाथ संकीर्तन सुन रहे हैं,। धीरे धीरे यह प्रतीत होने लगा कि

रथ पर विराजमान प्रभु और श्रीचैतन्य प्रभु दोनों एक ही पुरुष हैं। पुनः उसी क्षण आपने रथ पर जगन्नाथ को नहीं वरन् प्रभु को ही विराजमान पाया। तब क्या हुआ?—"देखिते विवश राजा हइल प्रेममय।"

उधर प्रभु कभी किसी गोल में गाते, किसीमें नाचते एवं कभी भावमुग्ध हो जाते हैं। इस प्रकार थोड़ी देर नृत्य गान के बाद स्वयं नृत्य में प्रवृत्त होने के अभिप्राय से, सब दलों को इकट्ठा कर के, आपने उनमेंसे श्रीवास, मुकुन्द, हरिदास, माधव, गोविन्द घोष, गोविन्द दत्त, रमाई, राघव तथा गोविन्दानन्द नौ गायकों को चुन कर उन्हें स्वरूप के अधीन किया।

तब युगल कर जोर श्रीजगन्नाथ को प्रणाम करके आप निम्नोद्धृत तथा अन्य कई एक श्लोक पढ़ कर स्तुति करने लगे। यथाः—

"नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः॥"

अनन्तर उक्तनिर्णीत गायकों ने गाना और आपने उद्दंड नृत्य आरम्भ किया। आप घोर गर्जन करने लगे; चक्र के समान घूमने लगे। आपके पद प्रक्षेप से पृथ्वी कम्पायमान होने लगी। आप के अङ्गों में स्तम्भ, स्वेद, पुलक, अश्रु, कम्प इत्यादि नानाभाव प्रदर्शित होने लगे। कभी लुढ़कते, कभी स्वर्णपर्वत के सदृश भूमि पर धड़ाम गिर पड़ते।

एक बार गिर कर अचेत हो गये, मुंह से फेन निकलने लगा। लोग व्यग्र हो चेतन्य करने की चिन्ता ही में थे कि आप चौंक कर हुंकार करते उठ खड़े हो गये। चारों ओर से लाखों आदमी 'हरि ध्वनि' करने लगे। आप फिर नाचने लगे। आपका नृत्य दर्शन करने के निमित्त आगे बढ़ने के लिए लोग एक दूसरे को धक्का देने और ठेलने लगे। यहां तक कि प्रभु के शरीर पर भी गिरने लगे। वहां पुलिस का प्रबन्ध था या नहीं, इसका तो ठीक

पता नहीं लगता, परन्तु आगे की घटना से नहीं होने का ही अधिक अनुमान होता है। हां! महाराज और उनके अमात्यादि वहां अवश्य विद्यमान थे; पर उस समय जनता को किसीका भय और चिन्ता नहीं थी।

इससे लोग तीन मंडलियां बना कर और घेरे में रख कर प्रभु की रक्षा करने लगे। पहली मंडली नित्यानन्द प्रभृति की थी। उसके मध्य में प्रभु नृत्य करते थे। दूसरा मंडल अन्य शेष भक्तों का था और तीसरा मंडल स्वयं महाराज अपने संगियों के साथ बांधे हुए थे। आप स्वयं अपने एक अमात्य के कंधे पर हाथ दिये खड़े थे। उनके आगे ही स्थूलकाय श्रीवास खड़े थे। इससे महाराज को प्रभु के दर्शन की सुविधा नहीं थी। कभी इस ओर झुकते थे और कभी उस ओर; इससे अमात्य हरिचन्दन श्रीवास को हाथ से एक ओर ठेलने लगे। वे भाव में विभोर थे। बारम्बार ठेले जाने से जो उन्हें कुछ क्रोध हुआ तो फिर कर उन्होंने अमात्य के गाल पर एक गाढ़ी चपत जमा दी।

प्रबल प्रतापी कटकाधिप के अमात्य, जो एक मामूली आज्ञा प्रचार से राज्यमें "तहोबाला" कर सकते थे और प्रलय का दृश्य दिखा सकते थे, करोड़ों प्रजा तथा देशीय विदेशीय दर्शकों के सम्मुख, खुले मैदान एक दरिद्र विदेशीय ब्राह्मण और अदना जवान के चपतप्रदान का अपमान भला कैसे सह सकते थे? कोई साधारण मनुष्य तो सहन कर हो नहीं सकता। वे भक्त जी को इस का मज़ा चखाने को तुरंत तैयार हुए। चाहा कि गला टीप कर वहीं उनका काम तमाम करदें। इतने में महाराज ने चट उनका हाथ पकड़ कर कहा "आप क्या करते हैं? देखते नहीं, कि ये भाव में विभोर श्रीमहाप्रभु के भक्तों में से है? आप अपना परम सौभाग्य समझिये कि इसी मिस से उन्होंने आपका कपोल स्पर्श किया। यह क्रोध नहीं, यह आशीर्वाद है। यह अपमान नहीं, यह

आपके भाग्यमान होने का प्रबल प्रमाण है। यदि यह चपत हमारे भाग्य में होता, तो हम अपनेको संसार में सर्वापेक्षा भाग्यमान और धन्य मानते।" इससे वे शान्त हो गये। सब लोग महाराज को साधुवाद कहने लगे और श्रीवास मनमें बहुत लज्जित हुए।

यह महाराज के सद्विचार और ज्ञान का प्रभावथा कि सिर पर आया हुआ विघ्न टल गया और शान्तिपूर्वक काम चलता रहा। सम्वादपत्रों में देखते हैं कि आज ऐसे ऐसे अवसरों पर ऐसोही कार्रवाई और विचार से काम न लेने के कारण कैसा कैसा उत्पात खड़ा होजाता है; कितने की जानें जाती हैं और कितनों को जेलों में सड़ना पड़ता है।

इधर मनुष्यों को कौन कहे स्वयं जगन्नाथ रथ रोक कर मानों एक टक से आश्चर्ययुत प्रभु का नृत्य देख रहे थे। एवं सुभद्रा तथा बलराम यह दृश्य देख मानो मुस्कुरा रहे थे।

इस अपूर्व नृत्य के समय प्रभु के अङ्गों में सर्वसात्विक भाव एक साथ ही प्रदर्शित होने लगे थे। रोमाञ्च ऐसा दीखता था मानों सेमर के वृक्ष के कांटे हों। हवा की झोंक से कदली कांपने के समान शरीर कांप रहा था। स्थिर होकर जगन्नाथ को प्रणाम नही कर सकते थे। कभी कभी ठाकुर के सामने बड़े ज़ोर से भुजाओं पर ताल ठोकते थे, मानो कहते थे कि जब आपकी कृपा है तो हमें भय क्या? दांत ऐसे कटकटा रहे थे मानो अभी टूट कर गिर पड़ेंगे और इस कारण मुख से शुद्ध शब्द नहीं निकलते थे। जगन्नाथ कहने में, ज, जग ग, मुंह से निकलता था। फ़ोआरों के समान आंखों से अश्रुजल उछल उछल कर लोगों को चतुर्दिक भिगो रहे थे। आनन गुलाब तथा मल्लिका की आभा दिखाता था। स्वेद रक्तमय नजर आता था। कभी शुष्क वृक्ष की नाईं अडोल खड़े हो जाते और कभी भूतल पर लुढ़क जाते। सांस धीमी पड़ जती। उधर भय से भक्तों का दम

घुटने लगता। कभी मुंह और नाक से गाज फेन निकलता और शुभानन्द कृष्ण प्रेममें मत्त हो उसे ले ले कर पान करने लगते और अपना अहोभाग्य समझते।

उद्दंड नृत्य के अनन्तर प्रभु ने स्वरूप को गाने को कहा। उन्हों ने इनके मन का भाव समझ कर यह गीत आरम्भ कियाः—

" सेइ प्राणनाथ पाइनु ।
याहा लागि मदन दहने झुरि गेनु ॥"

स्वरूप सुर भर कर गाने लगे और आप मधुर मधुर नृत्य करने लगे। श्रीजगन्नाथ पर दृष्टि फिर सब नाचते गाते थे। कभी गाते गाते और हाथों से भाव बनाते रथ के पीछे जाते और पुनः आगे आते कभी वक्रेश्वर वा स्वरूप का मुख चूमते, और कभी जिसे सामने पाते उसीको अंक में लगाते और उसीका मुखचुम्बन करते।

नृत्य करते करते आपके चित्त के भाव में पुनः परिवर्त्तन हुआ। आप ऊर्द्धबाहु किये यह श्लोक बारम्बार पढ़ने लगे जिसका आशय उस समय केवल स्वरूपदामोदर ही को ज्ञात हुआ था। पीछे रूप गोस्वामी ने लोगों पर प्रकट किया। यथाः—

" यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपा-
स्तेचोन्मीलितमालतीसुरभयः प्रौढाः कदम्बानिलाः।
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौ
रेवारोधसि वेतसीतरुतले चेतः समुत्कण्ठते ॥

इस का आशय यही है कि कोई स्त्री स्वपति से कह रही है कि "वही आप हैं और वही हम हैं। वही हमलोगों का मिलन भी हुआ है; किन्तु हमलोगों के एकान्त में प्रथममिलन में जो सुखानन्द प्राप्त हुआ था वह आज नहीं।"

यही श्लोक पढते और श्रीजगन्नाथ को निहारते आप नृत्य करते करते भाव में विभोर भूतल पर बैठ गये और कृष्ण का

चित्र बना कर उसके नीचे नखों से लिखने लगे, मानों कृष्ण को अपने मन का भाव लिख कर जनाते हों। जो चिन्ह करते उसे अश्रुधारा मिटा देती। और स्वरूप भी उनके आगे बैठे अपने हाथों से इनके कार्य में बाधा दे रहे थे। इतने में रथ चला और इनके मन का भाव पलटा। यह भाव उत्पन्न होगया कि श्रीकृष्ण अब इनकी प्रार्थना से रथ पर वृन्दावन चले। रथ पर अब इन्हें जगन्नाथ दृष्टिगोचर नहीं होते। उस पर कृष्ण ही दीखते हैं। राधाभाव में विभोर होने के कारण चारो आंखें बराबर होने पर लाज से सिर नीचा कर लेते हैं। कभी यह समझ कर कि कृष्ण इन्हें पकड़ने आते हैं, ये लजाते मुसकुराते, ताली बजाते, नृत्य करते पीछे हटते हैं। समझते हैं हमारे ही समान हमारी सखियों को भी आनन्द हो रहा है। बस इसी भाव से सखी मान कर कभी वक्रेश्वर का चुम्बन करते हैं, कभी गदाधर की गर्दन में लिपटते हैं, कभी दामोदर को अंक में लगाते हैं। स्वरूप का मुख चुम्बन कर उन्हें तो आपने इस प्रकार अंक में लगाया कि वे लोगों को अदृश्य हो गये; मानो इन्हीं की देह में प्रवेश कर गये।

आज इनके नृत्य तथा भावों का दर्शकों पर बड़ाही प्रभाव पड़ा। जो केवल आपकी सुख्याति सुना करते थे, जिन्हें कभी भाग्य से दूर से दर्शन हो जाता था, आज सब लोग आपके चरणों के समीप खड़े होकर आपके दर्शन का सुख उपभोग कर रहे हैं। जगन्नाथ के सेवक, राजकर्मचारी, यात्री, पुरी निवासी सभी दर्शकवृन्द आपके नृत्य, उत्साह, उमंग और आनन्द से विस्मित, मोहित और आह्लादित हो रहे हैं। सबों के हृदय में कृष्णप्रेम का बीज आरोपित और अंकुरित हो गया है। यात्रिगण भी नृत्य में सम्मिलित हो आनन्द को चतुर्गुण बढ़ा रहे हैं।

इसी नृत्य के मध्य प्रभु एक वार राजा के निकट ही अचेत हो गिर पड़े और ज्यों ही महाराज घबड़ा कर आपको पकड़ने लगे, आप चैतन्य हो यही कहते दूर हट गये कि "हमें धिक्कार है कि संसाररत राजा का स्पर्श हो गया।" इस प्रकार सबके समक्ष अपमानित होने से महराज को महाखेद हुआ; परन्तु सार्वभौम ने समझाया कि "खेद की कोई बात नहीं, वे आपके द्वारा अपने अनुयायियों को शिक्षा दे रहे हैं कि लोग संसारी जनों से विलग रहें। आप पर वे वस्तुतः प्रसन्न हैं। तभी तो करोड़ों व्यक्तियों के सम्मुख उन्होंने आपको परोक्षरूप से दर्शन दिया है। शान्त हूजिये। अब ही शीघ्र ही उनकी कृपा होगी।"

तब प्रभु ने रथ की प्रदक्षिणा की उसे आगे ढकेल दिया। रथ घड़घड़ा कर चला। सब लोग हरि हरि बोल उठे।

प्रभु ने अपने अनुयायियों के संग सुभद्रा तथा बलराम के सामने नृत्य किया। फिर जगन्नाथ के रथ के पास पहुंचे। इतने में तीनों रथ बलगंडी पहुंच कर वहां ठहर गये।

बांई ओर नारिकेल के वन में ब्राह्मणों का आवास था और दाहिनी ओर वृन्दावन के समान एक पुष्पवाटिका शोभायमान थी।

यहां श्रीजगन्नाथ को महाराज से लेकर साधारण जन तक अपनी रुचि और वित्त के अनुसार भोग अर्पण करते हैं। आगे, पीछे दाहिने, बाएं अथवा बाग में जहां अवकाश मिला लोग भोग-पात्र रख देते हैं। पकाया हुआ अन्न भोग नहीं चढ़ाया जाता।

प्रभु नृत्य, वन्दना कर पुष्पोद्यान के मकान के सायबान में लेट गये। भक्तगण भी वृक्षों के नीचे जहां तहां बैठकर विश्राम करने लगे।

"अमिय निमाइ-चरित" में लिखा है कि नृत्य करते करते प्रभु एक वार और राजा के निकट गिर पड़े थे। उस वार राजा उनके

दोनों चरणों को हृदय में लगा कर उनकी सेवा करने लगे थे। उस का हाल प्रभु को ज्ञात हुआ। वह बात किसी अन्य प्राणी पर प्रकट नहीं हुई।

लाखों मनुष्यों के मध्य काम किया जाय और कोई न जाने यह बड़े आश्चर्य की बात है। प्रभुकृत किसी कार्य के विषय में ऐसा कहा जाय तो वह दूसरी बात है। फिर यदि किसी पर वह बात प्रगट ही नहीं हुई, तो लेखक ने उसे कैसे जाना?

चतुर्दश परिच्छेद

कटकाधिप प्रतापरुद्र को प्रेमदान

प्रेमहि प्रेमी को पहुंचावत, इक दिन प्रेमपात्र के पास



महाराज प्रतापरुद्र को अल्प ही काल पूर्व सौभाग्य-ऊषा का दर्शन हो चुका है। सौभाग्य सूर्य्योदय की कुछ लालिमा भी दृष्टिगोचर हुई है। अब शीघ्र ही उसका पूर्ण उदय होगा। सब लोग सानन्द दर्शन करेंगे।

जिनके कृपाकटाक्ष के आप अति अभिलाषी थे, वे अभी आप पर पूर्ण दृष्टि करेंगे। जिनकी करुणावारि के एक बून्द के लिए तरसते थे, वे अभी करुणावृष्टि करेंगे। जिनके चरणों में शरण पाने के निमित्त आप अहर्निश व्याकुल थे वे पूर्णरूपेण आपको अपनावेंगे। जो आपके हाथों से दूर भागते थे, वे अब अविलम्ब आपको अङ्क में लगावेंगे। महाराज की पूरी विजय होगी।

बलगंडी में रथ ठहरने पर प्रभु उपवन के घर के सायवान में विराजमान हैं। कैसे विराजमान हैं और क्या कर रहे हैं वह सुनिये ?

नृत्यावेश अजहुं चित राजत।
जनु परेम तनु धारि विराजत, ऐसो शोभा भ्राजत॥
युगल चरण द्वय, पसारे पग द्वै, रह रह ताहि हिलावत।
अश्रुवुन्द सु झरत अनवरत वक्षस्थल हि भिगावत॥
आनद मगन सुगौरनि मूरति अर्ध श्लोक (१) उचारत।
शिव नन्दन सुख लहत निहारत चरण कमल उर धारत॥

इसी अवसर में राजवेष परित्याग कर और शुद्ध वैष्णव रूप बना कर प्रतापरुद्र पीछे पीछे डरते डरते, भक्तों को दंड प्रणाम कर और

---

१. "अर्थात् आनन्द दुग्ध पयाम्बुधि" "चैतन्य चन्द्रोदय नाटक देखिये।

संकेत द्वारा उनको आज्ञा लेते प्रभु के चरणों के समीप पहुंचे। प्रभु के चरण स्पर्श करने में पहले आगा पीछा करने लगे, भय। होने लगा कि प्रभु कहीं अप्रसन्न न हों; बिना आज्ञा पादपद्म स्पर्श करने में कोई अपराध न हो। फिर मन में ध्यान आया कि किसी प्रकार चरणस्पर्श से अपराध क्यों होगा? वह तो सब अपराधों का नाश कर देगा। तब मन में साहस करके आप चरणसेवन में प्रवृत्त हुए। पांव भी सुहलाने लगे और रामानन्द के परामर्शानुसार रास पञ्चाध्यायी के श्लोक भी आदिमे पढ़ने लगे। श्लोकों को सुन कर प्रभु आनन्दप्रफुल्लित हो गए एवं "और कहो, और कहो" कहने लगे। आपने कई बार उठने का भी यत्न किया; परन्तु प्रेमविवश होने से उठ नहीं सके।

हां! जब राजा ने :—

"तब कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहं।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ये भूरिदाजनाः॥"

यह श्लोक पढ़ा तब प्रभु से रहा नहीं गया। वे हुंकार करके उठ खड़े हो गये और राजा को सानन्द छाती से लगा कर बोले—"तुमने मुझे बहुमूल्य रत्न दान किया; हमारे पास पलटे में कुछ देने को नहीं हैं; अतएव हम यही आलिङ्गन देते हैं। तुम कौन हो? तुमने हमे कृष्णामृत लीलारस पान कराया।" राजा ने निवेदन किया "हम आपके दासानुदास हैं, हमें आप अपने दासों का दास बनाइय।" तब प्रभु ने राजा को अपना ऐश्वर्य प्रदर्शन कराया।

"चन्द्रोदय नाटक" के अनुसार राजा को अंक में लगाये, उक्त श्लोक पाठ करते करते प्रभु राजा के साथ ही भूतल पर अचेत गिर पड़े। इसी दशा में प्रभु के शरीर से शक्ति बाहर हो राजा के अंग अंग में प्रवेश कर गई। जितनी शक्ति धारण के वे योग्य समझे गये, उतनी शक्ति उन्हें मिली। तब उन्हें छोड़ प्रभु रथ देखने चले गये। गोपीनाथ ने राजा को चैतन्य किया। भक्तवृन्द उनके भाग्य की

सराहना करने लगे। एवं राजा सबको दंड प्रणाम कर वहां से विदा हुए।

थोड़ी देर के बाद राजा का भेजा हुआ बालगंडी का भोग पदार्थ वाणीनाथ सार्वभौम तथा रामानन्द के साथ प्रभु के पास पहुंचा। आपने अपने हाथ से भक्तों को खूब भोजन कराया। प्रत्येक को दस दस दोने दिये गये। वे प्रसादों से भरे थे। स्वरूप के द्वारा यह जानने पर कि उनके बिना भक्तगण भोजन नहीं करेंगे, उन्होंने भी अपनी मंडली में बैठ कर खूब खाया। तोभी बहुत से पदार्थ बच गये। वे प्रभु के आज्ञानुसार कंगालों को खिलाये गये। प्रभु ने उन्हें नाम कीर्तन सिखलाया। "हरिबोल, हरिबोल" करते वे प्रेमसागर में निमग्न होने लगे। भोजनदक्षिणा में प्रभु ने उन्हें भक्तिधन प्रदान किया।

अब आगे रथ बढ़ाने का समय आया। बंगाली वीर रस्सा खींचने लगे। रथ हिला तक नहीं। राजा भोजन करने गये थे। यह सम्बाद पाते ही अपने दरबारियों के सहित दौड़े आये। बड़े बड़े योद्धा और स्वयं महावीर वर महाराज भी खींचने लगे; परन्तु रथ ज्यों का त्यों खड़ा है। महा बलिष्ठ मातङ्ग जोते गये। महाउते उन्हें अंकुश मारते, वे चिक्कार करते, ज़ोर करते, खींचने की यथासाध्य चेष्टा करते, परन्तु रथ जव भर भी नहीं चलता। महाराज के मुंह पर हवाइ छूटने लगी। सबको सकता लग गया। कौन अपराध हुआ कि श्रीजगन्नाथ रथ आगे नही बढ़ने देते। जनता "हाहाकार" करने लगी। प्रभु अपने भक्तों के संग खड़े यह रंग देख रहे थे। अब राजा निराश हो प्रभु का मुंह ताकने लगे। तब प्रभु ने हाथियों को खोलवा कर और रस्सा निज भक्तों के हाथों में देकर रथ को पीछे से ऐसा ठेला, कि वह तुरत घड़घड़ाता हुआ आगे बढ़ा और पलक मारते सुन्दराचल के गुंडिचा बाग में पहुंच गया।

सब लोग "जय गौराङ्ग की", "जय कृष्ण की" आकाशभेदी ध्वनि करने लगे। राजा उनके मित्र और यात्री प्रभु की महिमा और शक्ति देख प्रेम से प्रफुल्लित हो गये।

तदनन्तर मूर्तियां अपने अपने सिंहासनों पर विराजमान कराई गईं। फिर स्नानविधि तथा भोग का कार्य समाधान हुआ। तब प्रभु आनन्दनृत्य करने लगे; जिससे लोग प्रेमसागर में गोता लगाने लगे। सन्ध्या आरती का दर्शन करके प्रभु जगन्नाथ-वल्लभ उपवन में विश्राम करने गये।

अब प्रभु का निमन्त्रण होने लगा। नेवता देनेवाले दो चार या दस बीस आदमी नहीं थे। लगभग दो सौ नवद्वीप के भक्त थे। जब तक श्री जगन्नाथ सुन्दराचल में रहे अद्वैतादि मुख्य नव भक्तों की ओर से निमन्त्रण होता रहा। भक्तवृन्द चार मास पुरी में वास करेंगे। अतएव नेवता के निमित्त उनलोगों ने १२० दिनों को आपस में बांट लिया। तोभी पूरा न पड़ने से एक एक दिन, दो दो तीन तीन भक्तों को निमन्त्रण करना पड़ा। इससे चारों महीना पुरी में उत्सव ही का समा रहा।

सुन्दराचल में प्रभु के मन का यह भाव हो गया था कि इस समय श्रीकृष्ण वृन्दावन पहुंच कर श्रीराधाजी के संग विहार कर रहे हैं। इसीसे कृष्ण विरहजनित क्लेश आपको दुःख नहीं दे रहा था। वहां सानन्द विचरते और चैतन्यपूर्वक खेल कौतुक कर रहे थे।

प्रातकालीन स्नानके अनन्तर आप भक्तों के संग श्रीजगन्नाथ दर्शन एवं उनके सम्मुख नृत्यगान करते—कभी अद्वैत, नित्यानन्द, हरिदास को नचाते। गुन्डिचाबाग में दिन में तीन बार कीर्तन होता।

इन्द्रद्युम्न सरोवर में भक्तों के संग जलक्रीड़ा का आनन्द लेते। घाट पर भीड़ लग जाती। नहाते नहाते दो दो व्यक्ति

जलयुद्ध करने लगते। जल में गोता लगाकर परस्पर पांव पकड़ कर खींचने, जल उछालते तथा एक दूसरे को जल में दबाते। रंग और जमता, जब राज्य के दो महामहिम गौरवान पुरुष रामानन्द और सर्वभौम पानी में पैठ बालकों के समान जलकेलि में प्रवृत्त होते। इनलोगों के कारण दर्शकों की संख्या और भी बढ़ जाती थी।

शिशिर बाबू सच कहते हैं कि "यदि एक पागल जल में तैरे या क्रीड़ा करे तब चार सौ लोग उसे देखने को दौड़ जाते हैं और जहां चार सौ पागल जल में इस प्रकार गोलमाल करें, तब क्या रंग हो, यह अनुभव कर लीजिए।"

प्रभु गोपीनाथ को तो राय और भट्टाचार्य को शान्त करने के लिए कहते हैं; क्योंकि उन्हें देख कर लोग क्या कहेंगे और स्वयं अद्वैत की छाती पर, शेषशायी भगवान् का अनुकरण करके, पड़ जाते हैं और इसी रीति से जल में तैरने लगते हैं।

गोपीनाथ कहते हैं—"सार्वभौम का यह लड़कपन आपकी कृपा का साक्षी स्वरूप है। जब आपकी कृपा का समुद्र तरङ्गित होता है तब बड़े बड़े पर्वतों को डुबो देता है; इन दो छोटे पत्थर के टुकड़ों की बात कौन चलावे।"

स्नानानन्तर अपने मुख्य भक्तों के संग अद्वैत के यहां प्रसाद पाया। अन्य लोगों ने वाणीनाथ का लाया प्रसाद खाया। सन्ध्या में आपने जगन्नाथ का दर्शन और उनके सामने नृत्य किया और रात में बाग में जाकर सो रहे।

वाटिका में भक्तों को लिए आप वृन्दावन की लीला करते हैं। आपके दर्शनमात्र से लतातरु पुष्पित हो जाते हैं। भ्रमर गुंजार करने लगते हैं। कोइलें कुहुक उठती हैं। शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु बहने लगती है।

आप सब वृक्ष-लताओं से अङ्कमालिका करते हैं, मानो वे सब इनके चिरपरिचित हों। प्रत्येक वृक्ष के तले आप नाचते और वासुदेव गाते हैं। अन्यभक्त अन्यवृक्षों के निकट नाचगान करते हैं। फिर वक्रेश्वर नाचते हैं और आप गाते हैं। स्वरूप इत्यादि भी नृत्यगान में इन्हें योगदान करते हैं।

इस कौतुक के अनन्तर आप भक्तों के संग नरेन्द्र सरोवर में क्रीड़ा करते हैं और फिर भक्तों के संग प्रसाद पाते हैं। नवों दिन इसी प्रकार व्यतीत होते हैं।

पंचदश परिच्छेद

हेरा पञ्चमी वा लक्ष्मीविजय ।



रथयात्रा के आठवें दिन हेरा-पञ्चमी के उत्सव का समय आया । इसमें क्या होता है यह बात पाठकों को इसी विवरण से विदित होगी, महाराज ने काशीमिश्र को आज्ञा दी कि श्री जगन्नाथभाण्डार तथा राजभाण्डार से प्रयोजनीय वस्तुएं प्रस्तुत कर और गतवर्षों की अपेक्षा द्विगुण व्यय करके इस उत्सव में इस बार ऐसी अपूर्व तैयारियां की जायं जिससे रथयात्रा की तैयारियां मात हो जायं और प्रभु को इसके दर्शन से भी आनन्द प्राप्त हो। चित्रपट, किंकिनी, छत्र, चामर, ध्वजा, पताका, घंटा इत्यादि बहुतायत से एकत्र किये जायं। श्री लक्ष्मी की डोली खूब भव्य सजी जाय । गान वाद्य की धूम मचे ।

यह उत्सव नीलाचल में होता है। अतएव उस दिन प्रभु सुन्दराचल में श्रीजगन्नाथ का दर्शन करके भक्तों के सहित प्रातः काल नीलाचल में विराजमान हुए।

प्रभु को रसविशेष का कुछ वर्णन सुनने की इच्छा हुई। अतएव आपने मुस्कुरा कर स्वरूप से पूछा—"श्री जगन्नाथ अपनी सहज उदारता प्रकट करते हुए द्वारका में वास करते हैं तौभी साल में एक बार उन्हें वृन्दावन गमन की उत्कंठा होती है। वृन्दावन के समान यहां उपवन और उद्यान है। श्री जगन्नाथ रथयात्रा के बहाने मन्दिर त्याग कर गुण्डिचा जाते हैं, एवं वहां पुष्पोद्यानों में भ्रमण कर अहर्निश विहार में व्यतीत करते हैं; पर लक्ष्मी को संग क्यों नहीं ले जाते ?"

स्वरूप ने उत्तर दियाः—"वृन्दावन में इन्हें प्रवेश करने का अधिकार नहीं है। वहां कृष्णलीला के सहायक गोपीगण हैं। वहां उनके अतिरिक्त दूसरा कोई कृष्ण प्रेम का भागी नहीं हो सकता।"

प्रभु—"कृष्ण, यात्रा के बहाने निकलते हैं। बलदेव तथा सुभद्रा भी उनके साथ जाती हैं। गोपियों के संग उपवनों में लीला विहार होता है। उनका निगूढ़ भाव किसी पर प्रगट नहीं होता। तब कृष्ण में कोई प्रगट दोष नहीं तो लक्ष्मी इतना रोष क्यों करती हैं?'

स्वरूप—"प्रेमवती का यही स्वभाव है कि प्रीतम की लेश-मात्र उदासीनता से उन्हें क्लेश और क्रोध उत्पन्न होता है।"

इतने में रत्न जटित स्वर्ण डोली पर सवार सक्रोध लक्ष्मी का सिंहद्वार पर आगमन हुआ। आगे आगे पंक्ति की पंक्ति सेवकगण छत्र, चंवर, ध्वजा, पताका, माही मरातिब लिये, गायकवृन्द गान करते एवं देव दासियां नृत्य करतीं शोभायमान थीं। पीछे अमूल्य वस्त्रों और अलकारों से अलंकृत सैकड़ों दासियां पानदाने झारी पंखा, चँवर, समूह लिये श्रीलक्ष्मी का ऐश्वर्य प्रदर्शन कर रही थीं।

ये दासियां जगन्नाथ के प्रधान दासों को पकड़ कर, बांध कर अपनी स्वामिनी के समीप लाने लगीं। कितनों पर चपतें बजने लगीं कितनी की पीठें गरम होने लगीं कितने हाजत और जेल भेजे गये, कितनों पर जुर्माना हुआ। कितनों को गालियां सुनो पड़ीं। कितने मार खाकर अचेत हो गये प्रभु के भक्तगण यह देख देख मुंह छिपा छिपा कर हँसने लगे।

इधर स्वरूप ने सप्रमाण और सविस्तर मानवतियों का लक्षण वर्णन किया जैसा कि "चरितामृत" ग्रन्थ में उल्लिखित है।

उनकी बातें सुन श्रीवास ने कहा कि "वृन्दावन में केवल फूल पत्र, पर्वत तथा गुंज मालाए हैं और जब लक्ष्मी का ऐसे

ऐश्वर्य विभव परित्याग कर कृष्ण वहां चले जाते हैं तो लक्ष्मी का उनके व्यवहारों पर सन्देह करना स्वाभाविक है।"

तब लक्ष्मी ने उनकी ओर फिर कर कहा—"हां! अपने प्रभु को देखो। यह ऐश्वर्य छोड़ केवल फूल फल और तुच्छ पत्तों के लिए गुण्डिवा बाग में जाते हैं।" "अपने प्रभु को शीघ्र हाज़िर करो" यह कहती हुई लक्ष्मी की दासियां श्रीगौराङ्ग के भक्तों और सेवकों को बांध बाध कर अपनी स्वामिनी के चरणों के निकट घसीट लाईं उनसे प्रणाम करायी, क्षमा प्रार्थना कराईं।

जगन्नाथ के रथों पर दंडप्रहार करने लगीं। उनके सेवकों की चोरों की दशा हो गईं। अन्त में जब उनलोगों ने हाथ जोड़ कर दूसरे दिन जगन्नाथ को हाज़िर कर देने की प्रतिज्ञा की तब लक्ष्मी का रोष शान्त हुआ।

स्वरूप पुनः दिखलाने लगे कि विशुद्ध प्रेम में लक्ष्मी जैसा व्यवहार स्वाभाविक है। शुद्ध प्रेम की व्याख्या सुनते सुनते प्रभु उमङ्ग में आकर नाचने लगे और स्वरूप गान करने लगे। व्रजरस-पूर्ण गान सुनकर प्रभु का प्रेम उमड़ चला और आपने पुरुषोत्तम पुरी को प्रेम में निमग्न कर दिया।

लक्ष्मी जी यथासमय अपने स्थान पर लौट गईं। परन्तु नृत्य तीसरे पहर तक होता रहा। प्रभु नृत्य गान को विराम ही नहीं देते थे। उस समय राधाप्रेम से आविष्ट होकर प्रेम की मूर्त्ति बन गये थे। स्वरूप ने संकेत द्वारा उन्हे शान्त किया।

तब स्नान से निवृत्त होकर आपने भक्तों के संग श्रीजगन्नाथ और लक्ष्मी का प्रसाद भोजन किया। सन्ध्या में लौट आकर एवं पुनः स्नान करके आपने जगन्नाथ का दर्शन और उनके सम्मुख नृत्यगान किया।

नवें दिन श्रीजगन्नाथ नीलाचल चले। सबलोग उनके साथ लगे। रास्ते में रथ का रस्सा टूट गया। आपने उसे उठा

कर और कुलीनग्राम के निवासियों को बुलाकर आज्ञा की, कि तुमलोग प्रति वर्ष ऐसा पट रस्सा यहां पहुंचाया करना। यह काम तुमलोगों को दिया गया। तब से वे लोग बराबर रस्सा प्रस्तुत किया करते हैं। (१)

नीलाचल पहुंच कर प्रभु अपने निवासस्थान पर विराजमान हुए। पूर्व प्रबन्धानुसार भक्तों के यहां भोजन होने लगा।

एक दिन अद्वैताचार्य ने पुष्प, चन्दन, और मालादि द्वारा प्रभु की पूजा और अत्यन्त प्रेम से स्तुति की। प्रभु ने तुलसीदल चढ़ाने नहीं दिया और आपने कौतुक द्वारा उस पूजा को हँसी खेल बनाने का विचार किया। पूजा की सामग्रियां पूजाडाली में कुछ बच गई थीं। उन्हींको लेकर आपने अद्वैत की पूजा की और शिवपूजा के समान गाल, बजा बजा कर आप स्तुति करने लगे, यथाः—

"हे राधे, हे कृष्ण, हे रमे, हे विष्णु, हे सीते, हे राम, हे शिव, तुम जो हो, तुम्हें नित्य नमस्कार। तुम जो हो, सो हो, तुमको नमस्कार।'

फिर जन्माष्टमी के दिन नन्दोत्सव का आनन्द हुआ। कानाई खुंटिया ने नन्द का और जगन्नाथ माहाति ने यशोदा का वेष धारण किया। प्रभु अपने भक्तों के संग ग्वाल बाल बनकर दही दूध के मटके ढोने लगे। राजा सार्वभौम प्रभृति के संग सबोंने खूब "दधिकांदो" का आनन्द लिया। अद्वैताचार्य के कहने पर कि "हम आपको तभी ग्वाला जानेंगे जब आप लाठी भाजें" प्रभु ने लाठी भांजने का खूब रंग जमाया। इनका कौशल देख सब चकित हो गये। नित्यानन्द ने भी लाठी का कौशल दिखलाया। बोध होता है कि उस समय बंगाल में भी लाठी खेलने की चाल थी।

(१) "अमिय निमाइ चरित" खंड ४, पृ० १०१ पंचम संस्करण देखिये।

राजा ने श्रीजगन्नाथ का प्रसाद, एक बहुमूल्य वस्त्र आपकी आवेशावस्था में आपके माथे में बांध दिया और अन्य भक्तों को भी वस्त्र दिया गया।

कन्हाई तथा जगन्नाथ ने आवेश में अपने २ घर का सब पदार्थ लुटा दिया। प्रभु को इससे बड़ी प्रसन्नता हुई और आपने माता पिता की दृष्टि से उन लोगों को प्रेमपूर्वक प्रणाम किया।

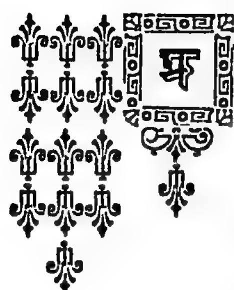
विजयदशमी के दिन लंकाविजय का उत्सव हुआ। भक्तों को साथ लेकर आपने कपिसेना का स्वांग रचा। हनुमान के आवेश में एक वृक्ष की एक बृहत् शाखा तोड़ कर आप बड़े वेग से यह कहते दौड़े-"रावण कहा हैं? दुष्ट, कुकर्मी जगन्माता को हर लाया है। आज तेरा सपरिवार नाश करेंगे" आपकी उमंग पर लोग चकित हो "जय, जय" करने लगे।

इसी प्रकार रासयात्रा, दीपावली, एवं उत्थान द्वादशी के उत्सवें सानन्द सम्पन्न हुए।

षोड़श परिच्छेद

भक्तों की विदाई

"ग़नीमत जान इसमिल वैठने को।
जुदाई की घड़ी सिर पर खड़ी है॥"



प्रभु ने चार मास भक्तों के संग सानन्द व्यतीत किया। अब उनकी विदाई होगी। उनको विदा करने में प्रभु के चित्त को क्लेश हो रहा है। उन्हें विलग करने का मन नहीं चाहता ; वे भी प्रभु को छोड़ कर जाना नहीं चाहते; परन्तु प्रायः सभी गृहस्थ हैं, सबोंको परिवार, पुत्र कलत्र हैं। उन्हें प्रभु चिरकाल अपने निकट रख भी नहीं सकते। अतएव सबोंको आज अपने समीप बुला कर आप उनसे स्नेहपूर्वक विदाई की बात चीत आरम्भ करते हैं। कहते हैं कि "आपलोग प्रति वर्ष इसी प्रकार पुरी में आकर हमारे संग रथयात्रा दर्शन का आनन्द लिया कीजियेगा। इसी बहाने परस्पर मिलन का भी सुख हम-लोगों को मिला करेगा।"

अद्वैताचार्य से कहते हैं "कृपया आप चांडाल पर्यन्त सब किसीको कृष्णनाम प्रदान किया कीजियगा।" फिर राघव की ओर फिर कर कहते हैं कि "तुम्हारी निष्ठा और प्रेम से तो हम तुम्हारे हाथ बिक गये हैं। प्रियवर ! आपलोग एक ही बात से समझ जाइये। इनके घर सैकड़ों नारिकेल के पेड़ हैं। इनके यहां नारियर एक आना से भी कम में मिलता है। पर यह दूर दूर से बहुत दाम दे दे कर मीठा नारियर मंगाते और श्रीकृष्ण को भोग लगाते हैं। इसके अतिरिक्त सुमिष्ट कंद, मूल, फल, उत्तम उत्तम

मिठाइयां, मेवा, मक्खन, वस्त्र, भूषण आदि प्रभु को अर्पण किया करते हैं।" यह कह कर आपने राघव को अङ्क में लगाया।

श्रीखंड (सिलहट) के प्रतिनिधियों में गौड़ बादशाह के राज वैद्य मुकुन्द हैं। उनके भाई नरहरि और पुत्र रघुनन्दन हैं। प्रभु भक्तों से कहते हैं कि 'मुकुन्द यद्यपि गौड़धिप के वैद्य हैं और मुसलमान की नौकरी करते हैं, तथापि विशुद्ध स्वर्ण के समान इन का कृष्ण प्रेम स्वच्छ और पवित्र है। इनको भक्ति और प्रेम की थाह कोई नहीं पा सकता। एक समय गौडेश्वर के संग आलाप करते समय नौकर को मयूरपक्ष का पंखा लाते देख, कृष्ण के मोरपक्ष की याद आने से प्रेमाविष्ट होकर ये तुरत भूतल पर गिर पड़े थे। गौड़ाधिप ने घबड़ा कर स्वयं यत्नपूर्वक इन्हें चेतन किया। पूछने पर यद्यपि इन्होंने कहा कि इन्हें मृगी की बीमारी होती है, वे इनके अचेतन का मुख्य कारण समझ गये।" फिर आपने आमोदपूर्वक पूछा—"कहो मुकुन्द! तुम रघुनन्दन (१) के पिता हो, या वह तुम्हारा पिता है।" मुकुन्द ने उत्तर दिया कि वही है, क्योंकि उसीसे हम लोगों को कृष्णभक्ति हुई है।" प्रभु ने कहा—ठीक है

१. एक बार इनके पिता मुकुन्द कहीं जाते समय इनसे नियमानुसार ठाकुर को प्रसाद चढ़ाने के लिये कह गये। ये लड्डू मूर्ति के सामने ले जाकर बोले "ठाकुर जी! लड्डू लीजिये और भोजन कीजिये।" ठाकुर जी चुप। ये फिर बोले लीजिए, खाइए, नहीं तो पिताजी कहेंगे कि तू आप खा गया, ठाकुर जी को नहीं दिया।" इस पर भी ठाकुर जी के हाथ में लड्डू न लेने से, ये पृथ्वी पर छटपटाने और रोने लगे। अपने पूर्वजन्म के भक्त से हार कर ठाकुर जी ने इनके हाथ से आप मिठाई लेकर भोजन किया। इनका चेहरा देख कर पिता ने समझा कि इनका कथन झूठ नहीं है; ठाकुर जी ने निश्चय इनके हाथ से प्रसाद पाया है। अतएव उन्होंने इनसे फिर लड्डू खिलाने को कहा। जब भगवान मिठाई ले कर खाने लगे तब ये चिल्ला कर बोले "बाबूजी आकर देखिये, ठाकुर जी खा रहे हैं।" पिताके पहुंचते ही प्रभु ने हाथ रोक लिया; किन्तु उनको करकमल लड्डू लिये मुख की ओर फिरा देखा गया। श्रीखण्ड में हाथमें लड्डू लिये हुए कृष्ण भगवान की मूर्ति अबतक विराजमान है।

"जिस के द्वारा हमारे मन में कृष्ण विश्वास जन्मे वही हमलोगों का गुरु हैं।"

प्रभु फिर कहने लगे कि "श्रीखंड के कृष्णमन्दिर के सामने पुष्करिणी के किनारे एक कदम्ब का पेड़ है। उसके तले रघुनन्दन को नित्य एक कदम्ब का फूल मिल जाता है। उसी से यह कृष्ण की पूजा किया करते हैं। रघुनन्दन कृष्णपूजा किया करें। तुम कृपणभजन करते परिवार का प्रतिपालन करते रहो और बालब्रह्मचारी नरहरि भक्तों के संग जैसे हैं रहें।

पूर्वोक्त महेश्वरविशारद के दो पुत्र सार्व्वभौम तथा विद्यावाचश्पति दोनों उपस्थित हैं। उन के प्रति प्रभु कहते हैं कि 'वर्त्तमान काल में कृष्ण दारु और जल रूप में प्रकट हैं जिन के दर्शन और जिसमें स्नान से जीव का कल्याण होता है। दारु-रूप-वाले देव पुरी में विराजमान हैं और जलरूप में भागीरथी वर्त्तमान है। सार्व्वभौम दारुदेव की सेवा और वाचश्पति जल का सेवन करें॥"

फिर मुरारी को अंक में लगाकर आप ने उनकी अटल रामभक्ति की प्रशंसा की और कहा कि "हमारे लोभ देने पर भी ये अपने इष्टदेव श्री राम को परित्याग नहीं कर सके। हम ने उसी दम इन्हें छाती से लगा कर कहा था—" धन्य! धन्य!! धन्य!!! तुम्हारा प्रेम अथाह है। ऐसे सेवकों की प्रीति की वांन्छा कृष्ण आप करते हैं, जो छोड़ाने पर भी उनका चरण नहीं छोड़ते। मुरारी गुप्त हमारे प्राण हैं। इन की नम्रता पर हमारा हृदय विदीर्ण होता है।"

तब प्रभु सहस्र मुखा से मुकुन्द के भाई वासुदेव की प्रशंसा करने लगे। वे महान भक्त दयालु और लजालु पुरुष थे। वे अपनी प्रशंसा से अति लज्जित होते प्रभु से सविनय निवेदन करने लगे कि "जीवों का दुःख देख हमारा कलेजा फटा जाता है। आप उन का उद्धार कीजिये। उन का पाप हमारे सिर दीजिये। हम नरक यन्त्रणा सहर्ष सहेंगे।" प्रभु का पांव पकड़े नेत्रों में आंसू भरे ये

उन के मुख की ओर देखने लगे। इन की प्रार्थना सुन कर सब स्तम्भित हो रहे।

प्रभु ने उत्तर दिया कि "तुम पर ईश्वर की बड़ी कृपा है। कृष्ण सदैव भक्तों की वान्छा पूर्ण करते हैं। तुम जगत का कल्याण चाहते हो। तुम्हारे पाप भोगे विना ही तुम्हारी प्रार्थना से कृष्ण जीवों का उद्धार करेंगे।"

सम्भवतः आज के बहुत से लोग ऐसी प्रार्थना को नक़ल समझेंगे और इस की सत्यता पर विश्वास नहीं करेंगे। पर जब महात्मा मसीह का दूसरों के पापों को अपने माथे लेने की बात विश्वासनीय समझी जाती है तो यह विश्वास योग्य क्यों नहीं होगी ? और परम पवित्र तथा प्रसिद्ध देवस्थल में, दो सौ भक्तों की मंडली में, एक महान संन्यासी का जिन्हें लोग कृष्ण का अवतार मान रहे थे और जिन को स्वयं वासुदेव पूर्ण भगवान समझते थे, चरण पकड़े लोगों पर अपनी मिथ्या भक्ति प्रकट करने के लिये उन्हे असत्य बोलने का कैसे साहस होता ? यदि लोगों को उन के वाक्यों की सत्यता में तनिक भी सन्देह होता, तो लोग उसी दम उन से घृणा प्रकाश करने लगते। उन की बातों पर मोहित नहीं होते। और प्रभु के आगे उन का कपटकथन काम नहीं करता। उस समय यदि यों हीं विश्वास हो भी जाता तो आगे कपट-प्रकट हुये विना नहीं रहता। "उघरे अंत न होंहि निवाहू" की बात होती।

फिर प्रभु ने शिवानन्द को भक्तों का पालन और रक्षणावेक्षण करते प्रति वर्ष उन्हे पुरी लिवा आने को और वासुदेव की खोज खबर लेते रहने को कहा जिस में उन के परिवारवर्ग को कुछ क्लेश न होने पावे।

कुलीनग्राम-निवासियों को आपने श्री जगन्नाथ के लिये बराबर पाटडोरी लाते रहने की आज्ञा की और कहा कि "गुणराज खां के स्वरचित 'श्री कृष्ण विजय,' में 'नन्दनन्दन मोर प्राण नाथ'

लिखने से और उन के कृष्ण प्रेम से हम उन के वंशजों के और तुम लोगों के हाथ बिक गये हैं। तुम्हारे गांव के पशुपक्षी भी हमारे प्यारे हैं।"

सत्यराज खां प्रभृति के गृहस्थों का धर्म और साधन जानने की अभिलाषा प्रगट करने पर आप ने सर्वदा कृष्ण और वैष्णवों की सेवा एवम् कृष्णनाम कीर्त्तन का उपदेश दिया और वैष्णवों का लक्षण और पहचान की बात पूछने पर आप ने कहा कि "जिस के मुख से कृष्ण नाम निकले वही वैष्णव। वह दीक्षित भी न हुआ हो और साधन पूजन भी न करता हो, तौभी वह वैष्णव है।"

पुनः प्रभु श्री वास पंडित के गले में लिपट गये। दोनों नेत्र अश्रुपूर्ण थे। बोले—"आप के घर के कीर्त्तन में हम सदैव उपस्थित रहेंगे। केवल आप ही हम को देख सकेंगे। हमारी माता कैसी हैं? उन से हमारा अपराधसमूह क्षमा कराइयेगा। हम उन की सेवा छोड़ कर संन्यासी हो गये हैं। यह हम ने अवश्य अधर्म किया है। हम उन की प्रेम पास से बँधे हुये हैं। उन की सेवा हमारा परम धर्म्म है। हा! उस से हम अपनी ही करनी से वंचित हो गये। निश्चय संन्यासी होने के समय हमारी बुद्धि मारी गई थी। प्रेम ही हमारा धन है। संन्यास से हमें क्या काम था? कृष्ण भजन में गृहित्याग करने और माथ मुड़ाने का क्या प्रयोजन? आप उन से क्षमा प्रार्थना कीजियेगा। हम उन्हीं की आज्ञा से नीलाचल में वास करते हैं। हम उन्हें कदापि नहीं भूलते। हम घर जाकर नित्य उन के चरणों का दर्शन करते हैं। इस से वे आनन्द अनुभव करती हैं। पर उन्हें यह सत्य प्रतीत नहीं होता। एक दिन नाना प्रकार का व्यंजन बना कर वे रोने लगीं कि 'ये सब निमाइ को बहुत प्रिय लगते, आज वह यहां नहीं।' दुःख से हम रोने लगे और तुरंत जाकर उन पदार्थों को भोजन किया। बासनों को ख़ाली देख आंखें पोंछ कर वे कहने लगीं 'किस ने

भोजन किया ?' उन्हें नाना प्रकार की भावनाएं होने लगीं। गोपाल भोजन कर गये, या बर्तनों में खाद्य पदार्थ रखा ही नहीं ? उन्होंने ईशान को बुला कर बर्त्तनों को दिखलाया एवं गोपाल को पुनः प्रसाद भोग लगाया। अभी गत विजय-दशमी को हम उन की सेवा में पहुंचे थे। ये सब बातें कह कर आप उन्हें विश्वास दिलाइयेगा। और ये प्रसाद और वस्त्र उन्हें देकर उन के चरणों में हमारा शत कोटि प्रणाम कहियेगा।"

पाठकवृन्द! यह वही श्री जगन्नाथ जी का प्रसाद ज़री का कपड़ा था जो राजा प्रतापरुद्र ने आप के सिर में जन्माष्टमी के दिन बांध दिया था। ऐसा वस्त्र पतीहीना वृद्धा शची के काम का न था। इसे भेज कर प्रभु ने अपनी प्रिया के प्रति निज प्रीति प्रदर्शन किया। जिस के हृदय में संसारमात्र के जीवों का प्रेम था उसे अपनी स्नेहमयी पतिपरायणा पत्नी का प्रेम क्यों नहीं होता ?

शची के आग्रह से प्रियाजी ने उस साड़ी को पहना भी। उन्हें उसके पहनने में बाधा ही क्या थी ? उनके जगद्विख्यात पतिदेव अभी विराजमान, जीवों के कल्याण में यत्नवान थे। यदि उनकी आखों से दूर थे तो इस से क्या ?

भक्तगण चार मास के बाद विदा हो कर अपने देश को रवाने हुये। गदाधर पंडित रह गये और उन्हें यमेश्वर में प्रभु ने स्थान दिया। उन्हों ने क्षेत्र संन्यास लेकर गोपीनाथ की सेवा प्रारम्भ की। अब गौड़ीय भक्तों में से सार्व्वभौम, गोपीनाथ, हरिदास, छोटे हरिदास, शंकर, रामदास, गदाधर दास, वासू घोष (पदकर्त्ता) जगदानन्द स्वरूप दामोदर, दामोदर पंडित, गोविन्द काशीश्वर, प्रभृति प्रभु के साथ रहने लगे। नित्यानन्द भी रहे। पर ये शीघ्र ही यहां से गौड़ देश भेजे गये। इस का हाल अभी वर्णन किया जायगा।

प्रभु जीव की दशा देख बहुत दुखी रहते थे। भगवान के पाद पद्मों की शरण लेने से जीवों के दुःखों का तुरंत अन्त हो जाता है। किन्तु जीव इधर उधर भटकता भगवान का शरणापन्न न हो कर नाना प्रकार का दुःख भोगा करता है। इस से प्रभु को महा दुःख होता था। नाम कीर्तन कर के जीव सुखी हो, यही, इनके मन की साध थी। इनके चित्त के इसी भाव का ध्यान कर के इनके अन्तर्धान के बाद वासूघोष ने एक छन्द में यह आशय प्रगट किया थाः—

पतित को लख दया अब को करेगा।
भला किस आंख से आंसू ढरेगा॥

हरिनाम वितरण अर्थात् वैष्णवधर्म्म प्रचार में गौराङ्ग के दो प्रधान सहायक थे-नित्यानन्द और अद्वैताचार्य्य। आचार्य्य को तो आप ने कृष्णनाम प्रचार का आदेश देकर गौड़ देश भेजा। नित्यानन्द आप के पास बैठे हैं। यह बात इन्हें अच्छी नहीं लगती।

एक दिन आप ने नित्यानन्द से गौड़ जाकर जीवों का उद्धार करने को कहा। पर वे इन से विलग होने को राज़ी न हुये। फिर किसी दिन बात चलने पर इन को महा दुखितचित्त देख वे इन के गले से लिपट कर रोने लगे और बोले "जो कहिये वही करेंगे। जब आप का वियोग सहना ही बदा है तो वही सही।" प्रभु ने कहा "भाई गौड़ पाण्डित्यपूर्ण देश है; वहां सब वेदान्त ही छांटते हैं। वहां बड़े बुद्धिमान का काम है। तुम्हारे सिवाय अन्य कोई वहां कृत्यकार्य्य नहीं हो सकता।"

गौड़ ज्ञानस्थान और नित्यानन्द आनन्दखान। अतएव भगवान ने इन्हें गौड़ भेजा कि ये वहां जाकर मूर्ख पंडित, नीच ऊंच, सुमति कुमति, पापी चंडाल, सब का उद्धार करेंगे। जितना ही दुखी हो, उतना उस पर दया करेंगे; जितना ही पापी हो उतना ही उस पर कृपा करेंगे। इन्हें यह भी आज्ञा हुई कि ये बार बार

प्रभु के पास न जाया करेंगे। इस से समय व्यर्थ नष्ट हुआ करेगा।

इनकी सहायता के लिये प्रभु ने खानाकुल कृष्णनगर-निवासी अभिराम दास, पानीहाटी निवासी गदाधर दास, पदकर्त्ता वासू घोष इत्यादि को इन के साथ भेजा। प्रभु ने आते समय इन सब लोगों को शक्तिसम्पन्न कर दिया। ये सभी प्रायः प्रेम पागल थे।

निताई "भज गोविन्द" २ करते नवद्वीप पहुंच कर शची के चरणों में प्रणाम करने लगे। वे सानन्द इन्हें गोद में ले कर आंसू से इन्हें नहवाने लगीं। ये भी प्रश्न वर्षण करने लगे। फिर कुशल सम्वाद पूछ कर निश्चिन्त हुये। इनके आने से शची को कुछ ढाढ़स मिला। फिर निताई अपने सहचरों के संग अपने कार्य्य में प्रवृत्त हुये। कैसे काम करने लगे इस का हाल इन छन्दों से प्रगट होगा :—

१ पिला हरिनाम का प्याला किया मदमस्त दुनिया को।
अकेले सिव निताई ने; निमाई संग क्या करते ?

२ क्रोध नहीं अभिमान नहीं, नित नगर नगर भरमत रहते।
नित्यानन्द प्रसन्न सदा, कर जोर विनै सबसों करते॥
"बोलहरी" जब बोलत ना, तृनदांतन मों धरिकै कहते।
"गौरहरी" कहि, गथ्य विना, किन दास न मीत मुही करते ?

निताई की ऐसी ही सीधी सादी बातें सुन कर, इन की दीनता सरलता तथा प्रगाढ़ प्रेम और विश्वास देख लोग स्वभावतः इन के अनुगत होने लगे। जिस के निकट इन को यह सादगी काम नहीं करती, उस के सामने ये अधीर हो आंखों से प्रेमजल बहाते लोटने लगते थे। वह मन विगलित हो इन के पास बैठ इनकी देह सुहलाने लगता, समझाने लगता। इन के शरीर स्पर्श से उसका चित निर्मल हो जाता! वह स्वयं "हरिहरि" कहते नृत्य करने और प्रेमाश्रु बरसाने लगता!

सप्तदश परिच्छेद

सार्व्वभौम की भिक्षा वा अमोघ का भागोदय।



नवद्वीपीय भक्तों के विदा होने के बाद प्रभु जिस प्रकार समय व्यतीत करने लगे, उस का कुछ आभास निम्न-लिखित छन्दों में प्रदर्शित किया गया है।

सारा रात भजन मँह जात। जागत संख बजत परभात॥
पुरुपोत्तम दर्शन हित लागि। खुलत कपाट, जात सुख पागि॥
दर्शन करत नयन वह वारि। प्रेम मगन सवलोग निहारि॥
जिह दिक महाप्रभू चलि जाहिं। "हरि हरि" कह सवजन सुखपाहिं॥
पुनि सागर मँह करि असनान। माला फेरैं श्री भगवान॥
अन्यहि धरम सिखावन काज। नतरु सदा मुख नाम विराज॥
सुनैं गदाधर ढिग अपराह्न। कथा भागवत सुखद महान॥
सो आपै राधा परकास। तिहि सँग सदा रहैं सहुलास॥
भोजन सयन भ्रमन सव काल। संगहिँ सँग रहि उभय निहाल॥

एक दिन एक व्यक्ति भोजनार्थ आप को नेवता देने आये। आप ने कहा "हम लक्षेश्वर के सिवाय कहीं भिक्षा नहीं ग्रहण करते।" वे विचारे दुखित हो बोले "महाराज! यहां सहस्र की वात ही नहीं, लक्ष कहां पावेंगे?" आपने हंस कर कहा "हम उसे लक्षेश्वर कहते हैं जो प्रति दिन लाख नाम जप करे।" यह सुन कर उन्होंने लाख नाम जपने की सहर्ष प्रतिज्ञा की और आप ने सानन्द उन का निमन्त्रण स्वीकार किया। उस काल से नीलाचल के सव लोग लाख नाम जपने का साधन करने लगे जिस में प्रभु को निमन्त्रण करने की सुविधा पावें। प्रभु नाना प्रकार से नाम का प्रचार कर रहे थे। कहीं भक्तों के द्वारा, और कहीं स्वयं हँसी खेल

में, या अन्य उपयुक्त उपायों से। कठिन जीवों को आप खेल खेला कर, वंसी द्वारा मछली मारनेवालों की तरह, किनारे, अर्थात् ठिकाने पर लाते थे।

एक नेवता देनेवाले का हाल तो सुन चुके, अब अन्य का वृत्तान्त सुनिये। सार्वभौम ने एक नूतन भवन निर्माण किया था। उन का विचार हुआ कि प्रभु को अकेले निमन्त्रण करके कुछ दिनों तक अपने ही घर खूब भोजन करावें,

एक दिन उन्हों ने आप से एक मास उन के घर भिक्षा करने के निमित्त निवेदन किया। एक दो दिन से अधिक किसी के घर भोजन करना संन्यासधर्म्म के विरुद्ध होने से आपने उसे अस्वीकार किया। अन्ततः घटाते बढ़ाते पांच दिन का निमन्त्रण इन्हें मानना पड़ा। बात यह ठहरी कि प्रभु को अकेले जाना होगा। या मन चाहे तो स्वरूप दामोदर भी संग जायगे अथवा कभी २ अकेले जायंगे। पुरी पांच दिन अकेले जायंगे और शेष आठ में से एक एक करके दो दो दिन जायंगे। इस प्रकार से एक महीने का हिसाब लग जायगा। मन में अभिलाषा यह थी कि जब प्रभु अकेले रहेंगे तो इन्हें अनुनय विनय कर के और पांव पड़ कर खूब भोजन करावेंगे।

सार्वभौम ने यह सुसम्वाद अपनी स्त्री को जनाया। दोनों प्राणी प्रभु की सेवा के उद्योग में लगे। सार्व्वभौम को चन्द्रशेखर नाम का एक पुत्र और षाठी नाम की एक कन्या थी जिस का विवाह महा कुलीन कुलोद्भूत अमोघ नामक एक व्यक्ति से हुआ था। वे ससुराल ही में रहते थे। थे तो कुलीन, परन्तु करनी महा कुत्सित। पाठक वृन्द अभी उन का स्वयं परिचय पावेंगे।

प्रभु की भिक्षा की भारी तैयारियां हुई। भान्ति भान्ति के भोज्य पदार्थ प्रस्तुत किये गये। "चैतन्य चरिता-मृत" में उन का सविस्तार वर्णन किया गया है। यद्यपि प्रिय पाठकगण हमारे हो

समान उन सब वस्तुओं से परिचित न होंगे तौभी इतना तो जान लेंगे कि उस समय बंगाल और उत्कल में प्रायः कौन कौन चीज़ें खाने के लिये तैयार हुआ करती थीं। इसी से हम उन छंदों को यहां उद्धृत कर देते हैं। आगे अवकाश नहीं मिलेगा। कुछ दूसरा गुल खिलेगा। अच्छा, उन का नाम सुनिये:—

"दश प्रकार शाक निम्ब तिक्त सुक्त झोल।
मरिचेर झाल छेना बड़ी बड़ा घोल॥
दुग्धतुम्बी दुग्धकुष्माण्ड वेशारि लाफरा।
मोचाघन्ट मोचाभांजा विविध शाकरा॥
वृद्धकुष्माण्ड बड़ीर व्यञ्जन अपार।
फूलबड़ी फल मूले विविध प्रकार॥

नव-निम्ब-पत्र सह भ्रष्ट-वार्त्ताकी।
फूल बड़ी पटोलभाजा कुष्मांड मान-चाकी॥
भ्रष्टमास मुद्गसुप अमृत निचय।
मधुराम्ल बड़ाम्लादि अम्ल पांच छय॥

मुद्गबड़ा मासबड़ा कलाबड़ा मिष्ट।
क्षीरपुलि नारिकेल आर यत मिष्ट॥

कांजिबड़ा दुग्धचिता दुग्धलकलकी।
आर यत पीठा कल कहिते ना शकि॥

घृतसिक्त परमान्न मृतकुण्डिका भरि।
चांपाकला घनदुग्ध आम्र तांहा धरि॥
रसाला मथित दधि सन्देश अपार।
गौड़े उत्कले यत भक्षेर प्रकार॥"

सार्वभौम को स्त्री प्रभु के प्रति मातृ-स्नेह प्रदर्शन करती थीं। उन्हों ने गौर-कृष्ण के भोजन के निमित्त जो वस्तुएं तैयार की थीं उन का तो कुछ नाम आपलोग सुन चुके। एक बार यशोदा माता ने श्री बालकृष्ण तथा उन के सखाओं के भोजन के लिये जो चीज़ें

तैयार की थीं क्या उन्हें जानने से आप को आनन्द नहीं होगा? उन्हें भी तो श्री सूरदास जी के मुख से सुन लीजिये:—

"खरी खांड़ खीचरी सँवारी। मधुर महेरि सो गोपन प्यारी॥
राय भोग लियो भात पसाई। मूंग ढरहरी हींग लगाई॥
सद्‌ माखन तुलसी दै तायो। घिरत सुवास कचोरा नायो॥
पापर बरी अचार परम सुचि। अदरख अरु निबुवन ह्वै है रुचि॥
सूरन करितरि सरस तरोई। सेमि सींगरो छमकि झरोई॥
भरता भंट खटाई दीनी। भाजी भली भांति रस कीनी॥
पूरि सपूरि कचौरि कौरी। सद्‌ल सुउज्वल सुन्दर सौरी॥
लुचई ललित लापसी सोहै। स्वाद सुबास सहज मन मोहै॥
मालपुआ माखन मथि कीन्हें। रातु प्रलित शशि सम रँग लीन्हें॥
लावन लाड़ू लागत नीके। सेव सुहारी घेवर घी के॥
फेनी घुरि मिलि मिली दूध सँग। मिश्री मिश्रित भई एक रँग॥
लाज्यौ दह्यो अधिक सुखदाई। ता ऊपर पुनि मधुर मलाई॥
खोवा खोई औटि है राख्यो। सुई मधुर मीठे रस चाखो॥
बासौंधी सिखरनि अति सोंधी। मिलै मिरच भेटत चकचौंधी॥"

समय पर प्रभु भोजन करने गये। भारी तैयारियां देख कर इन्हें आश्चर्य्य हुआ और बोले, "सौ चूल्हों पर बनाने से भी इतनी चीज़ें इतनी देर में नहीं बन सकतीं। तुम बड़े भाग्यवान हो जो भगवान को ऐसा भोग लगाते हो। भगवान का प्रसाद पाकर हम भी आह्लादित होंगे। यह आसन विलग करो। यह भगवान का आसन है। हमें अन्य आसन दो।" भट्टाचार्य्य ने यह कह कर कि "जैसे कृष्ण का प्रसाद पावेंगे वैसे ही प्रसाद-स्वरूप उन के आसन को मानिये," प्रभु को उसी आसन पर बैठाया और दस आदमियों के खाने योग्य पदार्थ सामने लाकर रख दिया। प्रभु के यह कहने पर कि "इतना कौन खायगा", भट्टाचार्य्य ने उत्तर किया कि "जो पुरुष पुरी में दिन में ५२ बार खाता है, द्वारका में सोलह हज़ार

रानियों के घर, १८ माताओं के घर और यादवों के घर खाता है, वृन्दावन में अपने इतने स्वजनों तथा सखाओं के घर प्रति दिन दो बार भोजन करता है एवं गोवर्धन में अन्नकूट भक्षण करता है, वही यह भी खायगा।"

अगत्या प्रभु भोजन करने लगे और भट्टाचार्य्य की स्त्री रसोई घर में बैठ दर्शन करने लगीं। भट्ट स्वयं एक मोटा लट्ठ लेकर द्वार पर बैठे। इस विचार से नहीं कि कहीं कहीं के पासतों के समान प्रभु को "लाठी के हाथ खिलावेंगे," या वहां किसी पशु जन्तु के आगमन का भय था, परन् अपने जामाता के डर से उन्हों ने ऐसा किया था कि कहीं वह वहां आकर कोई कुकार्य्य वा कुव्यवहार न कर बैठे।

पर श्वशुर के हाथ में लट्ठही था तो उस से इस लंठाधिराज को क्या भय? जैसे सुस्वादिष्ट पदार्थ की गन्ध पाकर बिल्ली उस की ताक में बिचरने लगती है, अमोघ भी ताक झांक करते उस ओर निकल पड़े। श्वशुर का लाठी उठाना देख हट कर छिप गये। पर जब ससुर महाशय प्रभु के लिये कुछ प्रसाद लाने भीतर गये, तब अमोघ सुअवसर पाकर प्रभु के भोजन के स्थान में पहुंच गये और यह कह उठे "बाप रे बाप! एक सन्यासी, और इतना भात! इतने में तो दस बारह आदमियों का पेट भरेगा।"

सार्वभौम के कानों में यह बात पड़ते ही वे लट्ठ लिये और गाली देते अमोघ के पीछे दौड़े। पर अमोघ कहां? वह तो हवा हो गये।

प्रभु ने हंस कर कहा, "अमोघ का ज़रा भी दोष नहीं। उसने तो न्याय की ही बात कही है। तुम्हें उचित नहीं था कि इतना भोजन कराकर संन्यासी का धर्म्म नष्ट करो, और हम को भी इतना भोजन करना उचित नहीं था।" प्रभु अपने निवास-स्थान पर गये। भट्टाचार्य तो पहले क्षमा प्रार्थना कर ही चुके थे, पुनः वहां प्रभु के चरणों के निकट जा कर क्षमा मांगने लगे कि "आप

को भोजन कराने क्या ले गये आप की ऐसी निन्दा के कारण, हुये।" प्रभु ने उन्हें बहुत समझा बुझा कर घर भेजा। पर उनके मन में शान्ति कहां ? लज्जा और क्रोध उन के चित्त पर अधिकार किये हुये थे।

घर आने पर वे सस्त्रीक जामाता को कोसने लगे। यहां तक कि माता पुत्री के विधवा हो जाने की ईश्वर से प्रार्थना करने लगी। पिता ने पुत्री को ऐसे कुकर्मी पति का परित्याग करने को कहा। दम्पति ने दिवानिशि निराहार व्यतीत किया। पुत्री भी रोती अपने भाग को झंखती रही।

इधर अमोघ जहां रात्रि में छिप रहे थे, वहीं भोर होते होते उन पर विशूचिका का आक्रमण हुआ और शीघ्र ही रंग बेरंग हो चला। यह खबर आने पर सार्वभौम ने कहा, " अच्छा हुआ। भगवान के प्रति अपराध का तत्काल फल प्राप्त होता है।" किन्तु गोपीनाथ द्वारा सम्वाद पा कर प्रभु तुरंत अमोघ के पास पहुंचे।

अमोघ के हृदय पर हाथ रख कर कहने लगे—"ब्राह्मण का हृदय सहज निर्मल है। कृष्ण के वास के योग्य स्थान है। चन्डाल मात्सर्य को तुमनें यहां क्यों बसाया ? परम पवित्र स्थान को अपवित्र क्यों किया ? सार्व्वभौम के संसर्ग से तुम्हारा कलुष नाश हुआ। कल्मष नाश होने से जीव कृष्ण नाम का जप करता है। अमोघ ! उठो, कृष्ण नाम जपो। भगवान तुम पर तुरन्त कृपा करेंगे। "

यह सुनते ही अमोघ की बीमारी न जाने कहां गई ? पूर्ववत् उसका शरीर शक्तिसम्पन्न हो गया। कृष्ण कृष्ण कहते वह उठ खड़ा हुआ। प्रेमोन्मत्त हो कर नृत्य करने लगा। उसके अङ्गों में सब सात्विक भाव प्रदर्शित होने लगे। उसका कृष्णप्रेम देख प्रभु मुस्कुराने लगे। सब लोग विस्मित और वाक्य-रहित हो प्रभु-कृत यह दृश्य देखने लगे। वह आप के चरणों में लोट कर क्षमा प्रार्थना करने लगा और अपने दोनों गालों पर उसने इतने

तमाचे लगाये कि वे बहुत फूल गये। गोपीनाथ ने उसके हाथों को पकड़ और उसके गाल में अपना गाल सटा कर उन्हें इस काम से विरत किया।

अमोघ को कृष्ण नाम जपने की आज्ञा देकर प्रभु ने सार्व्वभौम को ठंढा किया और उस पर कृपा दृष्टि रखने को कहा।

प्रभु की कृपा से अमोघ जीवित हुये और सुधरे। प्रभु के परम भक्त होकर ये अहर्निश नामकीर्त्तन करने लगे। षाठी को वैधव्य-दुःख अथवा पति परित्याग-दुःख न भोगना पड़ा। पर गुरुजनों का शाप व्यर्थ नहीं गया। ये मरते मरते बचे और दोनों प्रकार से इनका वस्तुतः पुनर्जन्म हुआ। अब यह सार्व्वभौम के योग्य जामाता हुये।

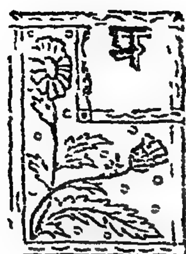
प्रभु भक्तों की मनोकामनाएं प्रायः गुप्त रूप से पूर्ण कर देते थे। पर उन में से कोई कोई घटना छिपाये नहीं छिपती थी।

परमानन्द पुरी ने अपने मठ में एक कुआं खुदवाया। परंतु उसका जल महा गन्दा निकला। एक दिन प्रभु उनके पास जा कर कुएं के विषय में बात करने लगे। बोले, "पुरी के कुएं का जल स्पर्श करने से जीवों का उद्धार होगा, कदाचित् इसी कारण जगन्नाथ ने इसका जल गन्दा कर दिया है।" और दोनों हाथें उठा कर आपने श्री जगन्नाथ से इस कूप में गंगाजल प्रवेश करने की प्रार्थना की। दूसरे दिन लोगों ने उस कूप का जल महा स्वच्छ देखा। भक्तगण गंगा-स्तुति करते उसकी प्रदक्षिणा करने लगे। खबर पाकर प्रभु के वहां विराजमान होने पर सब लोगों ने उसी में स्नान किया।

पुरी में प्रभु उस समय भी अकेले नहीं थे। पुरी प्रभृति प्रिय संन्यासियों के अतिरिक्त आपके बहुत से गौड़ीय भक्त भी वहां विद्यमान थे और महाराजा के शरणापन्न होने के अनन्तर तो सब उड़ीसावासी इन्हें भगवान मान इन की पूजा करने लगे थे। राजमान्य होने से धर्म्म उस का सम्मानवर्द्धन अवश्य होता है।

अष्टादश परिच्छेद ।

पुरी में गौड़ीय भक्तों का पुनरागमन



भु के संन्यास ग्रहण का यह चौथा वर्ष है। प्रथम दो वर्ष दक्षिण की यात्रा में व्यतीत हुये। पुरी में स्थायी रूप से रहने का यह दूसरा वर्ष है।

नीलाचल में आप ने "डोलयात्रा" अर्थात् झूलों का उत्सव किया है। इसी अवसर पर नवद्वीप में आप का जन्मोत्सव मनाया गया है। अब रथयात्रा का समय समीप आया। श्री शचीमाता की आज्ञा लेकर सब भक्तों ने नीलाचल जाने की तैयारी की। प्रभु के मना करने पर भी स्वभक्तगण के संग नित्यानन्द अपने भाई से मिलने चले। इस वर्ष की यात्रा में एक विशेषता थी। अद्वैताचार्य्य की स्त्री, प्रभु की मौसी, श्रीवास की पत्नी (शची की सखी और प्रतिनिधि) मालिनी, अपने पुत्र चैतन्यदास के सहित शिवानन्द की स्त्री तथा अनेक अन्य महिलाएं भी साथ चलीं। इस वर्ष पहले की अपेक्षा भक्तों की संख्या बहुत अधिक थी।

प्रभु के आज्ञानुसार शिवानन्द को प्रति वर्ष भक्तों को पुरी ले आना होगा। अतएव उन्हों ने पहले ही से मार्गादि का सन्धान और राह में टिकान के स्थानों का सब प्रबन्ध कर रखा था। वे सबों को सर्वत्र खाने पीने सोने बैठने का आराम देते सुख-पूर्वक अपने संग ले चले।

किन्तु रास्ते में एक निर्दय घाटपाल के पाले पड़ कर लोग बड़ी आपत्ति में फँसे थे। उस समय गौड़ेश्वर और कटकेश्वर में युद्ध छिड़ गया था। वह घाटपाल कटकेश्वर का एक अमात्य था। घाट रक्षा के निमित्त ससैन्य भेजा गया था। इसने पहले

प्रति व्यक्ति एक रूपया लेकर पार करने को कहा, परन्तु थोड़ा देर बाद बोला कि "तुम लोग सब घाटों पर बिना उतराई दिये पार होते आये हो, यहां पर सब चुका देना होगा।"

भक्तों ने कहा, "हम लोगों के पास द्रव्य नहीं। हम लोग श्री गौराङ्ग के सेवक हैं जो स्वयं जगन्नाथ हैं और तुम्हारे स्वामी के संगाती हैं।" इस पर चिढ़ कर उसने शिवानन्द सेन को कैद कर लिया। अब भक्तमंडली में हाहाकार मच गया। इधर सब रोने कलपने तथा निराहार गौराङ्ग का स्मरण करने लगे, उधर शिवानन्द कारागार में बैठे प्रभु का नाम जपने लगे। घाटपाल ने स्वप्न में एक नरसिंहरूपधारी पुरुष को यह कहते देखा और सुना कि "तू हमारे भक्तों को क्यों कष्ट दे रहा है? अभी बन्धन खोल, नहीं तो उचित दंड मिलेगा।" इस से महा भीत हो उसने बहुत रात गये एक सैनिक के द्वारा शिवानन्द को बुलाकर पूछा कि "तुमने कहा था कि तुम गौराङ्ग के भक्त हो। हम उड़ियालोग श्रीजगन्नाथ को जानते हैं। बोलो इन दोनों में कौन बड़ा है?" उन्होंने कहा "श्रीगौराङ्ग।" उनका ऐसा कहना उचित था। वे गौराङ्ग के अनन्य भक्त थे। किन्तु अन्य लोग जो दोनों को भगवान करके मानते हैं, दोनों को समान ही जानते हैं। उन की बात सुन कर घाटपाल कुछ देर एकटक उन्हें देखता रहा। फिर क्षमाप्रार्थी हो उन्हें बन्धनमुक्त कर दिया। भक्तों ने वहां संकीर्त्तन में सानन्द रात बितायी। हर पड़ाव में संकीर्त्तन की धूम मचती थी। हज़ारों दर्शक जुटते थे और उनके हृदय भक्ति-प्रेम से सींचित होते थे। इसी प्रकार लोग रेमुना में गोपीनाथ क्षीरचोर के स्थान पर पहुंचे। वहां के सेवकों से नित्यानन्द का पूर्व परिचय होने के कारण उन लोगों ने भक्तों का बहुत सत्कार किया। क्षीरप्रसाद का बारहो पात्र उन के आगे रखा, और वह प्रसाद भक्तों में बितरण किया गया।

फिर शाक्षी-गोपाल के स्थान पर पहुंच भक्तों ने उनका दर्शन किया और नित्यानन्द ने गोपीनाथ और गोपाल दोनों की कथाएं सुनाई जिससे भक्तों को बड़ी प्रसन्नता हुई।

लोगों के अठारह नाला स्थान में पहुंचने पर गोविन्द ने श्री अद्वैत और अवधूत (नित्यानन्द) के गले में प्रभु-प्रदत्त मालाएं पहिनायी। वहां से दोनों संकीर्तन करते आगे चले। पुनः नरेन्द्र सरोवर के तट पर स्वरूप प्रभृति ने मालाओं द्वारा लोगों का स्वागत किया।

उस दिन उसी सरोवर पर श्रीजगन्नाथ के नौका-विहार का उत्सव था। बाजे बज रहे थे। लोगों की भीड़ लगी थी। इधर से ये लोग कीर्त्तन करते पहुंचे। प्रभु भी भक्तों के स्वागत के लिये आये और स्वयं श्रीजगन्नाथ का दर्शन करा कर उन्हें अपने स्थान पर ले गये (१)। अपने हाथों से दे देकर आप ने लोगों को प्रसाद भोजन कराया। तब लोग गत वर्ष के समान अपने अपने स्थान पर जाकर आराम करने लगे।

अब प्रभु का भक्तों के घर घर निमन्त्रण होने लगा। मौसी और मालिनी प्रभृति के सामने खाने पीने में ये संन्यास-नियम-पालन नहीं कर सके। एक दिन अद्वैताचार्य्य के यहां निमन्त्रण था। वे कहने लगे कि "प्रभु अकेले आते तो अच्छी बात होती। अन्य संन्यासियों के सामने उन्हें अपने इच्छानुसार न खिला सकेंगे।" इतने में खूब अन्धड़ पानी आया। अन्य कोई संन्यासी न गये। भोजनान्तर अद्वैत इन्द्र को श्रीकृष्ण सेवा का ढंग जानने के लिये अनेक धन्यवाद देने लगे, क्योंकि उन्होंने जल बरसा कर उन की मनोकामना पूर्ण की थी। प्रभु ने हँस कर कहा, "आज आप इन्द्र के प्रति बड़ा भक्ति-प्रदर्शन कर रहे हैं। प्रतीत होता है यह वृष्टि आप के कार्य्यसाधन के ही लिये हुई है। आप की आज्ञा का पालन कर इन्द्र आज बड़े भाग्यवान हुये हैं।"

१ अमिय—निमाई चरित के अनुसार नरेन्द्रसरोवर में जलक्रीड़ा भी हुई।

रथयात्रा के उत्सव के समय प्रभु ने पूर्ववत भक्तों के संग गुण्डिचा का मन्दिर साफ किया। कुलीन-ग्रामनिवासियों का पाट-डोर श्री जगन्नाथ को भेंट की और रथ के आगे नृत्य गान करते उद्यान की ओर चले। वापी पर विश्राम करने लगे। उस समय नित्यानन्द का एक भाग्यमान शिष्य राढ़देशीय कृष्णदास ने एक घड़ा जलसे प्रभु को स्नान कराया। उस से आप बहुत तृप्त हुये। फिर लोग बलगण्डी का भोग पाते गये।

पूर्ववत होरा-पंचमी और जन्माष्टमी आदि उत्सवों का आनन्द हुआ। तब भक्तों की विदाई होने लगी। कुलीनग्राम-वालों ने पूर्ववत अपना धर्म्मकर्त्तव्य जानना चाहा। प्रभु ने वैष्णवसेवा तथा नामकीर्त्तन का उपदेश दिया जो साधकों को शीघ्र ही कृष्ण के चरणकमलों के निकट पहुंचा देते हैं और जिस के जिह्वाग्र पर कृष्णनाम सदा राजता रहे उसी को सच्चा वैष्णव समझ कर उस के चरणों की सेवा का आदेश किया।

सब लोग लौट आये। पर विद्यानिधि (२) इस वर्ष वहीं रह कर स्वरूप के संग कृष्णकथा में समय व्यतीत करने लगे। उन्हों ने गदाधर पंडित को पुनः दीक्षित किया। ओढ़न-षष्ठी के दिन जगन्नाथ को मांड़ीदार (अधोया) कपड़ा पहने देख कर उन्हें बड़ी घृणा हुई। उसी रात को स्वप्नावस्था में श्री जगन्नाथ और बलराम ने उन्हें दर्शन देकर हँसते २ उन के गालों पर खूब चपतें जमाये जिस से उन के गालें फूल गये। परन्तु मन में उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई।

इस बार एक दिन भक्तों के नृत्य करते समय प्रभु अचेत हो एक कुएं में गिर पड़े थे। घोर हाहा-कार मचगया था। किसी प्रकार बाहर निकाले गये और पुनः उन्हें चैतन्य लाभ हुआ।

इसी अवसर पर अद्वैताचार्य्य ने प्रभु से यह वर मांग लीया कि उन की अनुमति के बिना प्रभु लीला-सम्वरण नहीं करेंगे।

२—इस नाम में गर्व की बू पाकर प्रभु ने इसे "प्रेमनिधि" में परिवर्तित कर दिया था।

ऊनविंश परिच्छेद।

श्री नित्यानन्द का गृहस्थाश्रम में प्रवेश



अब नित्यानन्दजी की कथा सुनिये। प्रभु ने कहा कि "आप जीवगण के उद्धार का काम छोड़ कर यहां आते हैं, यह हमें अच्छा नहीं लगता और इस से हमें दुःख होता है।" उन्हों ने उत्तर दिया कि "साल में एक बार तो अवश्य आवेंगे और मना करने से भी नहीं मानेंगे।" इस पर देर तक दोनों महापुरुषों में वार्तालाप होता रहा। फिर प्रभु ने विनयपूर्वक उन्हें संन्यास त्याग कर और घरबारी बन कर जीवों में हरिनाम वितरण करने का आदेश किया। आप ने कहा कि "आप के मुनि बने रहने से अन्धा जीव अन्धा ही रहेगा। आप गृहस्थ हो कर उन्हें प्रकृत धर्म देखाइये और सिखाइये।"

प्रभु ने विचारा कि वे विवश हो कर संन्यासी हुये हैं। गत वर्ष भक्तों की विदाई के समय आप ने श्रीवास से यह बात स्पष्ट ही कही थी। परंतु उनके बाद स्वरूप तथा गदाधर प्रभृति के गृहित्यागी और ब्रह्मचारी हो जाने से जनता में यह विश्वास बढ़ता जाता है कि बिना घर छोड़े और साधु संन्यासी बने कृष्णभजन हो ही नहीं सकता। गृहस्थ भक्तों की अपेक्षा गृहित्यागी वैष्णवों पर लोगों की विशेष श्रद्धा भक्ति देखी जाती है। कुलीन-ग्राम-वासी गृहस्थ भक्त, इसी से, जब आते हैं यही पूछते हैं कि गृहस्थ वैष्णव का क्या धर्म है? क्या कर्त्तव्य है? लोग यह नहीं समझते कि कृष्णभजन और कृष्णभक्ति के निमित्त घर छोड़ने और मूंड़ मुड़ाने की आवश्यकता नहीं। देख रहे हैं कि सुप्रतिष्ठित महान पंडित व्योवृद्ध अद्वैत, जगद्विख्यात नैयायिक भक्त सार्वभौम, भक्तप्रवर

राजकर्मचारी रामानन्द, महाप्रतापी राजा प्रतापरुद्र जिन्हें समय पड़ने पर रणस्थल को रक्तरंजित करने में भी संकोच नहीं होता,—ये सब के सब गृहस्थ ही हैं।

यह देख और जान कर भी संन्यास के लिये मरना जीवों के हित का साधक नहीं वरन् महा बाधक और हानिकारक ही है। न सब को संन्यास ग्रहण करने का साहस ही होगा और न सब के संन्यासी बनने से उनका और संसार का काम ही चलेगा। वरन् "बहुत योगी मठ के उजाड़" की कहावत होगी। और सांसारी जन यह सोच कर कि बिना गृहत्यागी हुये भजन नहीं हो सकता कृष्णभक्ति और भजन में मन नहीं देंगे। अतएव आप ने बाल संन्यासी श्री नित्यानन्द को पुनः संसार में प्रवेश करने की आज्ञा दी कि ये सांसारी हो कर लोगों को दिखावें कि गृहस्थ कैसे भजन और भक्ति कर सकता है। आप जानते थे कि गृहस्थ बनने पर भी ये अपने कार्य्य और धर्म्म में अटल रहेंगे एवम् जगत के जीवों के लिये आदर्श बनेंगे। इसी से इन्हीं को ऐसा आदेश हुआ।

इन्हें संसार में प्रवेश कराकर आप ने "एक पंथ दो काज" किया। अर्थात् गृहस्थों की शिक्षा और गुरुकुल की रक्षा। क्योंकि इनके द्वारा गौराङ्ग सम्प्रदाय की एक प्रधान शाखा की सृष्टि हुई। नित्यानन्द की स्त्री का नाम जान्हवी देवी तथा पुत्र का नाम वीरभद्र था। ये लोग खड़दह में रहते थे।

शिशिर कुमार महोदय के लेख से यह ध्वनित होता है कि गृहस्थाश्रम में रह कर भक्ति और भजन की प्रथा का प्रचार श्री-गौराङ्ग के ही समय से हुआ। किन्तु हमें अन्य सम्प्रदायों में भी यह बात देखने में आती है। श्रीरामानुज स्वामी (१) गृहस्थाश्रमी थे। श्रीरामानन्दजी के प्रधान शिष्यगण-कबीर, रईदास, सदन इत्यादि सब स्वजातीय कार्य्य करते हरिभजन में निरत रहते थे।

१ इतिहास वेत्ताओं ने श्री रामानुजस्वामी का समय ई० १२ वीं शतक का मध्य भाग तथा श्री रामानन्द जी का समय १३ शताब्दी ईस्वी का प्रथम भाग माना है।

सुप्रसिद्ध सिक्ख सम्प्रदाय के दसों गुरु स्वयम् गृहस्थ ही रहे। गुरुकुल की रक्षा गुरुवंशजों तथा शिष्यों, दोनों ही के द्वारा होती चली आती है। उदासी भी हैं और प्रायः सब गुरुओं के वंशधर भी हैं। श्री आदि गुरु नानकजी श्रीगौराङ्ग के समकालमयिक और इन से सोलह वर्ष ज्येष्ठ थे। उन्हों ने संसार से विदाई भी इनके बाद की।

नित्यानन्द जी को सांसारी बनाने से महा प्रभु का यह अभि-प्राय नहीं था कि कोई प्राणी संन्यास ग्रहण ही नहीं करे, कोई गृहित्यागी ही न हो। विशेष कार्य्य साधन के निमित्त उस की भी आवश्यकता है। तेजमान पुरुष को अपना विशेष उद्देश साधन के लिये संसार त्यागने में कोई बाधा नहीं। स्वयम् आप के कई एक परम भक्त रूप और सनातन प्रभृति गृहित्यागी ही हुये। गौड़ में नित्यानन्द के विना, और वह भी इन के संसारी हो कर रहने के विना, कार्य्य सफलता की आशा न देख, आप ने इनको ऐसा आदेश किया। स्वामी को अधिकार है कि जिस सेनाध्यक्ष को, जिस वर्दी में, जिस देश में चाहे, कार्य्य सम्पादन के निमित्त नियुक्त करे।

अगत्या प्रभु की आज्ञा शिरोधार्य्य कर, पुत्र कलत्र के मध्य रहते नित्यानन्द ने सबको दिखला दिया कि गृहस्थी में रहकर कृष्ण भजन कैसे हो सकता है और आपने गौरधर्म्म का प्रचार तथा जीवों का उद्धार भी बड़ी योग्यता और पूर्ण रीति से किया। यह बात दिखलाने के लिये "चैतन्य भागवत" का कुछ आशय अधो-लिखित छन्दों में प्रकटित किया जाता है:—

सब कालहिं ध्यान सुकीर्तन को छन एक न व्यर्थ बितावत हैं।
जिह थान करें नृतगान तहां हरि प्रेम की धार बहावत हैं॥
धुनि कान परै जबहीं तबहीं तजि काम सबै जन धावत हैं।
मिल गावत और बजावत हैं हरि बोलत और बोलावत हैं॥

बाल औ वच्छहुं के चित शक्ति अपार संचार किये सुनिताई।
वृक्ष विशालन की गहि साख समूल उखारैं हिलाइ डुलाई॥
"हैं। कृ' गोपाल" भये सपकाल कि हाल फिरैं चित चाव बढ़ाई।
लोग अनेक सकैं धरि ताहि न हार रहैं सिव आप लजाई॥
कबहु' धरि नेह सों बालन को निजहाथन ताहि खवावत हैं।
सिव काहुन मारत बांधत जौं, अट्टहास करैं सुख पावत हैं॥
क हि "कृष्ण चैतन्य निताइ की जै" हरिसों "हरिबोल" सुनावत हैं।
यह रीति निताइ शिशूगनहीं रिगौरक प्रेमि] बनावत हैं॥

प्रभु का आशय कैसाहु' जगहितकर हो, नित्यानन्द ने कितना ही श्लाघनीय कार्य किया हो, पर दुनिया ऐसा अपूर्व परिवर्त्तन देख चुप क्यों बैठने लगी ? खाने में निताई तो पहले से ही बहादुर थे। गृहस्थ बनकर अप उत्तम वस्त्राभूषण भी धारण करने लगे। इस पर लोग ठट्ठा क्यों न मारें ? चुटकियां क्यों न लें ? बस इन का विपक्षी एक दल खड़ा हो गया। जहां के लोगों ने निमाई के समान सरल स्नेहमय पुरुष से अकारण विरोध करके उन्हें घर से बाहर कर संन्यासी बनाया, वहां के सुजन एक संन्यासी के संसारी बनने पर उसे अपमानित करने पर क्यों न उतारू हों ? उसपर निताई ने स्वर्णवणिकगण को जिन्हें प्रतिष्ठित विद्वान घृणा की दृष्टि से देखते आते थे, जिनका अङ्ग स्पर्श करना नहीं चाहते थे, हिन्दूसमाज में मिलाकर शास्त्राभिमानी बहुत से पुरुषों को चटका दिया था। उस विशेष जाति का सर्वप्रधान व्यक्ति अपनी अपरिमित सम्पत्ति त्यागकर निताई का अनुगत हो गया था। आज ही नहीं देखते हिन्दू (शुद्धि) सभा के विरुद्ध कितने धर्माभिमानी, कुलाभिमानी तथा जात्याभिमानी हिन्दू हो उठ खड़े हुये हैं और जहां तहां सभा समाज भी बना रहे हैं।

निताई ने लाखों का उद्धार किया, इसपर किसी ने ध्यान नहीं दिया। उन का यह उपकार भूलकर समाज उन्हें उत्पीड़ित करने

लगी। बहुत से वैष्णव भी उनके विद्वेषी बनगये। कितनों ने उन का संसर्ग सर्वथा त्यागकर दिया। प्रभु के पास भी उनकी निन्दा पहुंचाने में लोगों ने त्रुटि नहीं की।

अगत्या शचीमाता से अनुमति लेकर कई पार्षदों को संग लिये वे नीलाचल सिधारे। वहां पहुंच कर लज्या तथा भय से एक वाटिका में बैठे आप रोदन करने लगे। प्रभु आप ही आप अकेले उस स्थान में जा पहुंचे।

निताई बैठे घुटनों में सिर दिये रो रहे थे। प्रभु एक श्लोक द्वारा यह आशय प्रगट करते हुये कि श्रीनित्यानन्द यदि कोई महाकुकर्म भी करैं, तौभी उनका चरण बन्दनीय है" उनकी प्रदक्षिणा करने लगे।

प्रभु को देखते ही नित्यानन्द ज्योंही उनसे मिलने को दौड़े, अचेत हो पृथ्वी पर गिर पड़े। श्री चैतन्य, ने उन्हें चैतन्य लाभ कराया। होश होने पर आंखों में आंसू भरे, दोनों कर सम्पुट किये, निताई प्रभु से निवेदन करने लगेः—

अद्वैतादि सब आप को तो प्रिये हैं।
उन्हें भक्ति औ प्रेम सब कुछ दिये हैं॥
छुड़ाया धरम औ दशा ये कराई।
जगत बीच होति है मेरी हंसाई॥

प्रभु उन्हें शान्त करते हुये बोले "आप के अङ्गों में जो आभूषणें हैं वे नवधा भक्ति के प्रकाश स्वरूप हैं। स्वर्ण-वणिकों को आपने जो भक्ति प्रदान की है, वह शिव भगवान को भी वांछनीया है। आप के नृत्यकारी संगीगण गोप बालक हैं। क्या उनको जप तप शोभा देगा? आपके वास्ते विधि विधान क्या? जैसे कर रहे हैं वैसे कार्य्य करते जाइये। बस।"

यह कह कर प्रभु अपने वासस्थान पर गये। नित्यानन्द श्रीजगन्नाथ का दर्शन करते अपने परम मित्र गदाधरके मठ पर उनसे मिलने

गये। वहीं भोजन की तैयारी हुई। बना क्या? साग और इमली का उबला हुआ पत्ता। दोनों के मन में इच्छा हुई कि प्रभु भी आते तो अच्छी बात होती। पर किसीको उन्हें निमन्त्रण करने का साहस नहीं हुआ। समय पर प्रभु स्वयं पहुंचे और गदाधर से बोले "नित्यानन्द की चीजें; तुम्हारी बनाई हुई और गोपीनाथ का प्रसाद। क्या इसमें हमारा भाग नहीं?"

उन लोगों ने हंस कर कहा "अवश्य है?" और तीनों महापुरुषों ने हंसी खेल करते भोजन किया।

अभी नित्यानन्द जी यहीं रहे। रथयात्रा के उपलक्ष में नवद्वीपीय भक्तों के यहां आने पर उन्हीं के संग लौटेंगे।

विंशति परिच्छेद।

पुरी में भक्तों का तृतीय वारागमन।



प्रभु के पुरी में निवास का यह पांचवां वर्ष है श्रीनित्यानन्द आकर पुरी में विद्यमान हैं। अन्य भक्तों के आने का समय निकट आरहा है। इस समय श्री गौराङ्ग का नाम भारतवर्ष में सर्वत्र व्याप्त हो गया है। आपका नाम श्रीकाशी-निवासी परम प्रसिद्ध श्रीप्रकाशानन्द को भी विदित हुआ है। वे महान तेजवान अद्वितीय विद्वान जगद्विख्यात मायावादी संन्यासी हैं। आप संन्यासियों के गुरु और वेदान्त-शिक्षक हैं। आप सहस्रों संन्यासियों के संग काशी में वास करते हैं। सार्व्वभौम के पांडित्य का हाल पाठकों पर विदित है। उन्हें काशी के लोग भी जानते हैं। स्वयं श्री प्रकाशानन्द उनके नाम से परिचित हैं, क्योंकि बहुत से संन्यासी इनके पास भी वेदान्त और वेद का अध्ययन करते हैं।

श्री प्रकाशानन्द को ज्ञात हुआ कि एक अल्पवयस्क भावुक संन्यासी सार्व्वभौम सदृश पण्डित को मोहित कर उन्हें अपना खिलौना बना रहा है। इससे उन्हें आश्चर्य्य भी हुआ और घृणा भी हुई। इसीसे श्रीक्षेत्र के एक यात्री के हाथ उन्होंने यह श्लोक लिख कर प्रभु के पास भेजा :—

"यत्रास्ते मणिकर्णिका मलहरी स्वर्दीर्घिका दीर्घिका।
रत्नन्तारक मोक्षदं तनुभृतेशम्भुः स्वयं यच्छति॥
एतस्वद्भुतधामतः सुरपुरो निर्व्वाणमार्गस्थितं।
मूढोऽन्यत्र मरीचिकासु पशुवत् प्रत्याशया धावति॥"

भावार्थः—पापविनासिनि देवसरी सुमनीकनिका जँह कुंड विराजत।
ठाकु पये निरबान महान, जो देवन मैं महादेव कहावत॥

दायकमोक्ष, सुतादकरत्न, तहाँ तिनि आपने हाथ लुटावत।
छाड़ि हहा यह रत्नहिं मूढ़ मरीचिका ओर पशू इव धावत॥

आपने इसके उत्तर में निम्नोद्धृत श्लोक उसी यात्री के हाथ भेज दिया।

"धर्म्माम्भोमणिकर्णिका भगवतः पादाम्बु भागीरथी।
काशीनाम्पतिरर्द्धमेव भजते श्रीविश्वनाथः स्वयं॥
एतस्यैवहि नाम शम्भुनगरे निस्तारकं तारकं।
तस्मात् कृष्णपदाम्बुजं भज सखे श्रीपादनिर्व्वाणदं॥"

भावार्थः—गातक स्वेद मनीकनिका पदवारि सुदेवसरी हैं बतावत।
काशिपती बिसुनाथ सदा मन लाइ सुजाहि दिवानिस ध्यावत॥
शंभुपुरी मँह, नाम सवै निस्तारक तारक जासु हैं गावत।
कृष्णपदाम्बुज मीत भजो,सोइ दायकमुक्तिहै,तोहि सिखावत॥

प्रकाशानन्द कदाचित् इससे चिढ़ गये। प्रभु श्रीजगन्नाथ का प्रसाद पाने में आगा पीछा नहीं करते थे। जो कुछ मिलता उसी को मुख में रख लेते थे। इसी बात की आड़ लेकर उन्हों ने पुनः किसी के हाथ यह श्लोक लिख भेजा :—

"विश्वामित्रपराशर प्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशनाः।
एते स्त्रीमुखपंकजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः॥
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं ये भुञ्जते मानवा।
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद्विन्ध्यस्तरेत् सागरं॥"

भावार्थः—विश्वामित्र परासर मुनिगन,
खाय बायु जल काल बिताये।
तऊ नारि मन मोहिनि मूरति,
निरखि, तासु मुखकमल लुभाये॥
दूध दधी घृत मिश्रित जों, अन
भोजन करि जन इन्द्रि दबावैं।
सब तौ बिन्धहु अनायास सिव
सागर मँह निश्चय तरि जावैं।

कहते हैं कि प्रभु ने इसके उत्तर भेजने की आवश्यकता होन समझी, परन्तु भक्तों से नहीं रहा गया। उन लोगों ने इसके उत्तर में चुपचाप अधउद्धृत श्लोक भेज दिया :—

"सिंहोबली द्विरदशूकरमांसभोगी
संवत्सरेण कुरुते रतिमेकवारं।
पारावत स्तृणशिलाकणमात्रभोगी।
कामी भवेदनुदिनं वद कोऽत्र हेतुः॥"

भावार्थ—हरि सूकर हरि करै अहारा। तऊ बरखमँह रति इक बारा॥
तृन अनकन पारावत खावै। किहि कारन नित रति मन लावै॥

सार्वभौम ने काशी जाकर प्रकाशनन्द को निरस्त करने के लिये प्रभु से अनुमति मांगी। प्रभु ने ऐसा करने से निषेध किया और कहा कि "तुम वहां जाकर कुछ नहीं कर सकोगे"।

किन्तु सार्वभौम वहां गये और सचमुच उन से कुछ बन न आई।

भक्तगण नीलाचल पहुंच कर प्रभु के दर्शन से कृतार्थ हुये। दामोदर पंडित भी साथ थे। उन्हें किसीके सामने उचित बात कहते भय नहीं होता था। वे प्रभु के घर रह कर गृह कार्य्य सम्हालते थे।

जब प्रभु ने उन से पूछा कि "मा श्रीकृष्ण की भक्ति करतीं हैं न?" तब वे बिगड़ कर बोले—"आप उनकी बात क्या पूछते हैं? आपमें जो कुछ कृष्णभक्ति है, वह उन्हीं की कृपा से है" प्रभु बहुत प्रसन्न हुये और बोले "तुम्हारा कहना अक्षरशः सत्य है। निस्सन्देह बात ऐसी ही है।"

दण्ड प्रणाम और कुशलक्षेम पूछ ताछ के अनन्तर भक्तगण अपने अपने स्थान पर गये। पुनः उनके दर्शन के लिये आने पर प्रभु ने कहा कि आप लोग रथोत्सव देख इस बार शीघ्र घर लौट जाइये और विजय दशमी के बाद हम गंगा तथा श्रीमातृचरण

का दर्शन करते वृन्दावन जायेंगे। यह सम्वाद सुन कर सब लोग आनन्द से उछल पड़े। चाहा कि साथ ही लिये जांय, परन्तु प्रभु इस में सहमत नहीं हुये।

प्रभु में सन्देह करके अद्वैताचार्य्य स्वयं क्लेश पाते और भक्तों को क्लेश देते थे। इसके प्रायश्चित्त में उन्होंने वहीं पुरी ही में गौर संकीर्त्तन का सूत्रपात किया जिस का आज सर्वत्र प्रचार हो गया है। इस के निमित्त उन्होंने पहले इस पद की रचना कीः—

" श्रीचैतन्य नारायण करुणासागर।
दुःखितेर बन्धु प्रभु मोर दयाकर॥ "

और फिर गौडीय भक्तों के द्वारा इसका गान कराया। जब वे लोग एकत्र हो अपने वासस्थान पर साजे बाजे के साथ इसका गान कर रहे थे उसकी ध्वनि कानों में पड़ने से उसे कृष्ण-कीर्त्तन समझ प्रभु स्वयं वहां गये। तब वे लोग आनन्दोन्मत्त हो और भी प्रेम से इनकी ओर दिखा दिखा कर गाने नाचने लगे। यह रंग देख आप जिस राह गये थे उसी राह अपने स्थान पर आकर सो रहे। गौर कीर्त्तन होना इन्हें रुचिकर नहीं था। पीछे भक्तगण भी वहां पहुंचे।

प्रभु ने श्रीवास से कहा कि " अब कृष्ण-कीर्त्तन को ताक पर रख कर आप लोग यह रंग जमाने लगे जिस से जग में हँसी और परलोक में हमारी और सब की खराबी है। " इन लोगों में बात ही हो रही थी कि श्रीजगन्नाथ दर्शन से लौट कर बहुत से गौड़ीय भक्त आपके द्वार पर " जय चैतन्य " " जय सचल जगन्नाथ, " " जय संन्यासी-रूप-धारी कृष्ण " इत्यादि कह कर कीर्त्तन करने लगे। तब श्रीवास ने कहा कि " हम लोग आपकी आज्ञा पालन में कीर्तन बन्द कर सकते हैं पर संसार भर का मुंह तो नहीं रोक सकते। आप ने जगत का उद्धार किया है। आपका यश जगद् व्यापी हो रहा है। आप की पूजा और गुणगान लोग अवश्य

करेंगे।" इस पर सब के नेत्रों से आँसू टपकने लगे। प्रभु भी मौन हो रहे। रथयात्रा के बाद सब लोग देश लौट आये।

जब तक आप इस संसार को पवित्र और सुशोभित करते रहे, गौड़ीय भक्तगण इसी प्रकार पुरी में जा जाकर श्रीजगन्नाथ और आप के दर्शन का सुखानन्द भोग करते रहे।



एकविंश परिच्छेद

जन्मभूमि दर्शन।

" जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ।"



जब तक भक्तों का साथ रहता प्रभु प्रायः सहजावस्था में रहते। उन सबों से घर गृहस्थी सब प्रकार की बातें करते। उन के जाने से दुःख और उदासी होती। पर साथ ही कृष्ण वा राधा वियोग-वेदना आरम्भ होने से वह दुःख भूल जाता। दूसरी धुन चढ़ती। नवद्वीप में आप श्रीकृष्ण भाव से श्रीराधा को स्मरण करते और नीलाचल में उस के विरुद्ध "कहां मोर प्राणनाथ मुरली-वदन" कह २ कर रोदन करते थे और नाना सात्विक भावों के वशवर्ती होते थे।

इधर इन्हें फिर वृन्दावन दर्शन का सुरचढ़ा था। आपने सार्व्वभौम और रामानन्द प्रभृति को इस का प्रस्ताव किया था। परन्तु प्रतापरुद्र के हितार्थ एवं निजेच्छानुसार उनलोगों ने फुसला कर और बातें बना कर इन्हें दो वर्षों तक रोक रखा था। अब की बार भक्तों के चले आने पर आप ने पुनः वृन्दावन-यात्रा की बात छेड़ी। अब लोगों ने इन के मन के विरुद्ध कार्य्य करना अच्छा नहीं समझा। और विजय-दशमी के बाद वृन्दावन जाने की अनुमति दी।

विजय-दशमी के भोर में आप श्री जगन्नाथ के दर्शन को चले। इन का वहां नृत्य करते जानेका मन था। परन्तु स्वरूप के कहीं चले जाने से वैसा नहीं कर सके। मन्दिर के द्वार पर उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। इतने में वे आये। आप ने रुष्ट होकर करस्थ गीता पुस्तक से एवं पुनः पग से इनकी पीठ पर खूब ज़ोर से मारा और दर्शनार्थ मन्दिर में प्रवेश किया। स्वरूप आदि भी

कीर्त्तन करते पीछे पीछे चले। आप संन्यासग्रहण के पांच वर्ष बाद घर की ओर चले। आप चन्दनादि प्रसाद लेकर श्री जगन्नाथ से विदा हुये। लोग रोते और "हरिबोल" की गगनभेदी ध्वनि करते पश्चातगामी हुये। आप ने उड़िया भक्तों को समझा बुझाकर लौटा दिया। पुरी, स्वरूप दामोदर, जगदानन्द, मुकुन्द, गोविन्द, काशीश्वर, हरिदास ठाकुर, वक्रेश्वर पंडित, गोपीनाथ आचार्य्य, दामोदर पंडित, रमाई, नन्दाई प्रभृति आप के साथ चले। एकजनों के संग आप भवानीपुर उपस्थित हुये। पीछे से रामनन्द भी पालकी पर आ पहुंचे। प्रतापरुद्र की राजा सीमा तक सब ठिकानों पर श्री जगन्नाथ का प्रसाद प्रस्तुत रहने का पूर्व से ही प्रबन्ध किया गया था। रात को प्रसाद पाकर वहीं विश्राम हुआ।

चित्त कृष्णप्रेम में चञ्चल हो रहा था। वृन्दावन की धुन लगी थी। आत्मविस्मृत हो चले जाते थे। कभी कुपथ भी चलने लगते थे। कांट कुश की कुछ चिन्ता नहीं थी।

दूसरे दिन सब लोग भुवनेश्वर पहुंचे। देवदर्शन तथा भोजनान्तर प्रभु ने सारी रात रामानन्द के साथ कृष्ण कथा में बिताई।

फिर रास्ते में नदी किनारे रामानन्दनिर्मित एक सुन्दर भवन देख वहां श्यामगुण कथन मन में विचार कर आप ने पुरी प्रभृति को आगे बढ़ने के लिये कहा। वे लोग कटक पहुंच कर गोपीनाथ के मन्दिर में गये। वहां एक ब्राह्मण ने परमानन्द पुरी का निमन्त्रण किया। तब तक स्वयं प्रभु भी विराजमान हुये। गोपेश्वर नामक एक अन्य ब्राह्मण ने उनका निमन्त्रण किया। एवं रामानन्द ने अन्य लोगों को भोजन कराया।

प्रभु ने बाहरी बाग में आसन जमाया और भोजनान्तर बकुल वृक्ष के तले विश्राम किया। राजा बड़े समारोह से सानन्द उपस्थित हो आप के चरणों में लोटने और बारम्बार प्रणाम करने लगे। प्रभु ने उन्हें सप्रेम अंक में लगाया। प्रभु के कृपाश्रु से उनका

सारा शरीर भींग गया। तभी से आप "प्रताप रुद्र-संत्राता" कहलाने लगे। राज कर्मचारियों ने भी अति दीनतापूर्वक प्रभु की चरणवन्दना की। तब राजा को प्रभु ने विदा कर दिया।

राजा ने अपने सब कर्मचारियों के नाम टिकानों के स्थानों पर प्रभु के आवास के लिये नये २ भवन बनवाने, भोज्य पदार्थ प्रस्तुत रखने तथा सर्व प्रकार से सेवा सुश्रूषा करने की आज्ञा प्रचार किया एवं हरिचन्दन तथा मंगराज नामक दो मंत्रियों को रामानन्द के साथ साथ प्रभु की सेवा के लिये जाने की आज्ञा दी। राजा का यह भी आदेश हुआ कि जहां प्रभु स्नान कर नदी पार हों वहां एक स्तम्भ आरोपण कर के वह तीर्थस्थान बनाया जाय जिस में वहां नित्य स्नान कर के प्राण विसर्जन करें। चान्दनी रात होने के कारण प्रभु ने रात ही को चलने का विचार किया। यह सम्वाद पाकर राजा ने राजमहिलाओं को परदेदार हौदों में बिठाकर मार्ग के दोनों ओर हाथियों की पंक्तियां खड़ा करा दी जिस में उन्हें प्रभुदर्शन सुलभ हो। सन्ध्याकाल में अपने भक्तों के संग गजगति से विचरण करते आप घाट की ओर चले। राजमहिषी-गण सहेलियों और दासियों के संग सानन्द स्वच्छन्द प्रभु के पादपद्मों में भक्तिपूर्वक प्रणाम कर और उनका दर्शनसुख लाभ कर परम कृतार्थ हुईं। दर्शनमात्र से उनके हृदय कृष्ण-प्रेम-पूर्ण हो गये। एवं वे प्रेमाश्रु वर्षन तथा नामोच्चारण करने लगीं।

प्रभु दर्शन तें महिलागन मन प्रेममगन सहपूर्ण हुलास।
नैनन तें अँसुअन झरि लावति, "हरिहरि" कहकह लेंहि उसांस॥
अस कृपाल कहुं आँखि न देख्यौं, नाहि सुन्यो कबहूं निज कान।
जिह को दूरहि तें लखते, उर, कृपण प्रीति करिलै निज थान॥

लोगों ने चान्दनी में चित्रोत्पला नदी पार हो चतुरद्वार में शयन किया। प्रातःकाल उसी में स्नान कर और वहीं प्रसाद पाकर लोग आगे चलने को तैयार हुये।

प्रभु के परम भक्त गदाधर, जो पंडित गोसाईं के नामसे प्रसिद्ध थे और जिन्हों ने क्षेत्र संन्यास धारण कर गोपीनाथ की सेवा ली थी, यह कह कर कि "प्रभु के चरणदर्शन करोड़ों देवपूजन के तुल्य है," श्री जगन्नाथक्षेत्र से चल पड़े थे। प्रभु ने कहा था कि "तब तो सेवा परित्याग का पाप हम पर होगा, यदि हमें प्रसन्न करना चाहते हो, तो यहीं रहो।" गदाधर ने उत्तर दिया था कि "सब पाप हम पर होगा। हम आप के साथ नहीं जाते। शची माता के दर्शन को जाते हैं।" यही कह कर दूर ही दूर प्रभु के चरणों का दर्शन करते कटक तक आगये थे। प्रभु प्रति इनके प्रेम का थाह कोई नहीं पा सकता था। प्रभु के लिये इन्हों ने कृष्णपूजन तृणवत परित्याग कर दिया था। कटक में आप ने प्यार के रोष से इन का हाथ पकड़ कर कहाः—"यहां तक आये, अब तुम्हारा उद्देश्य सिद्ध हो गया। हमारे साथ स्वार्थवश चलना चाहते हो। तुम्हारा दोनों धर्म नष्ट होने से हमें दुःख हो रहा है। हमें सुख देना तो तुम्हारे जीवन का प्रधान उद्देश्य है। अब तुम फिर जाव।"

यह सुन कर आप का मुखावलोकन करते २ गदाधर पंडित अचेत हो पृथ्वी पर गिर पड़े। प्रभु ने सार्व्वभौम को उन्हें साव-धान कर के पुरी ले जाने की आज्ञा की। चलिये छुट्टी हुई। इसी वाक्य में भट्टाचार्य्य की भी विदाई हो गई।

जाजपुर से दोनों अमात्यों की और भद्रक (रेमुना) में रामा-नन्द की विदाई हुई। वे भी अचेत हो गिरे। परन्तु प्रभु ने उन्हें उठा कर अंक में लगा आंसू बहाते विदा किया।

अब सब लोग उड़ीसा राज्य की सीमा पर पहुंचे। वहां के अधिकारी ने आप लोगों का बड़ा सेवासत्कार किया। वहां से गौड़ जाने के तीन मार्ग थे। परंतु उस समय युद्ध के कारण तीनों हीं बन्द हो रहे थे।

कर्म्मचारी आप के पार उतारने के उद्योग में लगा। उधर तट पर दर्शकों की भीड़ के कारण महा कोलाहल होने से सेना

प्रस्तुत होने का भय कर के मुसलमान हाकिम ने हिन्दू वेषधारी एक गुप्तचर को असल बात जानने के लिये भेजा।

वह आया तो था सुराग़ पता लगाने, पर इस पार का रङ्ग देख उस की बुद्धि आप लापता हो गई। उस पर भी वही रंग चढ़ गया। उसे भी नृत्य, गान और 'हरिबोल" की धुन समाई। प्रभु दर्शन से उसका मानो पुनर्जन्म हुआ। उसी अवस्था में वह अपने मालिक के पास लौट गया।

उसकी विचित्र दशा देख जब मुसलमान अधिकारी ने उस से समाचार पूछा तब वह बोला—"क्या कहूँ जनाब! जगन्नाथ से बहुत से हमरसीदों के साथ एक नौजवान संन्यासी तशरीफ़ लाये हैं। उनके दर्शन के लिये वहां एक ख़िलक़त जमा हुई है। उन को देख फिर किसी को घर लौटने की तबीअत नहीं चाहती। लोगों की दिवाने की सी सूरत हो रही है। लोग नाचते, गाते, रोते, हंसते ज़मीन पर लोटने लगते हैं। और शकील कैसे? माशा अल्लाह! उनके हुस्न के आगे हसीनत भी अपने चेहरे पर बुर्क़ा डालती है। उनकी खूबियां बयान के बाहर हैं। क़ाबिल दीद ही हैं और ग़ौर के लायक़ हैं। हमारे ख्याल में तो खल्क़ के ख़ालिक़ खुदावन्द करीम ही इन्सान की सूरत में इस परदे ज़मीन पर रौनकअफ़ज़ा हुये हैं।" यह कहते कहते वह गुप्तचर "हरे कृष्ण, हरे-कृष्ण" कह कर पागल की तरह रोने, हँसने और नाचने लगा।

यह देख उस अधिकारी ने मंत्रमुग्ध हो अपने एक विश्वासी हिन्दू मन्त्री को उड़िया राज्य सीमा के अधिकारी के पास भेजा। प्रभु को प्रणाम करते ही प्रेम विह्वल हो उसे "कृष्ण, कृष्ण" कहने का सुर चढ़ गया। परन्तु अपने को सम्हाल कर उस ने अधिकारी से निवेदन किया कि उनको अनुमति होने से उस के स्वामी प्रभु के दर्शन की इच्छा कर रहे हैं और उस में कोई भय की बात नहीं है।

इस पर उड़िया कर्म्मचारी को विस्मय और आनन्द दोनों हुआ और वे कह उठे, "मुसलमान का दिल! ऐसा कौन कर सकता था?" पुनः सम्वादवाहक से बोले—"प्रभु पर सबों का समान अधिकार है। वे सहर्ष आवें, सानन्द दर्शन करें। उनका उचित सत्कार होगा। किन्तु सेन सामन्त न लावें, दस पांच लोगों के संग निरस्त्र आवें।"

हिन्दुओं के सदृश वस्त्र पहने उक्त कर्मचारी आये और नेत्रों में प्रेमाश्रु भरे उन्होंने दूर से प्रभु को प्रणाम किया। सीमा सरदार उन से बड़ी प्रीति से मिले और उन्हें प्रभु के पास ले चले। प्रभु के दर्शनमात्र से विह्वल हो वे भूमि पर गिर पड़े। उड़िया अधिकारी उन्हें चैतन्य कर के प्रभु के समीप ले गये। वे हाथ जोड़ कर कृष्ण नाम उच्चारण करते कहने लगे, "मुसलमान के घर हमारी क्यों पैदाइश हुई? अगर हिन्दू हुये होते तो आप के क़दमों तक पहुंचते। मेरी ज़िन्दगानी बेकार! हमने जीवों की हत्या ही में जन्म बिताया। प्रभु! आप इस ग़रीब पर दया कीजिये। हमारा उद्धार कीजिये।" उड़िया अधिकारी ने भी हाथ जोड़ कर निवेदन किया, "प्रभु! जिनके नामस्मरण से भवबन्धन का भंजन हो जाता है, उनके चरण कमलों के दर्शन पाकर इन के निस्तार और उद्धार में आश्चर्य्य क्या होगा? इसी क्षण तो इनका सब पाप छार खार हो गया।"

प्रभु ने उन पर कृपा दृष्टि की और कृष्ण नाम उच्चारण का आदेश किया। इस पर उन की जो अवस्था हुई उसे "चन्द्रोदय" नाटक यों वर्णन करता है:—

"प्रभु कृपादृष्टि पेये सुकृति से जन।
प्रेम मत्त हैल येन ग्रहग्रस्त जन॥
पुलके व्यापिल सेई यवन शरीर।
गद्गद स्वरे नेत्रे बहे अश्रुनीर"

तब मुकुन्द (१) ने प्रभु के गंगा पार जाने में उस से सहायता मांगी। वे प्रभु तथा भक्तों को प्रणाम कर सानन्द विदा हुये। उड़िया अधिकारी ने उनके संग मित्रता स्थापन की एवं इन्हें बहुत कुछ भेंट भी दी।

दूसरे दिन एक नूतन नौका पर प्रभु अपने लोगों के साथ चढ़े और जलदस्युओं से रक्षा के निमित्त उसके चतुर्दिक और दस नौकाएं सशस्त्र चलीं। मुसलमान अधिकारी भी साथ चले।

चलते समय नावों पर तथा तट पर हरिध्वनि की गूंज ही नहीं वरन् गर्जन होने लगा। उड़िया कर्मचारी तथा अन्य लोग प्रभु-वियोग में आंसू बरसाने लगे।

मन्त्रेश्वर नामक दुष्ट नदी पार हो लोग पिछिलदह पहुंचे। प्रभु ने मुसलमान अधिकारी को पास बुला कर अपने हाथ से उन्हें जगन्नाथ का प्रसाद दिया। प्रभु-कृपा से वे प्रभु के शुद्ध भक्त, परम भागवत एवं जगन्मान्य वैष्णव हुये।

वहां से चल कर नौका पानिहाटी पहुंची। प्रभु ने कप्तान को अपनी कृपा का वस्त्र चिन्हा कर विदा किया और वह आह्लाद-पूर्ण घर लौट गया।

प्रभु के शुभागमन का सम्वाद पाकर घाट पर जनता टूट पड़ी। भीड़ से रास्ता बन्द हो गया। राघवपंडित किसी प्रकार आप को भक्तों के सहित अपने घर ले गये। प्रभु एक दिन वहां ठहर कर कुमारहाटी श्रीवास के घर गये। उन का एक भवन नवद्वीप में भी था जहां प्रभु ने कई महीनों तक संकीर्त्तन किया था। आप के पदार्पण से पंडित के घर की सब नर-नारियां आनन्द में उन्मत्त हो नाच गान करने लगी।

१. "श्रीचैतन्य चरितामृत" में यही नाम है। परतु "अमिय-निमाई चरित" में मुकुन्द दत्त के स्थान पर गोपीनाथ लिखा है। सम्भवतः दोनों ने कहा होगा।

जगदानन्द वहीं दर्शकों में थे। वे उदासी थे और जब गौड़ में रहते थे तब शिवानन्द के घर रहते थे। बिना किसी से कहे सुने इन्हों ने काञ्चनपाड़ा जाकर शिवानन्द सेन को प्रभु के आगमन की खबर सुनाई और उन्हें प्रभु को ले आने के निमित्त भेजा। वे स्वयं पाक तथा प्रभु के स्वागत की तैयारियों में लगे। घाट से लेकर सेन महाशय के घर तक मार्ग के दोनों पार्श्वों में कदली स्तम्भ तथा कलशादि रोपे और रखे गये थे। पथ में पांवड़े भी बिछाये गये थे। सेन के प्रार्थनानुसार प्रभु उनकी इच्छा पूर्ण करते गये। वहां पर मुकुन्द के भाई अपने प्रिय वासुदेव का भवन भी आपने पवित्र किया।

इन्हीं शिवानन्द के पुत्र कवि कर्ण पूर्ण (२) ने स्वरचित "चैतन्य चन्द्रोदय" नाटक में लिखा है कि गत वर्ष जब प्रभु ने गौड़ देश में आने का विचार किया था उस समय शिवानन्द के भांजे श्रीकान्त वहीं थे। उनके लौटने के समय प्रभु ने उनसे कहा था कि वे गौड़ जायंगे और जगदानन्द के हाथ की भिक्षा पावेंगे। इससे श्रीकान्त ने समझा था कि प्रभु उन के मामा के घर भोजन करेंगे। इसकी खबर पाकर शिवानन्द ने ठौर ठौर से सपरिश्रम उनकी रुचि की वस्तुएं भी एकत्र कर रखी थीं। परन्तु सार्व्वभौमादि के आग्रह से उस वर्ष प्रभु का आना न हो सका।

शिवानन्द बड़े सोच में थे कि प्रभु के निमित्त संग्रहीत चीजें किस को भोजन करावें। उस पर नृसिंहानन्द (३) ने कहा कि "हम प्रेमाकर्षण से प्रभु को जहां बुला कर सब प्रसाद भोजन करावेंगे।" पश्चात् एक दिन और रात अखंड ध्यान कर के इन्हों ने प्रसाद

२ इस ग्रन्थ के चतुर्थ खण्ड का चतुर्थ परिच्छेद देखिये।

३. ये बड़ तेजमान पुरुष थे। इनके उपास्यदेव श्री नृसिंह जी इन के साथ साक्षात् बातें करते थे। इनका असल नाम प्रद्युम्न ब्रह्मचारी था। प्रभु ने इनका नाम नृसिंहानन्द रखा था।

भोग लगाया और कुछ देर नाच गाकर कहा कि "गौराङ्ग ने आकर सब ग्रहण किया।"

परन्तु शिवानन्द सेन देहधारी गौराङ्ग को भोग देना चाहते थे। उन्हें आंखों से देखा ही नहीं और भोग के पदार्थों को ज्यों का त्यों पाया, इस से उस समय उन्हें या किसी को ब्रह्मचारी के कथन का विश्वास नहीं हुआ। परन्तु पीछे ज्ञात हुआ कि उनकी बात मिथ्या नहीं थी। जब इस वर्ष भक्तगण नवद्वीप गये थे तो एक दिन सबों के समक्ष प्रभु ने कहा था कि "गत पूस के महीने में हम ने शिवानन्द के घर नृसिंहानन्द के हाथ का बड़ा उत्तम बथुआ का साग खाया था।"

कुमारहाटी आप के गुरु श्री ईश्वर पुरी का जन्म स्थान होने से आप ने वहां की थोड़ी सी मिट्टी अपनी गाती में बांध ली थी और कहा था कि—

"यह मृत्तिका हमें प्राण से भी प्यारी है। यह महा पवित्र स्थान है। यहां के कुत्ते बिल्ली भी हमारे प्रेमपात्र हैं।" इस से आप ने गुरु और गुरुस्थान की महिमा बताई। बोध होता है कि उस समय श्री केशवभारती काञ्चनपाड़ा में नहीं थे, क्योंकि उनके या उनके स्थान के दर्शन की कथा कहीं नहीं पाते।

यहां से प्रभु शान्तिपुर श्री अद्वैताचार्य्य के घर उपस्थित हुये। वे आनन्दमग्न होकर नृत्य करने लगे। किन्तु शीघ्र ही वृन्दावन जाने के विचार से प्रभु वहां ठहर न सके और दर्शकों की बाढ़ से घबड़ा कर कुछ दिन एकान्त में समय बिताने के ध्यान से आप रात्रि में चुपके गंगापार विद्यानगर में वाचस्पति के घर जा छिपे। उन्हों ने अपने भाग्य की बड़ी सराहना की और वे आप के सेवा-सत्कार में सहर्ष दत्तचित हुये। पर वहां भी प्रभु को शान्ति नहीं मिली। खबर पाने से झुंड के झुंड लोग वहां जाने लगे। घाट पर नौकाओं की कमी होने से लोग स्वयम् तैरकर

अथवा घड़ा, घिरनई, कदली थम्भ आदि के सहारे पार होने लगे। कभी लोगों के बोझ से नौकाएं डूबने लगतीं, कभी तैरने वाले डूबने लगते। परन्तु प्रभु-कृपा से किसी की जान नहीं गई।

यह रंग देख वाचस्पति ठाकुर ने यथासाध्य अन्य कोस दो कोस के घाटों से नौकाएं मंगाकर लोगों के पार उतरने में सुविधा कर दी। परन्तु वहां प्रभु का दर्शन कहां? वे तो बाहर निकलते ही नहीं। और दर्शनाभिलाषी चारों ओर घर को घेरे "प्रभु, दर्शन दीजिये, कृपा कीजिये" चिल्ला चिल्ला कर प्रभु के तथा गृह-स्थित लोगों के कानों के परदे फाड़ने लगे। स्वच्छ और प्रेमपूर्ण हृदय से विह्वल भक्तों के पुकारने से प्रभु निश्चय सुनते हैं, दया करते हैं। तभी तो द्रौपदी की और गज की टेर सुनते पांव प्यादे दौड़े थे। सभी आस्तिक उन्हें पुकारते हैं। मन से पुकारते हैं, मुख से पुकारते हैं। धीरे पुकारते हैं, ज़ोर से पुकारते हैं। देखते नहीं, मुसलमान मसजिदों में दिन में पांच पांच बार "अल्लाहो अकबर" चिल्ला चिल्ला कर उन्हें पुकारते हैं। मन्दिरों में लोग घन्टा बजाकर और नक्कारे पीट कर पुकारते हैं। कोई गालही बजाकर पुकारता है। कोई निरन्तर मनही मन पुकारा करते हैं।

सब पुकारते हैं, पर प्रभु उपयुक्त समय ही देख द्रवित होते हैं। यहां भी वही दशा है। प्रभु दर्शन क्या देंगे! वहां से भी चुपके चम्पत हुये और कुलिया में माधव दास के घर जा पहुंचे। आप के दर्शन से माधव दास जी परमाह्लादित हुये। सोच रहे थे कि अपने इष्ट मित्रों को यह शुभ सम्वाद जनावें कि इतने में जनता की भीड़ लग गई। लोग एक पर एक गिरने लगे। पीछे वाले आगेवालों को धक्का देने लगे। बेचारे दास के छप्पर बचने की आशा न रही। लोगों की सहायता से घर के चतुर्दिक उन्होंने बड़े बड़े सुदृढ़ बांसों का घेरा बांधा। पर जनता की

बाद न जाने उसे कहां कहां ले गई। उधर, वाचस्पति का भी घर द्वार लोग पीटने लगे। उन पर कुवाक्यों की बौछारें पड़ने लगीं कि वेही घर में छिपाये हैं। दर्शन नहीं देने देते। कोई कोई उनकी बिनती भी करने लगे कि "भाई हमें दर्शन सुख से क्यों वंचित करते हो।"

वे बेचारे बार बार कहने लगे " भाई! प्रभु यहां थे सही" पर न जाने अभी कहां गायब हो गये।" पर उनकी बात पर कौन विश्वास करता था। अगत्या अब वे घर में बैठ अधीर हो प्रभु को पुकारने लगे। उनके आर्त्तनाद पर एक ब्राह्मण ने धीरे से उनके कान में प्रभु के कुलिया जाने की बात कही। बस वाचस्पति सानन्द बाहर हो लोगों से बोले, "चलो भाई! प्रभु कुलिया में हैं, वहां तुम्हें ले चलें।"

क्षणमात्र में सब लोग वहां जा पहुंचे। परन्तु महा भीड़ के कारण प्रभु के समीप उनके पहुंचने की सम्भावना कहां! हां! प्रभु ने उनका आगमन जान, स्वयं उन्हें अपने निकट बुला भेजा। आप लोगों को दर्शन देने के निमित्त प्रार्थना कर ही रहे थे कि देवानन्द जी कुलिया जा कर उपस्थित हुये। उन्हें भी प्रभु ने पास बुलाया।

देवानन्द पाठकों को अवश्य स्मरण होंगे। इस पुस्तक के द्वितीय खंड के दशम परिच्छेद में इनका वर्णन हुआ है। इनके हृदय में पहले हरि-भक्ति नहीं थी। पीछे इनके घर वक्रेश्वर के कुछ दिन रहने के कारण और उनके नृत्य देखने से इनके चित्त पर भक्ति का गाढ़ा रङ्ग चढ़ गया था। आज ये अपना अपराध क्षमा कराने पहुंचे थे।

प्रभु ने कहा, 'आपका सब अपराध-भञ्जन हो गया"। इस पर देवानन्द ने निवेदन किया कि "इस से हमारी तुष्टि नहीं हुई। आप यह वर दीजिये कि जो कोई पापीष्ट इस कुलिया में आकर अपना अपराध क्षमा करावे, उसका अपराधभञ्जन हो।" प्रभु ने "तथास्तु" कह—उन्हें तुष्ट किया। सन्त महन्त सदा ही परोपकारी होते हैं एवं सब जीवों के दुःख निवारण के आकांक्षी रहते हैं।

तब से लोग कुलिया अपराध-भञ्जन कराने जाया करते हैं। देवानन्द के अपराध-भञ्जन चबूतरे पर पूजा पाठ और लोट पोट करते हैं। (४)

पीछे प्रभु ने दर्शन देकर सबों को कृतार्थ किया। वहां प्रभु सात दिन ठहरे थे। सातों दिन मेला का दृश्य रहा। गांव के चारों ओर लोग डेरा जमाये उल्लास प्रगट कर रहे हैं। सब वस्तुओं की दुकानें पहुंच गई हैं। कोई नृत्य गान का सुख ले रहे हैं। कोई दरिद्रों को वस्त्रादि दान कर रहे हैं। कोई भूखों को भोजन करा रहे हैं और कोई मित्रों के सत्कार में लगे हैं। सब को घर द्वार, कामकाज, भूल गया है। लोग अलौकिक आनन्द पा रहे हैं। उस पार मर्दों की भीड़ और इस पार स्त्रियों की भीड़। नदी का पाट दीर्घ नहीं होने से उस पार के कोलाहल और गान के शब्द इस पार की नारियों के कान में प्रवेश कर इन्हें भी सुख दे रहे हैं। और प्रभु के एक सुन्दर लम्बा जवान होने के कारण ये सब उनके मुख की झलक भी कभी कभी देख लेती हैं। इस नारीमंडली में शची तथा विष्णुप्रिया भी है। विष्णुप्रिया संसार में सब से अधिक अपने को भाग्यवती समझ रही हैं जिन के पति के दर्शन के निमित्त असंख्य लोग इकट्ठे हुये हैं।

आप के दर्शन के लिये इतने लोगों का, बिना विज्ञापन बांटने और समाचारपत्रों में आगमन की खबर छपे एकत्र होना आप के ईश्वरत्व का एक प्रमाण कहा जा सकता है।

इस जनसमुदाय में आप के भक्तगण, इष्ट मित्र, शिष्य, सेवक, प्रभृति तो थे ही, उन के साथ वे लोग भी थे जो इन से पहले ईर्षा द्वेष रखते थे और जिन के उद्धार के लिये इन्हें संन्यास ग्रहण करना पड़ा था। इनके ऐसे त्याग और ऐसी भक्ति से वे स सभी

४ "अमिय निमाई चरित "खंड ४, पृष्ठ २६८ पंचम संस्करण देखिये।

और भाव विलास इनके भक्त और दास बन गये थे एवं इन का दर्शन पाना अपना सौभाग्य समझते थे।

आज जनता ने आपके संसार त्याग तथा संन्यास ग्रहण का फल देखा। आपने भी असंख्य जीवों में भक्ति का ऐसा सञ्चार और उद्भव देख महा सुख माना। नित्यानन्द के प्रचार कार्य्य की भी आपने अवश्य प्रशंसा की होगी।

आप के दर्शनाभिलाषी जन समुदाय में कैसे २ लोग थे, यह बात नीचे के छन्दों से विदित होगीः—

खेल के साथी सुपाठी, शिष्य त्यों विद्यारथी।
इष्ट मित्र सुलोग कितने, हो प्रभु दर्शनारथी॥
नगर नैयायिक सकल सुन, सार्वभौ भक्त हाल सब।
हार शास्त्र विचार में हुए, सर्वथा हैं भक्त अब॥
दिग्विजयि को जीत जिस ने, मान का रक्षण किया।
षड्भुजा के रूप में है, अब उन्हें दर्शन दिया।
हर्षयुत फुलिया गये सिव, जान उनका आगमन।
कलुप दर्शन से मिटा, मन सुध हुआ, पा प्रेमघन॥

नवद्वीप निवासी चापाल गोपाल एक टोल के अध्यापक थे। कीर्त्तनादि से एवं तत्कारण श्रीवास से, जिनके घर कीर्त्तन हुआ करता था, उन्हें बड़ी घृणा थी। एक रात भीतर तो नृत्यगान हो रहा था, बाहर वे तान्त्रिकों की पूजा की सामग्रियां और एक घड़ा शराब रख आये। श्रीवास ने लोगों को दिखा कर और उन वस्तुओं को फेंकवा कर उस स्थान को लिपवा दिया। दो दिन के बाद गोपाल पर कुष्ट का आक्रमण हुआ। घरवालों ने, जिन्हें वे बराबर तंग किया करते थे, उन के लिये बाहर रहने का एक स्थान ठीक कर दिया और वहीं उन्हें भोजनादि पहुंचाया जाया करता था।

किसी दयालु पुरुष की सम्मति से उन्हों ने कुछ गर्वपूर्ण स्वर से गौराङ्ग को कहा था-कि "सुना है, कि तुम कदाचित बड़े साधु हो गये हो, रोगों को आराम कर सकते हो, हम गांव के सम्बन्धी हैं, हमारा रोग तो नाश कर दो।"

उस समय यदि गौराङ्ग आवेश में न होते तो उन्हें नम्रतापूर्वक कुछ उत्तर दे उनकी सान्तावना या उपयुक्त सुफकर उपदेश करते। पर वहां रंग और ही चढ़ा था। बोले "यह तो साधारण बात है, आगे न जाने क्या कष्ट पाओगे।" कुलिया में आकर गोपाल ने प्रभु से निवेदन किया कि "महाकष्ट सहते किसी प्रकार काशी पहुंच कर हमने विश्वनाथ के मन्दिर में प्राण विसर्जन करना चाहा था। भोलानाथ ने स्वप्न में आदेश किया कि गौराङ्ग स्वयं भगवान हैं। उन्हीं के शरणापन्न होने से तुम्हारा दुःख दूर होगा। आप कृपया अपराध क्षमा कर हमारा उद्धार कीजिये।" आप ने कहा "भाई! तुम ने श्रीवास के प्रति अपराध किया है। उनका चरणोदक पान करने से तुम रोगमुक्त होगे।" (५) ऐसा करने से वे कुष्टरोग और भवरोग दोनों ही से मुक्त हुये एवं गौराङ्ग के परम भक्त भी बने।

पुनः प्रभु अपने भक्तों के संग नवद्वीप आकर अपने घर के सामने खड़े हुये वहां हजारों की भीड़ लग गई। (६)

५. घटना इसी प्रकार वर्णित है। किन्तु हम नहीं समझते कि कुष्ट ग्रस्त कोई व्यक्ति पांव २ नदिया से काशी कैसे जायगा और वहां से कैसे लौटेगा। उस समय रेल तो थी नहीं और रोग भी श्वेत कुष्ट नहीं प्रतीत होता। यदि वह होता, तो घरवाले उनका भीतर आना जाना बन्द नहीं किये होते।

६. "विश्व कोष" में कुलिया से अद्वैताचार्य्य के घर शान्तिपुर प्रभु का लौट आना और वहीं शची का बुलाया जाना लिखा है। सम्भवतःशान्तिपुर होते लोगों के सहित आप जन्म-स्थान का दर्शन करने चर गये होंगे।

उसमें यह भी लिखा है कि "उस समय आचार्य्य के घर एक संन्यासी के यह पूछने पर कि "केशव भारती चैतन्य के कौन हैं?" आचार्य्य ने उन्हें इनका गुरु होना कहा था। यह सुन

विष्णुप्रिया पहले घर के भीतर से सशंक आप का दर्शन कर रही थीं। लोगों को देख कर लज्जावश आप के चरणों के निकट जाने का उन्हें साहस नहीं होता था। फिर यह सोच कर कि "आप तो हमारे लोक परलोक की गति और स्वामी हैं और इस समय चरण दर्शन न होगा तो फिर कब अवसर मिलेगा।" उन्हों ने आप के पादपद्मों के समीप बेधड़क जा कर आर्त्तनाद किया। प्रभु एक स्त्री को देख दो डेग पीछे हट कर बोले "तुम कौन हो ?" किसी ने कुछ नहीं कहा। किसी को उत्तर देने की शक्ति नहीं थी। सब का कलेजा फटा जा रहा था।

तब विष्णुप्रिया ने स्वयं कहा "हम आप की दासी हैं।" यह सुनकर प्रभु को महा दुःख हुआ। इनकी आंखों के आगे अंधेरी छा गई। इन्होंने बहुत कष्ट से पूछा "तुम क्या चाहती हो ?" प्रियाजी ने निवेदन किया "आप ने सारा संसार का उद्धार किया, हमी को भवकूप में डाल रखा। इसपर सब उपस्थित जन कलेजा फाड़ कर रोने लगे। प्रभु मस्तक अवनत किये बोले "तुम कृष्ण-प्रिया बन कर अपना नाम सार्थक करो।"

विष्णुप्रिया ने कहा "हमें तो आप के सिवाय संसार में, जागते सोते कोई अन्य वस्तु दीखती ही नहीं। कृष्ण तो हमें नजर ही नहीं आते और न उनसे हमें कुछ काम ही है।"

तब प्रभु अपने पांवों से खड़ाऊं निकाल कर प्रियाजी से बोले "हे साध्वी! हम संन्यासी के पास देने योग तो और कुछ नहीं, यही लेकर हमारा विरह-जनित दुःख तुम शान्त करो।"

प्रियाजी ने खड़ाऊं लेकर उसे प्रणाम किया, सिर पर चढ़ाया,

कर आचार्य्य का पञ्चवर्षीय पुत्र अच्युतानन्द सक्रोध बोल उठा था कि 'आप क्या कह रहे हैं चैतन्य तो स्वयं जगद्गुरु हैं। उनका गुरु कौन हो सकता है।' इस पर आचार्य्य उसे गोद में उठा कर नाचने लगे थे। इतने में महाप्रभु भी "हरिबोल" कहते वहां विराजमान हुये थे।

बारम्बार चुम्बन किया और हृदय से लगाया। चारों ओर आकाश-भेदी हरिध्वनि होने लगी।

भरत जी को भी श्रीरामचन्द्र जी ने सन्तोषार्थ अपना चरणपादुका ही दिया था जिस सम्बन्ध में गोस्वामी तुलसी दास ने कहा है:—

"प्रभु करि कृपा पांवरी दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं।
चरनपीठ करुना निधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के॥
सम्पुट भरतसनेह रतन के। आखर जनुजुग जीव जतन के॥
भरत मुदित अवलम्ब लहे तें। अस सुख जस सियराम रहे तें।

इन चौपाइयों में यदि "श्रीराम" के स्थान में "महा प्रभु" एवं "भरत जी" के स्थान में "विष्णु प्रिया जी" और "प्रजा प्रान" की जगह "प्रिया प्रान" मान लिये जायं तो इसका भाव सर्वथा प्रियाजी की अवस्था पर घटित होता है। श्रीरामचन्द्र की पांवरी के सहारे भरतजी ने चौदह वर्ष दुःख का दिन काटा और तत्पश्चात् उन के चरण कमलों के दर्शन से वे सुखी हुये। यहां प्रभु के पादुकाओं के सहारे प्रिया जी को अपना सारा जीवन बिताना होगा और परलोक में इन्हें पुनः मिलन सुख प्राप्त होगा। भेद इतना ही है।

आप ने श्री मातृचरण का भी दर्शन किया और सविनय उन से वृन्दावन जाने की आज्ञा प्राप्त की।

द्वाविंश परिच्छेद

वृन्दावन गमन में बाधा।



पनी जननी और जनों से विदा होकर प्रभु वृन्दावन की ओर चले। पुरी से आये हुये संगी लोग तो साथ थे ही यहां से भी बहुत से लोग साथ हो गये और जैसे जैसे आगे बढ़ते जाते थे साथियों की संख्या भी बढ़ती ही जाती थी। हज़ारों के माथे पहुंच गई थी। प्रतीत होता था कि आप सैन सामन्त के संग कोई देश विजय करने जा रहे हैं। पर थे लोग शस्त्रहीन।

नृसिंहानन्द से पाठकवृन्द अभी हालही में परिचित हुये हैं। आप प्रभु की मानसिक पूजा किया करते थे। मानसिक सेवा उत्तम होती है। उसमें सेवक का चित्त अहर्निशि प्रभु के ही ध्यान और सेवा में लगा रहता है। ऐसे सेवकों पर प्रभु की प्रसन्नता भी शीघ्र होती है। श्रीगौराङ्ग सदल वृन्दावन जा रहे हैं। ऐसे अवसर में नृसिंहानन्द अपनी सेवा में क्यों त्रुटि करें? आप मन ही मन मार्ग परिष्कार करते जाते हैं। कुश कांटा कंकड़ इत्यादि हटाते जाते हैं। पथ के उभय पार्श्वों में 'गुल फूल लगाते, कदलीस्तम्भ आरोपण करते, सुखद वाटिकाएं' निर्माण के प्रबन्ध में व्यस्त हैं। रात दिन चैन नहीं। किन्तु नाटशाला पहुंचने पर आप का किया कुछ नहीं होता। आपकी चेष्टाएं विफल होने लगीं। आपके हाथ पांव भी जवाब देने लगे। तब आपने उपस्थित भक्तों से कहा कि प्रभु इस बार वृन्दावन न जा सकेंगे। इन की यात्रा नाटशाला ही तक समाप्त होगी। शिवानन्द सेन के घर प्रभु के भोजन करने के सम्बन्ध में उनकी बातों की सत्यता सिद्ध हो चुकी थी। इस समय उनके कथन में किसी को सन्देह करने की इच्छा नहीं हुई।

प्रभु आनन्द मग्न मार्ग में जा रहे हैं। आत्मविस्मृत हैं। साथ में कितने लोग जा रहे हैं, चतुर्दिक क्या हो रहा है, इसकी कुछ खबर नहीं। शरीर पथगामी है और मन वृन्दावन में विचर रहा है। पवन मार्गस्थ बस्तियों के निवासियों के कानों में आपके सद्य आने की खबर सुनाता हुआ आगे २ दौड़ा जाता है। आप दो पहर को जहां पदार्पण करते हैं, वहीं गांववाले क्षण मात्र में भिक्षा को सब सामग्रियां प्रस्तुत कर देते हैं। उस समय चीजें सस्ती थीं; अतिथि-सत्कार में श्रद्धा थी; साधु सन्तों की सेवा अपना धर्म और परम कर्तव्य समझा जाता था। यह तो बहुत दिनों की बात है। आज से पचास-साठ ही वर्ष पहले अपने, बालकाल में, आखों से देखा है कि आरा के निकट पश्चिमस्थ हमारे अख्तियारपुर गांव में, सौ सौ, पचास पचास साधु एक संग विराजमान हो जाते थे और लोग सहर्ष उनकी सेवा सुश्रूषा में लग जाते थे।

मार्ग में एक दिन भोजन के अनन्तर प्रभु के मुख शुद्धि के निमित्त हाथ बढ़ाने पर गोविन्द घोष ने गांव से एक हर्रे ला कर उस का एक टुकड़ा आप को दिया और शेष आगे के लिये कपड़े में बांध रखा। अग्रद्वीप पहुंचने पर प्रभु के पुनः वैसाही करने से उन्होंने उसी शेष खंड को इनके हाथ में रख दिया। यह जान कर कि वह पूर्व दिन की संचित वस्तु थी, आपने गोविन्द से कहा कि "तुम्हारी सञ्चय की वासना अबतक नहीं गई, अतएव तुम्हें हमारे संग न जाना होगा।"

इस से गोविन्द बहुत दुखी हुये। परन्तु प्रभु ने उनके शरीर पर हाथ फेरते और मुसकुराते हुये कहा कि "वस्तुतः तुम्हें वासना नहीं; यह हमारे कारण हुई। तुम्हारे द्वारा हमें बहुत काम कराना है, श्रीभगवान की करुणा की सीमा देखानी है। हम फिर तुम्हारे पास आवेंगे और तब तुम्हारे साथ बराबर रहेंगे।" अगत्या गोविन्द एक कुटी में वहीं रहने लगे।

एक दिन स्नानान्तर ध्यान करते समय उनके शरीर से एक जली हुई लकड़ी छू गई। उन्होंने उसे नदी से निकाल कर ऊपर फेंक दी। थोड़ी देर बाद श्रीगौराङ्ग ने उनके हृदय में उदय होकर उस लकड़ी को सयत्न कुटी में रखने की आज्ञा दी और दूसरे दिन वह काठ काला पत्थर हो गया।

प्रभु अपने संगियों के समेत वहां पुनः विराजमान हुये और आपने उस लकड़ी के बारे में पूछा। उसी समय कहीं से एक शिल्पकार आ पहुंचा। प्रभु ने उस के द्वारा उसी पत्थर से गोपीनाथ की मूर्ति तैयार करा कर और उसे स्थापित कर गोविन्द से कहा कि "तुम इन्हीं की सेवा करो। हमारे वियोग का दुःख तुम्हें व्याप्त नहीं होगा। तुम विवाह भी करो।" श्री भगवान तुम्हारे द्वारा जीव को अपनी भक्त-वत्सलता दिखलावेंगे।

गोविन्द ने विवाह किया। दम्पति पुत्र भाव से गोपीनाथ की सेवा करने लगे। इन्हे एक पुत्र भी हुआ। स्त्री परलोक गत हुई। शिशु भी पांच वर्ष की अवस्था में सुरलोक सिधारा। गोविन्द महा दुःखित और कुपित हो गोपीनाथ के सामने प्राण विसर्जन करने के अभिप्राय से निराहार पड़ गये और उन्होंने ठाकुर को भी भोग नहीं लगाया। गोपीनाथ और गोविन्द में कभी २ मधुर आलाप भी होता था। रात को गोपीनाथ ने कहा "बाबा तुम्हारा एक पुत्र मर गया तो भूखे मारकर दूसरे का प्राण क्यों लेते हो? हम दो पुत्रवाले के पास नहीं रहते, अकेले रहते हैं। यदि हम जाते तो तुम दोनों को खोते। वह गया तो उसका तो कल्याण ही हुआ। उसे संसार का क्लेश नहीं भोगना पड़ा (१)। तुम्हारी सेवा

१. "खुश आं शुद कि दरगामे तिफ़्ली बमुर्द।
कि पीराने सर शर्मसारी न बुर्द॥"—सादी॥
भावार्थ—महा खुसी बालापन सद्गति पायो।
वृद्ध सीस नहिं पापक बोझ उठायो॥

श्राद्ध के लिये हम प्रस्तुत हैं।" इस पर गोविन्द पूर्ववत गोपीनाथ की सेवा पूजा में प्रवृत्त हुये।

थोड़े दिनों के बाद गोविन्द भी संसार से चल बसे। अग्रद्वीप में उन्हें समाधि दी गई। शरीर त्याग के पूर्व उन्होंने गोपीनाथ की पूजा अर्चा का सुप्रबन्ध कर एक सुयोग्य शिष्य को वहां रख दिया था। कथित है कि गोपीनाथ ने उसीको स्वप्न देकर सचमुच गोविन्द का श्राद्धोत्सव किया था। और उनकी मृत्यु पर उनकी आंखों से आंसू भी टपके थे। चैत्र कृष्ण एकादशीको श्राद्ध हुआ था। बहुत से लोग उपस्थित हुये थे। श्री भगवान की करुणा से उन्मत्त हो कोई गोपीनाथ को धन्य धन्य कहने लगे और कोई गोविन्द का भाग सराहने लगे। कहते हैं कि सबों के सामने गोपीनाथ ने अपने हाथ से पिंडदान किया था। अग्रद्वीप में अब तक प्रति वर्ष यह श्राद्धोत्सव मनाया जाता है। (२)

अब प्रभु की कथा सुनिये। वे यात्रा करते करते गौड़ नगर के निकट रामकेलि गांव में पहुंचे। गौड़ेश्वर इनके दल का कोलाहल और "हरिबोल, हरिबोल" का गर्जन सुन कर महा भयभीत हुये कि बैठे बिठाये कोई शत्रु तो अकस्मात् सिर पर न आ पहुंचा और उन्होंने अपने क्षत्रिय मंत्री केशव सिंह को बुला कर इसका कारण पूछा। इन्होंने कहा कि "कोई चिन्ता की बात नहीं। एक संन्यासी अपने कुछ शिष्यों के संग वृन्दावन जा रहे हैं, वही शोर गुल हो रहा है। गौड़ेश्वर ने और निश्चय करने के लिये दबीर खास तथा शाकिर मल्लिक दो अन्य अमात्यों को बुला कर इस कोलाहल का हाल पूछा। इन लोगों ने प्रभु की बड़ी प्रशंसा की और कहा कि "इनके गुणों और लक्षणों से ऐसा विश्वास होता है कि खुद खुदा संन्यासी वेष में परदे जमीन पर घूम रहे

२. "अमिय-निमाई चरित" खंड ५ चतुर्थ संस्करण पृ० ११ देखिये।

हैं। जिसके फ़ज़ल औ करम से आप इस दर्जे को पहुंचे हैं, गोया वे आपके दरवाज़े पर पहुंच गये हैं।"

गौड़ेश्वर ने कहा "हमारा भी ख़्याल ऐसा ही हो रहा है। हम बादशाह, हमारी इतनी शौकत और दबदबा। तांहम, अगर हम अपने नौकरों और फ़ौज के सिपाहियों को चन्द रोज़ तनख़ाह देने में तकाहुली करें, तो हमारी जान ख़तरे में पड़जाय। और ये एक लंगोटबन्द संन्यासी; इनसे किसी को एक ख़रमुहरा याफ़्त की उम्मीद नहीं और लाखों आदमज़ाद अपने ख़्वाब और ख़ुर का कुछ भी ख्याल न करके शबाने रोज़ इनके पीछे दौड़ा करें और इनकी फ़रमांबरदारी में कमरबस्ते रहें, इससे लामुहाल गुमान ग़ालिब होता है कि इन में ख़ुदाई का जलवा और ज़हूर है।" इस बादशाह का नाम हुसेन शाह था।

उक्त दोनों अमात्य राजवंशीय कार्नाटक ब्राह्मण और सगे भाई थे। (१) अपनी योग्यता, विद्या तथा कार्य्यदक्षता के प्रभाव से अमात्य पद को प्राप्त हुये थे। फ़ारसी अरबी और संस्कृत में

१. भरद्वाज गोत्रज यजुर्वेदी ब्राह्मण अनिरुद्ध के पौत्र तथा नरहरि के पुत्र पद्मनाभ किसी कारणवश कार्नाटक देश से आकर नवहट्ट (नैहाटी) में आवासित हुये थे। उनके पांच पुत्रों और अठारह कन्याओं में मुकुन्द छोटे पुत्र थे। इन के पुत्र कुमारदेव जातिवर्ग से विरोध हो जाने के कारण यशोहर (जेसोर) ज़िला के फतेहाबाद में जा बसे। और गौड समीपस्थ मधाईपुर के हरिनारायण विशारद की कन्या रेवती से विवाह होने पर वे ससुराल ही में रहने लगे। मालदह ज़िला में महानन्दा नदी तीरवर्ती शापुर गांव से एक कोस पूर्व वह मधाईपुर गांव था। रेवती गर्भजात इनकी सन्तानों में अमर, सन्तोष और अनूप, पीछे क्रमशः सनातन, रूप और वल्लभ के नाम से, वैष्णव समाज में बहुत प्रसिद्ध हुये। गृहित्यागी होने के थोड़े ही दिन बाद वल्लभ का देहान्त हो गया। इन्हीं के पुत्र जीव गोस्वामी थे जिनका हाल आगे ज्ञात होगा।

सनातन का १४८८ ई० में और रूप का १४८९ ई० में जन्म कहा गया है। इन दोनोंने नैहाटी के सर्वानन्द सिद्धान्त वाचस्पति से संस्कृत और सप्तग्राम के भूम्याधिकारी सय्यद फखरुद्दीन से अरबी और फ़ारसी पढी थी। पीछे उपर्युक्त गौडेश्वर हुसेन शाह

निपुण और राज्य-शुभचिन्तक थे। किन्तु मुसलमान बादशाह के संसर्ग से ये अर्ध मुसलमान हो रहे थे। तौभी हिन्दू पंडितों और विद्वानों का ये लोग बड़ा आदर सम्मान करते थे। नवद्वीपीय कितने विद्वानों का पोषणपालन करते थे। साधुओं तथा वैष्णवों से इनका स्थान सदा भरा रहता था। स्वग्राम के समीप "कन्हाई नाटशाला" गांव में इन्होंने श्रीकृष्ण की सब लीलाओं की मूर्तियां नाट्यमन्दिर में स्थापित कराई थी (४)।

इन लोगों ने प्रभु के प्रकाश काल से ही उन्हें आत्मसमर्पण किया था। इन लोगों ने अपने उद्धार का एवम् पुनः हिन्दू धर्म्म प्राप्त करने

के मुख्य मंत्री "श्री कृष्ण विजय" के प्रणेता मालाधर वसु (गुणराज खां) के द्वारा गौड़ राज दरबार में नियुक्त हो कर ये लोग क्रमशः उन्नति करते भिन्न २ विभागों के अमात्य नियत हुये। बंगाली लेखकों के अनुसार रूप को "दबीरखास" और सनातन को "साकर मल्लिक" की उपाधि मिली तब से ये लोग गौड़ नगर के पास रामकेलि गांव में रहने लगे। इस समय रामकेली स्थान में "रूप सागर" और पूर्वोक्त मधाईपुर के निकट जङ्गलाकीर्ण "साकरमा" गाव विद्यमान है।

(नोट)—"दबीरखास" तो साफ़ उपाधि सूचक शब्द है "जिस का अर्थ विशेष या ख़ास लेखक" अर्थात् प्राइवेट सिक्रेटरी होगा। किन्तु फ़ारसी की विचित्र वर्णमाला और लिखावट के कारण "साकर मल्लिक" किसी शब्द से बिगड़ कर उपाधि सूचक न हो कर विशेष संज्ञा सा (किसी के नाम ऐसा) हो गया है। फारसी अक्षर में लिखने से ساکر शब्द साकर, सागर, साकड़ तथा शाकिर इत्यादि पढ़ा जा सकता है। और यदि लिखनेवाले की जल्दी ने इस की शकल سکر ऐसी कर दी तब यह सकर, शक्कर सगड़ और शुक्र भी हो जायगा। एवम् ملک शब्द मलक (फ़रिश्ता, पार्षद), मुल्क (देश), मिल्क (जायदाद, हस्तिगत) मल्लिक (जाति विशेष) और मलिक (बादशाह) पढ़ा जायगा।'

बोध होता है कि "साकर मल्लिक" "शाकिर-उल-मलिक" वा "शुक्र-उल-मुल्क" का अपभ्रंश है। पहले का अर्थ होगा "राजा का कृतज्ञ" और दूसरे का अर्थ होगा "जो देश वा प्रजा की कृतज्ञता का पात्र हो" सुप्रबन्धादि सद्गुणो के कारण—अर्थात् यह "महान सुप्रबन्धक" वाचक उपाधि है। साकर मल्लिक का उपाधि सूचक अर्थ नहीं होता।

४. उनमें से कुछ मूर्तियां अब भी वर्त्तमान हैं और लोग उनके दर्शन को जाया करते हैं। गया से लौटते समय प्रभु भी वहां ठहरे थे और आपने वहीं देखा था कि बालकृष्ण भगवान ने नाचते हंसते आकर इन्हें अंक में लगाया और दोनों मिल कर एक हो गये।

का कोई उपाय न देख प्रभु की सेवा में साहाय-प्रदान के निमित्त पत्र भी भेजा था। (५)

बादशाह से बातें होने पर इतने लोगों के साथ प्रभु का वहां रहना अच्छा न विचार कर, इन दोनों भाइयों ने उन्हें यह जना देना और इसी बहाने उनके चरण कमलों का दर्शन करना अपना परम कर्त्तव्य समझा। अतएव निसाकाल में साधारण वेष धारण कर इन लोगोंने बड़े प्रेम और नम्रता से प्रभु का दर्शन किया एवम् अपने उद्धारके लिये विनती की। इनकी दीनता देख प्रभु ने कहा "हम केवल तुम लोगों को देखने ही के लिये इधर आ पड़े हैं। कृष्ण भगवान की तुम लोगों पर शीघ्र ही कृपा होगी। तुम लोग हमारे परम प्रिय हो। आज से तुम लोगों का नाम सनातन और रूप हुआ।" चलते समय सनातन ने कहा "प्रभु! इतने लोगों के संग वृन्दावन जाने में आनन्द नहीं आवेगा।"

दूसरे दिन नाट्यशाला आकर सब लोगों ने रात वहीं बिताई। प्रातः काल प्रभु ने कहा कि "सनातन के मुख से कृष्ण ने हमें ठीक उपदेश दिया है। हम पुरी लौट कर वहां से अकेले वृन्दावन जाने का प्रबन्ध करेंगे।" यह कह कर आप वहां से उलटा पांव फिरे। रास्ते में भक्तों को अपने २ घर भेजते शेष लोगों के साथ आप अकस्मात शान्तीपुर उपस्थित हुये। इधर से गंगा दास मुरारी प्रभृति शची माता को लिये हुए अद्वैताचार्य्य के घर पहुंचे।

अद्वैताचार्य के गुरु श्रीमाधवेन्द्रपुरी के स्वर्गपयान की तिथि निकट होने के कारण आपको भक्तों के संग वहां दस दिन ठहरना पड़ा। इसी मध्य में एक दिन आप भागीरथी पार कालना में गौरी-दास से मिलने गये। गौरी दास ने निमाई और निताई को अपने घर में रहने का वर मांगा। प्रभु ने "तथास्तु" कहा। तब दास

५. "चैतन्यचरितामृत" में प्रभु के इस पत्र का उत्तर भेजने की बात लिखी हुई है किन्तु "अमिय-निमाइचरित" से उत्तर आना नहीं पाया जाता।

महाशय ने जहां ये लोग थे, उस घर में जंजीर लगा दी जिस में ये लोग भाग न जाय'। परन्तु बाहर दोनों को खड़ा देखा। पुनः भीतर जाने पर इनका वहां विग्रह पाया। दास ने कहा यह नहीं—"जो भीतर हैं वे बाहर जायं; आप लोग भीतर आइये। "जब ये लोग भीतर गये तो येही विग्रह हो गये और बाहर किये गये दोनों विग्रह शरीर धारी निमाई और निताई हो गये। कई वार ऐसा ही होने से हार मान कर गौरी दास ने विग्रहों ही पर सन्तोष किया।

शान्तिपुर से चलने के समय आपने अद्वैत को तथा एक एक कर के सब भक्तों को छाती से लगाया और उनसे पुरी जाने की आज्ञा मांगी। माता के चरणों को धर कर वृन्दावन दर्शन की उनसे अनुमति ली। भक्तों से यह भी कहा कि "आप लोगों से यही भेंट हो गई, इस वर्ष आप के नीलाचल आने का काम नहीं।

यहांसे श्री वास, शिवानन्द सेन, वासुदेव दत्त आदि आप के संग चले। आप कुमारहाटी में श्रीवास के घर ठहरे। बातचीत में प्रभु ने उन से पूछा कि "आपका परिवार भारी है और आप कोई काम नहीं करते, आप की गृहस्थी कैसे चलती है?" उन्होंने तीन ताली बजा कर कहा कि "यदि तीन दिन उपवास करने पर भी श्रीकृष्ण भोजन न पहुंचावें तो गंगा में प्राण दे देंगे।" प्रभु ने कहा कि "जब ऐसा विश्वास है तब यदि लक्ष्मी को स्वयं उपास करना पड़े तो पड़े, आप को कभी कष्ट नहीं होगा।" इसी से श्रीवास के नाती वृन्दावनदास ने स्वप्रणीत ग्रंथ "चैतन्य भागवत" में बड़े गौरव से कहा है कि इसी घर से उनके नाना के घर कभी खाने पीने का कष्ट नहीं हुआ।

यहां से प्रभु अपने मौसा मौसी से भेंट करने गये। वहीं अल्पवयस्का एक स्त्री ने आप के चरणों में प्रणाम किया। आपका उसे पुत्रवती होने का आशीर्वाद देने पर, वह जोर से रो उठी। पूछने पर ज्ञात हुआ कि वह श्रीखंड के भगवान आचार्य्य की पत्नी थी।

वे विवाह के बाद उसे श्रीवास के घर रख कर पुरी चले गये थे उस समय वह आप के मौसी के साथ रहती थी। प्रभु ने हँस कर कहा "हमारा आशीर्वाद निष्फल न होगा।" पुरी जाकर आपने भगवान को घर भेज दिया। वे घर आये और भगवान की कृपा से इन्हें दो तेजस्वी पुत्र भी हुये। तब वे पुनः पुरी चले गये।

प्रभु के पुरी लौट जाने पर वहां महा महोत्सव मनाया गया। आप रूप और सनातन का गुण कथन कर बोले कि "सनातन के मुख से कृष्ण ने हमें उपदेश दिया कि वृन्दावन जाने की यह रीति नहीं। सचमुच इतने दलबादल के साथ जाना जगत को अपनी मान-मर्यादा का तमाशा दिखाना कहा जायगा। सेना साज कर डंका बजाते तीर्थाटन नहीं होगा। वृन्दावन अकेला ही जाना उचित है। हम गदाधर को दुःख दे कर चले इसीसे वृन्दावन न जा सके।" गदाधर ने कर सम्पुट किये आपके चरणों में गिर कर कहा "जहां आप, वहीं वृन्दावन। आप का तीर्थाटन तो दूसरों की शिक्षा के लिये है। पुरी में बरसात बिताइये, फिर जैसी इच्छा हो कीजियेगा।" इस का सब लोगों ने अनुमोदन किया।

उस दिन गदाधर ने भक्तों के सहित प्रभु को भोजन कराया।

—:o:—

त्रयोविंश परिच्छेद ।

श्रीवृन्दावनगमन ।

"वर्षा विगत शरद ऋतु आई ।
प्रभु वृन्दावन गे हरखाई ॥"



घर कृष्णवर्ण मेघ चार मास गरज गरज कर जल बरसाते रहे; चंचला चमक चमक कर चकाचौंध लगाती और वियोगिनियों को जलाती रही तथा चातक "पी कहां? पी कहां" पुकारते रहे। इधर कृष्णचैतन्य ढारें मार मार कर, रो रो कर अश्रुवर्षण करते रहे।" वृन्दावन कहां? वृन्दावन कहां?" रटते रहे। एवं अपने सन्ताप से भक्तों के हृदयों को सन्तप्त करते रहे। वृन्दावन गमन आप के लिये कुछ बात नहीं थी। इस कार्य्य से आपने लोगों को यह शिक्षा दी कि तीर्थपर्यटन और देवदर्शन के लिये जीव को कैसी व्यग्रता होनी चाहिये।

आप अकेले ही यात्रा करने का विचार कर रहे थे। पीछे लोगों के आग्रह से बलभद्र भट्टाचार्य्य को, जो तीर्थाटन की आशा से नीलाचल आये थे, और उनके ब्राह्मण सेवक को लेकर आप विजया दशमी को प्रातः काल वृन्दावन रवाने हुये। इसके पूर्व ही रात्रि समय आपने श्री जगन्नाथ का दर्शन कर यात्रा के निमित्त उनकी आज्ञा लेली थी।

आप कटक की बांई ओर से जंगल की राह चले। वनफल भोजन करते और पेड़ों के तले बैठ धूनी लगा कर रात बीताते। मार्ग में आनन्द-मग्न हो, कृष्णकीर्तन करते और पशु पक्षियों को मोहित करते चले जा रहे हैं। कभी २ आप की मधुर तान सुन कर कुरङ्गसमूह आप के सङ्ग लग जाते है। बाघ, चीते भी मिलते हैं,

किन्तु अपनी सहज क्रूरता प्रगट न कर एक ओर हट जाते हैं। एक बार रास्ते में पड़े हुये एक चीते पर इनका पांव पड़ गया। इन के हरिबोलने की आज्ञा करने पर वह उठ कर नृत्य करने और गरजने लगा। मानों कृष्ण कृष्ण उच्चारण करता हो। एक बार स्नान करते समय हाथियों का एक झुंड आ पहुंचा। आप ने उन सबों पर जल छींटा और वे चिक्कार करते, नाचते दौड़ चले एवं कोई २ भूमि पर लोटने लगे।

तरूशांखाएं तथा लताएं आप को देख देखी झूमती थीं मानो नृत्य-कुशला नर्त्तकी गण पाणि-क्रीड़ा प्रदर्शनपूर्वक नृत्य कर रही हों। सच तो यह है कि आपने छोटा नागपुर के जंगल के जंगम और स्थावर सब पर कृष्णप्रेम का रंग जमा दिया।

वन के समीपवर्ती गांववाले भी पशुओं के सदृश भयंकर और हिंसक होते हैं। परन्तु प्रभु के मुख से कृष्ण नाम सुन कर वे भी भक्ति प्रेम से पूर्ण होते गये। उन में ऐसी शक्ति आ गई कि एक के मुख से सुन कर दूसरा और दूसरे के मुख से सुन कर तीसरा प्रभावित होता गया। इस प्रकार वह प्रान्त ही हरिकीर्त्तन में मस्त हो गया। वहां के सब निवासी वैष्णव हो कर नाम कीर्त्तन और नृत्य गान करने लगे।

कोई गांव मिलने पर भट्टाचार्य्य तीन चार दिन के लिये अन्न लेलेते और जंगल में चलने के समय उसीको बनाकर खिलाते और खाते थे। प्रभु की लीला अकथनीय है। एक टुकड़ा हर्रे पास रखने से सञ्चय के अपराध में गोविन्द को प्रभु ने अपने संग से विलग कर दिया और यहां तीन २ दिन के लिये अन्न सञ्चय करने पर भी भट्टाचार्य्य को आप ने हृदय से लगा कर कहा कि "आप की सहायता से हमें यह सुख और आनन्द मिल रहा है।"

अन्ततः काशी पहुंच कर आपने मणिकर्णिका घाट पर

स्नान किया। संयोग्य वश पूर्वोक्त (१) तपन मिश्र से आपको वहीं भेंट हो गई। आप को पहचान कर वे आपके पैरों पर गिरे एवं विश्वनाथ अन्नपूर्णा तथा विन्दुमाधव का दर्शन करते आप को अपने घर लेगये। और भोजन कराकर आपको विश्राम कराया। आप लेटे और उनके बेटे रघु आपका पांव दबाने लगे। पीछे यही रघु वृन्दावन के सुप्रसिद्ध छः गोस्वामियों में हुये जिनका हाल आगे लिखा जायगा।

तब चन्द्रशेखर नामक एक वैद्य भी वहां आ पहुंचे। उन्हें नवद्वीप में प्रभु के दर्शन का एक वार अवसर मिला था। प्रणामादि के अनन्तर उन्होंने कहा कि "आपने बड़ी कृपा कर हम दोनों को दर्शन दिया। हम जब से यहां आये माया और ब्रह्मही की बातें एवं षड् दर्शनों की ही चर्चाएं सुनते रहे। अब इन्हीं मिश्रजी से कृष्णनाम का माहात्म्य जान कर हम लोग सदैव आप के चरणों का ध्यान किया करते हैं। आप यह प्रार्थना स्वीकार कीजिये कि हमारे घर के सिवा कहीं भिक्षा न कीजिये।" इन दोनों सुजनों के आग्रह से प्रभु वहां दस दिन ठहर गये।

इसी मध्य में एक दिन एक महाराष्ट्र ब्राह्मण आये और आपका सौन्दर्य्य तथा कृष्णप्रेम देख महा चकित हुये उन्होंने आप का निमन्त्रण किया, परन्तु चन्द्रशेखर का निमन्त्रण स्वीकार कर लेने के कारण, आप उन की इच्छा पूर्ण नहीं कर सके।

उस समय काशी में मायावादी संन्यासियों का भारी अखाड़ा था। उन के महंत थे स्वामी प्रकाशानन्द जी। इनसे हमारे पाठक परीचित हैं। भारत वर्ष में इन के नाम का डंका बजता था। ये नित्य वेदान्त पर व्याख्यान देते थे। उक्त महाराष्ट्र ब्राह्मण भी वहां जाया करते थे।

उन्होंने सभा में कहा कि" श्री जगन्नाथ से एक संन्यासी आये

१ इस ग्रन्थ के प्रथम खंड का नवम परिच्छेद पृ० ६१ देखिये।

हैं। उनके दर्शन से ही विश्वास होता है कि वे स्वयं नारायण हैं और लोग उनके दर्शन मात्र से कृष्णकीर्तन करने लगते हैं। कीर्तन श्रवण से उन की आंखों से गंगा की धारा के सदृश आंसू बहने लगता है।" इत्यादि—

सरस्वती ने कहा, "हम उन्हें जानते हैं। वे संन्यासी क्या, इन्द्रजाली हैं। सुना है कि सार्वभौम के समान पुरुष भी उन्हें ईश्वर मानते हैं। परन्तु यहां उनकी दाल नहीं गलेगी। यहां उन का माल नहीं बिकेगा। सावधान! ऐसे लोगों की कुसंगति से उभय लोक नष्ट होते हैं।"

महराष्ट्र ब्राह्मण को सरस्वती की बातें अच्छी नहीं लगीं। उन्हों ने सब बातें प्रभु को सुनाईं। प्रभु ने कहा, 'माल का बोझा तो निश्चय भारी है। न बिकेगा तो क्या करेंगे! मुफ्त में लुटा देंगे।" उस प्रेमी ब्राह्मण को स्वपात्र बना कर और समझा बुझा कर आप दूसरे दिन प्रयाग रवाने हुये।

वहां पहुंच कर यमुना का दर्शन पाते ही आप आवेश में जल में कूद पड़े। परन्तु भट्टाचार्य्य ने उन्हें शीघ्र बाहर निकाला। तीन दिन वहां ठहर कर आपने लोगों को प्रेम दान किया एवं मथुरा पहुंचने तक रास्ते में सर्वत्र कृष्णप्रेम और भक्ति का प्रचार करते गये।

वहां पहुंचने पर आपने उस भूमि को साष्टांग दण्डवत किया। विश्राम घाट में स्नान कर हुंकार करते आप नृत्य करने लगे। दर्शकों की भीड़ लग गई। इनका प्रेम देख वे भी प्रेमोन्मत्त होने लगे। विज्ञ पुरुषगण विचार रहे हैं कि जिसके दर्शन मात्र से मनुष्य प्रेमोन्मत्त होजाय वह तो साधारण जीव नहीं? क्या स्वयं कृष्ण भगवान रूप बदले पुनः हमलोगों को कृतार्थ करने आये हैं? अथवा इन्हें माधवेन्द्र पुरी से सम्बन्ध है? ऐसा प्रेम तो उन्हीं के गणों में देखा जाता है।

और लोग तो केवल "कृष्ण कृष्ण" कह रहे थे; किन्तु उस भीड़ से एक बाबाजी पृथक हो नाचने लगे। तब प्रभु ने उनका हाथ पकड़ लिया और दोनों हाथ मिलाकर देर तक नाचते रहे।

बाबाजी ब्राह्मण थे। वे निमन्त्रण कर इन लोगों को अपने घर ले गये। पूछने पर ज्ञात हुआ कि वे माधवेन्द्र पुरी के शिष्यों में से थे। पुरी से प्रभु का सम्बन्ध भी बाबाजी को विदित हुआ।

उन्होंने भट्टाचार्य्य से प्रभु का भोजन तैयार कराया। वे सनोढ़िया ब्राह्मण थे जिनके यहां सन्यासी भोजन नहीं करते। परन्तु पुरी के उनके घर प्रसाद पाने से और 'महाजनो येन गतः स पन्थाः' के विचार से प्रभु ने उनके घर का ही बना भोजन पाया।

वहां मथुरा के लाखों आदमी आप के दर्शन को एकत्र हुये और आप के "हरि बोल" कहने से सब सप्रेम कृष्ण-कीर्त्तन करने लगे। आपने यमुना के चौबीसों घाटों पर स्नान किया। एवम् उक्त ब्राह्मण को लेकर आपने मधुवन, तालबन, कुमुद, बहुलादि का दर्शन किया और उन स्थानों में कीर्त्तन किया।

इन्हीं के संग फिर आप वृन्दावन गये। वही वृन्दावन जिसकी इतने दिनों से आप को रट लगी हुई थी, जिसका नाम सुनकर आप को प्रेमावेश होता था, जिस के ध्यान से आपके हृदय में आनन्द की लहरें लहराने लगती थीं, जहां की रज और शुष्क पुष्प पत्र भी पाना आप अपना बड़ा भाग समझते थे। आज आप वहीं विराजमान हैं।

आज वहां के सब पदार्थ आप का स्वागत कर रहे हैं। "सब तरु फले राम हित लागी" की बान है। शरद काल में वसन्त की बहार दीखती है। तरुवर समूह करस्वरूप शाखाएं झुकाये आप के चरणों को स्पर्श करने का विचार कर रहे हैं। लताएं लजकती

हुई आप के पाने से लिपटने को लटक रही हैं । वृक्ष आप पर फूलों की वर्षा कर रहे हैं । वर्हिवृन्द कृष्ण का स्मरण कराते आपके आगे नृत्य कर रहे हैं । पक्षीगण सुमिष्ट सुर से गान कर रहे हैं तथा मृगगण आप के मृग-लोचनों को सस्नेह निहार रहे हैं । गोवत्स तथा गौएं भी पूंछ उठाए हुंकार करती आ आकर आपके समीप खड़ी हो जाती हैं । सब समझते हैं कि वृन्दाविपिन-विहारी फिर उन का सौभाग्य-वर्द्धन करने को विराजमान हुये हैं । आप भी दौड़ दौड़ कर वन वृक्षों को अङ्क में लगाते, शुष्क पत्तों को माथे पर चढ़ाते, गौओं की पीठें सुहलाते हैं । प्रेमतरङ्ग में इन्हीं के गलों में लिपट जाते हैं मानो वे इनके पुराने परिचित हों । वृन्दावन में आप ने कामवन, चीरघाट, कालिदह प्रभृति स्थानों का दर्शन किया । पावनकुण्ड आदि दर्शन करने पर आपने पर्वत पर जाकर श्रीनन्द-यशोदा के मध्य त्रिभङ्ग सुन्दर बालकृष्ण के दर्शन का सुख प्राप्त किया । आपने सप्रेम उनके अङ्ग प्रत्यङ्ग का स्पर्शन किया।

वृन्दावन में झुण्ड के झुण्ड लोग आप के दर्शन को आये । आप ने सबको कृष्ण-संकीर्तन की आज्ञा दी । सर्वत्र धूम मच गई कि वृन्दावन में श्री कृष्ण पुनः आविर्भूत हुये हैं । एक दिन बहुत से लोग वृन्दावन से मथुरा जाते हुए बोले कि "कालीदह में कृष्ण प्रगट हुये हैं, नाग के फण पर नृत्य कर रहे हैं और उसका मणि जल में चमक रहा है । हम लोगों ने अपनी आंखों से देखा है ।" भट्टाचार्य्य के वहां जाने की इच्छा प्रगट करने पर आपने उनके गाल पर एक चपत जमा कर जाने का निषेध किया ।

प्रातःकाल एक शान्त व्यक्ति प्रभु के दर्शन को आया और इसके बारे में पूछने पर उसने कहा कि "रात को नाव पर खड़ा हो कर मछुआ मछली मारता है और उसी के हाथ की रोशनी की चमक होती है । कृष्ण वृन्दावन में निश्चय प्रगट हुए हैं पर उन

लोगों ने देखा है नहीं।" यह पूछे जाने पर कि उसने कृष्ण को कहां देखा है, उसने आपकी ओर इशारा किया। इस विचार से उस का मन फेरने के लिए प्रभु के यत्न करने पर भी वह अपने कथन तथा विश्वास से नहीं डिगा एवं आपही को बराबर कृष्ण कहता रहा।

आपने गोकुल के स्थानों का एवं गोवर्द्धन का भी दर्शन किया, पर्वत की प्रदक्षिणा की और कुण्डों में स्नान कर नृत्यगान भी किया।

आपने सन्यास ग्रहण करने के पूर्व भूगर्भ तथा लोकनाथ को वृन्दावन का जीर्णोद्धार करने के लिये भेजा था। किन्तु आपके संन्यासग्रहण का सम्बाद पाकर वे दोनों आपके उद्देश्य में दक्षिण चले गये थे। वृन्दावन आने पर प्रभु को उन से भेंट नहीं हुई। किन्तु प्रभु ने स्वयं कुछ स्थानों का जीर्णोद्धार किया।

गोवर्द्धन से एक मील पर आरिथ गांव में आपने लोगों से राधाकुण्ड और श्यामकुण्ड का हाल पूछा। किसी ने कुछ नहीं बताया तब आपने दो धान के खेतों के मध्य एक गड्हे में स्नान कर उस राधाकुण्ड का माहात्म्य लोगों से वर्णन किया।

वृन्दावन में एक राजपूत यमुना के उस पार से आकर केशी-घाट में स्नान करके जाते समय प्रभु को देख, आप के चरणों में प्रणाम कर बोला कि "हम एक दरिद्र गृहस्थ ब्राह्मण हैं, वैष्णवों का सेवक होने की इच्छा रखते हैं। रात स्वप्न में हम ने आप ही के समान एक पुरुष का दर्शन पाया है।" प्रभु ने उसे अंक में लगाया और वह प्रेमविह्वल हो "हरि, हरि" कहके नृत्य करने लगा। अक्रूर तीर्थ में साथ साथ आकर उस ने प्रभु का जूठन पाया। दूसरे दिन वह बालबच्चों और घर बार को भूल कर प्रभु का कमंडल ले चला। इस का नाम कृष्णदास था (२)।

२. "चैतन्य चरितामृत" तथा "विश्वकोष" में इसी राजपूत का नाम कृष्णदास लिखा

अक्रूरतीर्थ में बैठे बैठे यह स्मरण करके कि यहीं अक्रूर को तथा वृन्दावन के लोगों को वैकुंठ का दर्शन हुआ था आप चट यमुना में कूद पड़े। भट्टाचार्य्य ने किसी प्रकार इन को जल से निकाला।

फिर उसी मथुरा के बाबाजी की सम्मति लेकर, भट्टाचार्य्य ने इन से निवेदन किया कि "प्रभु! यहां नित्य दस बारह लोगों का निमन्त्रण आने से हमारे नाकों दम आगया है। मकर संक्रान्ति निकट है, यदि अभी हम लोग यहां से प्रस्थान करें तो समय पर प्रयाग पहुंच जायंगे। प्रभु की जैसी इच्छा।" प्रभु ने कहा कि "तुम्हारे अनुग्रह से हमें वृन्दावन का दर्शन हुआ है। यह देह तुम्हारी है, जहां इच्छा हो ले चलो।"

दूसरे दिन प्रभु, भट्टाचार्य्य, उनका सेवक मथुरिया ब्राह्मण तथा कृष्णदास वृन्दावन से प्रयाग को रवाने हुये। (२) प्रिय वृन्दावन परित्याग करते आप के मन में निश्चय बहुत दुःख हुआ।

रास्ते में आप साथियों के संग एक वृक्ष के तले विश्राम कर रहे थे। वहां बहुत सी गायें चर रही थीं। उन में आप वृन्दावन का दृश्य अनुभव कर रहे थे। इतने में एक गोचारक को वेणु बजाते सुनकर आप प्रेमावेश में अचेत हो भूतल पर लोट गये। ठीक उसी समय बिजुली खां नामक एक युवा पाठान अपने धर्मगुरु तथा कई सवारों के साथ वहां आ पहुंचा। यह सन्देह उत्पन्न होने से कि संन्यासी का धन अपहरण करने के लिये लोगों ने उन्हें धतूरा खिलाकर अचेत कर दिया है सवारों ने प्रभु के सहचरों को बांध कर वध करने की तैयारी की। दोनों बंगाली थर थर कांपने लगे। परन्तु मथुरिया ब्राह्मण ने कड़क कर कहा

है और मथुरिया ब्राह्मण का नाम नहीं दिया है। "अमिय-निमाई चरित" में ब्राह्मण ही का नाम कृष्णदास लिखा है और इस राजपूत ही का नाम नहीं दिया है।

२. "विश्वकोष" में पर्याभिन्न दो और व्यक्तियों का साथ चलना लिखा है।

"चलो तुम्हारे सिकदार के पास चल कर उन से बातें करते हैं। राज दरबार में हमारे सैकड़ों यजमान हैं। ये हमारे गुरु हैं। इन्हें मृगी का रोग होता है। इन्हें अभी होश हो जायगा। बांधे रखो। परंतु ज़रा ठहरो, इन से पूछ कर तब वध करना।" पठान ने उत्तर दिया, "तुम दोनों इस प्रान्त के आदमी हो, ये बङ्गाली ठग भय से कांप रहे हैं।" तब कृष्णदास बोले, "हम पास ही के गांव में रहते हैं। हमारे पास सौ सैनिक और दो सौ तीरंदाज़ हैं। अभी आवाज़ देने से, वे आकर तुम्हारा काम तमाम कर ये घोड़े हथियार सब लेलेंगे। बङ्गाली ठग नहीं, बटपार नहीं। तुम लोग बटपार हो। यात्रियों की जान और माल अपहरण करते फिरते हो।" इस से वे लोग थम गये।

इतने में प्रभु "हरि, हरि" कहते उठे और बांह उठाकर आनन्द में नृत्य करने लगे। पाठान सैनिकों ने इससे द्रवित हो सबों को बन्धनमुक्त कर दिया और आपके चरणों में नम्रतापूर्वक प्रणाम कर धतूरा खिलाने की बात कही। प्रभु ने उन को अपना सहायक संगी और स्वयं दरिद्र संन्यासी होने की बात सैनिकों को समझा दी।

फिर युवराज के पीर से कुछ देर धर्म्मचर्चा हुई जिसका फल यह हुआ कि "कृष्ण, कृष्ण" कहते प्रभु के चरणों में गिरे और उनका नाम रामदास रखा गया। युवक बिजुली खां तथा अन्य सैनिकों ने भी कृष्ण नामोच्चारण करते प्रभु के चरणों में प्रणाम किया। प्रभु अपना अंगूठा उस युवक के मस्तक में ठिका कर वहां से आगे बढ़े।

वे सब पाठान वैरागी होकर "पाठान वैष्णव" के नाम से प्रसिद्ध हुये और प्रभु की कीर्त्ति का गान करते सर्वत्र विचरण करने लगे। बिजुली खां महा भागवत हुआ और सब तीर्थों में उसका मान होता था।

सोरों मे प्रभु ने पूर्वोक्त राजपूत और मथुरिया बाबाजी को विदा करना चाहा। परन्तु उन लोगों ने प्रयाग तक साथ देने की आज्ञा मांगी। (४)

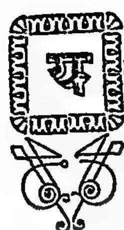
इसी प्रकार मार्ग में वैष्णव धर्म्म का प्रचार करते आप प्रयाग में विराजमान हुये।

४, परन्तु दोनों पथाभियों की चर्चा से विदाई हुई।

—:o:—

चतुर्विंश परिच्छेद

प्रयाग में गौराङ्ग



मुना-दर्शन का सुख शीघ्र नहीं छोड़ने की इच्छा से प्रभु ने कुछ दिन प्रयाग में ठहर जाने का विचार किया। और आपने प्रयाग में ठहर कर क्या किया? इसका उत्तर सुनिये:—

जिह प्रयाग को गंग अरु, यमुना सकि न डुबाय।
कृष्ण-प्रेम की बाढ़ में, दिये प्रभु ताहि भसाय॥

वृन्दावन ही के समान यहां भी, न जाने कहां से, नित्य झुंड के झुंड लोग आ आकर भक्ति में उन्मत्त हो नाचने और हरिध्वनि करने लगे। एक बात और हुई। पूर्वोक्त रूप अपने कनिष्ठ भ्राता अनूप के संग यहां प्रभु की सेवा में उपस्थित हुये।

रामकेलि गांव में रूप और सनातन (अर्थात् गौड़ेश्वर के दोनों अमात्य) प्रभु से बिदा होने पर संसार-बन्धन छिन्न करने के उद्योग में लगे। रूप तो वहां से नाव पर सीधे घर चले गये और सनातन गौड़ गये। परंतु बीमारी का बहाना कर उन्होंने दरबार में जाना और काम करना बन्द कर दिया। एक दिन केवल एक भृत्य के साथ सुलतान अकस्मात् उनके वासस्थान पर पहुंच गये और बोले, "हकीम कहते हैं कि तुम्हें कोई बीमारी नहीं, तुम यहां बैठे पंडितों से भागवत सुन रहे हो, और हमारा राज काज जहन्नुम जा रहा है।" उन्होंने काम करने के लिये अपने को असमर्थ बताया और दूसरा इन्तज़ाम करने की प्रार्थना की। इसका फल यह हुआ कि वे कारागार में रखे गये।

इधर रूप ने अपनी सम्पत्ति से जीव के तथा अपने परिवार के अन्य लोगों के जीवन-निर्वाह के निमित्त चतुर्थांश विलग करके,

आधे को ब्राह्मणों और वैष्णवों को बाँट दिया एवम् दस हज़ार रुपये भाई के कारामुक्त होने के लिये एक मोदी के पास जमा कर बन्दीगृह में पत्र द्वारा उसका सम्वाद भेजवा दिया।

दो नियत पुरुषों के द्वारा वृन्दावन-यात्रा के निमित्त प्रभु के प्रस्थान का समाचार पाकर रूप और अनूप घर से निकल पड़े और ये जिस समय प्रयाग पहुँचे उस समय प्रभु वृन्दावन से लौट कर वहाँ विराजमान हुए थे।

एक दिन आप स्नान करके बिन्दुमाधव का दर्शन करने जा रहे थे। और उनके पीछे बहुत से आदमी नाचते, गाते, रोते, हँसते तथा "कृष्ण, कृष्ण" कहते चले जाते थे। श्री माधव के दर्शनमात्र से प्रेमावेश में प्रभु स्वयं हाथें उठा कर नृत्य करने लगे। प्रभु की महिमा देख सबों को आश्चर्य होने लगा। इसी भीड़ में रूपने भी दूर से उनका दर्शन पाया।

एक पूर्व परिचित दक्षिणी ब्राह्मण आप को त्रिवेणी घाट पर अपने घर ले जाकर एक पुष्पोद्यान-विशिष्ट वाटिका में विराजमान कराया। वहाँ आप एकान्त में बैठे थे। उसी समय दोनों भाई वहाँ पहुँच कर साष्टांग आपके चरणों में गिरे। आपने सप्रेम उन्हें निकट बैठा कर सनातन का समाचार पूछा। उनके कारागार की बात सुनने पर प्रभु ने कहा "वे बन्दीगृह से निकले गये।"

इन लोगों ने उन्हीं ब्राह्मण के घर प्रभु का जूठन प्रसाद पाया और वे पास ही एक डेरा करके ठहरे।

यमुना के उस पार आम्बली (आमुली) गाँव से श्रीवल्लभाचार्य नामक एक दाक्षिणात्य विद्वान आप की प्रशंसा सुन कर आप से मिलने आये थे। उनसे इन दोनों भाइयों का भी परिचय कराया गया।

वे आपको सब लोगों के साथ नाव पर अपने घर ले चले। यमुना को देखते ही प्रभु जल में कूद पड़े और शीघ्र ऊपर उठाये

गये। तब नाव पर आप नृत्य करने लगे। नाव डगमगाने लगी। उसमें बहुत सा पानी आ गया। किसी प्रकार आप आचार्य्य के स्थान पर पहुंचे। उन्हें। ने आप को स्नान करा कर नयी धोती और लंगोट पिन्हाया और यथोचित अर्घ दे कर सादर भोजन कराया। उन्होंने आप की चरण सेवा भी की। अन्य लोगों ने भी भोजन किया।

उसी समय तिर्हुत-निवासी एक महान पंडित और वैष्णव वहां आ पहुंचे। इनका नाम रघुपति उपाध्याय था। इनके रचे श्लोकें सुन कर प्रभु बड़े प्रसन्न हुये। आपने इन से देर तक आलाप किया और इनकी बातें से ऐसे हर्षित और सन्तुष्ट हुये कि उन्हें सप्रेम अङ्क में लगा आप प्रेमावेश में नृत्य करने लगे।

यह देख भट्ट जी के। महाश्चर्य्य हुआ। वे और इनके दोनें पुत्र प्रभु के चरणों में बारम्बार नमस्कार करने लगे। गांव के लोग वहां एकत्र हो गये। बहुत से लोग इनका निमन्त्रण करने लगे। आचार्य्य ने कहा "बन्धुगण! आप आवेश में यमुना में कूद पड़ते हैं। हम जहां से लाये हैं वहां आपको पहुंचा देंगे। वहीं से आप लोग लाइयेगा।"

प्रयाग में लौट कर भीड़ से जान बचाने के लिये आप एक निर्जन स्थान (१) में रहने लगे। वहीं आपने रूप को दस दिनों तक कृष्णतत्व और भक्ति आदि की शिक्षा दे उन्हें वैष्णव शास्त्र और धर्म में निपुण बना दिया।

फिर आप स्वयं काशी चले। इन दोनों भाइयों को आपने वृन्दावन रवाने किया। और वहां से बङ्गाल जाकर फिर पुरी में भेंट करने की आज्ञा की। मथुरिया बाबाजी और राजपूत भी यहीं से घर सिधारे।

---

१ शिशिर कुमार घोष ने "दशाश्वमेध घाट" लिखा है। पर जहांतक हमें ज्ञात है, प्रयाग में ऐसा कोई घाट या मुहल्ला नहीं है।

मथुरा पहुंचने पर ध्रुव घाट पर रूप को सुबुद्धि राय से भेंट हुई। इन का वृत्तान्त प्रथम खण्ड के द्वितीय परिच्छेद में कुछ वर्णन किया गया है। ये गौड़ के राजा थे। इन का एक कर्मचारी हुसेन शाह इनसे रुष्ट हो कर और षड्यन्त्र रच कर इन्हें राजगद्दी से उतार आप गौड़ेश्वर बन बैठा। उस पर भी वह इन का बहुत सम्मान करता था। पर अपनी दुष्टा स्त्री की उत्तेजना और आग्रह से उस कुकर्मी ने इन के मुंह में अपने बधने का जल डाल दिया। नवद्वीप के पंडितों से उचित व्यवस्था न पाकर, ये अपना धन धाम छोड़ कर काशी आये कि यहां की पंडितमण्डली इन पर दया कर, प्रायश्चित की कोई सरल व्यवस्था करेगी। परन्तु विद्याभिमानी पंडितों से दया की आशा? वहां के पंडितों ने और अधिक कठोरता दिखलाई। गरम किया हुआ घी पीकर प्राण विसर्जन की आज्ञा की। यही पापशमन की औषधि बताई।" वाहरे विचार! उन लोगों ने यह नहीं सोचा कि राय ने अपनी इच्छा से जान बूझ कर कोई अपराध नहीं किया था और यह भी अपनी पोथियों में नहीं देखा कि किसी कारण से क्यों न हो आत्महत्या एक महापाप है। एक साधारण पाप के दोष से बचने के लिये लोगों ने जान बूझ कर घोर पाप करने का उपाय बताया। आज के दिन किसी महा-महोपाध्याय को ऐसी व्यवस्था देने का साहस नहीं होता। इस से आत्महत्या का सहायक बनने के अपराध में उन्हें भी दंडभागी होना पड़ता।

सुबुद्धि को ऐसा प्रायश्चित्त करने की शक्ति नहीं थी और न उत्साह ही हुआ। परन्तु देश न लौट कर वे काशी ही में कालक्षेप करने लगे। इसी अवसर में जब प्रभु का प्रथमवार (२) काशी में

२ "हिन्दी विश्व कोष" भाग ७ संस्करण १९२७ई० पृ० ५५८ में प्रभु के काशी से झार-खंडी की राह पुरि में लौटते समय सुबुद्धि राय से मार्ग में भेंट होने की बात लिखी है। यह ठीक नहीं। यदि ऐसा होता, तो मथुरा पहुंचतेही रूप स्वामी को इन से कैसे भेंट होती? यहीं तो वहां प्रभु से ढाई महीने पीछे पहुंचते। "चैतन्य चरितामृत" भी हमारे ही कथन की पुष्टि करता है।

शुभागमन हुआ, तब वे आप के शरणापन्न हुये। आप ने सम्मति दी कि "वृन्दावन जाकर कृष्ण कृष्ण कहने से तुम्हारा सब पाप नाश हो जायगा और तुम्हें कृष्णचरण की प्राप्ति होगी।" उसी से राय वृन्दावन गये थे। वहां ये चार पांच पैसा करके जलावन की लकड़ी बेंचा करते थे। एक पैसे का अन्न खाकर जीवन धारण करते थे और शेष मोदी के पास जमा रखते और उससे दरिद्र वैष्णवों की सेवा करते थे। बङ्गदेशीय यात्रियों को दही चिउड़ा खिलाते और तेल (१) भी लगाने को देते थे। इन के कठोर व्रत और भजन करने से इनकी परम भक्तों में प्रसिद्धी हुई।

संसार की गति देखिये। वृन्दावन में एक ही काल में भूत पूर्व गौड़ेश्वर और दो अमात्य संसारत्यागी होकर उपस्थित हुये। रूप इन से बहुत स्नेह रखते थे। इन्हीं के साथ रूप ने बारहों वनों में भ्रमण किया था।

बोध होता है कि सुबुद्धि राय चिरकाल तक काशी में ठहरे थे। क्योंकि गौराङ्ग के आविर्भाव के पूर्व ही उन पर विपत्ति पड़ी थी। और ३१ वर्ष की अवस्था में जब प्रभु वहां गये, तब उन्हों ने इन की सेवा में उपस्थित हो कर इन्हें अपना दुःख सुनाया।

१ बंगालियों में स्नान के समय तेल लगाना एक आवश्यक काम समझा जाता है एक कवि एक बार तेल न पाने से दुखित हो कहता है:— 'दिला तेल केनु अस्नान।"

पञ्चविंश परिच्छेद ।

श्रीप्रकाशानन्द सरस्वती प्रबोधानन्द हुये ।



काशी लौटने पर प्रभु को चन्द्रशेखर से नगर के बाहर भेंट हुई। गत रात में प्रभु के प्रत्यागमन का स्वप्न देख कर वे वहां पर आपकी प्रतीक्षा कर रहे थे। आपके चरणों में प्रणाम कर के वे उन्हें अपने घर ले गये और भोजन कराया। तब से आप चन्द्रशेखर के घर रहते और तपन मिश्र के प्रार्थनानुसार उनके घर भोजन करने लगे। उक्त महाराष्ट्र ब्राह्मण तथा बहुत से ब्राह्मण और क्षत्रिय आप के दर्शन को आते गये।

एक दिन प्रभु ने चन्द्रशेखर को द्वार पर बैठे हुये एक वैष्णव को अपने पास भीतर लाने की आज्ञा दी। वे लौट कर बोले कि "कोई वैष्णव तो नहीं परन्तु एक मुसलमानी फ़क़ीर बैठे हुये हैं ।" प्रभु ने उन्हीं को लाने की आज्ञा दी। ज्योंही वे आंगन में लाये गये, प्रभु ने दौड़ कर उन्हें अङ्क में लगाया। स्पर्श पाते ही वे प्रेम विवश हो चिल्लाने लगे "हमें मत छुइये, मत छुइये।" पुनः दोनों पुरुष गले मिल कर रोने लगे। चन्द्रशेखर को इस से बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर उन्हें सायबान में बिठाकर प्रभु अपने हाथों से उनकी पीठ ठोकने लगे और उनके मना करने पर कहने लगे कि "हम पवित्र होने के लिये तुम्हारा शरीर स्पर्श करते हैं। पतित पावन कृष्ण ने तुम्हारा उद्धार किया है। " उन्होंने कृष्ण को नहीं, आप ही अपना उद्धारक बताया।

पाठक वृन्द ! यह रूप के भाई सनातन थे। कारागार में अपने भ्राता रूप का पत्र पाकर और जेल दारोगा को भारी घूस देकर ये बन्दीगृह से बाहर हुये। फिर अलल सीधे मार्ग को छोड़ ईशान-

नामक एक नौकर के साथ गंगा पार हो, रात दिन चल कर पातड़ा पर्वत के निकट पहुंचे। ईशान ने चुपके अपने पास आठ अशर्फियां ले ली थीं। उसका हाल जानने पर उनमें से ७ अशर्फियां एक ज़मीन्दार को देकर उसीके चार नोकरों के संग ये जंगल पार हुये। वहां से शेष एक अशर्फी ईशान को देकर उसे घर लौटया। और स्वयम् एक दरवेश के भेष में आगे बढ़े।

उस ज़मीन्दार ने कहा था कि "हमें मालूम हो गया था कि तुम लोगों के पास माल है। अच्छा हुआ कि तुमने आप ही कह दिया, नहीं तो आगे तुम्हारी जान मार कर छीन लेते। तुमने हमें पाप से बचाया। हम तुम पर बहुत प्रसन्न हुये। तुम्हारी अशर्फियां भी न लेंगे और तुम्हें सुरक्षित जंगल पार भी कर देंगे।" परन्तु सनातन ने आग्रहपूर्वक उसे अशर्फियां दी और कहा कि "यदि आप न ले लेंगे, तो इन्हीं के कारण आगे हमारी जान जायगी।"

जंगल पार हो ईशान पूर्व को चले और सनातन ने पश्चिम की राह ली। लगातार कई दिन चल कर, ये हाजीपुर पहुंचे। वहां इन के भग्नीपति श्रीकान्त बादशाह की ओर से घोड़ा खरीदने को तानात थे। (१) अपनी छत से सनातन को देख केवल एक नोकर के संग वे रात को इन के पास आये। सब वृत्तान्त ज्ञात होने पर उन्होंने इनसे दो चार दिन ठहरने और उत्तम वस्त्रादि धारण करने की प्रार्थना की। परन्तु इन्होंने कृपया शीघ्र गंगा पार उतरवा देने, की प्रार्थना की। अगत्या, उन्होंने शीत काल

१—बोध होता है कि उस समय इस प्रान्त में घोड़ा पालने और उनके क्रय विक्रय का विख्यात व्यापार होता था। आज भी हाजीपुर के पास हरिहरक्षेत्र के मेले में बहुत से घोड़े हाथी तथा बैल आदि आते और बिकते हैं। देखते हैं कि विजयादशमी के बाद लगभग मेला ही के समय इनका वहां आना हुआ था। तो क्या उस काल में भी यह मेला लगता था? यदि ऐसा हो, तब तो यह बड़ा पुराना मेला है। उस प्रान्त के लोग इसके अनुसन्धान की चेष्टा करेंगे।

के विचार से साग्रह एक भूटिया कम्बल दे कर, इन्हें पार उतरवा दिया।

वहां से चल कर ये बनारस पहुंचे और प्रभु के उस नगर में रहने का समाचार सुन कर उनका स्थान खोजते २ चन्द्रशेखर के द्वार पर जा बैठे थे, कि प्रभु ने इन्हें अपने पास बुला भेजा।

प्रभु ने इन से रुप और अनूप से प्रयाग में भेंट होने और उन लोगों के वृन्दावन जाने की बात कही। पुनः तपनमिश्र और चन्द्रशेखर से इनका परिचय कराया।

तब इन के दाढ़ी मुँड़वाने और इनके गंगास्नान करने के बाद प्रभु तपनमिश्र के घर भोजन करने गये। वहीं कुछ प्रायश्चित विधि सम्पन्न करने पर सनातन को भी प्रभु का जूठन प्रसाद मिला। मिश्र जी इन्हें एक नूतन वस्त्र देते थे, पर इन्हों ने उसे लेना अस्वीकार कर एक पुरातन वस्त्र लिया। महाराष्ट्र ब्राह्मण ने इन के काशी वास तक अपने घर भोजन के निमित्त निमन्त्रण दिया। परंतु इन्होंने भिक्षाटन कर के खाना उचित समझा। प्रभु की इच्छा समझ कर इन्होंने अपना भूटिया कम्बल भी एक बंगाली के पुराने कम्बल से घाट पर बदल डाला।

प्रभु ने सनातन को दो महीना साथ रख कर कृष्णभक्ति और प्रेमादि की शिक्षा दी और इन को वृन्दावन के तीर्थ-स्थलों के उद्धार करने एवम् वैष्णव स्मृति रचना करने का आदेश किया।

सनातन ने दोनों कर जोर कर कहा "हम नीच जाति, आचार व्यवहार से भ्रष्ट हैं। हम से स्मृति रचना कैसे होगी? यदि हमारे ही द्वारा आप को यह कार्य्य सम्पन्न करना है, तो हमारे मस्तक पर चरणकमल देकर आशीर्वाद कीजिये कि आपने जो कुछ शिक्षा दी है, वह स्फुरित हो।" प्रभु ने वर्णनीय बातों का भी दिग्दर्शन कराकर कहा कि "श्री कृष्ण कृपा से जब लिखने बैठोगे, सब कुछ

तुम्हारे मन में स्फुरित होगा। जो कुछ लिखना, पुराणों से उसका प्रमाण देते जाना।"

इधर तो सनातन काशी आकर प्रभु के चरणों में प्राप्त हुये, उधर ईशान घर फिर कर एक महातेजस्वी प्रचारक हुये। उनके गण, इस समय भी बहुत हैं। सनातन का संग केवल दो दिन करने से, जिन्हें स्वयं प्रभु का एक बार घंटा दो घंटा दर्शन हुआ था; वे ऐसे महान और तेजवान हुये कि सौ सौ शिष्य सदा उन को घेरे चलते थे।

प्रभु दो महीने तक चन्द्रशेखर के घर में सनातन को शिक्षा देते एवं शेखर के संगी परमानन्द कीर्त्तनिया के कीर्त्तन का आनन्द लेते रहे।

अब प्रकाशानन्द जी का हाल सुनिये। उस बार प्रभु के काशी से वृन्दावन चले जाने के बाद जहां प्रभु की बात चलती, सरस्वती जी, आप भी निन्दासूचक कुछ बातें कह दिया करते। इससे प्रभु के भक्तों को, जो आप को स्वयं श्रीकृष्ण मान आत्मसमर्पण कर चुके थे, बहुत क्लेश होता था। आपके पुनरागमन पर भक्तों के मुख से सरस्वती की बातें सुन कर आप केवल हँस देते थे, कुछ बोलते नहीं थे।

एक मराठा ब्राह्मण ने सोचा कि प्रकाशानन्द जी महान पंडित, और सरल चित्त साधु हैं। प्रभु से एक बार भेंट होने से ही, प्रभु प्रति उन की जो भावनाएं हैं, परिवर्तित हो जायंगी। पर भेंट कैसे हो? न वे इन के पास आवेंगे, और न ये उनके स्थान पर जायंगे।

यह सोच विचार कर और प्रभु के भक्तों से सम्मति कर, उन्होंने काशी के सब सन्यासियों का निमन्त्रण किया और अनुनय विनय कर के आप से भी निमन्त्रण स्वीकार कराया।

समय पर संन्यासीगण सभा में बैठे आप की प्रतीक्षा कर रहे थे। प्रभु सनातन के संग वहां उपस्थित हुये। एवम् सबलोगों

को प्रणाम कर पैर धोने के स्थान पर पैर धोकर वहीं बैठ गये। अतुल्य सौंदर्य सम्पन्न इकतीस वर्ष के युवक संन्यासी को देख सब मुग्ध हो गये। सरस्वती की पुरानी ईर्षा और द्वेष क्षणमात्र में हवा हो गये। आप सप्रेम प्रभु की बाहें पकड़ कर ले गये और सभा के मध्य आप को आसीन किया,

सरस्वती ने पूछा "आप का तेज और भाव आश्चर्यजनक है। आप हमारे सम्प्रदाय के शीर्षस्थानीय हैं। आप हमलोगों से मिलते क्यों नहीं? और संन्यास धर्म्म के विरुद्ध वेदपाठ नहीं करते, वरन् नृत्य गान में लगे रहते हैं, इसका कारण क्या है?"

आप ने नम्र भाव से उत्तर दिया "हमें मूर्ख देख और वेदाध्ययन के योग्य न पाकर हमारे गुरु ने हमें 'हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलं' इत्यादि जप करने का उपदेश किया। उसी के जपने से हमारी यह पागल की दशा हो गई। गुरुने इसे हमारा सौभाग बताया और इसके लिये क्षोभ करने का निषेध किया"

इस पर सरस्वती ने पुनः कहा "निस्सन्देह कृष्ण प्रेम बड़े भाग की बात है। किन्तु वेदान्त पर आप की अश्रद्धा क्यों है?

प्रभु पहले क्षमा प्रार्थना कर प्रश्न का उत्तर देने लगे। बोलेः—"हम बेदान्त के सूत्रों का मुख्य अर्थ मानते हैं, श्रीशंकराचार्य्य के भाष्य को नहीं। उन का अर्थ मनोकल्पित है। सूत्रों के अर्थ से नहीं मिलता। शङ्कराचार्य्य जगद्गुरु हैं, इस में सन्देह नहीं। किन्तु ईश्वर सब के गुरु। वेद ईश्वर वाक्य और सूत्रों का सरल अर्थ उनका वाक्य है। श्री शङ्कराचार्य्य का उद्देश्य अपना मत स्थापन करने का था। अतएव उन्हों ने मना कल्पित अर्थ किया है। यह कह कर आपने उन के भाष्य में कुछ दोष दिखलाया जिस का आभास "चैतन्य चरितामृत" में देखा जाता है।

फिर प्रकाशानन्द जी ने कहा कि "आपने श्री शङ्कराचार्य्य के मत का खण्डन किया यह आपकी विशाल बुद्धि और शक्ति का

परिचायक है। किन्तु आप स्वयं सूत्रों का क्या अर्थ करते हैं, उसे समझाइये ?"

तब आपने एक एक करके सूत्रों का अर्थ किया जिसका सारांश यह था कि वेद वैष्णव धर्म का परिपोषक है।

अनन्तर सब संन्यासियों ने भोजन किया। सब प्रभु की प्रशंसा करने लगे। सरस्वती जी के एक प्रधान शिष्य ने प्रभु के सम्मान सूचक वाक्यों में कहा कि "श्री गौराङ्ग ने सूत्रों का जो अर्थ कहा है और उनकी व्याख्या की है वह निश्चय अति ललित और हृदय ग्राहिणी है। आज ज्ञात हुआ कि कलिकाल में संन्यास से काम न चलेगा, भक्ति ही से उद्धार होगा।" यह कहते कहते वह संकीर्तन करने लगा।

इस पर प्रकाशानन्द बोले "चैतन्य के मुख से सरल अर्थ सुन कर हमें सब बातें ज्ञात हो गईं। आचार्य्य को अद्वैत मत स्थापन करना था, अतएव उन्होंने अपने मतलब के अनुसार सूत्रों का अर्थ किया। कोई पृथक ईश्वर मानने से अद्वैत मत स्थापित नहीं हो सकता। सबों ने स्वस्वमत परिपोषण के लिये ऐसा ही किया है। मीमांसक ईश्वर को कर्म का अङ्ग मानते हैं; सांख्य प्रकृति को जगत का कारण बताते हैं; न्याय में परमाणु से विश्व की उत्पत्ति कही गई है; मायावादी निर्विशेष ब्रह्म को जगत का कारण बतलाते हैं; पातञ्जल कृष्ण के सत्य स्वरूप का वर्णन करते हैं और वेद के मत से वे स्वयं भगवान हैं। ईश्वर को कोई परम कारण नहीं कहता। अपने २ मत का स्थापन और अन्य मत का खंडन करते हैं।" इत्यादि।

पाठकों से एक निवेदन है कि यह जान कर कि प्रभु ने अद्वैत मत का खंडन करके प्रकाशानन्द जैसे विज्ञ और महान पंडित को वैष्णव बनाया, कोई भी शङ्कराचार्य्य में अश्रद्धा प्रकट नहीं करेंगे। प्रभु ने स्वयं उन्हें जगद्गुरु कहा है। रही अपना उद्देश्य साधन

की बात। तो निजोद्देश्य साधन सब ही का उद्देश्य है। ईश्वर स्वयं समय समय पर उपयुक्त युक्तियों से स्व उद्देश्य साधन करते हैं।

बुद्धदेव अहिंसा और दयादि प्रचार का उद्देश्य साधन के निमित्त वेदों के कर्मकांड के विरोधी हुये। श्री शङ्कराचार्य्य ने बौद्ध धर्म्म के दबाने के अभिप्राय से अद्वैत मत के संस्थापन में वैदिक सूत्रों का जो अर्थ किया श्री गौराङ्ग भक्ति प्रचार के उद्देश्य से उनका आज खंडन किया। इनमें से कोई साधारण पुरुष नहीं। सब ईश्वर ही के अवतार माने जाते हैं। किसी समय बौद्धों से सम्भाषण करना अथवा उनकी ओर दृष्टिपात करना पाप माना जाता हो, या कहा गया हो, परन्तु पीछे बुद्ध देव विष्णु भगवान के चौबीस तथा दश अवतारों में परिगणित हुये। श्री शङ्कराचार्य्य भगवान की संहारकारिणी या कल्याणकारिणी शक्ति-शिव के अवतार कहे जाते हैं। एवं श्री गौराङ्ग श्री कृष्णभगवान के अवतार प्रसिद्ध ही हैं। तब तो कोई अश्रद्धा के पात्र नहीं। सभी हमारे परम माननीय और सर्वदा पूजनीय हैं। बात यह है कि प्रभु ही जब जैसी आवश्यकता देखते हैं, कार्य्य करते हैं। इसी विचार से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एक स्थान में कहते हैं:—

"अहो तुम बहुविधि रूप धरो।
जब जब जैसो काम परै तब तैसो भेख करो॥
कहुं ईश्वर कहुं बनत अनीश्वर नाम अनेक परो।
सत पन्थहिं प्रगटावन कारन लै स्वरूप विचारो॥"

अतएव कलि में भक्ति और प्रेम ही जीवों के लिये कल्याणकारक होने से इसी सत्य पथके प्रकट करने के निमित्त श्री गौराङ्ग सर्वत्र कृष्ण भक्ति और कृष्णकीर्त्तन का प्रचार कर रहे हैं।

एक दिन जब प्रभु गंगास्नान कर बिन्दु माधव के दर्शन को जा रहे थे मरहट्टा ब्राह्मण ने प्रकाशानन्द की बातें इन्हें सुनाई।

इससे इनको बड़ी सन्तुष्टता हुई। मन्दिर में जा प्रेमावेश में आप नृत्य करने लगे। चन्द्रशेखर, परमानन्द, तपन और सनातन भी सानन्द नृत्य में सम्मिलित हुये। फिर क्या था? वहां लाखों दर्शकों की भीड़ लग गई। सभी हरिध्वनि करने लगे। खबर पाने से प्रकाशानन्द भी अपने शिष्यों के संग वहां पहुंचे। आप के नृत्य गान और सात्विक प्रेम के लक्षणों को देख महा मोहित हो, वे लोग भी "हरि हरि" करने लगे। कुछ काल के बाद जब प्रभु शान्त हुये, तब आप ने प्रकाशानन्द को मस्तक नवाकर प्रणाम किया और वे आप के चरणों में नतमस्तक हुये।

प्रभु ने कहा "आप महात्मा हैं, हम आपके शिष्य के शिष्य के तुल्य हैं। आप के समान ईश्वर तुल्य पुरुष के ऐसा करने से हमारे अकल्याण की सम्भावना है। यद्यपि ईश्वर के सदृश आप को सब करना सोहता है तोभी अन्य लोगों के शिक्षार्थ आप को ऐसा करना योग्य नहीं।"

प्रकाशानन्द ने कहा "हमने अपना पापनाश के लिये ऐसा किया है। प्रभु चिल्लाउठे, "हे कृष्ण कृष्ण!! हम अति तुच्छ जीव हैं, जीव को ईश्वर मानना अपराध है।" सरस्वती ने कहा कि आप जो हो हम ने आप को पूर्व में बहुत कुछ कुवाच्य कहा है उसके लिये हमें क्षमाप्रर्थना करनी आवश्यक है।"

अनन्तर प्रभु और सरस्वती अपने २ निवासस्थान पर चले गये। रात को प्रकाशानन्द प्रभु के पास जा कर ज्योंही इन के चरणों में प्रणाम करना चाहा कि प्रभु ने उन्हें हृदय में लगालिया। प्रेम विह्वल हो दोनों अचेत भूतल पर गिर पड़े। होश होने पर सरस्वती ने पुनः प्रणाम किया। उन्होंने प्रभु के साथ चलना चाहा। प्रभु ने कहा "वृन्दावन आप के रहने के योग्य स्थान है, वहीं जा कर विराजिये। वहीं हम से आप को भेंट हुआ करेगी। जब ही स्मरण कीजियगा, मिलन होगा। और आज से आप का नाम प्रबोधानन्द हुआ।"

प्रकाशानन्द व प्रभु का मत ग्रहण करने पर काशी में चतुर्दिक कोलाहल मचगया। भिन्न २ सम्प्रदाय के लोग आप के पास आआ कर धर्मचर्चा और शास्त्र विचार करते। प्रभु सबों का मत खंडन करने पर अपनी युक्ति युक्त वाक्यों से भक्ति पथ निरुपण करते और लोगों को सन्तुष्ट करते। उपदेश पाकर लोग कृष्ण कीर्त्तन करने लगते।

इधर उधर से भी लाखों की भीड़ होने लगी। घर पर और संकीर्त्तन में आप के पूरा दर्शन का सुयोग न होने से आप के गंगा-स्नान करने अथवा विश्वेश्वर के दर्शन करने के लिये आने जाने के समय लोग सड़कों के दोनों किनारे खड़ा रहते थे। दर्शन पाकर दंडवत करते और सानन्द हरिध्वनि करने लगते थे।

इस प्रकार जीवों का पांच दिनों तक उद्धार कर और काशी प्रान्त में कृष्ण प्रेम प्रवाहित कर आप वहां से प्रस्थान करने को तैयार हुये। तपन मिश्र प्रभृति सभी साथ चलने को उद्यत हुये। प्रभु ने उन लोगों को पीछे नीलाचल जाने की आज्ञा दी।

आपने सनातन को उनके दोनों भाइयों के पास वृन्दावन भेजा और "खिथा" तथा "कमन्डल" धारी अपने भक्तों का सेवा-सत्कार करने का आदेश किया। फिर सब भक्तों को छाती से लगा आप आगे बढ़े और ये लोग वहीं कुछ काल अचेतावस्था में रह कर पीछे अपने २ घर लौटे।

प्रकाशानन्दजी (२)भी उसी समय काशी परित्याग कर वृन्दावन रवाने हुये। ये जीवन पर्य्यन्त श्रीगौराङ्ग के अनन्य भक्त रहे।

प्रभु काशी से जंगल की राह से सानन्द "कृष्ण, कृष्ण" कहते नीलाचल की ओर चले।

कथित है कि एक स्थान में एक ग्वाला एक घड़ा मट्ठा लिये जाता था। प्रभु प्यासे थे। उस से पीने को मट्ठा मांगा। उसने

२ श्री शिशिर कुमार ने इन का भी जीवन चरित्र लिखा है।

घड़ा आप के सामने रख दिया और आप सब पी गये। उसने जब मूल्य चाहा, तब आप ने हँस कर पूछा कि "मूल्य क्या करोगे?" उसने उत्तर दिया, "महाराज! घर पर वृद्धा माता और युवती स्त्री हैं, उन्हें पोषण पालन करेंगे।" बलभद्र भट्ट और उन के नौकर कुछ दूर पीछे थे। उन्हीं को देखकर प्रभु बोले कि "वही लोग इस का उचित दाम देंगे।" यह कह कर आप आगे बढ़े।

उन लोगों के पास आने पर जब उस युवक ग्वाले ने मूल्य मांगा तो वे इस खेल से चकित हो गये। फिर उन्होंने कहा "हे गोपाल मट्ठा पीने वाले संन्यासी और हम लोग उनके नौकर हैं, हम लोग किसी के पास पैसा कहां से आवेगा? उन के मट्ठा पी लेने से तुम्हारा परम कल्याण होगा।"

बेचारा क्या करे? मनमारे चुप घड़ा उठाने लगा। यह क्या? घड़ा उठता क्यों नहीं? देखे, तो घड़ स्वर्ण-मुद्रा पूर्ण है। यह देख, वह युवक दौड़ लगाकर आप के चरणों में गिरा और हाथ जोड़ कर बोला—"प्रभु! इस हीन मूर्ख ग्वाले को ठगिये मत। हम यह धन नहीं लेंगे, आप अपने चरणों में शरण दीजिये।" प्रभु ने उसे अर्थ और परमार्थ दोनों देकर विदा किया।

इस का वर्णन "मुरारी के कड़चा" में है और "चैतन्य मङ्गल" में लोचन दास ने कहा है कि "इसी युवक ग्वाले की बात पर प्रभु को अपनी माता और स्त्री का स्मरण हो आया और यह सोच कर कि आप उन्हें सर्वथा भूले बैठे हैं, आप बड़े चित्तव्यथित हुये एवं उसी समय आकाशमार्ग से नवद्वीप जाकर आपने उन लोगों से मिलने का आनन्द लिया।"

इसी प्रकार गमन करते जब आप पुरी में अठारह नाला पर पहुंचे तो आपने भक्तों को सूचना देने के लिये, बलभद्र भट्ट को आगे भेजा। वे लोग सानन्द दौड़े। नरेन्द्र सरोवर पर आप का

उन्हें दर्शन मिला। सब मिलकर श्रीजगन्नाथ के दर्शन को गये। सार्व्वभौम प्रभृति भी आ पहुंचे। सब लोग काशी मिश्र के घर गये। सार्व्वभौम ने आप का निमन्त्रण किया। परन्तु प्रभु ने वहीं महा प्रसाद मँगा कर सब भक्तों के संग भोजन किया।

इस यात्रा के अनन्तर प्रभु नीलाचल में अचल भगवान श्रीजगन्नाथ के समान अचल हो कर अठारह वर्ष विराजमान रहे।

आप के प्रत्यागमन की खबर नवद्वीप पहुंची और गौड़ीय भक्तगण पुरी आकर आप के दर्शन और रथयात्रादि महोत्सवों का चार मास तक आनन्द लेते रहे।

इधर एक मास वृन्दावन में वास करने के बाद रूप और अनूप अपने भाई सनातन की खोज में निकले। वे लोग गंगा के किनारे २ प्रयाग की राह से आये और सनातन बादशाही सड़क धर कर गये। इसी से इन लोगों में भेंट नहीं हुई। वृन्दावन में सुबुद्धि राय ने सनातन का आगत स्वागत किया।

सनातन "मथुरा महात्म" पुस्तक हस्तगत कर के जंगलों में परिभ्रमण कर तीर्थों के उद्धार में प्रवृत्त हुये। कभी इस पेड़ और कभी उस पेड़ के तले रात व्यतीत करने लगे।

रूप बनारस में चन्द्रशेखर के घर दस दिन ठहर कर बंगाल को रवाने हुये। काशी में प्रभु के द्वारा वहां के सन्यासियों तथा अन्य लोगों के उद्धार का समाचार सुन कर एवम् उन का संकीर्त्तन देख, उन्हें महानन्द प्राप्त हुआ।

—:o:—

चतुर्थ खण्ड

प्रथम परिच्छेद

श्रीगौराङ्ग के गोस्वामीगण



श्रीगौराङ्ग लीला के सहायक छः गोस्वामी प्रसिद्ध हैं। काल क्रम तथा किसी किसी मुसलमान शासनकर्त्ता के कुव्यवहार और अत्याचार से कृष्णलीला-स्थानों के प्रदर्शक चिन्ह (अर्थात् मन्दिरादि) नष्ट विनष्ट हो जाने के कारण वे स्थान ही मानों लोप हो गये थे। उन्हें निर्दिष्ट करने और उनके पुनरुद्धार के लिये एवम् प्रेम-भक्ति-गर्भित ग्रन्थों के प्रणयन तथा उपदेश द्वारा पश्चिम प्रान्त में कृष्ण भक्ति के प्रचार और प्रसार के निमित्त वे लोग वृन्दावन में रखे गये थे। उन के वहां गमन क्रम से उनके नाम रूप, सनातन, रघुनाथ भट्ट, गोपाल भट्ट, रघुनाथ दास तथा जीव स्वामी लिखे पाये जाते हैं, उन में से रूप और सनातन का वृत्तान्त कुछ वर्णन किया गया है। उन लोगों का शेष हाल तथा शेष लोगों का वृत्तान्त यहां लिखा जाता है।

रूप और अनूप अपने भाई सनातन की खोज में वृन्दावन से चल कर बनारस होते, जैसा कि अभी कहा गया है, अपने घर गये। वहां अनूप का देहान्त हो गया। प्रभु के बनारस से नीलाचल लौटने पर रूप भी प्रभु के आज्ञानुसार वहां जा पहुंचे। हरिदास के वासस्थान पर जा कर उन से मिले। प्रभु नित्य स्नान कर के लौटते समय एक बार वहां जाया करते थे। इसी से कुछ देर बाद प्रभु भी कृष्ण-नाम जपते उस स्थान में विराजमान हुये। प्रणाम करते ही आपने रूप को अंक से लगाया। वे हरिदास के साथ रहने लगे।

उस समय गौड़ीय भक्त गण भी पुरी में पधारे थे। वे लोग तो वहां से लौट आये, पर रूप वहीं ठहर गये। काम के योग्य बनाने के लिये प्रभु ने इन्हें अपने पास रखा और नित्य नित्य वे आत्मशक्ति में वृद्धि करने लगे।

प्रथम वर्ष प्रभु ने जो श्लोक (१) पढ़ कर रथ के सामने नृत्य किया था उसी के भाव के अनुरूप रूप ने इस श्लोक की रचना की :—

'प्रियः सोऽयंकृष्णः सहचरि । कुरुक्षेत्रमिलित
स्तथाऽहं सा राधा तदिदमुभयोः सङ्गमसुखम्।
तथाप्यन्तः खेलन्मधुरमुरलीपञ्चमजुषे
मनो मे कालिन्दीपुलिन विपिनायस्पृहयति॥''

उन्होंने ये श्लोक ताड़ के पत्ते पर लिख कर छप्पर में छिपा रखा था।

एक दिन प्रभु उन के निवासस्थान पर गये। रूप स्नान करने गये थे। आप वहीं ठहर कर जो इधर उधर देखने लगे, तो आप की दृष्टि उस ताड़ के पत्ते पर पड़ी। आप ने उसे निकाल कर वह श्लोक पढ़ा। उसी समय रूप स्नान करके फिरे और सप्रेम एक चपत लगा कर आपने पूछा कि 'तुम्हें हमारे मन का भाव कैसे ज्ञात हुआ?'' वे चुप हो रहे। तब यही प्रश्न आपने स्वरूप से किया। कदाचित् आप ने समझा कि स्वरूप ने रूप से उस श्लोक का गूढ़ाशय प्रगट कर दिया हो। स्वरूप ने इन्हीं की कृपा को इसका कारण बताया।

रूप ने कृष्णलीला सम्बन्धी एक नाटक रचने का विचार करके उसका मङ्गलाचरण और नान्दीपाठका श्लोक वृन्दावन में लिखा था। गौड़ से नीलाचल जाने के समय मार्ग में सत्यभामापुर नामक एक ग्राम में एक दिव्य नारी ने उन को स्वप्न में आदेश किया कि "मेरा

१ इस ग्रन्थ के तृतीय खण्ड का त्रयोदश परिच्छेद देखिये।

अर्थात् सत्यभामा का नाटक विलग लिखना।" तब उन्हों ने ऐसा ही करने का निश्चय किया।

पुरी में एक दिन जब वे वही नाटक लिख रहे थे प्रभु अकस्मात् वहां जा पहुंचे और उसका एक पृष्ठ देख कर आप बहुत आनन्दित हुये। पीछे रामानन्दादि महानुभावों ने भी उस नाटक को साग्रह श्रवण कर प्रसन्नता प्रगट की। उन दोनों नाटकों का नाम "विदग्ध माधव" और "ललित माधव,, रखा गया।

प्रभु ने अपने पास दस महीना रखा कर डोलयात्रा (होली) के बाद उन्हें वृन्दावन विदा किया। वे गौड़ की राह से रवाने हुये।

अब सनातन का हाल सुनिये। वृन्दावन जाने पर रूप को वहां न पाकर दो महीने के बाद सनातन वैसाख में झारखंड (छोटा नागपुर) की राह नीलाचल पहुंचे और हरिदास से मिलकर वहीं ठहरे। अरण्य से आते समय उन के अङ्ग में कुष्ठ रोग हो गया।

नियमानुसार प्रभु के हरिदास के स्थान पर आने पर दोनो ने प्रभु को दंडवत किया। उनके मना करने पर भी कुष्ठ (१) का कुछ विचार न करके प्रभु ने सनातन को अंक में लगाया और आप के शरीर में पीब लग गयी। इस से उन के मन में बड़ा दुःख हुआ।

कुशल क्षेम पूछने के समय ज्ञात हुआ कि रूप से उन्हें भेंट नहीं हुई थी, और प्रभु ने उन्हें अनूप के कृष्णलाभ का हाल कहा। इस से उनका चित्त बहुत व्यथित हुआ और कहने लगे कि "अनूप बड़े रामभक्त थे। एक बार हम लोगों ने उन से कहा कि यदि रसका भजन करना हो, तो कृष्णभजन करो। इस पर वे सम्मत हुये। पर सारी रात उन्हों ने रोते बिताई और प्रातः काल हम लोगों के पावों पर गिर कर वे बोले कि वे श्री राम को

१ श्री जगन्नाथ क्षेत्र में आज भी कुष्ठग्रस्त रोगी बहुतायत से सड़कों पर बैठे देखे जाते हैं।

नहीं छोड़ सकते। उनकी भक्ति और दृढ़ता देख हम लोगों ने उनकी प्रशंसा करते हुये, उन्हें सादर अङ्क से लगाया।" इस पर प्रभु ने भी रामभक्ति में मुरारि की दृढ़ता की बात कही।

सनातन ने रथयात्रा के समय श्री जगन्नाथ के रथ के पहिया के नीचे दबकर प्राण देने का संकल्प किया था क्योंकि उस दुष्ट रोग से उन्हें अपना प्राण भारी हो रहा था।

एक दिन वार्तालाप के समय प्रभु ने आप ही आप कहा कि "यदि प्राण देने से कृष्ण मिलें, तो हम क्षण में हज़ारों बार जान देने को तैयार हों। प्राण देने से कृष्ण नहीं मिलते। भजन से मिलते हैं। और यह शरीर तो तुम ने हमें दिया है। इस के नष्ट करने का तुम्हें अधिकार कहां हैं ?"

"आप हमें संसार में रख कर क्या कीजियेगा ? हम से आप का क्या लाभ होगा ?" सनातन के यह पूछने पर प्रभु ने कहा, कि "तुम्हारी देह से करोड़ों जीवोंका उद्धार होगा, तुम्हारी देह से बहुत काम होगा। श्री कृष्ण के लीलास्थान मथुरा वृन्दावन में जीवों के कल्याणार्थ उपयुक्त भक्त की ज़रूरत होगी।"

ज्येष्ठ में नियमानुसार गौड़ीय भक्तों का आगमन हुआ। एक दिन यमेश्वर में महोत्सव था। सनातन को वहां न देख दो पहर के समय प्रभु ने उन्हें वहां बुला भेजा और उनको प्रसाद दिया गया।

यह जान कर कि उस धूप में समुद्र किनारे हो कर बालू की दाह से सनातन उस स्थान पर पहुंचे थे, प्रभु ने सहर्ष सबोंके सामने उन्हें स्कंध में लगाया। इससे आप के शरीर में बहुत सी पीप लग गई।

प्रभु का यह कार्य्य उन के मन के विरुद्ध होने से उन्हें असह्य होता था। अतएव उन्होंने वहां से वृन्दावन चले जाने के लिये जगदानन्द से परामर्श किया। उन्हें तो स्वयं प्रभु की यह कारवाई पसन्द न होती थी वे सनातन के विचार से सहमत हुये।

इन दोनों पुरुषों में यह बात चीत होने के थोड़ी ही देर बाद प्रभु वहां विराजमान हुए और दौड़ कर आप उनके गले में लिपट गये।

सनातन ने वृन्दावन लौट जाने का प्रस्ताव किया और उसमें जगदानन्द की भी सहमती बताई। यह सुन कर प्रभु जगदानन्द पर कुछ रुष्ट हुये और कहने लगे कि "तुम्हारे सामने वह बच्चा है, तुम्हें वह क्या राय देगें। तुम्हारी राय तो हमें अपेक्षित है।" इसी तरह की बातें होती थी कि हरिदास ने कहा कि "प्रभु वासुदेव आप के परिचित भी नहीं थे; उन्हें एक क्षण में आप ने कुष्ट रोग से मुक्त कर दिया और सनातन तो आप के जन हैं।" हरिदास यही कह कर मौन हो गये।

यह कहते "कि तुम्हें आलिङ्गन करने से हमें परम सुख मिलता है, हमें तो कुछ दुर्गन्ध नहीं मालूम होती, तुम्हें हम न आलिङ्गन करें तो कृष्ण के निकट अपराधी होंगे" आपने जी भर कर उन्हें अंक में लगाया और तत्काल ही उनका शरीर नीरोग हो स्वर्ण सा चमकने लगा।

एक वर्ष साथ रख कर उन्हें आप ने वृन्दावन भेज दिया।

श्री नाभा जी ने स्वकृत "भक्तमाल" में इन दोनों भाइयों का इस छप्पै में वर्णन किया हैः—

"गौड़देश बंगाल हुते सब ही अधिकारी।
हय गय भवन भँडार विभौ भूभुज अनुहारी॥
यह सुख अनित विचारि बास वृन्दावन कीन्हों।
यथा लाभ संतोष कुंज करवा मन दीन्हों॥
ब्रजभूमि रहस राधाकृष्ण, भक्त तोष उद्धार कियो।
संसार स्वाद सुख वांति ज्यों दुहुं, रूप, सनातन तजि दियो॥" (२)

२. लेखकों की असावधानी से "भक्तमाल" के छन्दों में प्रायः "यति भंग" देखने में आता है।

अब तीसरे महा पुरुष रघुनाथ भट्टका वृत्तान्त श्रवण कीजिये। ये पाठकों के सुपरिचित काशी-निवासी तपनमिश्र के तनय थे। युवावस्था प्राप्त होने पर पिता की आज्ञा ले ये प्रभु के दर्शनार्थ नीलाचल गये थे। आपने इन्हें सस्नेह ग्रहण कर प्रेमदान किया। इन्हें प्रभु की सेवा ही में रहने की इच्छा थी। किन्तु माता पिता को तज कर इनका ऐसा करना आपने पसन्द नहीं किया और घर जाकर उन लोगों की सेवा करने, उनके देहान्त पर पुरी आने तथा विद्याध्ययन करने, वैष्णवों से भागवत पढ़ने और विवाह नहीं करने की आज्ञा दी।

अल्पकाल ही में माता पिता के गंगालाभ होने पर रघुनाथ भट्ट पुनः नीलाचल गये। आठ मास अपने पास रख कर आपने उन्हें वृन्दावन भेजा। आपने महोत्सव में प्राप्त माला और पान उन्हें प्रसाद स्वरूप दिया।

ये सङ्गीतज्ञ, भागवतवेत्ता और महाप्रेमी थे। इन के मुख से जो लोग भागवत की कथा सुनते वे आनन्दमग्न और प्रेमोन्मत्त हो जाते थे। ये रूप गोसाईं की सभा में भागवत पाठ किया करते थे।

वृन्दावन में आप के बहुत शिष्य हुये। "चैतन्य चरितामृत" के प्रणेता गोस्वामी कृष्णदास कविराज के लेखानुसार इन्हीं ने वृन्दावन का सुप्रसिद्ध गोविन्द देव का मन्दिर अपने शिष्य द्वारा निर्माण कराया। वे कहते हैं:—

"गोविन्द चरणे कैल आत्म समर्पण
गोविन्द चरणारविन्द यार प्राणधन"
निज शिष्य कहि गोविन्द मन्दिर कराइल"

और ये शिष्य इतिहासप्रसिद्ध मानसिंह माने जाते हैं।

आश्चर्य है कि श्री नाभा जी कृत "भक्तमाल" में इन रघुनाथ भट्ट के वर्णन में कोई छप्पै नहीं पाते। और उस भक्तमाल की पूर्वोक्त टीका के पृ० ८७१ से ज्ञात होता है कि श्रीगोविन्द

देव जी का मन्दिर श्री जीवस्वामी के अधीन था और उन की आज्ञा से यह मन्दिर मानसिंह ने निर्माण कराया। (४)

गोपाल भट्ट वेंकट के पुत्र तथा उक्त प्रकाशानन्द के भतीजे थे। जब दक्षिण की यात्रा में प्रभु उन के घर गये थे, उसी समय वे प्रभु को अपना आत्मसमर्पण कर चुके थे और इन्होंने उन में शक्ति संचार भी किया था। माता पिता के परलोक गमन पर वे प्रभु के आदेशानुसार सीधे वृन्दावन चले गये थे। नीलाचल नहीं आये। उन्हों ने "हरिभक्ति विलास" नाम की वैष्णव स्मृति की रचना की है।

आप के सम्बन्ध में प्रिया दासजी ने श्रीनाभा जी कृत "भक्त-माल" की पद्यबद्ध टीका में यह लिखा है:—

४. "वृन्दावन की यात्रा" में श्रीब्रह्मानन्द स्वामी लिखते हैं कि "वृन्दावन जाने पर गोस्वामियों ने पहले वृन्दादेवी का मन्दिर निर्माण किया। उसका अब कोई चिन्ह नहीं। वह सेवाकुंज के समीप था। १५७३ ई० में अकबर अपने हिन्दू दरबारियों की राय से उन लोगों के दर्शन को गये थे। आंखों में पट्टी बांध कर उन्हें निधुवन (वृन्दा कुंज का असल स्थानीय नाम) में जाना हुआ था। वहां कुछ अद्भुत दर्शन से उस स्थान की परम पवित्रता पर उन्हें पूर्णविश्वास हुआ। अतएव वहां के मन्दिरों के निर्माण में उन्होंने हिन्दू राजाओं की हार्दिक सहायता की। उस घटनाके स्मारक में गोविन्द देव, गोपीनाथ, युगल किशोर तथा मदनमोहन के चार मन्दिरें बनाये गये। औरङ्गजेब के आदेश से गोविन्द देव का मन्दिर विनष्ट कर के वहां मस्जिद बनाई गई। उस आक्रमण के भय से जयपुर के महाराज मूर्ति को पहले ही अपने यहां ले गये थे। गोविन्द देव का मन्दिर फिर बनाया गया। इस समय उस में गिरधारी की मूर्ति एवं उन के दाहिने बाएं क्रम से चैतन्य और नित्यानन्द के विग्रहें स्थापित हैं।" यह मन्दिर परम सुन्दर है। "मथुरा नामक" पुस्तक में इसका वर्णन है।

राधा दामोदर का मन्दिर जीवस्वामी ने निर्माण कराया था। उसी में उनकी और उनके पितृवों रूप और सनातन की समाधियां हैं जिन लोगों के उद्योग से गोविन्द देव का मन्दिर बना था।

श्री सनातन ७० वर्ष की अवस्थामें सं० १६१५ (=१५५८ ई०) के अषाढ़ सुदी चतुर्दशी को और रूप स्वामी ७४ वर्ष की आयु में सं० १६४० (=१५६३ ई०) की श्रावण शुक्ल द्वादशी को गोलोक सिधारे।

"श्री गोपाल भट्टजू के हिय पै रसाल बसै, लसै यों प्रगट राधारमन सरूप हैं। नाना भोग राग करैं अति अनुराग पगै, जगै जगमाहिं हित कौतुक अनूप हैं॥ वृन्दावन माधुरी अगाध कौ स्वाद लियो, जियौ जिन पायौ सोत भये रसरूप हैं। गुन ही कौ लेत जीव अवगुन को त्यागि देत, करुनानिकेत, धर्मसेतु, भक्तभूप हैं॥"

अब रघुनाथ दास कायस्थ का हाल सुनिये। बारह लाख आय के सप्तग्राम (सात गावों) के मालिक हिरण्य और गोवर्द्धन दास नाम के दो भाई थे। (५) दोनों ब्रह्मण्य, धर्मात्मा तथा उच्चवंशीय कायस्थ थे। अम्बुया परगना में वर्त्तमान हुगली के निकट कृष्णपुर में वास करते थे। उन के गुरु प्रभु के नाना नीलाम्बर चक्रवर्ती थे जो उन के साथ भ्राता के समान वर्ताव करते थे। इन लोगों ने प्रभु के पिता पुरन्दर मिश्र की भी पूर्व काल में बहुत कुछ सेवा की थी। अतएव प्रभु उन लोगों से खूब परिचित थे। रघुनाथ दास उन्हीं गोवर्द्धन के पुत्र थे और बालकाल ही से संसार से विरक्त हो रहे थे।

प्रभु के संन्यास ग्रहण कर शान्तिपुर आने के समय, वे पांच सात दिनों तक प्रभु की सेवा में रहे थे। आपने कृपापूर्वक अपने पांव का अगूंठा इन के मस्तक में छुआया था। इनके पिता अद्वैताचार्य्य की भी बहुत सेवा किया करते थे। अतएव आचार्य्य ने प्रसन्न होकर इन्हें प्रभु का जूठन प्रसाद पाने का भी अवसर दिया था। घर जाने पर रघुनाथ प्रेमोन्मत्त हो बारम्बार भाग कर प्रभु के पास जाने की चेष्टा किया करते थे। आप ने इन पर कड़ी पहरा बिठाई थी। इस से भागने में कृतकार्य्य नहीं हो सके थे। प्रभु के पुनः शान्तिपुर में विराजमान होने पर पिता से बहुत अनुनय विनय करके रघुनाथ दास आप के दर्शन को आये थे।

५ मुसलमान हरि दास के प्रकरण में भी इन लोगों का कुछ हाल पहले कहा गया है।

पहले अनाशक्त हो गृहस्थों का सुख भोगने और घर का काम करने के लिये प्रभु ने इन्हें उपदेश दिया था। क्योंकि एक बारगी कोई साधु नहीं होता। इसी प्रकार कार्य्य करने से समय आने पर कृष्ण भगवान कृपा करते हैं।

ऐसा उपदेश पाकर वे शान्तिपूर्वक गृहकार्य्य करने लगे थे एवं इन के परिवारवर्ग को भी इस से सन्तुष्टता और प्रसन्नता हुई थी।

एक बरस इसी रीति से व्यतीत हुआ। दूसरे वर्ष इनको पुनः भागने का ध्यान आया। ये फिर बार बार भागने की चेष्टा करते और पकड़ा जाते थे। इन की माता ने इन के पिता को इन्हें बांध रखने का परामर्श दिया। बाप बोले कि "जिसे इतनी सम्पत्ति और अप्सरा के समान सुन्दरी स्त्री संसार में बांधने को असमर्थ हैं, उसे रस्सी क्या बांध रखेगी? इस पर श्री चैतन्य की कृपा हुई है। उन के पागल को कौन बंधन में रख सकता है?"

गौड़देश में धर्म्म प्रचार आरम्भ करने के समय निताई जी ने पहले पानीहाटी में हम लोगों के सुपरिचित राघो पंडित के घर अड्डा जमाया था। जब अपनी मंडली के नृत्यगान से उन्हों ने उस प्रान्त को कृष्ण प्रेम में पागल कर दिया तब अपने पिता की अनुमति लेकर रघुनाथ दास कई लोगों के साथ उन के दर्शन को वहां उपस्थित हुये। नित्यानन्द ने सादर इन के मस्तक पर चरण रखा और उन्हें तथा उनकी भक्तमण्डली को चिउड़ा-दही भोजन कराने को कहा। रघुनाथ को कमी क्या थी? नित्यानन्द जी के मुख से निर्गत इस आज्ञा को इन्हों ने अपने सौभाग्य का कारण समझा। आनन्द के मारे लोट पोट हो गये। तुरत अपने संगियों को भेज कर इन्हों ने घर से नाना प्रकार की उपयुक्त भोज्य सामग्रियां मंगवाईं। इस भोज की सर्वत्र धूम मच गई। वहां मेला सा हो गया। जो आया उसी को प्रचुर भोजन मिला। जो चीजें आईं वे ही खरीदी गईं और लानेवालों को वे पदार्थ अन्य पदार्थों के साथ खूब खिलाये गये।

भक्तों के भोजन के समय मध्य स्थान में दाहिनी ओर एक पत्तल प्रभु के निमित्त और उस की बाईं ओर दूसरा पत्तल निताई के लिये रखा गया। प्रभु उस समय नीलाचल में विराजमान थे। लिखा है कि निताई ने आप को भक्तों के संग आवाहन करके हजारों व्यक्तियों के सामने आदरपूर्वक इन्हें भोजन कराया। रात को वहां संकीर्त्तन भी हुआ। लोगों को भोजन-दक्षिणा भी दी गई। भक्तों की पांव-पूजा भी हुई। श्रीचैतन्य-चरण-प्राप्ति का सब से आशीर्वाद लेकर रघुनाथ दास अपने घर गये। (१)

उस दिन से रघुनाथ दास घर के भीतर आना जाना बन्द करके बाहर ही दुर्गा-मंडप में रहने लगे। पूर्ववत इन पर पिता ने पहरेदारों को नियुक्त रखा। वही समय गौड़ीय भक्तों के नीलाचल जाने का था। बात प्रगट हो जाने के भय से उन के संग न जाकर ये सुअवसर देख एक रात घर से निकल कर पंद्रह कोस पर एक ग्वाला के बथान में जा पहुंचे। भूखा समझ ग्वाले ने इन्हें दूध पिलाया। फिर ये बन की राह दौड़ते, गिरते, पड़ते अठारह दिनों के मार्ग को बारह दिनों में तय करके उड़ीसा में प्रभु की सेवा में उपस्थित हुये। रास्ते में इन्हें केवल तीन दिन खाने को मिला था।

चरणों में दंडवत करते ही प्रभु ने इन्हें छाती से लगाने की कृपा की और इन्हें स्वरूप को सौंप कर कहा कि "अब से ये स्वरूप के रघु कहलायेंगे।"

तब से ये नीलाचल रहने लगे। खबर पाकर पिता ने ४००) रुपयों के साथ इनके लौटा लाने के लिये आदमी भेजा। परन्तु ये घर न गये। पुरी जाने के बाद ही इन्हों ने प्रभु से स्वकर्तव्य के विषय में उपदेश देने की प्रार्थना की। प्रभु ने इन्हें शारीरिक सुख का त्याग करने, सांसारिक कथा नहीं कहने सुनने, एवं श्रीराधाकृष्ण के मानसी भजन करने का आदेश किया।

१. उस स्थान में अब भी प्रतिवर्ष चिउड़ा महोत्सव होता है।

आदिही में मानसी भजन में अपने को अयोग पाकर, इन्होंने मूर्ति-पूजन आरम्भ किया। पीछे मानसीभजन में लगे। प्रभु के तिरोभाव के बाद वृन्दावन जा कर ये राधाकृष्ण की खोज में भ्रमण करने लगे। 'श्री राधे, राधे" कहकर सदा पुकारा करते थे।

पांच दिन प्रभु के अतिथि रह कर पीछे मन्दिर द्वार पर खड़े नाम जपा करते और जो कुछ मिल जाता वही भोजन कर जीवन व्यतीत करने। पीछे इसे भी छोड़ जो कुछ सड़ागला दुकानों का फेंका हुआ अन्न पाते उसीको खूब धो धा कर भोजन करते। एक दिन स्वरूप ने भी उसे मांग कर खाया था और खबर पाने से प्रभु ने भी एक बार उसका कुछ स्वाद लिया था। इनका सिंहद्वार पर आहार के लिये ठहरना छोड़ने का हाल सुन कर प्रभु ने कहा था कि "आहार प्राप्त के लिये आशा लगाये कहीं नित्य बैठना तो वेश्या वृत्ति है। अच्छा हुआ कि रघु ने यह ढंग परित्याग किया।"

इस के अनन्तर प्रभु ने इन पर और भी कृपा की। शङ्करानन्द सरस्वती ने गोवर्द्धन का शिलाखंड और गुञ्जमाला लाकर प्रभु को अर्पण किया था। वे वस्तुएं तीन बरस से आप अपने पास सादर रखे हुये थे। उन्हें अब रघुनाथ जी को देकर आपने शिला खंडकी पूजा की आज्ञा की।

प्रभुने गोस्वामी का पद देकर इन्हें अपने पास रखा।

"अमिय-निमाई चरित" पञ्चम खण्ड पृ० १६५ (संस्करण १३२१ बं० सन) में प्रियादास जी के भक्तमाल का हवाला देकर यह आशय प्रगट किया गया है कि एक बार रुजग्रस्त होने पर उत्तम उत्तमखाद्य पदार्थों की ओर मन दौड़ने से इन्होंने विविध भोज्य पदार्थों का प्रभु को मानसिक भोग लगा, स्वयं प्रसाद पाया था। इस पर भोजन के समय प्रभु ने स्वरूप से कहा था कि "रघुनाथ ने असमय हम को बहुत खिलाया है। हम इस समय नहीं भोजन कर सकते।" और स्वरूप के पूछने पर रघुनाथ ने सब बातें कह दी थीं।

परन्तु प्रिया दासजी की कविता से ज्ञात होता है कि भोग लगाने की घटना वृन्दावन में हुई थी और वैद्य ने इन की नाड़ी देख दूधभात खाने की बात कही थी। इन के सम्बन्धवाली "भक्तमाल" की सब कविताओं को पाठकों के अवलोकनार्थ और विचारार्थ हम यहां उद्धृत कर देते हैं:—

(मूल छप्पे स्वामी नाभा जी कृत)

"सीत लगत सकलात विदित पुरुषोत्तम दीनी। सौच गये हरि संग कृत्य सेवक की कीनी॥ जगन्नाथ पदप्रीति निरंतर करत पवासी। भगवत धर्म प्रधान प्रसन्न नीलाचल वासी॥ उतकल देस उड़ीसा नगर "बैनतेय" सब कोउ कहैं। रघुनाथ गुसाईं गरुड़ ज्यों सिंह पौरि ठाढ़े रहैं॥"

(टीका कवित्त श्री प्रियादास कृत।)

"अति अनुराग घर सम्पत्ति सों रह्यौ पागि, ताहु करि त्याग किये नीलाचल वास है। धन को पठावै पिता पे पै नहीं भावै कछु देपिवौ सुहावै महा प्रभुजी को पास है॥ मन्दिर के द्वार, रूप सुन्दर निहार्यो करैं लग्यो सीत गात सकलात दई दास है। सौच संग जायबे की रीति को प्रमान यहै वैसे सब जानो माधो दास सुखरास है।"

"महा प्रभु कृष्ण चैतन्यजू की आज्ञा पाइ, आये "वृन्दावन" "राधाकुंड" वास कियो है। रहनि, कहनि, रूप चहनि, कही न सकै, थकै सुनि तन-भाव रूप करि लियो है॥ मानसी में पायौ दूधभात, सरसात हिये, लिये रस नाड़ी देखि वैद कहि दियो है। कहां लौं प्रताप कहौं आपुहि समझि लेहु, देहु वही रीझि जासो आगे पाय दियौ है॥"

अब जीव स्वामी का हाल सुनिये। ये रूप स्वामी के छोटे भाई अनूप (वल्लभ) जी के पुत्र थे। पिता के परलोक हो जाने और पितृव्यों के गृहत्यागी हो वृन्दावन चले जाने से राजकाज में इन

का मन नहीं लगा। गृहस्थाश्रम को त्याग श्री नित्यानन्द की आज्ञा और आशीर्वाद ले ये भी वृन्दावन चले गये। इससे स्पष्ट विदित होता है कि प्रभु के अदर्शन के पीछे (अर्थात् सं० १५९० ई० १५३३ के बाद) ये वृन्दावन गये। यदि उस समय प्रभु विराजमान होते तो उन का दर्शन करते और उन्हीं की आज्ञा लेकर वहां जाते। किन्तु "चैतन्य चरितामृत" में इन के प्रभु से आज्ञा लेने की बात नहीं पाई जाती।

उसमें इनके तथा इन के चचाओं के ग्रंथ-प्रणयन का हाल लिखकर और कुछ पुस्तकों के नामें देकर अन्त में लिखा है:—

"वारलक्ष ग्रंथ तुहें विस्तार करिल।"

यह पराकष्ठा की अतिशयोक्ति कही जायगी। श्री सनातन और रूप स्वामी अधिक से अधिक लगभग ४०-४२ वर्ष वृन्दावन में रहे। यदि हम जीव स्वामी का भी वहां रहना इतना ही मान लें, तो तीनों महा पुरुषों के प्रतिदिन एक एक ग्रंथ रचने पर भी मोट संख्या ४५ हज़ार के करीब होगी। यदि प्रति पन्ने को एक ग्रंथ माने तो यह दूसरी बात है।

उक्त ग्रंथ में तथा महाप्रभु सम्बन्धी अन्य ग्रंथों में सर्वत्र सब विषयों के वर्णन में लाखों और करोड़ों की बातें देखते हैं। इस समय के रचे गये "अमिय-निमाई-चरित" में भी यही देखा जाता है। जो हो, इन लोगों के नाम से जो ग्रन्थें विशेष प्रसिद्ध हैं और जिन्हें हम जानते हैं, उन की नामावली नीचे दी जाती है।

श्रीसनातन गोस्वामी कृत ग्रंथ:—बृहद्भागवतामृत" "लील-स्तव" "गीतावली" (दिग्दर्शनी नाम की टीका सहित), "हरि-भक्ति विलास" "सिद्धान्तसार (श्री मद्भावत के दशम स्कन्ध की टीका)"

श्रीरूप कृत ग्रंथ:—"भक्तिरसामृत सिन्धुसार" "मथुरामा-त्म्य" "वृन्दादेवाष्टक" "श्री रूपचिन्तामणि" 'चाटुपुष्पञ्जलि"

"पद्यावली" "हंसदूत", "उद्धवसन्देश" "उज्वलनीलमणी" "स्तव-माला", "प्रेमेन्दुसागर", छन्दोऽष्टादशक", "उत्कलिकावली" "गोविन्दविरूदावली", "लघुभागवत तोषिणी" नाटक "चन्द्रीका", "दानकेली कौमुदी", "ललितमाधव" तथा "विदग्धमाधव" नाटक।

श्रीजीव स्वामी विरचित ग्रंथः—"भागवत-षटसन्दर्भ", "वैष्णवतोषिणी" "लघुतोषिणी" तथा "गोपालचम्पू"।

पूज्यवर श्रीसीता रामशरण भगवान प्रसाद श्री कृत श्री नाभाजी के "भक्त माल" ग्रथ की टीका में लिखा है कि एक दिन इन जीव स्वामी को बहु मूल्य पाटम्बर पहने देख कर श्री रूप और सनातन ने कहा था कि विरक्त कहला कर ऐसा वस्त्र धारण करना नहीं सोहता। उस पर आपने उसे किसी को तुरत दे डाला और यमुना तीर एक कुटी बनाकर आप वहीं रहने लगे। आप अपने आश्रम में नारीमात्र को जाने नहीं देते थे। वृन्दावन जाने पर जब सुप्रसिद्ध कृष्णभक्ता मीराजी आप के दर्शन की अभिलाषिणी हुई तब उन्हें इस नियम का हाल ज्ञात हुआ। उन्हों ने आप के पास पत्र में लिखा कि "आप ऐसे महात्मा विवेकी होकर यह नहीं विचारते कि यह श्री कृष्ण का रंगमहल है, यहां सिवाय प्रभु के अन्य कोई पुरुष के रहने का अधिकार नहीं। यदि आप अपने को पुरुष समझते हैं तो किशोरीजी को इस की खबर देनी होगी।" इस पर श्री जीव स्वामी महा प्रसन्न हो और मीराजी को परम परवीणा और प्रेमी भक्ता जान उन से सहर्ष मिले और जब तक श्री मीराजी वहां रहीं, दोनों कृष्ण प्रेमियों का बराबर संग रहा।

उस ग्रंथ में यह भी लिखा है कि आप रात को वृन्दावन के बाहर कहीं नहीं रहते थे। आप के दर्शन का बड़ा उत्साह होने से अकबर ने एक बार घोड़े के रथ पर आगरा बुला कर आपका दर्शन किया था और उसी दिन इन्हें वृन्दावन भेजवा दिया था।

हिन्दीसंसार के सुपरिचित प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता जोधपुर निवासी स्वर्गीय मुं० देवीप्रसाद के अनुसार श्रीमीराजी सं० १६०४ (ई०१५४७) में कृष्ण में लीन हुईं। जीव स्वामी १५३४-३५ ई० में सम्भवतः २५-२६ वर्ष की अवस्था में वृन्दावन गये होंगे। अकबर ई० १५५६ में दिल्ली के तख्त पर बिराजमान हुए। इस से जीव स्वामी का बादशाह से तथा मीराजी दोनों से मिलना सम्भव है। आप के विषय में श्री नाभा स्वामी ने यह छप्पै कहा है :—

"बेला भजन सुपक्क, कषाय न कबहूं लागी। वृन्दावन दृढ़ वास जुगल चरनन अनुरागी॥ पोथी लेखन पान अघट अक्षर चितदीनो। सदग्रंथनि को सार सबै हस्तामल कीनो॥ संदेह ग्रंथिछेदन समथ रसरास-उपासक परम धीर॥ श्रीरूप सनातन भक्तिजल जीव गुसाईं सर गँभीर॥"

—

द्वितीय परिच्छेद।

दो हरिदास



महा प्रभु के पास नीलाचाल में दो हरिदास वास करते थे। एक पाठकों के परिचित मुसलमान हरिदास जिनका हाल पहले वर्णन किया गया है। (१) वे वृद्ध थे। अतएव बड़े हरिदास के नाम से प्रसिद्ध थे। वे अपने स्थान में बैठे सर्वदा नाम जप किया करते थे।

दूसरे छोटे हरिदास युवक उदासीन और कीर्त्तनिया थे प्रभु को कीर्त्तन सुनाया करते थे। इन से हमारे पाठकों का परिचय नहीं है। इस से पहले इन्हीं का हाल लिखते हैं।

भगवानाचार्य्य (२) सतानन्द खां के ज्येष्ठ पुत्र थे। प्रभु के दर्शन बिना व्याकुल रहने से अपने पिता की अमित सम्पत्ति त्याग कर प्रभु के चरणों के निकट रहा करते थे। इन्हीं भगवानाचार्य्य ने एक दिन प्रभु का निमन्त्रण किया और छोटे हरिदास के द्वारा माधवी दासी के घर से बहुत बारीक चावल मँगा कर भोग प्रस्तुत किया। भोजन के समय अति सूक्ष्म चावल देख और यह जान कर कि हरिदास ने अमुक स्थान से उसे लाया था, आपने रुष्ट हो, अपने निकट उनका आना जाना बन्द कर दिया। इससे हरिदास को तो असह्य दुःख हुआ ही, उनके दुःख से अन्य भक्तों को भी दुःख हुआ। परंतु कोई इसका कारण नहीं समझ सका। अतएव सब लोग प्रभु से उनके अपराध क्षमा के प्रार्थी हुये। प्रभु ने कहा कि

---

१. इस पुस्तक के द्वितीय खण्ड में महाप्रकाश का परिच्छेद देखिये।

२. इनके दूसरे भाई गोपाल काशी में वेद पढ़ कर पुरी में अपने भाई तथा अन्य लोगों को वेद सुनाने गये थे। किन्तु उनके भाई के आग्रह पर भी कोई वेद और वेदान्त का सुनने-वाला वहां नहीं मिलने से उन्हें घर लौटना पड़ा।

"जो वैरागी हो कर स्त्रियों से सम्भाषण करे, हम उसका मुख देखना नहीं चाहते।"

माधवी (३) वृद्धा, धर्मपरायणा, तथा सुपरिडता स्त्री थीं। प्रभु की बड़ी भक्ति करती थीं। इनसे सम्भाषण करने के लिये ऐसा दंड तो अनुचित कहा जायगा।

परन्तु "चरितामृत" कथित प्रभु के वाक्य से बोध होता है कि प्रभु हरिदास के आचार व्यवहार को पूर्व ही से दूषणीय समझते थे। इस समय उसका एक प्रमाण पाकर आपने उन्हें गुरुतम दंड देना आवश्यक समझा जिस में अन्य लोगों को भी पूरी चितावनी हो जाय।

"क्षुद्र जीव मर्कट वैराग करिया।
इन्द्रिय चरिया बुले प्रकृति सम्भाषिया॥"

सब जानते हैं कि एक रोगी भेंड़ गल्ले के गल्ले को नष्ट कर देता है। यदि इनके दुराचरण का प्रभाव दूसरों पर पड़ता तो भक्त मंडली तो सर्वनाश को प्राप्त ही होती, प्रभु का कैसा उपहास होता? आपकी सुकीर्ति में कैसा धब्बा लगाता? अतएव आपने आदि ही में इसका मूलोच्छेद कर सब की रक्षा की। क्योंकि भक्तों के मन में अब ऐसा भय हुआ कि कोई स्वप्न में भी स्त्रीसम्भाषण और मुखावलोकन नहीं करता था।

एक वर्ष इस प्रकार प्रभु द्वारा परित्यक्त हो कर रहने के बाद हरिदास ने प्रयाग में जाकर त्रिवेणी में अपना प्राण विसर्जन कर दिया। (४) और शीघ्र ही दिव्य शरीर पा कर प्रभु के निकट आ अन्तरीक्ष से पूर्ववत अपना गान सुनाने लगे और प्रभु ने उन्हें

३. इसी खंड का पचम परिच्छेद देखिये।

४. एक वैष्णव ने नवद्वीप में आकर श्रीवास से हरिदास के प्राण देने का हाल कहा था। जब भक्त लोग रथयात्रा के समय पुरी गये तो श्रीवास ने हरिदास का वृत्तान्त कहा और स्वरूपादि ने विचारा कि त्रिवेणी के प्रताप से वह दिव्य शरीर पाकर प्रभु के पास पुनः पहुंचे हैं। और कदाचित् प्रभु ने हंस कर कहा था कि स्त्री दर्शन का यही प्रायश्चित है।

पूर्ववत अपना पार्षद बनाया। भक्तगण भी उनका सुर सुनते थे, पर उनका दर्शन नहीं पाते थे।

जब दंड की कथा उठी है तो एक और दंड की बात भी यहां सुन लीजिये। यह आलोचनात्मक दंड है। प्रभु के परम स्वजन दामोदर प्रभु के एक कार्य्य की आलोचना द्वारा उन्हें दंड देते हैं। दामोदर बड़े पंडित और स्पष्ट वक्ता थे। किसी के सामने स्पष्ट बात कहते इन्हें भय नहीं होता था।

एक उड़िया ब्राह्मण का बालक अवसर पाने से ही प्रभु के पास चला आता। उस बच्चे का स्वभाव बड़ा कोमल था। प्रभु के मन से बालस्वभाव एक दम नहीं गया था। इस से प्रभु उसे प्यार करते थे और वह भी इनसे प्रीति रखता था। दामोदर को यह बात पसन्द नहीं आती थी। उन्होंने मन में विचारा कि न जाने क्या करते क्या हो? यह प्रीति कुछ बुरा रंग न दिखलावे। इस से उन्होंने एक दिन निर्भीक भाव से कहा "महाराज! अभी सारी पुरुषोत्तमपुरी में आप का सुयश फैल जायगा।" दामोदर के चेहरे का रंग देख प्रभु ने नम्रतापूर्वक अपना अपराध और उनके क्रोध का कारण पूछा।

दामोदर बेधड़क कहते हैं "संसार बहुत विचित्र है। और आप स्वतन्त्र। आप के कार्य्यों की आलोचना करने की किसी को सामर्थ्य नहीं। इस बच्चे का स्वभाव बहुत सुन्दर है। आप जो इसे प्यार करते हैं, इस में कोई दोष नहीं। तौभी इस बालक में भी दोष है और आप में भी एक दोष है। उसकी माता अति सुन्दरी विधवा है और आप परम सुन्दर युवक।"

यह सुनकर प्रभु कुछ हंसे। फिर उन्होंने मनमें विचारा कि दामोदर का कहना अनुचित नहीं और बोले—"दामोदर! तुम्हारे समान हमारा सुहृद् शुभचिन्तक दूसरा कोई नहीं। हमारी माता की रक्षा और घरबार की देखरेख के लिये तुम से बढ़कर उपयुक्तपात्र दूसरा

किसी को नहीं देखते। घर पर वंशीवदन ठाकुर और ईशान रहते हैं, पर तुम्हारा वहां रहना और भी उत्तम होगा। भक्तों के संग यहां आया करना एवं उन्हीं के संग लौट जाया करना। तुम्हारे आते जाते रहने से माता को और हम को परस्पर समाचार ज्ञात होता रहेगा और इसके द्वारा आनन्द प्राप्त होता रहेगा।

यह विचार स्थिर होने पर शची आदि सब के लिये प्रसाद लेकर वे नवद्वीप आए और समय पर वहां से भी माता की सौगात लेकर पुनः नीलाचल गये। यही रीति सदा जारी रही। इसीसे पीछे हमलोगों ने इन्हें बराबर आते जाते देखा है। नहीं तो पहले ये नीलाचल ही में प्रभु के साथ रहते थे।

आप का जननी तथा पत्नी से इस प्रकार सम्बन्ध रखना निश्चय श्लाघनीय है। जब आप सब जीवों को सुखी रखने और सब पर दया बरसाने को उद्यत रहते थे तब इन्हीं लोगों को क्यों भूल जायं और इन्हें सुखी और सन्तुष्ट रखने की चेष्टा क्यों न करें?

अब बड़े हरिदास का हाल सुनिये। समुद्र स्नान के अनन्तर प्रभु नित्य इन को देखते आते थे। एक दिन उन्होंने कहा "प्रभु! आप अवश्य लीलासम्बरण करेंगे। वह हम देखना नहीं चाहते। हमें उस के पूर्वही छुट्टी दीजिये और यह अभिलाषा पूर्ण कीजिये कि हम आप के चरणकमलों को हृदय में धारण किये, मुखारविन्द का दर्शन करते और नाम जपते इस संसार से विदा हों।"

इस पर प्रभु के चहरे पर उदासी छा गई। बोले "कृष्ण तुम्हारी इच्छा पूर्ण करेंगे। परन्तु तुम्हारे वियोग में हमारी क्या दशा होगी?"

दूसरे दिन प्रभु भक्तों के संग उन को कुटी पर गये। आंगन में आकर इन्होंने सब को प्रणाम किया। प्रभु ने यत्नपूर्वक उन्हें आंगन में बैठाया और सब लोग उन्हें घेर कर नाचने गाने लगे। नाचनेवाले थे स्वरूप तथा वक्रेश्वर और गानेवाले थे स्वयं श्रीगौ-

राङ्ग, स्वरूप, सार्व्वभौम और रामानन्द प्रभृति। हरिदास मध्य मध्य में भक्तों के चरणों की धूलि लेले कर अपने अङ्गों में लपेटने जाते थे। फिर प्रभु हरिदास का गुणगान करने लगे।

पश्चात् भूमि में सोकर हरिदास, प्रभु के चरणों को हृदय में लगाये, उनके मुखपंकज को अवलोकन करते, प्रेमाश्रु बहाते और नामोच्चारण करते श्रीकृष्ण में लीन हुये। प्रभु उनके शव को गोद में उठाकर नाचने लगे। भक्तगण भी प्रेमोन्मत्त हो नृत्य में योगदान करने लगे। फिर शव को गाड़ी पर रखकर नृत्य और हरिध्वनि करते लोग समुद्र की ओर चले। भक्तों ने वहां हरिदास का पादोदक सानन्द पान किया और यहीं बालु में उन्हें समाधि दी गई।

स्नानान्तर सब लोग समाधि की प्रदक्षिणा कर घर लौटे। उन के श्राद्ध के निमित्त स्वयं प्रभु मन्दिर के निकट जाकर भिक्षाटन करने लगे। किन्तु स्वरूप उन को सब भक्तों के साथ वासस्थान पर भेज कर आप भिक्षाटन करके प्रचुर सामग्री ले गये। उधर से वाणीनाथ और काशीमिश्र भी प्रसाद के साथ उपस्थित हुये।

नगर में हरिदास के गोलोक-गमन का समाचार फैल गया। सब जाति के लोग हरिध्वनि करने लगे और सब लोग उन के श्राद्ध का प्रसाद पाने में सम्मिलित हुये। प्रभु ने अपने हाथों से परोस कर सब को भोजन कराया।

सब बोलैं जय जय हरिदास।
महिमा नाम कियो परकास॥

कहते हैं कि प्रभु ने इन्हीं के द्वारा लोगों को नाम माहात्म्य की शिक्षा दी है। इन्होंने दीनता और सहिष्णुता का भी लोगों को पाठ दिया है। प्रभु ने भिन्न २ भक्त के द्वारा भिन्न २ गुण का प्रकाश किया है। "भक्तिरत्नाकर" में लिखा है:—

"रामानन्द द्वारा, फल्गुपंर दर्प नाशे।
दामोदर द्वारा, निरपेक्ष प्रकाशे॥
हरिदास द्वारा, सहिष्णुता जानाइला।
सनातन रूप द्वारा, दैन्य प्रकाशिला॥
जितेन्द्रिय, निरपेक्ष, सहिष्णुता दैन्य।
ए चारि अवधि व्यक्त कैला श्रीचैतन्य॥

तृतीय परिच्छेद

गोपीनाथ चाङ्ग से उतरे



महोगों के पूर्व-परिचित रामानन्द राय पाँच भाई थे। सभी प्रभु भक्त। वाणीनाथ पर तो प्रभु की सेवा का भार ही दिया गया था। रामानन्द इन की बाईं भुजा थे। (१) गोपीनाथ कटक राज्य दरबार में काम करते थे। इस वंश का राज्य में बड़ा मान और अधिकार था। एक प्रकार से ये लोग कटकाधिप के आधीन राजा ही थे।

गोपीनाथ बहुत बाबुआने ढंग से रहने के कारण सरकारी माल पर भी हाथ बढ़ा दिया करते थे। इससे इन के ज़िम्मे सरकारी पावना बहुत बाक़ी पड़ गया था। उसके परिशोध के लिये इन्हों ने यह प्रस्ताव किया कि इनके पास के घोड़े उचित मूल्य पर ले लिये जायं और शेष धीरे धीरे किस्त करके वसूल किया जाय।

ज्येष्ठ राजकुमार पुरुषोत्तम जी को घोड़ों के दाम ठीक करने की आज्ञा हुई। वे दाम बहुत कम लगाने लगे। स्वभाववश वह सर्वदा गर्दन इधर उधर करके बातें करते थे। गोपीनाथ ने चिढ़कर कहा कि "आप की तरह हमारे घोड़े इधर उधर गर्दन नहीं घुमाया करते। तब ऐसा दाम क्यों लगा रहे हैं?"

इस पर राजाज्ञा से वे चाङ्ग पर चढ़ाये गये (२) अर्थात् उनके प्राणदण्ड की तैयारी की गई। इस से नगर में हाहाकार मच गया। कुछ लोग दौड़े हुये प्रभु के पास रक्षाप्रार्थना के लिये गये। प्रभु ने कहा कि "जो वित्त के बाहर व्यय करके बाबू बनेगा,

१. दाहिनी भुजा स्वरूप दामोदर माने जाते थे।

२. नीचे तीक्ष्णधार-वाला खड्ग रख कर ऊँचे स्थान से अपराधी को इस प्रकार फेंकते थे कि खड्ग पर गिरने से उस का प्राणान्त हो जाय। इसी दंड को "चाङ्ग चढाना" कहते थे।

सरकारी माल हड़प जायगा, वह तो निश्चय ही दंड पावेगा" इतने में भवानन्द को भी सपरिवार बांधे हुये राजा के पास लिये जाने की खबर पहुंची। तब स्वरूप आदि ने भी रक्षा के निमित्त प्रभु से विनय किया। प्रभु बोले "क्या तुम लोग चाहते हो कि हम अपना व्रत भङ्ग कर राजा से भिक्षाप्रार्थना करें? यदि करें भी, तो हमारे समान दो कौड़ी के संन्यासी को दो लाख "काहन" (२) कौन देगा?" तब तक गोपीनाथ के खड्ग पर फेंके जाने का सम्वाद आया। तब भी आपने अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग नहीं की, किन्तु लोगों को भगवान की शरण जाने को कहा।

उधर गोपीनाथ सब माया ममता छोड़ श्री कृष्ण के शरणापन्न हुये। फल यह हुआ, कि आप चाङ्ग से उतारे गये और आप की वेतनवृद्धी भी हुई जिस में आगे सरकारी माल पर हाथ साफ़ करने का उन्हें अवसर न मिले।

२. "बुधिस्ट इन्डिया' नामक पुस्तक के छठवें परिच्छेद से ज्ञात होता है कि बौद्धकाल में "कहापण" एक क्षुद्र सिक्का प्रचलित था जो तामे के आज के दर से केवल $\frac{1}{4}$ पेनी के मूल्य का होता था। किन्तु क्रय विक्रय के व्यवहार के लिये उसका मूल्य पुराने काल के एक शिलिंग अर्थात् आठ आने के बराबर था। वर्तमान समय में शिलिङ्ग का मूल्य लगभग दस आने के बराबर है।

कदाचित उसी "कहापण" का अपभ्रंश "काहन" है। इस समय यह एक रुपया के तुल्य है। यादवचन्द्र चक्रवर्ती की गणितपुस्तक (Arithmetic) में इस का ऐसा चक्र दिया हुआ है:—

४ कौड़ी	का १ गंडा।
५ गंडा	,, १ बुरी पैसा।
४ बुरि या २० गंडा	,, १ पण या आना।
४ पण	,, १ चौक।
४ चौक	,, १ काहन या रुपया।

केवल प्रभुको ही अपनी प्राणरक्षा का कारण समझ वे सपरिवार आकर आप के चरणों में गिरे और उस समय से अच्छी रीति से काल व्यतीत करने लगे।

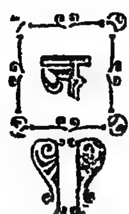
भगवान जीव के कल्याण ही के लिये उसे कभी कभी कष्ट भी देते हैं।



चतुर्थ परिच्छेद

स्फुट घटनाएं

(जगदानन्द का तेल ।)



जगदानन्द एक गौड़ीय भक्त थे। श्रीगौराङ्ग को तन मन सर्वथा अर्पण किये हुये थे। इन के चरणों के निकट नीलाचल में ही रहते भी थे। कभी कभी देश भी जाया करते थे। पण्डित थे। हृदय निर्मल निष्कपट था। परन्तु बुद्धि प्रखर नहीं थी। प्रभु को सदा आराम में देखना चाहते थे। संन्यासधर्म्म के विरुद्ध कार्य्य कर के प्रभु सर्वदा इन के अनुरोधों का पालन नहीं कर सकते थे, इस से ये क्रोध करते; प्रभु से खटपट करते थे। इन के शीघ्र क्रुध हो जाने के स्वभाव के कारण प्रभु इन से डरते भी थे।

प्रभु को कृष्णबिरह से सदा व्यथित-चित्त देख इन्हें दुख होता था। अतएव एक बार देश से आते समय इन्हें प्रभु के लिये कोई शीतल सुगन्धित तेल, जिस के सिर में मलने से मस्तिष्क तथा हृदय ठन्ढा रहे, लेते आने का बिचार हुआ। अपनी सीधापन तथा प्रभु प्रति अपार प्रेम के कारण पंडित हो कर भी इन को यह ख्याल नहीं हुआ कि संन्यासी ऐसे पदार्थों का उपयोग नहीं करते।

आज के गद्दी मसनद लगाने वाले, चुरुट मदक उड़ानेवाले, अङ्गों में इतर लवेन्डर लपेटने-वाले, मन्दिरों में वेश्याओं का नाच करानेवाले और राजसी ठाट से रहनेवाले महन्तों और सन्यासियों की बात हम नहीं कहते।

निदान एक घड़ा सुगन्धित तेल घर से लाकर इन्हों ने प्रभु के लगाने के लिये उसे चुपचाप गोविन्द के पास रख दिया।

तेल का हाल ज्ञात होने पर प्रभु ने गोविन्द से कहा कि संन्यासी को तेल का अधिकार नहीं। तुम लोगों को समझ नहीं कि यह कार्य करने से लोग हम लोगों की हँसी उड़ावेंगे, निन्दा करेंगे। जगदानन्द तेल लाये हैं तो उसे जगन्नाथ जी के मन्दिर में दीप जलाने को देदो।"

दूसरे दिन प्रभु ने जगदानन्द को भी यही कहा। इस पर वे घड़े को प्रभु के सामने पटक कर अपने वासस्थान पर जा किवाड़ी लगाकर सो रहे। दो दिन योंही बीत गये। तीसरे दिन सुबह को प्रभु स्वयं उन के घर पहुंच कर और किवाड़ खटखटा कर बोले, " पंडित उठो, हम दर्शन करके आते हैं। आज दो पहर को तुम्हारे घर भोजन करेंगे।"

बस अब क्या था ? जगदानन्द का रोष हवा हो गया। आप चट उठ कर भोजन के प्रबन्ध में लगे। समय पर प्रभु को भोजन करा कर अन्य भक्त बन्धुओं के संग उन्होंने आप भी प्रसाद पाया।

बहुत दिनों से जगदानन्द के मन में वृन्दावन-दर्शन की अभिलाषा थी। परंतु इस विचार से कि अपनी सरलता और भलमनसी के कारण इन्हें रास्ते में कहीं कष्ट न भोगना पड़े और प्रभु के पारिषद कहला कर किसी से ये कोई ऐसी बात न कह दें जिस से सब की हँसी हो, प्रभु इन्हें जाने की सम्मति नहीं देते थे। एक बार स्वरूप के कहने सुनने से प्रभु ने इन्हें जाने की आज्ञा दी और कहा कि "काशी तक कोई भय नहीं। आगे उस देश के किसी क्षत्रिय के संग जाना, नहीं तो बंगाली जान कर डाकू तुम्हारा प्राण लेलेंगे। और वृन्दावन में सनातन के पास रहना; उन्हीं के संग स्थानों का दर्शन करना; साधु महात्माओं को दूर ही से प्रणाम करना; उनके निकट न जाना।" यही सब समझा बुझा कर प्रभु ने इन्हें बिदा किया और शीघ्र लौट आने की आज्ञा की।

ये कुशलपूर्वक वृन्दावन पहुंच कर सनातन के यहां ठहरे। दिन रात प्रभु की बातें हुआ करती थीं। सनातन स्वयं भिक्षाटन करके इन्हें भोजन कराते थे।

एक दिन सनातन गोस्वामी को स्वयम् भोजन कराने की इच्छा से ये दो आदमी का भोजन तैयार करने लगे। इतने में सनातन मुकुन्द स्वामी का दिया हुआ एक रंगीन कपड़ा मस्तक में लपेटे यमुना स्नान कर भोजन के लिये इनके पास आये। इन्होंने समझा कि वह वस्त्र प्रभु का दिया हुआ था। परंतु पूछने पर जब उन्होंने मुकुन्द सरस्वती से उसका पाना बतलाया, तब ये चूल्हा से हांड़ी उतार कर उससे सनातन को मारने चले।

सनातन के क्षमा प्रार्थना पर सचेत हो इन्होंने कहा कि "हम क्रोध में आकर आप को मारने चले थे। आप क्षमा कीजिये। परंतु यह कौन सहन कर सकता है कि आप प्रभु के प्रधान और प्रिय पारिषद हो कर अन्य संन्यासी का दिया वस्त्र सिर पर चढ़ाते हैं।"

सनातन ने कहा कि "हम लोग दूर से प्रभु के प्रति आपके प्रेम का हाल सुना करते हैं। वही देखने के निमित्त हमने यह वस्त्र सिर में बाँधा था। धन्य जगदानन्द, धन्य! आप धन्य हैं!"

यह सुन कर जगदानन्द प्रेमाश्रु बहाने लगे एवं दोनों पुरुष परस्पर गले लगकर प्रभु का गुणगान कर हृदय को शीतल करने लगे।

सनातन के समान प्रभु के परम-प्रिय प्रेमपात्र को (उनके कार्य्य से प्रभु का अपमान समझ) मारने के लिये उद्यत होना—जैसे तैसे अनुराग का परिचायक नहीं। इससे गौराङ्ग के चरणों में इनकी अथाह प्रीति प्रमाणित होती है।

कुछ दिन वहां रह कर ये कुशलपूर्वक पुरी में लौट आये।

(राघो की झाली वा भक्तों की भेंट)

यह तो हम ऊपर ही कह चुके हैं कि गौड़ीय भक्त प्रतिवर्ष रथयात्रा के समय प्रभु के दर्शन को आया करते थे। उस समय वे लोग यथारुचि और यथासाध्य प्रभु के निमित्त भेंट ले जाते थे। पदार्थों का ढेर लग जाता था। इन में पानिहाटी-निवासी राघो की "झाली" बहुत प्रसिद्ध थी। सब लोग अपनी अपनी भेंट गोविन्द के पल्ले कर देते और उन्हें प्रभु को भोजन कराने के लिये नित्य उन का सिर खाया करते। पर गोविन्द क्या करें? जब तकाज़ा से तंग आजाते तो प्रभु से अपना दुःख सुनाते। प्रभु जब हँस कर उन्हें खाने बठते, तो आप हाथ पसारते और गोविन्द भक्तों का नाम कह कह कर पदार्थ देने लगते। क्षण में सर्व साफ़ हो जाता। परन्तु राघो की झाली अर्थात् झोली में रखी हुई वस्तुएं आगे के लिये रख दी जाती थीं।

(एक स्वान का नीलाचल गमन)

रास्ते की सब व्यवस्था ठीक करके शिवानन्द सेन ही भक्तों को पुरी पहुंचाया करते थे। एक बार एक कुत्ता भी इन लोगों के साथ हो गया। फेरने से भी नहीं फिरा। राह में एक जगह दस गुणा खेवा देकर वह नदी पार कराया गया। एक रात नौकर की असावधानी से खाना न मिलने के कारण वह लोगों का संग छोड़ कर चला गया। शिवानन्द को इस से बहुत दुःख हुआ। उन्हों ने उसे खोजवाया। परंतु उसका पता न लगा। उन को पूर्ण विश्वास था कि वह कुत्ता पूर्व जन्म का कोई महात्मा था। कुछ चूक हो जाने से इस योनि को प्राप्त हुआ था।

नीलाचल में एक दिन जब लोग प्रभु के दर्शन को गये तो क्या देखते हैं कि वह कुत्ता प्रभु के निकट बैठा हुआ है, प्रभु इस के आगे नारियल (गड़ी) का गूदा फेंकते जाते हैं और वह पूंछ हिलाता

आनन्द उसे भोजन करता जाता है। प्रभु उसे कृष्ण का नाम लेने की आज्ञा करते हैं तो वह शब्द करने लगता है।

शिवानन्द उसे प्रणाम कर महा विनीत भाव से क्षमाप्रार्थी हुये। उस दिन से लोगों ने उसे फिर कभी नहीं देखा। कहते हैं कि सिद्ध देह पा कर वह बैकुंठ चला गया।

(श्री नित्यानन्द का क्रोध)

एक साल शिवानन्द सेन सब लोगों को साथ लिये जा रहे थे। किसी घाट पर घटवार के साथ खेवा आदि के हिसाब किताब में उन के वक्त लगने से भक्तों के स्थान और भोजन इत्यादि के प्रबन्ध में कुछ देर हो गई। इस पर नित्यानन्द जी क्रुद्ध होकर उन के बच्चों को शाप देने लगे। इस यात्रा में शिवानन्द के पुत्र कलत्र तथा उन के भांजे श्रीकान्त भी थे। वे प्रभु के प्रेमपात्र थे। एक बार वे अकेले पुरी गये थे और दो महीने तक उन्हें अपने पास रख कर प्रभु ने उन पर कृपा दरसाई थी।

नित्यानन्द का शाप सुन कर शिवानन्द की पत्नी को बहुत दुःख और भय हुआ। वह रोने लगीं। शिवानन्द ने कहा कि "पुत्र मरें, मरें। तुम रोती क्यों हो? गोसाईं को कलेश न होना चाहिये।" यह कह कर जब वे नित्यानन्द के पास पहुंचे, तब उन्होंने इन की पीठ पर एक लात जमा दी। इन्हों ने उस समय चूं भी नहीं किया। वरन् शीघ्र उनके तथा अन्य लोगों के खाने पीने का प्रबन्ध करके सब को शान्त किया।

अनन्तर नित्यानन्द के चरणों में गिरकर इन्हों ने कहा कि "आप की चरणरज बड़ों बड़ों को दुर्लभ है, वह आज हमें अकस्मात् प्राप्त हुई। आज हमारा जन्म सफल तथा शरीर पवित्र हुआ। आज हमारा सौभाग्य-सूर्य उदय हुआ।" यह सुनते ही नित्यानन्द जी ने उठ कर इन्हें कंठ से लगाया। उन का क्रोध आन्तरिक नहीं

होता था। केवल मौखिक होता था। इसी से लोग इन्हें निरभिमानी, अक्रोधी और परमानन्दी कहते थे।

किन्तु उस समय का वर्ताव श्रीकान्त को अच्छा नहीं लगा। वे प्रभु के पास नित्यानन्द पर नालिश करने चले और सबों का संग छोड़ द्रुतवेग से जाकर बिना कपड़ा लत्ता उतारे उन्होंने प्रभु के चरणों में प्रणाम किया। गोविन्द वहीं खड़े थे। उन्होंने कहा, "पहले अंगरखा तो उतार लो, तब प्रणाम करना। शिष्टाचार के विरुद्ध क्यों काम करने लगे ?" (१) प्रभु ने इन्हें श्रीकान्त को कुछ कहने का निषेध किया, क्योंकि वे स्वयं दुःखित चित्त थे। इस से श्रीकान्त जान गये कि प्रभु पर सब बातें विदित हो गई हैं।

यह पूछने पर कि "कौन कौन आ रहे हैं" और आने वालों में अद्वैताचार्य्य का नाम सुन कर प्रभु ने कहा "आचार्य्य क्या तमाशा देखने आते हैं ?"

आपने ऐसा कहा तो सही, परन्तु आचार्य्य के आने पर आपने पूर्ववत् ही उनका सम्मान किया और उनके प्रति स्नेहप्रदर्शन किया। इनके व्यवहारों से इनकी अप्रसन्नता की बात उन पर खुलने न पाई।

(अद्वैताचार्यका नौकर)

आचार्य्य के नौकर पाउलविस्वास एक दिन प्रभु के दर्शन को आये। उनके चले जाने पर आपने गोविन्द को उन्हें पुनः नहीं आने देने की आज्ञा दी। उसका कारण सुनिये। वे आचार्य्य के सेवक थे। आचार्य्य का परिवार वृहत् था। और उनका हाथ सदा खुला रहता था। उनके व्यय का सुदृढ़ उपाय कर देने के विचार से

१. उस समय आज की तरह कोट बूट कसे दूर से केवल सिर ही हिला देने की चाल नहीं थी। नियमानुसार दण्ड प्रणाम किया जाता था।

दावल ने राजा के पास आचार्य के ऋण-परिशोध की प्रार्थना की थी और उन्हें ईश्वर कहा था। इससे आप कुपित थे।

आचार्य्य को उसकी कुछ खबर नहीं थी। आचार्य्य के ईश्वरत्व में तो स्वयं प्रभु को कोई सन्देह नहीं था। परन्तु ईश्वर को ऋण! यह कथन हास्यजनक और मूर्खता-प्रदर्शक था। इस कथन ने आचार्य्य के ईश्वरत्व पर पानी फेर दिया और उनके नाम को एकदम डुबो दिया।

राजा को तथा राजकर्म्मचारियों को वह पत्र किसी पागल का भेजा प्रतीत हुआ होगा। इसीसे वह पत्र प्रभु के पास पहुंचाया गया था और आचार्य्य के पास रुपया नहीं भेजा गया। यदि भेजा गया होता तब तो आचार्य्य को विश्वास की करनी की खबर ही होती। रुपया भेजे जाने का हाल किसी लेख से भी ज्ञात नहीं होता।

जब विश्वास के प्रति प्रभु की आज्ञा का सम्वाद आचार्य्य को मिला तब वे प्रभु के पास जाकर बोले कि "दंड अवश्य हमारा होना चाहिये। उस ने जो कुछ किया हमारे वास्ते किया।" तब प्रभु ने विश्वास को बुला कर पुनः ऐसा काम करने का निषेध किया जिससे आपकी, आपके पारिषदों की तथा आप के धर्म की निन्दा हो।

(कविकर्णपूर्ण का प्रभु का पादांगुष्ठ चूसना)

प्रभु के संन्यास ग्रहण करने पर जब (१५१३ ई० में) शिवानन्दसेन भक्तों को लेकर द्वितीय बार पुरी गये थे, उस समय बहुत से लोगों की स्त्रियां भी प्रभु के दर्शन को गई थीं। उस समय सेन की पत्नी गर्भवती थीं। प्रभु ने उस गर्भ के लड़के का नाम परमानन्दपुरी के नाम पर रखे जाने का आदेश किया था। लड़का हुआ। उसका नाम परमानन्द रखा गया। अब उस का वयस सात वर्ष का है। अबकी बार सेन महाशय उस पुत्र और

उसकी माता को भी साथ लेगये हैं। दूर से तो उस लड़के से सेन ने प्रभु के चरणों में प्रणाम कराया है, परंतु उसे आप के पादपद्मों में लोटाने का अवसर उन्हें नहीं मिला है क्योंकि प्रभु के वासस्थान पर सर्वदा भीड़ लगी रहती है।

एक सुदिन को ऐसा उत्तम अवसर आपही आप मिल गया। जहां सेन अपनी पत्नी और पुत्र के साथ ठहरे थे, उसी राह से प्रभु स्वरूप एवं अन्य भक्तों के संग निकल पड़े। सेन विनयपूर्वक उन्हें अपने स्थान पर लेगये और अपने पुत्र को आप के चरणों में लोटा कर उन्होंने कहा कि यह प्रभु का वर-पुत्र था और उसका नाम परमानन्ददास रखा गया था। (२)

प्रभु ने उस बालक के मस्तक पर अपना पांव रखना चाहा। पर बालक पांव का अंगूठा अपने मुंह में लेकर उसे चूसने लगा। प्रभु ने कहा "हे वत्स! देव-दुर्लभ वस्तु का स्वयं आस्वादन कर उसे भावी भक्तों के लिये भी प्रगट करना।" और आपने उसे कृष्ण कृष्ण कहने का आदेश किया। परन्तु बालक ने कृष्ण नहीं कहा। सब लोग कह कर, फुसला कर, डांट डपट कर, हार गये। परन्तु कृष्ण शब्द उसके मुख से नहीं निकला। इस से बालक के माता-पिता तथा अन्य लोग सब उदास हो गये। प्रभु को भी इस बात का दुःख हुआ कि वे संसार भर से हरि बोला कर भी इस बालक से नहीं बोलवा सके।

स्वरूप साथ थे। वह बोले, "प्रभु! आप ने कृष्ण-नाम-महामंत्र इस बालक को दिया है। वह सोच रहा है कि उसे कैसे प्रकाश रूप से उच्चारण करें।" प्रभ ने कहा, "अच्छा यही सही। हे बालक! जो कुछ हो वही कह।" इस पर उसी सात वर्ष की अवस्था में बालक परमानन्द ने यह श्लोक कहाः—

२ "अमिय-निमाई चरित" में यही लिखा है। किन्तु "चैतन्य चरितामृत" ग्रन्थ में कहा है कि शिवानन्द अपने पुत्र को प्रभु के स्थान पर ही ले गये।

"श्रवसोः कुवलयमक्ष्णोरञ्जनमुरसो महेन्द्रमणिदाम ।
वृन्दावनरमणीनां मण्डनमखिलं हरिर्जयतीति ॥"

सात वर्ष के बालक के मुख से ऐसा श्लोक केवल प्रभु की असीम कृपा से स्फुरित हुआ।

यह श्लोक सुन कर सबों को परमानन्द और महाश्चर्य्य हुआ। प्रभु ने कहा, " हे वत्स ! तू भारी कवि होगा। और तू ने अपने श्लोक में पहले व्रजाङ्गनाओं के कान के भूषण का वर्णन किया है, अतएव आज से तेरा नाम 'कवि कर्णपूर' हुआ।"

(पुरी में कालीदास)

एक साल भक्तों के संग कालिदास भी पुरी गये थे। वे उक्त रघुनाथ दास के नाते में चचा होते थे। कृष्ण नाम के सिवाय और कुछ नहीं जानते थे । वैष्णव-भक्तों का जूठन खाना ही इन का व्रत था। इस में ये वैष्णव की जाति पांत का विचार नहीं करते। खुले या चुपके जैसे मिले, ये उनका जूठन ले लेते। प्रसादान्न न मिले, तो जूठा बर्तन ही चाटते थे। वैष्णवों के पास यथासाध्य उत्तम उत्तम पदार्थ भी भेंट के लिये ले जाया करते थे।

एक बार जाति के भूमि—माली झड़ु नामक वैष्णव की सेवा में ये कुछ सुमिष्ट आम ले गये। इन्होंने पति-पत्नी दोनों को प्रणाम किया। दोनों ने इनके साथ स्नेहपूर्वक देर तक वार्तालाप किया। झड़ु ने कहा कि " हम तो नीच जाति के हैं, आपका कैसे आतिथ्य करें ? आज्ञा दीजिये किसी ब्राह्मण के घर से प्रसाद तैयार करा लावें। उसे भोजन कर आप हमें कृतार्थ करें। " इन्होंने उत्तर दिया कि ' आप के दर्शनमात्र ही से जन्म सफल हुआ। हां तनिक हमारे मस्तक पर पद रख कर पदरज दान कीजिये। यही बड़ी कृपा होगी।" नीच जाति के होने से ऐसा करने को वे सम्मत नहीं हुये। इन्हों ने एक श्लोक पढ़ कर दिखलाया कि कोई कृष्णभक्त नीच नहीं

होता। परन्तु झड़ू ने कहा कि "हम में न भक्ति ही है, और न ऐसा करने की शक्ति ही है।" तब वहां से विदा होकर चले। झड़ू भी कुछ दूर पहुंचाने गये। उन के फिरने पर ये उन के पैरों के चिन्ह की रज अङ्गों में लगाकर, उन के घर के पिछुआड़े छिप गये। जब उन्हों ने इन के दिये हुये आमों को खाकर उन की गुठलियां बाहर फेंक दीं, तब ये उन्हीं को चाट चाट कर कृतार्थ हुये।

इन के नीलाचल पहुंचने पर प्रभु ने इन पर बड़ी कृपा की। मन्दिर में दर्शन करने के समय गोविन्द प्रभु का कमंडल ले जाया करते थे। उसी से आप सिंहद्वार के उत्तर एक निम्ब-वृक्ष के तले एक गड्ढे में पांव धोते थे। आज्ञा थी कि पांव धोआ हुआ जल कोई न लेने पावे। परन्तु एक दिन पैर धोते समय कालिदास तीन चिल्लू जल लेकर पी गये। प्रभु ने हँस कर कहा, "अब नहीं और आज से फिर कभी नहीं।" प्रभु का जो प्रसाद किसी को नहीं प्राप्त हुआ, वह कालिदास को मिला; और स्थान पर जाकर प्रभु ने अपना अवशिष्ट भोजन भी इन्हें देने की आज्ञा की। ये वैष्णवों की पद-रज, पादजल एवं जूठन को साधन का बल मानते थे। एक तो प्रसाद कृष्ण का भोग, फिर उसे वैष्णव ने पाया। इस से उसमें दूनी शक्ति आगई। यही इन का सिद्धान्त था।

(श्री वल्लभाचार्य्य)

वृन्दावन से लौटते समय प्रभु की प्रयाग में श्रीवल्लभाचार्य्य से भेंट हुई थी। वे इन्हें अपने घर भी ले गये थे और एक बार नीलाचल पधार कर वहां भी आप से मिले थे। वहां पर प्रभु ने दो बार उन की भिक्षा भी ग्रहण की थी और उन के प्रति बहुत स्नेह भी प्रदर्शन किया था। उन्हें आपने युगलस्वरूप की उपासना की सम्मति दी थी और कदाचित उस उपासना में पुरी ही में वे गदाधर पंडित से दीक्षित हुये थे।

इस विषय में कुछ सन्देह उत्पन्न होने से हमने काशी-निवासी प्रियवर बाबू श्यामसुन्दर दास के पास पत्र भेजा था। यद्यपि इन्हें श्री वल्लभीय सम्प्रदाय से कुछ सम्बन्ध नहीं, तथापि उन्हों ने कृपापूर्वक अन्य लोगों से पूछ कर जो हमें उत्तर दिया है उसका सारांश यह है कि श्रीवल्लभाचार्य्य भी पहले गोपाल-स्वरूप के ही आराधक थे। गौराङ्ग जी से भेंट होने के बाद से वे युगलस्वरूप के उपासक हुये।

(श्री रामचन्द्रपुरी)

श्री माधवेन्द्र पुरी को प्रियपाठकगण पूरी तरह से जानते हैं। उनके अनेक शिष्य थे। और जो उन के शिष्य थे वे सबही कृष्ण-प्रेम में पगे हुये थे। केवल रामचन्द्रपुरी इस रस से वञ्चित थे। वे "अहं ब्रह्म" के सिद्धान्तवाले थे। शरीरत्याग के समय जब माधवेन्द्र पुरी कृष्ण-विरह में रोदन कर रहे थे उस अवसर पर ये गुरुही को उपदेश देने लगे थे कि "आप किस के लिये रोदन कर रहे हैं? कृष्ण तो आपही हैं।"

गुरु महाशय ने इन्हें अपने पास से दुरदुरा दिया था। कहा था, "यहां से चला जा। तेरा नास्तिकवाद सुनने से हमारा पर-लोक नष्ट हो जायगा।"

वही रामचन्द्र जी भ्रमण करते हुये पुरी पहुंचे। प्रभु ने इन्हें गुरु स्थानीय समझ कर बड़ी नम्रता प्रकट की और उनका आदर सम्मान किया। परन्तु उन्होंने क्या किया? वे इन के तथा इन के भक्तों के छिद्रान्वेषण में लगे। कभी इनके संग बैठ प्रभु के कार्य्यों के विषय में अनुसन्धान करते, कभी उनके पास जाकर उसी प्रकार की कोई चर्चा छेड़ते। पर किसी में कोई छिद्र हो तब तो?

एक दिन प्रातःकाल जब वे प्रभु के स्थान पर पहुंचे तो वहां चींटियों को चलते देख उन्होंने समझा कि प्रभु मीठा पदार्थ

खाते हैं। अतएव यह कहते हुये कि "संन्यासी को मीठा भोजन उचित नहीं" वे वहां से उठकर अन्यत्र चले गये।

इस का फल यह हुआ कि प्रभु ने अपना आहार एक दम कम कर दिया और इस कारण भक्तों ने भी ऐसा ही किया। इस से मन में पुरी बहुत प्रसन्न हुये। ऐसे लोगों को अन्य की अनिष्ट ही में तो आनन्द मिलता है।

फिर एक दिन प्रभु के पास जाकर कहने लगे कि "सुना है कि तुम ने पहले की अपेक्षा अपना भोजन आधा कर दिया है। यह अच्छी बात नहीं। शरीर दुर्बल होने से भजन कैसे करोगे?"

प्रभु ने नम्रभाव से कहा कि "हम आप के बालक हैं। आप जो कुछ शिक्षा करते हैं, उसी में हमारी भलाई है।"

पुरी सचमुच दयार्द्र होकर दूसरी बार प्रभु के पास नहीं गये थे। वरन् यह देखने गये थे कि उनके कार्य्य से प्रभु उन पर कुपित हुये थे या नहीं। परन्तु वहां कोप कहां? पीछे परमानन्द प्रभृति के आग्रह से प्रभु ने अपना भोजन कुछ बढ़ाया। परन्तु पहले की बात नहीं हुई। फल यह हुआ कि प्रभु दिन दिन दुर्बल होने लगे और देखनेवालों का दिल देख देख कर दुखने लगा।

रामचन्द्र पुरी आये और अपनी प्रकृति का परिचय दे कर विदा होगये। भक्तों ने समझा कि सिर से पत्थर उतरा। अब स्वच्छन्दता-पूर्वक प्रभु का निमन्त्रण, संकीर्तन और भोजन भजन होने लगा।

—:o:—

पञ्चम परिच्छेद

विशेष बातें

(प्रभु के भक्तों में साढ़े तीन पात्र)


तन्य चरितामृत" में लिखा है:—

"जगतेर मध्ये पात्र साढ़े तीन जन ॥
रूप गोसाईं . आर राय रामानन्द ।
शिखि माहिति तिन, तार भगिनी अर्धजन ॥"

अर्थात् प्रभु के भक्तों में स्वरूप दामोदर, रामानन्दराय, शिखि माहिति यही तीन पूरे पात्र थे और माहिति की बहन (माधवी दासी) अर्धपात्री थी। तात्पर्य्य यह कि श्री गौराङ्ग ने जो निगढ़रस जीवगण को प्रदान किया उसका सम्यक रूप से आस्वादन इन्हीं लोगों ने किया था। ये मर्मी भक्त थे।

स्वरूप दामोदर तथा रामानन्द का हाल अन्यत्र वर्णन हो चुका है। शेष दोनों प्राणियों की संक्षिप्त कथा यहाँ लिखी जाती है। शिखि माहिति और मुरारी माहिति दो भाई थे तथा माधवी दासी इनकी बहन थी। किन्तु भाई लोग बहन के साथ भाई सा बर्ताव करते थे। जन-समाज में भी वे तीन भाई कहके प्रसिद्ध थे। ये तीनों सर्वदा साथ रहते थे।

बड़े शिखि माहिति श्री जगन्नाथ के मन्दिर में लिखने पढ़ने और हिसाब किताब का काम करते थे। प्रभु की दक्षिण-यात्रा से प्रत्यागत होने पर सार्वभौम ने पुरी के प्रधान लोगों का प्रभु से परिचय कराने के समय इन लोगों का भी परिचय कराया था। माधवी ने भी दूर से प्रभु का दर्शन किया था।

मुरारी और माधवी ने दर्शनमात्र ही से प्रभु को आत्मसमर्पण किया और वे उन्हें कृष्ण भगवान समझने लगे। शिखि ने कहा,

"निस्सन्देह ये संन्यासी हम लोगों की भक्ति के पात्र हैं। किन्तु इन्हें श्री जगन्नाथ मानने में पाप है। जीव में ईश्वर-बुद्धि करना घोर अपराध है।" इस मतविरोध का फल यह हुआ कि उन लोगों में परस्पर बोल चाल और देखा-देखी बन्द हो गई।

अनन्तर शिखि ने एक रात यह स्वप्न देखा कि दर्शन-काल में प्रभु धीरे धीरे आगे बढ़ कर श्री जगन्नाथ के शरीर में प्रवेश करते हैं और फिर बाहर होते हैं। जब बाहर होते हैं तो उनकी ओर देख कर हँसते हैं। दो चार बार ऐसा करके उनके पास आकर आपने यह कहते हुये उन्हें अंक में लगाया कि "तुम मुरारी और माधवी के भाई हो न ? आओ, तुम्हें छाती से लगावें।" यह स्वप्न देख शिखि ने ज़ोर से चिल्ला कर अपने भाई और बहन को पुकारा और स्वप्न-वृत्तान्त कह वे रोने लगे। वे यह भी बोले कि उस समय से उन्हें गौराङ्ग ही चतुर्दिक दृष्टिगोचर होते थे।

भोर का समय था। प्रभु गरुड़ द्वार के निकट खड़े दर्शन कर रहे थे। वे तीनों व्यक्ति वहां गये। उन्हें देख प्रभु ने शिखि को इशारे से बुलाया और पुनः वही बात कह कर कि "तुम मुरारी और माधवी के भाई हो न" उन्हें अंक में लगाया और दोनों भूमि पर गिर पड़े। इस अवसर पर प्रभु ने उन के शरीर में शक्ति का संचार किया। पीछे स्वरूप तथा रामानन्द के समान रसज्ञ हुये।

माधवी पुरुष के समान पंडिता और तपस्विनी थीं। प्रभु श्री राधा के गण में इन की गणना करते थे। इन के स्त्री होने और प्रभु की समीपवर्तिनी होने की अधिकारिणी नहीं होने से सम्भवतः ये आधा पात्र मानी गई हैं।

परंतु गौराङ्ग की जीवनियों में स्वरूप तथा रामानन्द राय के समान प्रभु से इन लोगों का कोई विशेष सम्बन्ध देखने में नहीं आता।

(नृत्यकारी तथा रूपवान)

प्रभु को मण्डली में नृत्यकारी तो प्रायः सभी लोग थे, परन्तु सर्वश्रेष्ठ दो ही थे—स्वयं प्रभु और श्री वक्रेश्वर । सुन्दर पुरुष चार थे । सौंदर्य-क्रम से उन का नाम उल्लेख किया जाता है, यथा,—स्वयम् प्रभु, श्री गदाधर, श्री वक्रेश्वर और श्री रघुनन्दन । इस से वक्रेश्वर सुन्दर और गानकुशल दोनों हीं देखे जाते हैं ।

(अवतार वा प्रकाश)

प्रभु के भक्तों में विशेष विशेष भक्त विशेष विशेष गोपी और देवता के अवतार माने गये हैं अर्थात् समय समय उन लोगों में उन का प्रकाश होता था । यथा, गदाधर=श्री राधा, स्वरूप दामोदर = ललिता, रायानन्द = विशाखा, जगदानन्द = सत्यभामा । नित्यानन्द = बलराम, अद्वैताचार्य्य = महादेव । ये प्रभु के अंशावतार भी माने जाते हैं । मुरारी = हनुमान, श्रीवास=नारद (झगड़ा लगाने के विचार से नहीं, भक्ति के विचार से) और वासुदत्त = प्रह्लाद ।

(आवेश और आविर्भाव)

प्रभु के दर्शन से लोगों का कल्याण तो अवश्य होता था । कोई दर्शनमात्र से ही कृतार्थ हो आपके चरणों में आत्मसमर्पण करते थे और किसी के कल्याण में कुछ विलम्ब होता था । कुछ ऐसे भी कर्म के कुड़े थे जिन के हृदय पर आप के दर्शन का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता था । प्रकाशानन्द जैसे सुपंडित तथा संन्यासियों के मुकटमणि तो क्षणमात्र में कृतार्थ हो जीवनपर्य्यन्त आप के भक्त बने रहे और रामचन्द्रपुरी पर आप के साथ कई मास सहवास का अणुमात्र भी असर नहीं हुआ ।

साक्षात दर्शन के सिवाय आविर्भाव और आवेश के द्वारा भी आप जीवों का कल्याण करते थे । आप का आविर्भाव शची माता के

भवन में, राघव के घर एवं श्री नित्यानन्द तथा श्रीवास के कीर्तनों में सदा हुआ करता था; एवम् योग्य पुरुषों और भक्तों के शरीर में आवेश होने से वह भक्ति प्रकाश करता था और उस के दर्शन से उस प्रान्त के लोग वैष्णव हो सुख भोग करते थे। पूर्वोक्त धोबी की घटना में एवं दक्षिणयात्रा में यह लीला विशेष रूप से देखी गई है।

बङ्गाल में अम्बिका कालना के नकुल ब्रह्मचारी के शरीर में आप का आवेश होता था। उनकी देह में प्रवेश कर आप भक्ति की शिक्षा देते थे। प्रवेश होने से ही उन्हों ने नाचना, गाना, हँसना और रोना आरम्भ किया और सर्वत्र प्रगट हो गया कि उन के शरीर में प्रभु का प्रकाश हुआ है।

शिवानन्द सेन मन में यह स्थिर कर कि यदि सचमुच प्रकाश हुआ है तो वे इन्हें स्वयं बुलावेंगे, उन की परीक्षा करने चले। कालना पहुंच कर ये दर्शकों की भीड़ के बाहर खड़े हुये कि इतने में चार आदमी आकर इन्हें खोजने लगे कि "शिवानन्द कौन है। कहां हैं? ब्रह्मचारी उन्हें बुलाते हैं।"

यह सुनते ही दौड़े हुये उन के पास जा कर सेन ने सादर उन के चरणों में प्रणाम किया। वे बोले, "तुम हमारी परीक्षा करना चाहते हो न? गौर गोपाल यही तुम्हारा पञ्चाक्षरी मंत्र है।" सेन महाशय चुप हो गये। उन के पुत्र कर्णपूर ने ही अपने ग्रन्थ में इस घटना का वर्णन किया है।

प्रभु ने आचार्य्य-सृष्टि द्वारा भी जीवों के निस्तार का उपाय किया। उनका वृत्तान्त आगे ज्ञात हो गया।

(श्री अद्वैताचार्य्य की पहेली)

प्रभु की छत्तीस वर्ष की अवस्था में अद्वैताचार्य्य ने जगदानन्द के हाथ आप के पास यह "तर्जा" भेजी थी—

"प्रभु के कहिओ आमार कोटी नमस्कार।
एइ निवेदन ताँर चरणे आमार॥

वाउल के कहिओ लोक हइल आउल।
बाउल के कहिओ हाटे ना विकाय चाउल ॥
वाउल के कहिओ काजे नाहिक आउल।
वाउल-के कहिओ इहा कहिआछे वाउल ॥"

यह सुन कर सब लोग हँसने लगे। प्रभु ने भी हंस कर कहा "उन की जो आज्ञा।" सब लोगों ने तो इसे हँसी खेल समझा, "परन्तु स्वरूप ने व्यग्र हो कर इस का आशय पूछा, प्रभु ने कहा, पहले देवों का आवाहन किया जाता है। तब पूजन और फिर विसर्जन। कदाचित् यही उन का आशय हो।"

स्वरूप ने समझा यह पहेली नहीं है। गौराङ्ग धर्म्महाट उठाने की यह विज्ञप्ति है। प्रभु पागल अद्वैतिया और दूसरे पागल उन के अधीनस्थ अद्वैताचार्य्य। यह पागल अपने स्वामी पागल को नमस्कार कर कहते हैं कि " चावल बिक्री के निमित्त हाट में मंगाया गया था। लोगों ने उसे लेकर अपना अपना भंडार भर दिया। अब उन्हें कोई अभाव नहीं रहा। अतएव अब हाट में उस की बक्री नहीं होती, क्योंकि उसकी अब आवश्यकता नहीं। सब घर इस धन धान से पूर्ण हो गये।"

पाठकों को स्मरण होगा कि वैष्णवों का क्लेश देख कठिन आराधना द्वारा आचार्य्य ने ही प्रभु का संसार में आवाहन किया था और उन्हों ने यह भी वर मांग लिया था कि बिना उन की अनुमति के प्रभु लीला सम्बरण नहीं करें। आज उन्हों ने इसकी अनुमति देदी। आगे प्रभु का जैसा विचार हो।

अद्वैताचार्य्य ने समझा कि अब श्रीकृष्ण प्रेम और भक्ति का प्रचार और जीवों का उद्धार हो गया। एवं इसकी नीव दृढ़ जम गई, शेष कार्य्य जो होगा वह आचार्य्यों के द्वारा साधित होता रहेगा। अब श्री गौराङ्ग गोलोक प्रयान कर सकते हैं। इसी से उन्हों ने पहेली द्वारा अपनी अनुमति की सूचना दी थी।

षष्ठ परिच्छेद ।

अन्तावस्था और अन्तर्धान ।



अद्वैताचार्य्य ने गौर-हाट उठाने की अनुमति भेजदी, परंतु प्रभु ने अभी हाट नहीं उठाया । कुछ काम अभी शेष रह गया था । इसकी खबर आचार्य्य को भी नहीं थी । प्रभु के स्वयम् आदर्श दिखाये विना दूसरों के द्वारा इस का साधन असम्भव था । अर्थात् आप ने स्वकार्य्य द्वारा भक्तों का नम्रता तथा दीनता की शिक्षा दी थी; भक्ति की चर्चा की थी; प्रेम का पथ दिखलाया था। परन्तु स्वाचरण और रसास्वादन द्वारा जीवों को सर्वोत्तम भजन अर्थात् व्रज के निगूढ़ रस के आस्वादन की शिक्षा बाकी थी । यही दिखाने के लिये बारह वर्ष (१) और इस धरातल पर शोभायमान रह कर आप प्रेम की धारा बहाते और इसे पवित्र करते रहे ।

इस रस की, अर्थात् कान्ताभाव के भजन की, व्याख्या भागवत तथा अन्य पुस्तकों में वर्त्तमान है । आप ने इसी भाव का भजन करके संसार को दिखाया और उस के करने का ढंग सिखलाया ।

आप के हृदय में कृष्णानुराग का उदय तो गया से प्रत्यागत काल से ही हुआ था । कन्हाई नाटशला ही में पूर्वानुराग जन्मा था। इसी समय से आप कृष्णप्रेम में व्याकुल हो रहे थे। उसी काल से वृन्दावन का ध्यान मन में जमा हुआ था । और वहां से लौटने के समय आप अपना मन मानों वहीं छोड़ आये थे । शरीर पुरी

---

१ "अमियनिमाई चरित" में आप के अन्तर्धान के १२ वर्ष पहले अद्वैताचार्य्य के उक्त पहेली आने की बात पाई जाती है और प्रागुक्त "विश्व कोष" पृ० ५६१-६२ से ज्ञात होता है कि आप के समुद्र में कूदनेकी घटना के बाद और लीलासम्वरण के कुछ ही दिन पहले वह प्रहेलिका आई थी ।

में था और मन वृन्दावन में विचरण कर रहा था। हां! सब काम स्वाभावतः होता था पर चित्त सर्वदा उसी ओर दौड़ा करता था।

आप के वृन्दावन से आने के बाद ही रामचन्द्र पुरी का पुरी में आगमन हुआ था। वे स्वभावतः एक डंक मारते गये थे। उन्हों ने आप के भोजन की आलोचना की थी और आप ने उसी क्षण से अपना आहार कम कर दिया था। अतएव आप का शरीर नित्य प्रति कृश और क्षीण होने लगा था। हड्डीयां दीखने लगी थीं। भक्तों की दृष्टि में आप के सोने बैठने में कुछ कष्ट प्रतीत होने लगा।

जगदानन्द ने पुराने वस्त्रों का एक तोषक और तकीया बनाकर स्वरूप के हवाले किया था। प्रभु ने हँस कर कहा कि "तब तो एक चारपाई भी लानी होगी और पैर दबाने वाला एक नोकर भी रखना पड़ेगा। तभी तुम लोगों की मनोकामना सिद्ध होगी।" यह कह कर आपने उन का व्यवहार नहीं किया।

पुनः भक्तों की सम्मति से स्वरूप ने पुरानी फटी गातियों में केलेके सूखे पतों को भर कर उसका बिछावन तैयार किया और लोगों के आग्रह से प्रभु को उसे काम में लाना पड़ा।

इधर अद्वैताचार्य की "तर्जा" पहुंची। अब प्रभु हृदयसरोवर से राधाकृष्णलीला बाहर कर उसे आप आस्वादन करने लगे और भक्तों को उस के आस्वादन की रीति दिखाने लगे।

पहले आप के मन में कभी उद्धव-भाव कभी गोपी-भाव और कभी राधा भाव का उदय होता था। कभी इस का प्रभाव रहता और कभी उसका। अब आप बाह्य जगत से आंखें बन्द कर के अभ्यान्तरिक जगत में सवेग प्रवेश करने लगे।

पहले जो भाव उदय होता था वह थोड़े काल तक ठहरता था। भावावेश प्रायः सन्ध्या से होता था और निन्द्रावस्था में लोप हो जाता था। पर अब वह चिरस्थायी होने लगा। दिन में भी होने

लगा और दिनों तक रहने लगा। एवं अब अन्य सब भावें दबने लगे, केवल राधाभाव बढ़ने और बलिष्ठ होने लगा। अब आप सर्वदा राधाभाव में विभोर श्री कृष्णके विरह की ही बातें करते। 'बातें कहैं तो वही ढङ्ग की, औा कथाएं कहैं वही योजन की'' यही दशा हुई। कभी साधारण बातें करते; कभी सखी समझ कर स्वरूप और रामानन्द के गले लग कर कृष्ण की बातें पूछते और कभी महा विरहिणी के समान छाती फाड़ कर रोने लगते।

येही लोग इनके इस काल के मर्मी भक्त थे। इन्हीं के संग "गम्भीरा'' अर्थात् वासस्थान के अन्तःपुरी की एकान्त भीतरी कोठरी में आधी रात तक बैठे ये वार्तालाप किया करते थे। जब विरहवेदना वृद्धि पाती, तब येही लोग इन्हें समझाते और इन का चित्त शान्त करने के लिये, स्वयं या इनके कहने से, स्वरूप समयानुसार कृष्ण लीला गान करने और रामनन्द श्लोकें पढ़ कर उनके भावों की व्याख्या करते। अथवा कभी स्वयम् प्रभु भागवत लिखित या स्वरचित श्लोकें पाठ कर सुख अनुभव करते। इसी मध्य में यदि कभी चेतना हो जाती तब कहने लगते "वाह! हम क्या बक रहे थे? कहां राधा, कहां हम? हम तो कृष्ण चैतन्य पुरी में आसीन और कहां वृन्दावन की कथाएं'' इत्यादि।

सारांश यह कि श्री कृष्ण के मथुरा-गमन पर जैसे राधा को विरहोन्माद हुआ था, वही दशा प्रभु ने अपने आचरणों के द्वारा दिखला कर बताया कि कृष्णवियोग में भक्तों को, अर्थात् जीवों को, कैसे व्याकुल होना चाहिये। जीव भगवान के निमित्त जितना ही व्याकुल होगा, वे उतना ही उस पर द्रवीभूत होंगे।

प्रेम में तीन बातें मुख्य हैं—पूर्वानुराग, मिलन और बिछुड़न। मिलन में वह आनन्द और सुख नहीं जो मिलन की आशा में है—चाहे वह मिलन के पूर्व हो, चाहे मिलन के बाद पुनर्वियोग काल में हो। प्रेमपात्र घर में वा बाहर बैठा हो, जब मन में आया जाकर

उस से दो बातें कर लीं। इस में कहिये सचमुच क्या आनन्द होगा ? हां ! वियोगावस्था में सर्वदा प्रेमपात्र ही का ध्यान बँधा रहे, उसी की छवि नेत्रों के सामने नृत्य करती रहे तब उस में कुछ विलक्षण आनन्द प्राप्त होगा और विरहवेदना सहने के अनन्तर मिलन सुख अत्यन्त मधुर प्रतीत होगा।

इसी कृष्णवियोग के आदर्श को लेकर, राधाभाव से वस्तुतः चित्तव्यथीत हो, प्रभु ने जीवों को उपदेश दिया कि "हे जीवगण ! तुम्हें भी भगवान से वियोग हो गया है, तुम्हें भी उचित है कि उन के विरहताप से व्याकुल हो अहर्निशि उनका चिन्तन करो तब वे द्रवीभूत हो तुम्हें अवश्य अपनावेंगे।"

बिरहवेदना पूर्णमात्रा को पहुंचने से गोपियों के समान प्रभु में भी दश दशाओं का उदय हुआ था। यथा—चिन्ता, जागरण, उद्वेग दुर्बलता, अङ्गमालिन्य, प्रलाप, व्याधि, उन्माद, मूर्छा तथा मृत्यु-प्राय वा मृत्यु।

ये दशाएं प्रभु में नित्य ही देखी जाती थीं और कभी २ दसवीं दशा का उदय होते होते एक बार प्रभु अकस्मात् इस संसार से विदा हो गये। नीचे की कई घटनाओं में पाठकवृन्द स्वयम् इसका प्रमाण पावेंगे।

एक दिन आप यमेश्वर टोटा गोपीनाथ के मन्दिर में गदाधर से मिलने जा रहे थे। गोविन्द भी साथ थे। उसी समय श्री जगन्नाथ के मन्दिर में एक देवदासी सुमधुर सुर से गीत गोविन्द का पद गा रही थी। मार्ग में एक जगह सीज का घेरा था। वह मधुर तान कानों में पड़ते ही यह विचारे बिना कि पुरुष गा रहा है या स्त्री, आप प्रेमोन्मत्त हो उसे आलिङ्गन करने दौड़े। पावों में कांटे चुभने लगे। पर उस का कुछ ख्याल नहीं किया। यह देख गोविन्द ने दौड़ कर कहा कि "आप कहां जा रहे हैं ? वह देवदासी गा रही है।" तब आप सचेत हो गोविन्द को धन्य-

वाद देते हुये बोले "तुम ने हमारी बड़ी रक्षा की। नहीं तो, इस अपराध से हमें अभी प्राण विसर्जन करना पड़ता।" तब से सब लोग सावधानतापूर्वक आप की निगरानी करने लगे।

एक समय आप ने स्वप्न में रासलीला-दर्शन का सुख लेते सारी रात बिताई। जागने पर श्री जगन्नाथ के दर्शन को गये। वहां भी स्वप्न-संस्कार-वश आप मुरलीधर की छवि अवलोकन का आनन्द ले रहे थे। भीड़ भारी थी। सुविधा न पाने से एक स्त्री इन के कन्धे पर एक पांव रख और दिवाल पकड़ कर ठाकुर का दर्शन करने लगी। गोविन्द के ध्यान दिलाने से वह महा लज्जित हो शीघ्र कन्धे से उत्तर आप के चरणों में लोट गई। आप ने गोविन्द से कहा "तुम ने इस के दर्शन सुख में बाधा दी यह बात अच्छी नहीं हुई। इसे सानन्द दर्शन करने देते। अहा! इस के समान हमें अनुराग नहीं। जगन्नाथप्रेम में यह ऐसी तन्मय हो रही थी कि हमारे कन्धे पर पैर रखने की भी इसे सुधि नहीं हुई। अहा! यह कैसी भागवती है! इस की वन्दना करने से, इस के प्रसाद और आशीर्वाद से हमारी ऐसी अवस्था हो सकेगी।"(२) परन्तु इस घटना से खयाल बदल जाने के कारण श्री जगन्नाथमूर्त्ति में आप को पुनः कृष्णदर्शन का आनन्द न मिल सका। अतएव आप उदास हो वासस्थान पर लौट कर धरती पर बैठे उसे नख से खोदने और रोने लगे।

सारा दिन इसी तरह विलाप में कटा। रात को स्वरूप और रामानन्द ने गान, श्लोकपाठ तथा कथोपकथन से आप का कुछ मन बहलाया। फिर रामानन्द अपने घर चले गये। स्वरूप अपनी कुटी में न जाकर बाहर दरवाज़े की जंजीर बन्द कर वहीं सो रहे।

२. किसी किसी के अनुसार प्रभु ने गोविन्द को उसे इस प्रकार दर्शन करने में बाधा डालने से रोका और उस के कन्धे से उतरने पर, आपने उसकी पदवन्दना की।

प्रभु भीतर उच्च स्वर से नाम-कीर्त्तन कर रहे थे। कुछ देर के बाद एकाएक चुप हो गये। स्वरूप जंजीर खोल कर देखें तो आप ग़ायब। चारदिवाली तड़प कर हाते के बाहर निकल गये थे। खोजने से मन्दिर के उत्तर अचेत भूमि पर पड़े पाये गये। मुंह से फेन निकल रहा था; कानों में ज़ोर ज़ोर से कृष्णनाम उच्चारण करने पर आप "हरि बोल" कहते उठ बैठे और सचकित इधर उधर देखते घटना का कारण पूछने लगे। लोगों ने घर लाकर सब बातें सुनाईं। (२)

इन्होंने कहा "हमें केवल इतना ही स्मरण है कि कृष्ण हमें दर्शन देकर पुनः अदृश हो गये और हम उनकी खोज में उनके पीछे दौड़े।"

एक रात फिर इसी प्रकार ग़ायब होने पर जब आप की खोज की गई, तब आप मन्दिर के दक्खिन गायों के मध्य हाथ पैर सिकोड़े पड़े पाये गये। कोई गाय इन्हें चाटती, कोई निहारती, कोई सूंघती थी और कोई चुपचाप पास में खड़ी थी। फिर आप पूर्णवत होश में लाये गये। तब कहने लगे, 'तुम लोगों ने हमें परम सुख से वंचित किया। हम वेणुनाद सुन कर वृन्दावन गये। कृष्णवंशी बजा रहे थे। राधा जी का भी वहां आगमन हुआ। दोनों कुंज में गये। हम भी उन के पीछे घुसे। वहीं उनके नृत्यगान का आनन्द लूट रहे थे कि तुम लोग वहां से हमें पकड़ लाये और हमारा सुख भङ्ग कर दिया। अच्छा कोई सरस गान कर हमारा हृदय ठंडा करो।"

एक दिन सबेरे गोविन्द के संग समुद्र स्नान के लिये जाते समय चटक पर्वत पर नजर पड़ते ही आप को गोवर्द्धन का ख्याल

२. इस घटना को तथा इस के बाद की घटनाओं को "चैतन्य-चरितामृत" आदि के प्राचीन लेखकों ने रघुनाथ दास से सुन कर वा उनके "कड़चा" को देख कर अपनी पुस्तकों में वर्णन किया है। वे प्रभु के एक अन्तरङ्ग सेवक और आपके खोजने वालों में से थे।

आया बस गोवर्द्ध की स्तुति कर आप वक्र पहाड़की ओर दौड़ चले। गोविन्द भी चिल्लाते पीछे लगे। नगरनिवासी भी चिल्लाहट सुन कर स्नानघाट की तरफ़ दौड़े। प्रभु तो चलने और दौड़ने में पैरों में मानो पर लगा लेते थे। परन्तु इस समय कुशल हुआ कि थोड़े ही दूर जाते जाते सात्विकभावों के वशीभूत हो आप भूतल पर गिर पड़े। गोविन्द तुम्बा का जल मुख पर छींट कर गातों से हवा करने लगे। इतने में स्वरूप प्रभृति और बहुत से दूसरे लोग भी आ पहुंचे। चेतना लाभ करने पर आप हरिध्वनि करते उठ खड़े हुये।

फिर रो रो कर कहने लगे कि "हम ने गोवर्द्धन पर जाकर श्रीकृष्ण को गायें चराते देखा। उनकी वेणुध्वनि सुन कर राधा रानी भी वहां पहुंच गईं। दोनों कुंज में गये और सखीगण कुसुम चुनने लगीं। इसी समय तुम लोग कोलाहल करके हमें यहां धर लाये। हा! तुम लोगों ने हमें वह अलभ्य सुख लूटने नहीं दिया।" यह कह कर आप अधिक रोने और नाचने लगे। तब तक पुरी और भारती भी वहां आ पहुंचे। तब आप को पूरी चेतना हुई और उन्हें नमस्कार कर आप ने उन लोगों के यहां आने का कारण पूछा। पुरी ने हँस कर कहा, कि "हम लोग तुम्हारा नाच देखने आये हैं।" पुनः सब लोग स्नान कर अपने स्थान पर लौट गये।

श्री मद्भागवत के अनुसार कृष्णप्रेम ही जीवों का परम कल्याणकारक है। वह कृष्णप्रेम क्या है यही दिखाने और सिखाने के लिये आप का प्रादुर्भाव हुआ था। जो करने योग लीलाएं थीं, उन्हें आप ने कर दिखाया और जो दिखाने योग्य नहीं थीं, उन्हें वर्णन कर समझा दिया।

कृष्ण-भगवान की सब लीलाओं में रासलीला ही प्रधान है। और यही उन के प्रेम की पूर्ण-प्रकाशिका है। और प्रभु को अब का रंग दिखाना है।

श्रीकृष्ण जब राधा को संग लेकर अन्तर्ध्यान हो गये हैं तब गोपियां उन की खोज में पेड़ों और लताओं से उन का पता पूछ रही हैं। प्रभु एक दिन वही रंग दिखलाते हैं।

आप समुद्रकिनारे जा रहे थे। उस समय एक पुष्पोद्यान पर दृष्टि पड़ी। वृन्दावन का ध्यान आया। शरदपूर्णिमा और रास की याद आई। बस अब क्या था? आप उस वाटिका में घुस पड़े और जैसे रासकाल में गोपियों ने श्री कृष्ण का अन्वेषण किया था, वैसे ही प्रेमावेश में आप भी भगवान की खोज करने लगे। भागवत-वर्णित श्लोकों के अनुसार बातें कह कह कर वृक्षलतादि से कृष्ण का पता पूछने लगे। यथा;—

आम पनस पियार जामुन, अरु तरु कुविदार।
तीर्थवासी तुम सकल, कछु करहु पर उपकार॥
कृष्ण आये तुव निकट, तुम लहे दरस अनन्द।
तासु कहँ उद्देश मुहि सों, कहहु प्रिय निर्द्वन्द॥

किन्तु पेड़ सब चुप काठ से खड़े रहते हैं।

उतर न पावत तब करत, अस मन महँ अनुमान।
पुरुष-जाति कहिहैं कहां, कृष्णक सखा सुजान॥

तब स्त्री जाति के पौधों और लताओं से पूछते हैं:—

तुलसि मालति मल्लिके अरु माधवी छविवन्त।
तुव निकट आये तिहारे प्रिय सुराधाकन्त॥
कृष्ण कँह उद्देश कह सब राखहु मम प्रान।
हो सकल तुम हितु हमारी सखिन केर समान॥

इन से भी कुछ उत्तर न पाकर कहते हैं:—

हैं दासी श्रीकृष्ण की, किमि कहिहैं कोउ बात।
मौन साधि यातें खड़ीं, मोइ कहति सकुचात॥

यह कह कर मृगों से पूछते हैं:—

हो निहार्‌यो कतहुँ निश्चय, कृष्ण राधा संग।
याहि तें आनन्द करत फिरत हो सउसंग॥

हौं सखी श्री लाड़िली की, नाहि कोउ बहिरङ्ग।
करि दया मुहि को बतावहु, अहो वृन्द-कुरङ्ग ॥

इसी प्रकार खोजते खोजते आप एक सरोवर के समीप पहुंचे। वहां एक वृक्ष पर दृष्टि पड़ी। समझा कि वह कदम का पेड़ है और उस पर श्री कृष्ण विश्वविमोहिनी छवि धारण किये यमुना किनारे वंसी बजा रहे हैं। यह ध्यान आते ही आप मूर्छित हो गये। देह में पुलकावली छा गई। मुखकमल खिल उठा। नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगा। भक्तों ने आकर यत्नपूर्वक चैतन्य कराया। तब आप पूछने लगे, "कृष्ण कहां गये? हम ने उन्हें अभी देखा है। हमें पागल बना कर कहां गये? कहो स्वरूप! अब हम क्या करें?" तब स्वरूप श्री जयदेव-कृत पद गाने लगे और आप नाचने लगे।

एक दिन आप मन्दिर के सामने खड़े दर्शन कर रहे थे। उसी समय गोपाल-वल्लभ भोग लगा। सेवकों ने आप को कुछ प्रसाद दिया। आप अणुमात्र मुंह में रख कर शेष गोविन्द द्वारा अपने स्थान पर लाये और यह कह कर कि "प्रभु के जूठन का कणिका मात्र बड़े सुकृति फल से प्राप्त होता है।" आप ने सब भक्तों को उसे बँटवा दिया।

लोगों ने उस प्रसाद में अपूर्व स्वाद और अनैसर्गिक सुगंध पाई। प्रभु को श्री कृष्णाधर के रस की माधुरी दिखानी अभिप्रेत था। इसी से उस प्रसाद में आप ने वह शक्ति देकर दिखाया

एक दिन आप ने कृष्ण की जलकेलि लीला दिखाई। पर इस प्रकार की लीला देखानी क्या था, भक्तों को महा भयाकुल करना और उन का प्राण सुखाना था।

यह शरत्काल था। आप रासरस में माते रहते थे। आप का सदा वंशी का ध्यान बँधा रहता था। आई टोटा में भ्रमण कर रहे थे। सागर की ओर दृष्टि गई। चान्दनी सागर के वक्षस्थल पर

झल-मल क्रीडा कर रही थी। जलकेलि का श्लोक पढ़ कर उस का मज़ा स्वयं चखने के लिये उस रात्रिकाल में आप जलनिधि में कूद पड़े। सब लोग चारों ओर खोजने लगे। कहीं कुछ पता नहीं। सब चिन्ताग्रस्त थे। रात का तीसरा पहर था।

इतने में लोगों ने देखा कि एक मछुआ गाते, कृष्ण कृष्ण कहते और नाचते आ रहा है। स्वरूप ने उसके विह्वल होने का कारण उस से पूछा।

उस ने उत्तर दिया, कि "जाल में एक मुर्दा पड़ा; उस को निकालते ही और छूते ही हमारी यह दशा हो गई। इतने दिनों से रात को मछली मारते हैं, परंतु ऐसे भूत से कभी भेंट नहीं हुई।"

स्वरूप ने उसे आश्वासन दिया और उस के द्वारा प्रभु को रेत पर पड़ा पाकर यत्नपूर्वक इन्हें चैतन्य किया।

कुछ होश होने पर कहने लगे कि "कृष्ण यमुनाजल में गोपीगण से झगड़ने लगे। हम ने देखा कि गोपियों के मुख लाल कमल से और कृष्णमुख उतना ही नील कमल से हो गये। दोनों प्रकार के पंकजसमूह परस्पर एक दूसरे को आकर्षण करने लगे। पुनः लाल और नील पद्मवृन्द एक में मिल गये। इस जलकेलि के अनन्तर कृष्ण गोपियों के संग कालिन्दी कूल पर विराजमान हुये।"

एक दिन भक्तगण आप को सेला कर अपने अपने घर गये। अकस्मात् निन्द्राभंग हो जाने से आप उठ बैठे। साथही कृष्णविरह भी जागृत हो गया। कृष्ण की खोज के लिये बाहर जाने की चेष्टा करने लगे। दिवार में मुंह रगड़ने से या सिर टकराजाने से ठुड्डी, ओठ और नाक में चोटें आगईं। रुधिर गिरने लगा। उस दिन से विष्णु-प्रियाजी के अभिभावक दामोदर पंडित के भाई शंकर पंडित नित्य आप के साथ सोने लगे। आप उनपर पांव पसार कर सोते थे। इससे वे प्रभु के पांव-तकिया (पदोपधान) के नाम से प्रसिद्ध

हुये। वे प्रभु का पांव टीपते २ उन पादपद्मों को हृदय में लगाये शयन करते थे। यदि रात्रि में शंकर उघार हो जाते तो प्रभु स्वयम् उन्हें अपनी खिंथा ओढ़ा देते थे। इस प्रकार हृदय में प्रभु के चरणों को लगाये रहने का सौभाग अन्य किसी को प्राप्त नहीं हुआ॥

इन दिनों में आप मुख से अपने लोगों से और आगन्तुकों वा दर्शकों से बातें करते थे, परन्तु दिल सर्वदा कृष्ण ही से बातें किया करता था। उसी समय "शिक्षाष्टक" नामक आठ श्लोकों को आपने प्रगट किया था। (४)। इन्हीं दिनों में आपने एक दिन परमानन्दादि को उपदेश भी दिया था।

सम्वत १५९०(=शाके १४५५=ई०१५३३) का असाढ़ महीना, ७ वीं तिथि, रविवार और समय तीसरा पहर था। गौड़ीय भक्तगण पुरी पहुंच गये थे। आप अपने स्थान में बैठे थे और भक्तवृन्द चारो ओर से आप को घेरे हुये थे। दुःख के साथ आप वृन्दावन की बातें कर रहे थे। एकाएक चुप हो गये। दीर्घ निश्वास लेकर आप उठ खड़े हुये। भक्तलोग भी खड़े हो गये।

फिर आप मन्दिर की ओर चले। भक्तगण भी आप के पीछे लगे। पहले आप अकेले कभी मन्दिर की राह नहीं लेते थे। इस से लोग कुछ चिन्तित हुये।

मन्दिर में पहुंच कर द्वार पर खड़े हो आप भीतर झांकने लगे। फिर आप मन्दिर में प्रवेशकर श्री जगन्नाथ के सम्मुख अग्रगामी हुये। आप के भीतर जातेही कपाट आपही आप बन्द हो गया। भक्तगण चुप और व्याकुल चित बाहर खड़े रहे। क्योंकि उस दिन की सब कार्रवाइयां नई देखने में आ रही थीं।

इतने में भीतर से कुछ गोलमाल सुन पड़ा। गुञ्जाभवन में एक पंडा थे। वे वहां से प्रभु को अच्छी तरह देख रहे थे। उन के भीतर का कार्य्य देख कर वे चिल्लाते हुये दौड़े और कपाट

४ "चैतन्य चरितामृत" की यहीं समाप्ति हुई है।

खोल-बाहर निकल कर उन्हों ने कहा, कि "प्रभु ने मन्दिर में प्रवेश कर जगन्नाथ के सामने खड़ा हो पहले यह निवेदन किया कि "सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि—इन चार युगों में कलियुग का एकमात्र-धर्म संकीर्त्तन है। हे जगन्नाथ! आप पतितपावन हैं। यह कलियुग आया है, इस समय कृपया आप जीवों को आश्रय दीजिये। यह कह कर प्रभु ने श्री जगन्नाथ को उठा कर अंक में लगाया और उन्हीं में आप लीन हो गये।"

यह सुनतेही कितने मरे, कितने मरते मरते बचे। जो बचे, वे नीलाचल परित्याग कर वृन्दावन चले गये। पुरी से गौरहाट उठ गया सही, पर प्रभु की गद्दी खाली नहीं हुई। वह भगवान वक्रेश्वर को प्राप्त हुई। उन्होंने निमानन्द (निमाई-आनन्द) सम्प्रदाय प्रचलित किया। इस सम्प्रदाय—वाले निमाई तथा विष्णुप्रिया का भजन करते हैं। येलोग माधुर्य्योपासक हैं।

किसी के कथनानुसार अन्य भक्तों ने चेतना लाभ किया, किन्तु स्वरूप का हृदय फट कर प्राण बाहर हो गया।

"अमिय-निमाई-चरित में" चैतन्य मंगल के अनुसार यह घटना उपर्युक्त रीति से वर्णित पाई जाती है।

श्री केदारनाथदत्त के अनुसार टोटा गोपीनाथ के मन्दिर में संकीर्त्तन करते २ आप अन्तर्धान हुये। उन्होंने समय और सन नहीं लिखा है।

श्रीयदुनाथ सरकार ने लिखा है कि "आप १५३३ ई० के जून-जुलाई में कुछ ऐसी अवस्था में अपूगट हुये जिस पर आप के जीवनी-लेखकों की भक्ति ने रहस्य का पर्दा डाल रखा है।

"चैतन्य चरितामृत" के अन्त में आप के अन्तर्धान की कथा नहीं देखी जाती। हां! उस की "आदि लीला" के १३ वें परिच्छेद में शक सम्वत १४५५ में ४८ वर्ष की अवस्था में आपके अन्तर्हित होने की बात देखी जाती है।

परन्तु उस में जो रघुनाथ दास के सम्बन्ध में छंद दिये गये हैं, वे स्वरूप के उसी क्षण प्राणत्याग की घटना में सन्देह उत्पादन करते हैं। उन में से दो छंद नीचे दिये जाते हैं:—

" प्रभूर गुप्त सेवा कैल स्वरूपेर साते "
षोडृष वत्सर कैल अन्तरङ्ग सेवन।
स्वरूपेर अन्तर्धाने आइला वृन्दावन॥

इस से अनुमान किया जाता है कि प्रभु के तिरोभाव के पश्चात् जब तक स्वरूप जीवित रहे तब तक रघुनाथदास पुरी में रहे। स्वरूप के अन्तर्धान के बाद वृन्दावन चले गये। यदि दोनों एक ही समय अप्रगट हुये होते, तो प्रभु के ही अदर्शन पर वहां जाना बताते। क्योंकि उस समय सर्व प्रधान वही घटना थी।

बहुत से समालोचकों का यह मत है कि समुद्रपतन ही के दिन दक्षिण सागर में आप अस्तमित हुये और भक्तों ने धीवर के जाल में उनका जीवनरहित शरीर पाया। परन्तु वैष्णव और भक्तगण इसे नहीं मानते।

प्रभु के अदर्शन के बहुत दिन पहले शची माता इस संसार से विदा हो चुकी थीं। किन्तु प्रिया जी के भाग में यह दुःख भी देखना पड़ा था। वे कुछ दिन पश्चात् भी इस भूमंडल को पवित्र करती रहीं। क्योंकि श्रीखंड के गोस्वामियों का कथन है कि त्रिलोचन दास ने स्वरचित " चैतन्य-मङ्गल " श्री मति जी की सेवा में पढ़ने के लिये भेजा था और विवाहकाल में कोहबर में जाते समय जो श्री मती के अगूंठा में चोट लगी थी उस का हाल उस में नहीं लिखे रहने से उन्हें कुछ दुःख हुआ था और उस के विषय में उन्हों ने सद्योग्र ग्रन्थकर्त्ता के पास एक पत्र भी लिखा था।

—:o:—

सप्तम परिच्छेद

श्रीगौराङ्ग के भक्तगण



गौराङ्ग ने महात्मा ईसा के समान सर्वथा अनपढ़ मूर्खों ही को चेला नहीं मूँड़ा था और न शस्त्रबल से ही अपने धर्म्म का प्रचार किया था। आप ने नाच-गान कराकर और हँसा खेलाकर, तथा रोलाकर भी, प्रेमभक्ति के प्रवाह में लोगों को निमग्न किया था। आप के भक्तों में महान विद्वान, सुप्रतिष्ठित पंडित, जगद्विख्यात नैयायिक, परम प्रसिद्ध मायावादी संन्यासी, प्रवीण शास्त्रज्ञ, प्रबल परतापी राजा, सुदक्ष अमात्यगण, प्रधान प्रधान राजकर्मचारी, ग्रन्थकर्त्ता और पदकर्त्ता, सब प्रकार के लोग, सम्मिलित थे। यह बात पाठकों को पूर्व विवरण से ज्ञात होगई होगी।

लिखे पढ़े होने के कारण आप के कई भक्तों ने नित्य घटनावलियों की स्मरण टिप्पणियां लिख रखी थीं, जो "कड़चा" के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन्हीं के सहारे आप के अप्रगट होने के थोड़े ही दिन बाद आप की जीवनी तैयार की गई। "कड़चा" भी वस्तुतः ग्रन्थस्वरूप ही थे।

कड़चा लेखकों में मुरारी गुप्त, गोविन्द, स्वरूप दामोदर तथा रघुनाथ दास का नाम देखते हैं।

प्रभु के आविर्भाव के समय मुरारी पन्द्रह वर्ष के थे। इन्हों ने गौराङ्ग की बाललीलाओं को लेखबद्ध किया था जो ग्रन्थ "मुरारि के कड़चा" के नाम से ख्यात है। ये प्रसिद्ध पदकर्त्ता थे। इन्हीं से बाललीलाओं को सुन कर प्रभु के सेवक तथा विष्णुप्रिया के अभिभावक दामोदर पंडित ने इन्हें संस्कृत में श्लोकबद्ध किया था।

अनन्त-संहिता भी एक प्रामाणिक पुस्तक है। उस में भी प्रभु की आदि लीलाएं वर्णित हैं।

प्रभु के भक्त और संगी तीन गोविन्द थे। प्रथम वासुदेव तथा माधव घोष के भाई। ये तीनों भाई पदकर्त्ता थे। जैसे आजकल पं० गणेश बिहारी मिश्र, पं० श्यामबिहारी मिश्र तथा पं० शुकदेव बिहारी मिश्र तीनों भाइयों के ग्रन्थ तीनों के नाम देकर मिश्रबन्धु ग्रन्थ करके प्रकाशित होते हैं, वैसे ही इन तीनों भाइयों ने भी एक साथ "महाप्रकाश" नामक ग्रन्थ की रचना की है जिस के पदों में तीनों अपना अपना नाम देते गये हैं। यह एक विशेषता है। यथाः—

"देखिते आइसे देव नरे एक संगे।
नित्यानन्द दाहिने वसिया देखे रंगे॥
गोरा अभिषेक एइ अपरूप लीला।
गोविन्द माधव वासु प्रेम ते भासिला॥"

गौड़ की राह वृन्दावन जाते समय (१) प्रभु इन्हीं गोविन्द घोष को अग्रद्वीप में छोड़ कर इन्हें वहीं रहने की आज्ञा करते गये थे।

दूसरे गोविन्द वह थे जो स्वपत्नी का देहान्त होने पर पुत्रवधु के अत्याचारों से घर छोड़ कर प्रभु की शरण में आये थे और भृत्य स्वरूप आप के यहां रहते थे। प्रभु के नीलाचल जाने के समय ये भी नित्यानन्द, जगदानन्द, मुकुंद, तथा दामोदर पंडित के संग आप के साथ वहां चले गये थे। ये संस्कृत और बंग भाषा में बड़े निपुण थे। इन का लिखा हुआ भी "गोविन्द कड़चा" एक ग्रंथ है। वह प्रकाशित भी हुआ है।

"अमियनिमाई-चरित" में शिशिर कुमार घोष महोदय लिखते हैं, कि "मुद्रित ग्रंथ का प्रथम कई एक पत्र प्रक्षिप्त तथा कल्पित है।" उन्होंने उसी ग्रंथ के तृतीय खंड तृतीय संस्करण के षष्ठा-ध्याय में लिखा है कि "प्रभु केवल एक भृत्य लेकर दक्षिण यात्रा

१ इस ग्रन्थ के तृतीय खण्ड का द्वाविंश परिच्छेद देखिये।

को गये थे। किन्तु उस के षष्ठ खंड तृतीय संस्करण के तृतीय परिच्छेद से, जिस में उक्त महाशय ने प्रभु की दक्षिणयात्रा का दोबारा वर्णन किया है, ज्ञात होता है कि यही गोविन्द उस यात्रा में प्रभु के संग थे और उस का वृत्तान्त इन्होंने उक्त कड़चा में सन्निवेशित किया है। परंतु "चैतन्य चरितामृत" उस यात्रा में कृष्णदास ब्राह्मण का आप के साथ जाना बताता है।

तीसरे गोविन्द ईश्वरपुरी के सेवक थे। उन के कृष्ण में लीन होने के बाद से उनके आदेशानुसार प्रभु की सेवा में नीलाचल में रहने लगे थे। ये तीनो गोविन्द कायस्थ थे।

प्रभु के दो प्रकार के भक्त थे—अन्तरङ्ग तथा वहिरङ्ग। वहिरङ्ग प्रेमभक्ति की शिक्षा पाते थे। अन्तरङ्ग वा पारिषद श्री राधाकृष्ण प्रेम के रसास्वादन के भी अधिकारी थे। इन में स्वरूप दामोदर प्रधान थे। इन का "संगीत कड़चा" है। महाप्रभु ने नीलाचल में १८ वर्ष रह कर, जो प्रगट वा गुप्त लीलाएं की हैं, वे उस से प्रगट होती हैं। सप्तग्राम (ज़िला हुगली) निवासी रघुनाथदास भी प्रभु की गुप्त सेवा में स्वरूप के संगी थे। इन्होंने सोलह वर्ष, प्रभु के अप्रकट होने तक, आप की सेवा की थी।

"महा प्रभुर प्रिय भक्त रघुनाथ दास।
सब छाड़ि कैल प्रभु पद तले वास॥
प्रभु तारे समर्पिल स्वरूपेर हाते।
प्रभुर गुप्त सेवा कैल स्वरूपेर साते॥
षोडश वत्सर कैल अन्तरङ्ग सेवन।
स्वरूप अन्तर्धाने आइला वृन्दावने॥"

"चैतन्यचरितामृत।"

इन्होंने स्वरचित "चैतन्य स्तव कल्पवृक्ष" में आप की लीलाओं का वर्णन किया है। "विलाप कुसुमाञ्जलि और "मनो शिक्षा" दो अन्य संस्कृत पुस्तकें भी इन की बनाई हुई हैं।

रूप सनातन प्रभृति ने जो कतिपय संस्कृत ग्रंथों की रचना की, उनमें वैष्णव-धर्म-निरूपण एवं राधाकृष्ण-भजन की प्रधानता का प्रतिपादन पूरी रीति से हुआ है। वे शास्त्रार्थ में विरोधियों के मुख-भञ्जन के लिये शस्त्र-स्वरूप हैं। वे ग्रंथ तो बड़े उत्तम तथा पांडित्य-पूर्ण हैं, परंतु उन में गौराङ्ग, गुण-गान और इनकी लीलाओं का व्याख्यान नहीं है। ये बातें उक्त कड़चाओं में तथा उन के सहारे अथवा समसामयिक भक्तों से सुनी गई कथाओं के सहारे, सुप्रणीत ग्रंथों में पाई जाती हैं। ऐसे ग्रंथ संस्कृत और वंगभाषा दोनों ही में हैं।

मुरारीगुप्त के संस्कृत कड़चा से शिवानन्द सेन के पूर्वोक्त पुत्र कवि कर्णपूर ने "चैतन्य चरित्र" महकाव्य तथा "गौरगणोद्देश-दीपिका" की रचना की है। कर्णपूर ही ने, महाराज प्रताप रुद्र के आज्ञानुसार, १५७९ई० में "चैतन्य चन्द्रोदय" नाटक का प्रणयन किया था। लोग कहते हैं कि इस की रचना न होने से रघुनाथ दास के नीलाचल गमन के पूर्व की बहुत सी लीलाएं कदाचित गुप्त ही रह जातीं; क्योंकि रघुनाथदास ही से उस समय की लीलाएं सुन कर और जान कर कृष्णदास ने उन्हें "चैतन्य चरितामृत" में लेखबद्ध किया है।

इन के प्रतिरिक्त कवि कर्णपूर ने 'चैतन्य शतक", "स्तवावली" इत्यादि की भी रचना की है। उन की सब रचनाएं संस्कृत में हैं और इन के उक्त नाटक को प्रेमदास ने वंगभाषा में अनुवाद किया है।

रघुनाथदास कृत उक्त "चैतन्य स्तवकल्पवृत्त" आदि पुस्तकें, प्रबोधानन्द कृत "चैतन्यचन्द्रामृत" तथा "विवेक शतक" प्रभु, के बड़े चचा के पुत्र प्रद्युम्न मिश्र विरचित "चैतन्य चन्द्रोदयावली" (२),

२ इसी को किसी किसी ने "चैतन्योदयावली" भी लिखा है। प्रभु के दूसरे चचा परमानन्द के वंशज जगज्जीवन ने "मनःसन्तोषिणी" नाम से इस का बंगला अनुवाद किया है।

तथा गोविन्द प्रणीत ग्रंथ सब संस्कृत ही में हैं एवम् सबों में प्रभु की लीलाओं का वर्णन तथा गुणगान हुआ है।

यही प्रद्युम्न मिश्र जब नीलाचल गये थे और जब इन्हों ने प्रभु से श्रीकृष्ण कथा सुनने की अभिलाषा प्रगट की थी, तब आपने इन्हें कृष्ण-रहस्य जानने के लिये रामानन्द के पास भेजा था। उन के घर जाने पर इन्हें ज्ञात हुआ था कि उस समय वे स्वरचित "जगन्नाथ-वल्लभ" नाटक का श्रीजगन्नाथ के सम्मुख अभिनय कराने के अभिप्राय से कई सुन्दरी तथा युवती देवदासियों को एकान्त में नीटक्री दे सिखा रहे थे। इस से मिश्रजी को उन के प्रति कुछ घृणा हो गई थी। अतएव उन से भेंट होने पर केवल कुछ इधर उधर की बात कर के लौट आने पर इन्होंने प्रभु के पास राय के कार्यों से अप्रसन्नता प्रगट की। प्रभु ने राय की महिमा का वर्णन किया और हँस कर कहा कि "जो वृन्दावन का भजन करता है, उस को कामरोग पीड़ित नहीं करता।" तब मिश्रजी पुनः रामानन्द के पास गये और उन से कृष्ण-कथा श्रवण कर बहुत सन्तुष्ट हुये।

मुकुन्द पारिषद रचित "गौराङ्ग उदय" तथा "गौरचन्द्रिका" में प्रभु की कथाएं वर्णित हैं।

प्रभु के पारिषदों और भक्तों में अच्छे अच्छे ग्रन्थकर्त्ता हो गये हैं जिन्होंने पदों में प्रभु की लीलाओं का वर्णन किया है। यथा उपर्युक्त वासुदेव तीनों भाई, मुरारी (श्री विष्णुप्रिया के सेवक); वंशीवदन (गदाधर जी के शिष्य), नयनानन्द, बलरामशेखर, कृष्णदास वा श्यामानन्द शिवानन्दसेन, नरोत्तम नरहरि प्रभृति। ये लोग राधाकृष्ण को एक-दम भूल गये थे। उनके स्थान में ये गौर-विष्णु प्रिया के उपासक बन गये थे और उन्हीं के भजन में मगन रहते थे।

अपने बड़े पुत्र के श्रीकृष्ण की मूर्ति स्थापित करने पर शिवानन्द ने उन से कहा था कि "हम लोगों ने काले कृष्ण को गौर बनाया, और तुम चले पुनः काला बनाने ।"

नरोत्तम तथा नरहरि ने अपने घरों में "गौर-विष्णुप्रिया" की मूर्तियां स्थापित की थीं।

कन्हाई नाटशाला से वृन्दावन का जाना स्थगित करके जब प्रभु शान्तिपुर लौटे आते थे तब गङ्गा के पार दृष्टि करके इन्हीं नरोत्तम को आप ने कई बार ज़ोर से पुकारा था। इस के अनेक वर्ष बाद इन का जन्म हुआ।

इन्हीं नरहरि से "चैतन्य मंगल" के रचियता त्रिलोचन दास एवम् उन से निवासाचार्य्य तथा नरोत्तम हुये।

नरहरि की यह लालसा हुई कि प्रभु का लीला-ग्रन्थ बंगभाषा में लिखा जाय जिस में सर्वसाधारण उसे पढ़ कर अपना कल्याण-साधन करें; और इन्हीं की प्रेरणा से "चैतन्य-भागवत" तथा "चैतन्य-मंगल" की सृष्टि हुई। इन ग्रन्थों से भी इन का मन सन्तुष्ट न हुआ और इन्हों ने भविष्यवाणी कही कि "प्रभु का लीला-लेखक आगे जन्म लेगा।"

(चैतन्य भागवत)

इस भागवत के प्रणेता परम भागवत श्री वृन्दावन दास हैं। यह आदि, मध्य और अन्त, तीन खण्डों में विभक्त है। आदि में गया-गमन पर्य्यन्त, मध्य में सन्यास-ग्रहण तक और अन्त में प्रभु के दूसरी बार नीलाचल में आने तक का हाल वर्णित है। १५३५ ई० में इस की रचना हुई।

वृन्दावन दास श्रीवास की भ्रातृसुता, अन्यत्रकथित नारायणी, के पुत्र थे। प्रोफेसर यदुनाथ सरकार के लेखानुसार इन का जन्म १५०७ ई० और शरीरपात १५८६ ई० में हुआ।

सरकार का कथन है कि वृन्दावन जी श्री नित्यानन्द को भगवान का अवतार मानते थे। उनके लिये महा प्रभु गौराङ्ग भक्ति के प्रधानपात्र नहीं थे। उन की रचना अलौकिक घटनाओं तथा अप्रासंगिक बातों से पूर्ण है। कृष्णदास प्रणीत "चैतन्य-चरितामृत से तुलना करने पर तत्वसम्बन्धी व्याख्यानों में एवम् मनुष्यों तथा घटनाओं के वर्णन में यह पुस्तक उससे कहीं कम दर्जे का है।

शिशिर कुमार घोष महोदय की राय इस के विपरीत है। वे कहते हैं कि "जब हम गौराङ्ग की लीलाओं के अनुसन्धान में प्रवृत्त हुये, तो एक महाशय ने हमें 'चैतन्य-चरितामृत' पढ़ने की राय दी। अतएव हम वह ग्रन्थ पढ़ने गये। देखा कि इस ग्रन्थ में गौराङ्ग की कथा, वही अवतार की कथा, वही मनुष्यदेहधारी भगवान की कथा, अति अल्प है। तब है क्या? सात सौ संस्कृत श्लोक। और तलाश करने से 'चैतन्य-भागवत' ग्रन्थ पाया...... इस में देखा कि मूल घटना की बातें अर्थात् प्रभु की लीलाओं की कथाएं वर्तमान हैं।"

घोष बाबू ने स्वप्रबन्ध से उस का एक संस्करण भी प्रकाशित किया था जिस की तीसरी आवृत्ति, जो हाल में हुई है, हमें देखने में आई है।

श्री त्रैलोक्य नाथ भट्टाचार्य्य एम० ए० लिखते हैं कि वृन्दावन दास ने अपने गुरु नित्यानन्द जी के आदेश से १५३५ ई० में 'चैतन्य-भागवत' की और परिशिष्ट रूप से 'नित्यानन्द-वंश-माला' की रचना की। (३)

वृन्दावन दास के गुरु होने के कारण श्री नित्यानन्द जी उन के प्रधान भक्तिभाजन थे सही, परन्तु श्री गौराङ्ग के प्रति भी उन की भक्ति कम नहीं थी। और उन्हों ने स्पष्ट कहा है:—

३. " कवि विद्यापति ओर अन्यान्य वैष्णव कविदेर जीवनी" संस्करण १९१५ ई० पृ० ६६-७०

" इथे एक जनेर लइया पक्षये ।
अन्य जने निन्दा करे क्षार जाय से ॥ "

और ऐसे सब महा पुरुषों की जीवनियां अनैसर्गिक कथाओं से न्यूनाधिक रञ्जित देखी जाती है।

एक बात और है। सरकार तथा भट्टाचार्य्य ने वृन्दावन के जन्म और मृत्यु का जो समय दिया है उस हिसाब से जब प्रभु का वयस २२ वर्ष का था तब अर्थात (उन के संन्यासी होने के पूर्व ही) इन का जन्म हुआ और प्रभु के तिरोभाव के समय इन को अवस्था २६ वर्ष की थी एवम् २८ वर्ष की उम्र में इन का उक्त ग्रन्थ लिखा गया।

परन्तु शिशिर बाबू के ग्रन्थ में देखते हैं कि जब प्रभु जननी तथा जन्मभूमि का दर्शन करते वृन्दावन जाने की इच्छा से (२९-३० वर्ष की आयु में) नवद्वीप में श्रीवास (४) के घर आये थे तब वृन्दावन की माता नारायणी का ही वयस नो साल का था। (५) पुत्र होने की बात तो दूर रहे। (६)

और घोष, भट्टाचार्य्य, जगदीश्वर गुप्त एम० ए०, बी० एल० तथा स्वयं वृन्दावन नारायणी को श्रीवास की भ्रातृसुता (भतीजी) कहते हैं और सरकार उन्हें उनकी बहन बताते हैं। एवं "विश्व कोष" के प्रणेता उन्हें वृन्दावन दास की छोटी बहन बनाते हैं।

वर्दवान ज़िला के मतेश्वर थाना के अधीन देनुड़ गांव में वृन्दावन दास का स्थापित मन्दिर श्रीपाट नाम से प्रसिद्ध है।

---

४. भट्टाचार्य्य ने श्रीवास पंडित को सर्वत्र श्रीनिवास लिखा है। " चैतन्य-भागवत " में दोनों नामों का प्रयोग पाते हैं।

५. " अमिय-निमाई चरित " चतुर्थ खंड (संस्करण १३२१ बंगला साल) पृ० २४१ देखिये।

६. चैतन्यभागवत " पञ्चम खंड " १२९६ (बंगला साल) पृ० ३४०।

चैतन्य मङ्गल।

उक्त "चैतन्य भागवत" के प्रणयन के दो वर्ष बाद १५३७ ई० में त्रिलोचन दास ने १४ वर्ष की अवस्था में "चैतन्य-मङ्गल" की रचना की। इन्हों ने १५२३ ई० (शं० १५८०) में जन्म ग्रहण किया था। इस ग्रंथ में अद्भुत घटनाएं बहुत वर्णित हैं। भ्रमणकारी भिक्षुक इस के पदों को भजन की तरह बहुत गाया करते हैं और निम्नश्रेणी के वैष्णव इसे अधिक पसन्द करते हैं। सरकार के मतानुसार इस की गणना क़िस्सा कहानियों में होगा, गम्भीर ऐतिहासिक ग्रन्थों में नहीं।

"चैतन्य-चरितामृत" में कृष्ण दास ने वृन्दावन दास कृत ग्रंथ को ही "चैतन्य-मंगल" कहा है। यथाः—

"वृन्दावन दास कैल चैतन्य मंगल"

परन्तु इन का रचा प्रचलित ग्रंथ अब "चैतन्य भागवत" के नाम से प्रसिद्ध है। इस का कारण यह कहा जाता है कि लोचन दास एक ग्रंथ रचकर और उसका नाम भी चैतन्य भागवत रख कर तत्कालीन प्रथानुसार उसे अपने गुरु के पास प्रकाशन की अनुमति के लिये ले गये। इन के ग्रंथ का भी वही नाम देख कर वे बहुत क्रुद्ध हुये और उन्हों ने कहा कि "तुमने वृन्दावन दास के प्रति जो अपराध किया है, जब तक उसका निवारण न हो, प्रकाशन की अनुमति तो दूर रहे, हम तुम्हारा मुखावलोकन भी नहीं करेंगे।" अगत्या लोचनदास ने वृन्दावन के पास जाकर निष्कपट भाव से सब वृत्तान्त निवेदन किया। उन्होंने सहर्ष इन का अपराध क्षमा-कर अपने ग्रंथ का नाम "चैतन्य-भागवत" रख दिया।

चैतन्य-चरितामृत।

वृन्दावन-वासी बंगदेशीय वैष्णवगण नित्य सन्ध्या समय एकत्र हो उपर्युक्त 'चैतन्य-भागवत" से प्रभु की लीला सम्बन्धी कथाएं सुना करते थे। किन्तु उस में अन्त की लीलाओं का अल्प और

संक्षिप्त वर्णन होने से लोगों को सन्तोष नहीं होता था। इसी से श्री गोविन्द जी के मन्दिर के प्रधान सेवक तथा अन्य लोगों के आग्रह से कृष्णदास कविराज ने राधाकुंड पर वृद्धावस्था में नौ वर्ष अविरल परिश्रम करके शकाब्द १५३७ (सं० १६७२ = ई० १६१५) में "चैतन्य-चरितामृत" ग्रंथ (आदि, मध्य और अन्त) तीन खंडों में रच कर तैयार किया। उनका स्वहस्त-लिखित ग्रंथ अभी तक श्रीवृन्दावन के श्रीराधादामोदर जी के मन्दिर में विराजमान है और उस की पूजा प्रतिष्ठा की जाती है।

सरकार ने यही लिखा है। किन्तु पूर्वोक्त भट्टाचार्य्य लिखते हैं कि कविराज ने उस ग्रंथ को जीव स्वामी को शोधने के लिये दिया था और उस के पाठ से प्रसन्न हो उन्हों ने उसे अपने पुस्तकभण्डार में रख लिया था। उसी समय श्री निवास तथा नरोत्तम वृन्दावन जाकर जीव स्वामी के पास भक्ति शास्त्र का अध्ययन करते थे। वे लोग बहुत से ग्रंथों के साथ यह ग्रंथ भी तीन गाड़ियों पर लाद कर बारह रक्षकों के साथ देश को चले। विष्णुपुर राजधानी पार करने पर दस्युओं ने उन सब ग्रन्थों को लूट लिया। बुढ़ापे में अपने बनाये और अपने हाथ से लिखे हुये ग्रन्थ के लुट जाने का शोकसम्वाद पाकर कविराज महाशय ने थोड़े ही दिन बाद शरीर त्याग दिया।

शाके सिन्ध्वग्निवाणेन्दौ ज्येष्ठे वृन्दावनान्तरे
सूर्य्याहेऽसित पञ्चम्यां ग्रन्थोऽयं पूर्णतां गतः"

किन्तु जगदीश्वर गुप्त एम० ए०, बी० एल ने स्वप्रकाशित "चैतन्य-चरितामृत" में जो कृष्ण दास की संक्षिप्त जीवनी दी है, उस से जाना जाता है कि उस समय के नियमानुसार जब स्थानीय गण्यमान्य पुरुष नूतन पुस्तक पर स्वीकृति-सूचनार्थ अपना अपना हस्ताक्षर कर देते थे तब उस का सर्व साधारण में प्रकाश और प्रचार होता था अर्थात् जिस की इच्छा होती थी उसे नक़ल करके

पढ़ते पढ़ाते थे। इसी से ग्रंथ समाप्त होने पर कविराज महाशय उस ग्रंथ को उस के प्रकाशन की अनुमति के लिये, जीव स्वामी के पास, जो उस समय वृन्दावन में प्रधान पुरुष थे, ले गये।

यह देख कर कि उस ग्रंथ के द्वारा वैष्णव-धर्म का गूढ़ रहस्य तथा चैतन्योपदेश बंगभाषा में हो जाने से सुलभ इस के प्रकाशन के अनन्तर, रूप और सनातन प्रणीत तथा उन के स्व-रचित ग्रंथों का एवं पाण्डित्य पूर्ण संस्कृत भाषा की भक्ति के अन्य ग्रंथों का प्रचार और पठन पाठन सर्वथा बन्द हो जायगा, गोस्वामी जी ने क्रोधाभिभूत होकर उसे यमुना में फेंक दिया और पुनः उसे निकलवा कर अपने पुस्तकागार में बन्द कर दिया।

इस से दुखित चित्त हो कविराज मथुरा जाकर आहार निद्रा त्याग कर इसी खेद में समय बिताने लगे कि इस वयस में परिश्रमपूर्वक रचा हुआ ग्रंथ अप्रकाशित रहा और चैतन्य महाप्रभु की शेष लीलाएं अप्रचारित रहीं।

किन्तु अपने एक शिष्य मुकुन्द दत्त से यह सुन कर कि उन्हों ने क्रमशः उस पुस्तक की नक़ल उतार रखी है, इन्हें असीम आनन्द प्राप्त हुआ और उसे आद्योपान्त पढ़ कर और शोध कर चुप चाप अपने पास रख लिया।

इसी अवसर में पूर्वोक्त कविकर्णपूर वृन्दावन दर्शन को गये। उन के आग्रह से जीव स्वामी ने कोठरी वाली प्रति पर अनुमोदन का हस्ताक्षर कर दिया और प्रत्येक परिच्छेद के अन्त में जो केवल "चैतन्य-चरितामृत" लिख कर छोड़ दिया गया था उसे आपने "चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास" सर्वत्र बना दिया।

तब इसका प्रचार व्रज प्रान्त में होगया। परन्तु गोस्वामियों ने इसे बंगदेश में आने नहीं दिया। तथापि कविराज ने पूर्वोल्लि-

खित नक़ल मुकुन्द द्वारा वंगदेश में भेजदी और धीरे २ उस का उस देश में भी प्रचार होगया। एवं उनके हाथ का लिखा ग्रन्थ उक्त मन्दिर में सुप्रतिष्ठित हुआ।

श्री उमेशचन्द्र वटव्याल ने जीवस्वामी के क्रोध का कारण यह बताते हैं कि कविराज ने अपने ग्रन्थ में रूप तथा सनातन को कई स्थानों में म्लेच्छ, यवन और नीच जाति कह के लिखा है। (६) यह हो सकता है। परन्तु कविराज ने कुछ द्वेष भाव से ऐसा नहीं किया है। उन्होंने प्रकृत कथा लिखी है। उन्होंने स्पष्ट रूप से उक्त दोनो गोस्वामियों का अपना शिक्षागुरु कह कर उन्हें नमस्कार भी किया है।

इसी ग्रन्थ की मध्यलीला (७) (अर्थात् श्रीगौराङ्ग के छः वर्ष की यात्रा की घटनाओं) का प्रोफेसर सरकार (कलकत्ता विश्वविद्यालय के वर्त्तमान वाइसचॅसलर) ने अंग्रेज़ी में अनुवाद किया है।

महाप्रभु ने श्रीसनातन को जो उपदेश दिया था, वह प्रकरण श्री वामनदास मजुमदार ने इसी ग्रन्थ से अंग्रेज़ो में अनुदित करके उसे "Lord Shri Gourang's Teachings to Sanatan Goswami" के नाम से छपवाया है।

वृन्दावन निवासी श्री राधाचरण गोस्वामी विद्यावागीश (दास) ने इस ग्रन्थ का कुछ अंश व्रजभाषा में पद्यबद्ध अनुवाद किया है।

६ "नव्यभारत" द्वादशखंड (बंगला सन् १३०१) पृ० ४२१ देखिये।

७. "हिन्दी विश्वकोष" भाग ७ पृ० ५३१ के बाद नोट में लिखा है कि "चैतन्यचरितामृत" रचयिता कृष्णदास ने गौरचन्द्र के संन्यास ग्रहण तक का विवरण आदि लीला के नाम से और उनकी उन्मादावस्था में तीन दिन राढ़ देश में भ्रमण तक का वृत्तान्त 'मध्यलीला' के नाम से वर्णन किया है।" वस्तुतः ऐसी बात नहीं है। बंगाला सन् १३११ के छपे हुये उक्त "चरितामृत" में प्रभु के काशी से पुरी लौटजाने तक का हाल "मध्यलीला" में समावेशित है।

कृष्णदास का जन्म सं० १५५२ में वर्द्धमान के काटोया सब डिविजन में नैहाटी निकटस्थ झामटपुर ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम भगीरथ और माता का सुनन्दा था। इनके शैशवावस्था ही में इनके मातापिता के परलोक गमन से इनकी फूआ ने इन का पोषण पालन किया था। ये जाति के वैद्य थे। मक्तब में फ़ारसी पढ़ने के बाद वैद्य व्यवसाय करने के अभिप्राय से इन्होंने संस्कृत का अध्ययन किया और उस में इन्होंने बड़ी प्रवीणता प्राप्त की। विशेषतः भागवत पुराण के ये परम ज्ञाता हुये। इसका प्रमाण यही है कि इनके पूर्वोक्त ग्रन्थ में प्रमाण स्वरूप भिन्न भिन्न ग्रन्थों से सात सौ के अन्दाज़ श्लोक उद्धृत पाये जाते हैं।

इनके एक भाई श्यामदास थे। अपनी उक्त फूआ के स्वर्गवास से महा दुखित हो, ये सब सांसारिक कार्य्यभार अपने भाई को सौंप कर स्वयं हरिभजन में लग गये। पीछे नित्यानन्द से वैष्णव-धर्म में दीक्षित होकर ये भिक्षाटन करते पांवप्यादे वृन्दावन पहुंचे। वहीं इन्होंने धर्म्मग्रन्थ पठनपाठन और ध्यान पूजन में अपना शेष जीवन व्यतीत किया। "चैतन्यचरितामृत" प्रणयन होने के थोड़ेही दिन बाद ८८ वर्ष की अवस्था में इनका स्वर्गवास हुआ।

श्रीनित्यानन्द की स्त्री जान्हवी देवी के शिष्य नित्यानन्द दास विरचित "प्रेमविलास" से तो इतनाही विदित होता है कि श्री-नित्यानन्द के आदेश से कृष्णदास कविराज वृन्दावन गये। यथाः,—

"एक दिन सेइ झामटपुरे नामे ग्रामे।
दर्शन दिलेन नित्यानन्द गुणधामे॥
निज सहचर सङ्गे, वेष मनोहर।
रूप देखि कृष्णदासेर आनन्द अन्तर॥
प्रणाम करिला, बहु करिला स्तवन।
आज्ञा हैल सर्वसिद्धि, जाह वृन्दावन॥

किन्तु उपर्युक्त भट्टाचार्य्य के पूर्वोक्त पुस्तक पृ० ८१ में देखते हैं कि नित्यानन्द के उक्त सहचर भृत्य 'मीनकेतन रामदास' कृष्णदास ही के गांव का रहनेवाला था, और कविराज के भाई श्यामदास नित्यानन्द का ईश्वरत्व स्वीकार नहीं करते थे। इस विषय में उस भृत्य और इनके भ्राता में एक दिन अधिक वाद-विवाद होने से भृत्य ने श्यामदास को निर्वंश होने का श्राप दे दिया। इस बात से अत्यन्त दुखित हो कृष्णदास वृन्दावन चले गये। और उन्होंने वहीं जीवन बिताया।

सरकार के कथनानुसार कृष्णदास ने प्रभु के अन्तरङ्ग सेवक स्वरूप दामोदर के संगी उपर्युक्त रघुनाथदास से संन्यास ग्रहण किया था। और शिशिर कुमार घोष कहते हैं कि "बहुत से लोगों को और हमें भी विश्वास था कि कृष्णदास के गुरु रघुनाथदास थे परन्तु एक प्रामाणिक ग्रन्थ में देखा कि प्रभु से रघुनाथ भट्ट और उनसे कृष्णदास और इनसे मुकुन्ददास।" आपने उस ग्रन्थ का नाम नहीं दिया है। हां! "चैतन्य चरितामृत" के निम्नलिखित दो चरणों को उद्धृत अवश्य किया है:—

"श्रीरूप रघुनाथ पदे यार आस।
चैतन्य चरितामृत कहे कृष्णदास॥"

किन्तु इससे तो रघुनाथदास और रघुनाथ भट्ट दोनों का ही बोध हो सकता है क्योंकि इसमें स्पष्टरूप से दास या भट्ट नहीं लिखा हुआ है। और नीचे के छन्दों में कवि ने दास तथा भट्ट दोनो ही को शिक्षागुरु माना है।

अपने ग्रन्थ के आदि में संस्कृत के सत्तरह श्लोक लिखकर कवि कहते हैं:—

१. "जय जय श्री चैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥
*　　*　　*
२. ग्रन्थेर आरम्भे करे मङ्गलाचरण।
गुरु वैष्णव भगवान तीनेर स्मरण॥"

ऊपर्य्युल्लिखित प्रथम छन्द में श्रीभगवान (चैतन्य), गुरु (नित्यानन्द) तथा वैष्णववृन्द (अद्वैताचार्य्यादि) की वन्दना की गई।

फिर कहते हैं:—

"मंत्र गुरु आर यतशिक्षा गुरुगण।
ताहार चरण आगे करिये वन्दन॥
श्रीरूप, सनातन, भट्ट रघुनाथ।
श्रीजीव गोपालभट्ट दास रघुनाथ॥
एइ छय गुरु शिक्षा गुरु ये आमार। (८)
ताँर सबार पादपद्मे कोटि नमस्कार॥
नित्यानन्द राय प्रभुर स्वरूप प्रकाश।
ताँर पादपद्मे वन्द यार मुइ दास॥

इन छन्दों में आप स्पष्ट शब्दों में उस समय के सब प्रधान गोस्वामियों को, नाम लेलेकर अपना शिक्षा गुरु कह रहे हैं और इन्हीं लोगों से महाप्रभु की सब बातें इन्हें ज्ञात हुई हैं। हां! आदि लीला के दसवें परिच्छेद में श्रीगौराङ्ग की शिष्यशाखा वर्णन के प्रकरण में रघुनाथदास की महिमा कथन करते करते आपने अन्त में कहा है:—

"ताँहार साधनरीति सुनित चमत्कार।
सेइ रूप रघुनाथ प्रभु से आमार॥"

अर्थात् इसी रूप (तरह) के जो रघुनाथ (दास) हैं वे हमारे प्रभु (गुरु) हैं। इससे पुराने लोगों के धारणानुसार रघुनाथ दास ही का इनका संन्यास गुरु होना प्रमाणित होता है।

---

८. कृष्णदास तो स्वयं इस प्रकार अपने शिक्षागुरुओं का नाम बताते हैं, परन्तु न जाने कैसे और क्यों? एक भट्टाचार्य्य ने अपनी पुस्तक में रघुनाथ भट्ट का नाम न लेकर कविकर्णपुर की इनके शिक्षा गुरुओं में गणना कराई है।

यही कृष्णदास ने नभाजीकृत हिन्दी "भक्तमाल" का बंगला पदों में अनुवादित किया है। हमने श्रीगोस्वामी तुलसी दास की जीवनी में तथा महात्मा श्रीसीतारामशरण भगवान प्रसाद की जीवनीमें भ्रमवश बेलधरिया निकटवर्ती निमताग्राम निवासी कृष्णराम दास का अनुवाद करना लिखा है।

कविराज कृष्णदास के शिष्य मुकुन्द देव विरचित "आनन्द रत्नावली" से मसाला संग्रह करके हुगली जिला के अन्तर्गत वदनगंजनिवासी हाराधन दत्त भक्तिनिधि ने कविराज महाशय की जीवनी तैयार की है। आपने वृन्दावन दास और लोचन दास की भी जीवनियां लिखी हैं।

चूड़ामणिदास कृत "चैतन्य चरित" में भी चैतन्य जी का जीवनवृत्तान्त वर्णित है।

अमिय-निमाई चरित।

आधुनिक काल में सुप्रसिद्ध "अमृत बाज़ार पत्रिका" के स्वर्गीय सुयोग्य सम्पादक श्री शिशिर कुमार घोष महोदय ने "अमिय निमाई-चरित" नाम का एक सुन्दर पुस्तक बंगला भाषा में छः खण्डों में लिखा और प्रकाशित किया है, जिनमें सब मिल कर दो हज़ार से थोड़े ही कम छोटे साइज़ के पृष्ठ होंगे और इसके अक्षर भी पतले ही हैं। प्रचलित प्रणाली से गद्य में इसकी रचना हुई है। यह ग्रन्थ आपके अनुसन्धान, योग्यता तथा श्री गौराङ्ग के चरण कमलों में परमानुराग का पूर्ण परिचायक है।

श्री केदारनाथ भक्तिविनोदप्रणीत "श्री मद्गौराङ्गलीला स्मरण मङ्गल स्तोत्रम्" में भी अंग्रेज़ी तथा संस्कृत श्लोकों में प्रभु की संक्षिप्त लीलाएं वर्णित हुई हैं।

"Chaitanya and his age" तथा "Chaitanya and his Companions" नामक दो पुस्तकों की हाल में राय बहादुर श्री दिनेशचन्द्र ने रचना की है।

अष्टम परिच्छेद

गौराङ्ग का धर्म्मप्रचार



कहते हैं कि गौराङ्ग ने अध्यापकावस्था ही में पूर्व्वबंगाल में जा कर कृष्णप्रेम का प्रचार किया था। उस समय प्रचारकार्य्य कैसे सम्पन्न किये; इसका पता नहीं लगता। हमारा अनुमान है कि धर्मप्रचार से नहीं वरन इनके पाण्डित्य के विचार से उस प्रान्त में इनका विशेष आदर सत्कार हुआ। हां! गया से लौट कर नदियानिवासियों तथा उसके प्रान्त वासियों को आप ने प्रेमाभक्ति में उन्मत्त कर दिया। नीलाचलगमन के थोड़े ही दिन बाद आपने कन्याकुमारी तथा द्वारिका तक दक्षिण-पश्चिम की यात्रा की। एवम् काशी, प्रयाग तथा व्रज में भ्रमण कर लोगों का उद्धार किया। अनगिनित प्राणी और बड़े बड़े गण्यमान्य आपके शरणापन्न हुये। इन सबों का वृत्तान्त पहले वर्णन हो चुका है। इसके अतिरिक्त आपने गोस्वामियों, आचार्य्यों तथा भक्तों के द्वारा अपना अभीष्ट साधन किया।

पाठकों पर विदित है कि आपने रूप और सनातन को, दक्षिण देशीय रङ्गक्षेत्र निवासी गोपालभट्ट तथा काशीवासी रघुनाथ भट्ट को वृन्दावन के तीर्थों के उद्धार, पश्चिम प्रान्त में कृष्णभक्ति के प्रचार एवं वैष्णव ग्रन्थों के निर्माण और विस्तार के लिये आवश्यकीय शिक्षा और उपदेश देकर वहां भेजा था।

पुनः आपके अप्रगट और स्वरूप के अन्तर्धान होने पर रघुनाथ दास भी वृन्दावन गये। उनकी इच्छा थी कि रूप और सनातन का दर्शन कर गोवर्द्धन से गिर कर प्राण विसर्जन करें। परन्तु उन लोगों ने इन्हें ऐसा करने नहीं दिया और सहोदर के समान

इन्हें सयत्न अपने साथ रखा। पीछे उन लोगों के भतीजे जीव स्वामी (१) भी वहां जा पहुंचे। उस समय के गोस्वामियों में येही छः मुख्य थे। किन्तु वर्त्तमान वृन्दावन के कर्त्ता वह दोनों चचा और भतीजा ही हुये।

इन लोगों ने योग्यतापूर्वक अपना कार्य्य सम्पन्न किया। लुप्ततीर्थों को निर्दिष्ट किया और प्रभावशाली होने के कारण वहां मन्दिर निर्माण करने को समर्थ हुये और प्रयोजनीय ग्रन्थों की सृष्टि की।

इन लोगों ने सोचा कि गौरधर्म प्रचार के निमित्त महान पंडितों और विद्वानों का मुंह बन्द करना होगा। अतएव इन्होंने पाण्डित्यपूर्ण सप्रमाण ग्रन्थों की रचना की। उनमें प्रभु की लीलादि सन्निवेशित करने की ओर कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया।

प्रबोधानन्द को भी प्रभु ने काशी से वृन्दावन ही भेजा था। परन्तु, उनसे रूप और सनातन की पटरी नहीं बैठती थी क्योंकि उन लोगों का काम राधाकृष्ण का भजन था और इनका गौराङ्ग का। इन्हें तो बंगाल जाना चाहता था। सम्भवतः पश्चिम में मायावादियों का अधिक बल और प्रभाव होने के विचार से इन का उधर भेजा जाना उचित समझा गया होगा।

जब आप स्वयं वृन्दावन गये थे, तब आपने वहां कृष्णदास गुञ्जमाली नामक एक विख्यात धर्म्मप्रचारक और आचार्य्य की सृष्टि की थी। उसका विवरण सुनिये।

लाहौर का रहनेवाला सात वर्ष का एक बालक ने एक रात स्वप्न में एक महापुरुष को रो रो कर उसे पुकारते अपना नाम गौराङ्ग बताते और ब्रज में मिलने की बातें कहते देखा। तब वह बालक "गौराङ्ग, गौराङ्ग" कहने और रोते जाग उठा। उसकी दशा पागल की सी हो गई। माता पिता के अनेक यत्न करने पर

१ "अमिय निमाई-चरित" खण्ड ५, पृ० २०६ में इनका और खंड ६ के पृ० १६१ में रघुनाथ दास का, सब से पीछे वृन्दावन जाना बताया है। प्रथम कथन ही ठीक है।

भी वह ध्रुव के समान घर से निकल पड़ा और भगवान ने उसे सुरक्षित गोवर्द्धन में पहुंचा दिया।

गौराङ्ग कहां, गौराङ्ग कहां ?" कहकर वह गोवर्द्धन में घूमने लगा। यद्यपि लोग उसे आधा पागल समझते थे, तथापि उसे दुखित जान और उसके सरल स्वभाव से मोहित हो लोग उस से स्नेह करने लगे। इसी प्रकार बहुत काल व्यतीत होने पर जब गौराङ्ग नाचते नाचते गोवर्द्धन में विराजमान हुये, तब वह व्यक्ति देखते ही इन्हें पहचान कर इनके चरणों में गिरा। आपके उसे छाती से लगाते ही वह मूर्छित हो भूतल पर गिर पड़ा। इसी रीति से उसमें शक्ति संचार कर और उसका नाम कृष्णदास रख कर प्रभु ने उसे पश्चिम प्रान्त के उद्धार करने की आज्ञा दी। उसके यह कहने पर कि "हम दरिद्र बुद्धिबलहीन भक्ति धर्म कैसे प्रचार करेंगे" आपने निज गले से गुञ्ज माला उतार कर उसे पिन्हा दिया। इसीसे उसका नाम कृष्णदास गुञ्जमाली पड़ा एवम् उस के हृदय में सब शक्तियां स्फुरित होने से वह धर्म प्रचार सा महत्व कार्य्य करने को समर्थ हुआ।

उसने मालावर में गौर-निताई की मूर्तियां स्थापित कर एवं अपने भतीजे वंशवारीचन्द्र को लाकर उन्हें वहां का महंत बनाया। पुनः गुजरात में वैसा ही विग्रह स्थापन कर उस प्रदेश के निवासियों को प्रेमानन्द में मस्त कर दिया।

उसी समय श्री अद्वैताचार्य्य के शिष्य चक्रपाणि वहां जा पहुंचे। दोनों प्रेमपूर्वक मिले और वहां दो गद्दियां हुईं—गुञ्जमाली की बड़ी गद्दी और चक्रपाणि की छोटी गौड़ीय गद्दी के नाम से ख्यात हुईं।

पुनः गुञ्जमाली ने स्वदेश में जाकर उलस्वा (?) में गौर पूजा का प्रचार किया और वहां से सिंधु देश में वह तरंग पहुंची जहां के सब हिन्दू वैष्णव तथा मुसलमान हरिभक्त हुये।

पहले कहा गया है कि दक्षिण की यात्रा में अन्य लोगों के साथ प्रभु ने सुप्रसिद्ध महाराष्ट्रीय धर्म्मप्रचारक तुकारामजी में भी शक्तिसंचार किया था जिसे आपने "अभङ्गों" में इनका स्वीकार करना कहा जाता है। इनके "अभङ्गों" (२) को बम्बे "सिविल सर्विस" के श्रीमान् सतेन्द्रनाथ तगोर ने संग्रह किया है। इनके दो पदों का बंगला पद्यबद्ध अनुवाद "अमिय निमाई चरित" में दिया हुआ है। हम उस के एक पद का आशय नीचे के छन्दों में प्रकट करते हैं:—

जात रह्यो गंगा असनाना । भेंटे प्रभु गुरु कृपानिधाना ॥
अनघीवहित वयन सुनाये । ममभस्तक करकमल फिराये ॥
चेतरहित सब सुधि हिराई । कहा भयो तब, कछु न जनाई ॥
कौन काज कित गये गुसाईं । सेवा मोतें नहिं बन आई ॥
राघव, कृष्ण, चैतन्य सुनाये । तासु कथा कहि चिन्ह दिखाये ॥
राम, कृष्ण, हरि नाम जताये । बाबाजी निज नाम बताये ॥
माघ शुक्ल दशमी गुरुवारा । तुकाराम कहँ काज संवारा ॥

यद्यपि इस से कोई बात स्पष्ट ज्ञात नहीं होती, तथापि लोगों का अनुमान सर्वथा निर्मूल नहीं प्रतीत होता। क्योंकि गौराङ्ग का महामन्त्र वस्तुतः हरि, कृष्ण और रामही पाया जाता है। गौड़ीय वैष्णवगण "हरे राम, हरे कृष्ण" इत्यादि का ही जप करते हैं। ऊपर के छन्दों में इन तीनों नामों का उल्लेख है। चैतन्य शब्द भी आया है। तिथि के साथ यदि सन सम्वत भी दिया होता तो विषय-निर्णय में बहुत सुविधा होती। इसकी आलोचना में शिशिर कुमार घोष का यह लेख देख हमें बड़ी हंसी आई कि "साधुओं को बाबा जी कहने की चाल केवल बंगाल में ही प्रचलित है और कहीं नहीं।" इस कथन से उनकी अजानकारी पाई जाती

२. उस प्रदेश में गीतों को आभङ्ग कहते हैं। जो गीत वे गाते थे उन्हें उनके शिष्यवर्ग लिख लिया करते थे। वेही तुकाराम के आभंग के नाम से प्रसिद्ध हैं।

है। कम से कम विहार में तो साधुओं को लोग अवश्य बाबाजी कहते हैं।

सतारा और पूना के निकटवर्ति भीमा (२) नदी के तटस्थ पांढूवा पांडरपुर में तुकाराम जी का निवासस्थान था। ये कोई उच्च जाति के पुरुष नहीं थे, किन्तु बड़े महात्मा तथा राधाकृष्ण के भक्त थे। महाराष्ट्र देश में परम पूजित थे। उस प्रान्त को आपने भक्तिप्रेम में प्लावित कर दिया था। आज भी इन के बहुत से शिष्य हैं। प्रवाद है कि आप भजन करते सब के सामने विमान पर चढ़ कर स्वर्ग सिधारे।

प्रभु के प्रधान भक्त तथा कालना के उक्त गौरीदास के पर—शिष्य कृष्णदास वा श्यामानन्द ने प्रभु के बाद उत्कल का उद्धार किया। कलना के पूर्वोक्त नकुल ब्रह्मचारी भी प्रचारकार्य्य में प्रवृत्त थे।

बंगाल के उद्धार का भार प्रधानतः नित्यानन्द को सौंपा गया था। अद्वैताचार्य्य को भी यह कार्य्य करने की आज्ञा थी। वे वैष्णवधर्म्म के ज्ञानांश और नित्यानन्द आनन्दांश माने जाते थे।

उस प्रदेश में सनातन के सेवक ईशान भी परम तेजस्वी धर्म्म-प्रचारक हुए।

प्रभु के प्रधान प्रधान शिष्यों और भक्तों के द्वारा आप के धर्म्म-वृक्ष की अनेक शाखाएं हुईं। उन भक्तों में से वक्रेश्वर ने "निमा-नन्द" सम्प्रदाय की सृष्टि की थी, जो भजन शिशिरकुमार बाबू के कथनानुसार वृन्दावन के गोस्वामियों के प्रताप से उठ गया। वे कहते हैं कि "भजन तो गया ही, गौराङ्ग के जाने का भी उपक्रम हुआ था।"

२ उधर भीमा को गंगा कहते हैं।

उनके ऐसा कहने का कारण यह है। एक तो उक्त गोस्वामियों ने गौर-लीला-विहीन ग्रंथों की रचना की थी ; दूसरे उनके ग्रन्थों की शिक्षापद्धति तथा निताईप्रभृति भक्तों की शिक्षाप्रणाली में प्रभेद था। उन लोगों ने सब शास्त्रों का मथन कर के राधा-कृष्ण के भजन और वैष्णवधर्म्म की श्रेष्ठता का ही प्रतिपादन किया था। इस में सन्देह नहीं कि उन ग्रन्थों के प्रणयन में उन लोगों ने वह पाण्डित्य प्रदर्शन किया है जो पाठकों की बुद्धि को चकरा देता है। पर वे बुद्धि से काम रखते हैं। दिलपर चोट करने की उनमें उतनी शक्ति नहीं है। निताई आदि कहते हैं "देखो, श्रीकृष्ण भगवान जीवों के दुःख से दुखित होकर तुम्हारे कल्याण के लिये इसी भूतल पर आये हैं, तुम्हें अपने प्रेम में रंग कर गोलोक ले जाने आये हैं, तुम्हारे मध्य में विचरण कर रहे हैं उनकी ओर दृष्टि करो, उनके चरणों में गिर कर अपना हित-साधन करो।"

गोस्वामियों ने तर्क वितर्क द्वारा समझाने की चेष्टा की है। निताई आदि ने प्रभु की रीति का अनुसरण कर के हँसा खेला कर, लोगों को प्रेमरस का प्याला चखाया है और सहृदय प्रेमी वैष्णवों की सृष्टि की है।

जब तक गोस्वामियों के ग्रन्थों का प्रचार बंगाल में नहीं हुआ था गौराङ्ग की भक्ति अपने ढग से चली जा रही थी। उनके आगमनकाल से गौरभक्ति का ह्रास होने लगा। राधा-कृष्ण के भजन का पुनरुत्थान हुआ। शुष्क पांडित्याभिमानी गोस्वामियों की बंगाल में सृष्टि हुई। गौरकथा विस्मृति के अन्ध भवन में खदेड़ी गई। दुर्दशा यहां तक पहुंची कि श्रीशिशिर कुमार के गौर विषयक बातों के अनुसन्धान के समय एक महापंडित गोस्वामी ने उनसे पूछा था कि "विष्णु-प्रिया कौन थी ?"

इस प्रश्न में "सारी रामायण पढ़ गये, सीता किस की जोय" की कहावत चरितार्थ हुई।

पचास साठ वर्ष हुआ कि श्रीभागवतभूषण, शियङ्ग नरसिंह तथा सिद्ध चैतन्य दास जी ने गौरविष्णुप्रिया का भजन पुनरारम्भ किया। ये लोग पहले गौर और निताई का दास भाव से भजन पूजन करते थे। पीछे दूसरे और तीसरे महापुरुष कान्ता भाव से श्री गौराङ्ग का भजन करने लगे। भागवतभूषण ने उन्हें सानन्द वह प्रेमरस अनुभव करने की आज्ञा दी। किन्तु वे गौरधर्म्म प्रचारक थे, उन्हें बाहरी लोगों से प्रयोजन था। उन में ऐसा निगूढ़ भजन का प्रचार अनिष्टकर समझ वे दास भाव में ही भजन करते अपने प्रचार कार्य्य में लगे हुए जीवों के कल्याणसाधन में यत्नवान् रहे।

यह तो अवस्था-वर्णन हुआ। अब विचारणीय यह है कि महाप्रभु को क्या अभिप्रेत था। देखने में आता है कि आपने सब को सर्वत्र राधाकृष्ण ही के भजन का उपदेश दिया है एवम् स्वकार्य्य और स्वाचरण द्वारा भी कृष्ण ही की भक्ति भजन की शिक्षा दी है। आपने अपने समय के अन्तिम वर्षों को तो कान्ताभाव के रसास्वादन में एवं अपने अन्तरङ्ग भक्तों को उसी रसास्वादन की शिक्षा करने में ही व्यतीत किया है।

गोस्वामियों ने भी आपके आदेशानुकूल ही ग्रन्थों की रचना की है। सनातन को शिक्षा देते समय जिन विषयों को ग्रन्थों में समावेशित कराना था, उन का सूत्र रूप से आपने उन्हें दिग्दर्शन करा दिया था और स्पष्ट कहा था कि "सर्वत्र पुराणों के वचनों का प्रमाण देते जाना।"

"गौराङ्ग कीर्त्तन" भी आपके समय से ही आरम्भ हुआ था। किन्तु जब पहले पहल पुरी में अद्वैताचार्य्य ने भक्तों के द्वारा कीर्त्तन कराया था, तब आपने कहा था 'कृष्ण-कीर्त्तन। किन्तु

रख कर तुम लोगों ने यह क्या आरम्भ किया? इससे अन्त में तुम लोगों का और हमारा—सबका—नाश होगा, पहले जनता में हँसी होगी पीछे परलोक का नाश होगा।"

किन्तु साथ ही साथ यह भी बात है कि श्रीराम श्रीकृष्ण अथवा किसी अवतार ने किसी को अपना भजन करने के निमित्त नहीं कहा है। भजन का प्रचार भक्तगण ही अपनी इच्छा से आरम्भ करते हैं,—चाहे किसी अवतार के विराजमान काल में करें, चाहे अन्तर्द्धान होने पर। अतएव हमारी समझ में गोस्वामियों तथा भक्तों दोनों का ही कार्य्य उपयुक्त ही हुआ है। समय तो सब कामों में हेर फेर करता ही रहता है।

प्रभु के भक्त गण महा शक्ति सम्पन्न थे। जहां जहां उनका निवास था, वे स्थान अब तीर्थस्थल बन गये हैं और वहां श्री गौर के विग्रह स्थापित किये गये हैं। यथा, वङ्गदेश में खड़दह शान्तिपुर श्रीखंड पानिहाटी कालना इत्यादि।

दक्षिण में भी दो एक स्थानों में गौरभक्तों के द्वारा स्थापित दो एक मठों का पता चलता है। सुप्रसिद्ध इतिहासलेखक सत्य चरण शास्त्री ने समुद्र-तटस्थ श्रीवर्द्धन स्थान में एक वैष्णवमठ देखा था और उन्हें अनुसन्धान से ज्ञात हुआ था कि श्री गौरभक्त विश्वनाथ चक्रवर्ती अवधूत ने अपना शेष जीवन वहीं बिताया था। पांढ्यपुर-निकटस्थ एलोरा गह्वर में भी एक मन्दिर के श्रीगौराङ्ग से सम्पर्क रखने का पता रामयादव वागची को लगा था, जहां वे स्वयं गये थे; जिसका वृत्तान्त प्रभु की दक्षिण यात्रा के प्रकरण में वर्णित हुआ है।

अर्काट जिला में मन्द्राज से थोड़े ही दूर पर त्रिपति स्थान में गौड़ीय वैष्णवाचार्य्य देखे गये हैं। गोपालशास्त्री एक पुरुष वहां गये थे। उसके निकट गोकर्ण पर्वत की गुफा में उन्होंने तुलु गोसाईं की एक समाधि देखी थी। गोकर्ण उस प्रान्त में वैष्णवों का एक

प्रसिद्ध स्थान है। उक्त गोसाईं का असल नाम दुर्लभचन्द्र सेन था। उनकी समाधि की वहां पूजा होती है। उनके आश्रम में महाप्रभु का विग्रह स्थापित था, जिसे उनके परलोकगमन पर एक वैष्णव ब्राह्मण कस्वों कानन में जहां कुम्भकर्ण का एक सरोवर विख्यात है, ले गये और वहीं अब उस की पूजा प्रतिष्ठा होती है। उक्त गोस्वामी की पाठ-पोथी में चैतन्य चरित के भी कई पृष्ठ देखे गये।

हमारे पूजनीय मित्र स्वर्गीय पं० अम्बिकादत्त व्यास ने डेरा गाज़ी खां की यात्रा में सिंधुपार एक राधा कृष्ण का मन्दिर देखा था जिस में महाप्रभु के सम्प्रदाय के पचास साठ वैष्णव विराजमान थे। व्यासजी वहां धर्मप्रचार कार्य्य के लिये गये थे।

प्रभु आरोपित धर्मवृक्ष की शाखाओं तथा प्रतिशाखाओं की तालिका "चैतन्य चरितामृत" की आदि लीला के दशम परिच्छेद में दी गई है। पचास नाम तक तो सिलसिलेवार लिखा है। आगे का वर्णन उतना स्पष्ट नहीं है। हां! इतना कह सकते हैं कि प्रभु के जितने भक्तों के नाम पाठकगण इस पुस्तक में पावेंगे उनके तथा कतिपय अन्य लोगों के नाम की शाखाओं का वर्णन उस परिच्छेद में देखा जाता है। (४)

श्री नित्यानन्द तथा श्री अद्वैताचार्य्य के शिष्यों की नामावलियां क्रम से उसके ग्यारहवें तथा बारहवें परिच्छेदों में दी हुई है।

(४) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने "श्रीवल्लभीय सर्वस्व में, श्रीगौरांग के पार्षदों और चौंसठों महन्तों की नामावली दी है। वह इस पुस्तक के उपसंहार (ख) में उद्धृत की गई है। परन्तु हमें उस के सर्वथा ठीक होने में भी सन्देह है। इसका कुछ कारण नहीं लिखा गया है।

नवम परिच्छेद

गौराङ्गभक्त उन्हें ईश्वरावतार कैसे मानने लगे ?



श्री गौराङ्ग में भक्त भाव तथा भगवद्भाव दोनों विद्यमान थे। भगवद्भाव के आवेश में अर्थात् प्रकाशकाल में आप ने निज भक्तों को ईश्वरत्व का कई बार परिचय दिया है।

आपका वह भाव बनावटी नहीं होता था। उस समय इन की आकृति प्रकृति तथा कार्य्यकलाप ऐसा होता था कि महा नास्तिक को भी इन का ईश्वरत्व स्वीकार करने में हिचक नहीं हो सकती थी।

मूर्ख मण्डली के मध्य वह काम नहीं होता था। विद्यादिग्गजों को इनके प्रकाश दर्शन का अवकाश मिला था। यदि उसमें बनावट का लेशमात्र भी होता, तो कलई अवश्य खुल जाती। भंडा निश्चय फूट जाता।

उस समय ये अपना अपनापन निस्सन्देह खो बैठते थे। इस का प्रमाण देखिये। अद्वैताचार्य्य की अवस्था लगभग सत्तर वर्ष की थी। वे प्रसिद्ध शास्त्रज्ञ और वैष्णवमण्डली के मुखिया थे। वरन् अवतार की बात उठने पर यह भी विवेचना होने लगी थी कि गौराङ्ग अवतार माने जायेंगे या अद्वैत। प्रभु भी उनका पिता के समान सम्मान करते थे। प्रकाशकाल में प्रभु ने इनके तथा उन की पत्नी के मस्तक पर चरण रखा था। यही नहीं, आप ने अपनी वृद्धा माता के सीस पर पांव रख कर कहा था कि "तुम्हारा वैष्णवों का अपराध नाश हो।

पागल के सिवाय कोई महामूर्ख भी पठित और सज्जनों की मण्डली में ऐसा कर्म करने का साहस नहीं करेगा। ये तो महान पण्डित सोलह वर्ष के वयस में नवद्वीप ऐसे नगर में टोल स्थापित

करने वाले और दिग्विजयी पंडित के भी दांत खट्टा करनेवाले थे। ये ऐसा शास्त्र और शिष्टता विरुद्ध कार्य्य कैसे कर सकते थे? विशेषतः जबकि अप्रकाशावस्था में किसीके इनमें ईश्वर ज्ञान से अधिक भक्ति करने से इनके मन में महा क्लेश होता था।

एक बार एक वृद्धा ब्राह्मणी के इनका चरण पकड़ कर यह कहने से कि "तुम कृष्ण हो, हमारा उद्धार करो" इन्हें इतनी ग्लानि हुई थी कि ऐसे क्लेशों से बचने के लिये ये घर छोड़ अन्यत्र जा रहे थे और भक्तगण बहुत अनुनय विनय करके गंगापार से इन्हें पुनः नवद्वीप लौटा ले गये। उस समय इन्होंने यह भी कहा था कि "कहां लोग हमें भक्ति की शिक्षा देंगे, हम पर कृपा करेंगे, कहां चले हमको भगवान बनाने।"

ऐसा पुरुष अपनी चैतन्यावस्था में अपने मौसा को वयोवृद्ध अन्य नगरनिवासियों को, माता तथा दूसरी वृद्धा स्त्रियों को अपनी आरती पूजा भी नहीं करने देता और न ठाकुर की मूर्ति को हटा कर उनके आसन पर आसीन होता।

यदि कहिये कि इनके दिमाग में फ़तूर था, तो न कोई पागल को भगवान के सिंहासन पर बैठने देता और न उसको लेकर अहर्निशि नृत्यगान में प्रवृत्त रहता। प्रत्युत उसे अपनी डेवढी भी न झांकने देता और उसकी पूजा अन्य रीति और अन्य सामग्री से करता।

इसमें सन्देह नहीं कि इनके भक्तों की इनमें ईश्वर बुद्धि थी और वे इन प्रकाशों में अपने विश्वास और ज्ञान का प्रमाण पाकर अनिर्वचनीय आनन्द लाभ करते थे। परन्तु वे उन लोगों का इन्हें ईश्वर कहना पसन्द नहीं करते थे।

श्री रूप स्वामी कृत "विदग्ध माधव" तथा "ललित माधव" के मङ्गलाचरणों में अपनी स्तुति सुन कर इन्हें रोष भी हुआ था और इन्होंने उनके कार्य्य का तिरस्कार भी किया था। लोगों को

इनके नाम का संकीर्त्तन करना भी इन्हें अरुचिकर हुआ था। तब भी लोग इन्हें ईश्वर मानते ही थे और कहते ही थे।

और इन के विद्वेषी तथा विरोधी तो आज भी इन्हें ईश्वराव-तार नहीं मानते।

कोई इन्हें ईश्वर अथवा ईश्वरावतार माने या न माने परन्तु यह एक प्रधान धर्म्म संशोधक, धर्मप्रचारक तथा देश और धर्म्म हित साधक हुए हैं। न बंग देश और भारतीय धार्मिक हिन्दू इनसे उऋण हो सकते और न बंगभाषा तथा बंग साहित्य इन के वैष्णव भक्तों से उऋण हो सकता।



दशम परिच्छेद ।

वैष्णव-विचार ।



नारद जी कहते हैं "वैष्णवमन्त्र दीक्षा-संस्कृता वैष्णवाः ।" परन्तु देखते हैं कि "अमियनिमाई-चरित" के प्रणेता ने कृष्णोपासकों, और विशेषतः श्री राधा भाव (अर्थात् कान्ता भाव) से प्रेमाभक्ति और भजन करने वालों को ही वैष्णव माना है। आप कहते हैं "वैष्णवों के ठाकुर के हाथ में अस्त्र नहीं है, मोहन मुरली है। भय की कोई वस्तु नहीं, समुदाय सुन्दर है।"

यदि इसका लक्ष केवल खड्गधारिणी काली माता तथा दशभुजा दुर्गा की ही ओर होता, तो एक वैष्णव के मुख से ऐसा कथन इतना अनुचित नहीं होता। परन्तु इस कथन से चक्रपाणि विष्णु भगवान् एवं धनुर्बाणधारी श्री राम के उपासक भी वैष्णवों की श्रेणी से बहिष्कृत हो जाते हैं। यद्यपि वस्तुतः "विष्णु" शब्द से ही 'वैष्णव" शब्द की उत्पत्ति है और यथार्थ में विष्णु भक्त ही चाहे वह उन के किसी रंगरूप और अवतार का उपासक हो, वैष्णव है और वैष्णव कहलाने का अधिकारी है।

यही नहीं, आपने द्वारका में द्वारकाधीश की पूजा को भी शाक्त पूजा के समान ही माना है क्योंकि शाक्त भक्तों के समान उनके पूजक और उपासक भी अपने प्रभु से सुख सम्पत्ति के प्रार्थी होते हैं। प्रथम तो, हमारा मन यह विश्वास करने को तैयार नहीं होता कि गोपीभाव से भजन करनेवाले सभी भक्त कामनारहित हो कृष्ण का भजन करते हैं। दूसरे, सकाम भक्ति करने से ही कोई शाक्त के समान कैसे कहा जायगा? तीसरे सब शाक्त भी सकाम ही भक्ति नहीं करते। चौथे, सम्प्रदाय की विभिन्नता का विचार तो उस के विशेष नियमों और पूजापद्धति के ध्यान से ही होता है।

हम नहीं समझते कि द्वारका में कृष्ण भगवान की पूजा भगवती-पूजा के सदृश सम्पन्न होती है। क्या कृष्ण के सन्मुख भी जीव बलि दी जाती है?

पुनः आप दक्षिण के सम्बन्ध में कहते हैं "वहां अनेक 'रामाइत' अर्थात् रामोपासक वास करते हैं। अवश्य इन लोगों को भी एक श्रेणी का वैष्णव कहते हैं। किन्तु वे लोग प्रकृत वैष्णव नहीं। रामानुज ने दक्षिण में धर्म की जयपताका लेकर धर्म का प्रचार किया है। किन्तु उन का प्रचारित वैष्णवधर्म्म और शाक्तधर्म्म प्रायः एक प्रकार के हैं। दोनों में मुख्य विभिन्नता यही है कि शाक्तगण के उपास्य देवता शिव और दुर्गा, और रामानुज के उपास्य देवता कृष्ण, किन्तु वह कृष्ण ऐश्वर्य्य विवर्जित द्विभुज मुरलीधर नहीं हैं, शंखचक्रगदापद्मधारी नारायण। अतएव श्री गौराङ्ग के दक्षिण गमन के समय प्रकृत वैष्णव की संख्या वहां अति अल्प थी।"

शाक्त तथा शैव धर्म से श्रीरामानुज के धर्म्म की समता स्वीकार करने को हम उद्यत नहीं हो सकते। उपासनाभेद तथा मुख्य विभिन्नता की बातें तो लेखक महाशय कह रहे हैं। पर पूजा-पद्धति भी कैसे एक सी हो सकती है? क्या रामानुजजी के सम्प्रदाय में भी मांस मदिरा का व्यवहार होता है? उनके सम्प्रदाय में तो भोजनादि की विशुद्धता पर विशेष ध्यान रखा जाता है। उनके अनुयायी लोग शैवों से कोई संसर्ग भी नहीं रखते। "शंखचक्र" की बात, तो यह है कि श्री गौराङ्ग ने भी जगाई मधाई के उद्धार के समय, उक्त लेखक के ही लेखानुसार चक्र का आवाहन किया था एवं विष्णुप्रिया जी को शंख चक्र गदा पद्मधारी श्री विष्णुरूप का ही दर्शन दिया था। (१)

१. "चैतन्य भागवत" में तो बीसों जगह इन के चक्र, धरण करने की बात कही है।

आप के लेख से एक प्रकार से राम और कृष्ण का अस्तित्व भी लोप हो जाता है। आप कहते हैं "यदि कहो कि श्रीकृष्ण वा श्री रामचन्द्र उदय हुये थे तो उन लोगों का कार्य्य और उपदेश 'कुज्झटिका' (कुहेसा) से घिरा हुआ है। उन लोगों की लीलाएं सत्य हैं, इसका प्रमाण नहीं। श्री गौराङ्ग की लीला सत्य होने का अकाट्य प्रमाण है।" वह प्रमाण क्या है? यही कि गौराङ्ग की लीलाएं आधुनिक पद्धति के अनुसार लेखबद्ध हुई हैं?

एक वैष्णव का, जिस ने वैष्णवधर्म्म की महिमा जताने एवं उसके प्रचार के यत्न के लिये लेखनी उठाई थी, श्रीराम और कृष्ण के सम्बन्ध में ऐसी बातें लिखनी सर्वथा अयोग्य कहा जायगा।

जैसे श्री गौराङ्ग की लीलाएं "चैतन्यभागवत" "चैतन्य मङ्गल" आदि ग्रन्थों में एवं पद-कर्त्ताओं के पदों में वर्णित हैं, श्री राम और कृष्ण की लीलाएं भी रामायण और भागवत में, अनेक पुराणों में, अगणित पदों में वर्णन की गई हैं। श्रीवाल्मीकि जी तथा व्यास जी क्रमशः श्री राम तथा श्रीकृष्ण के समकालीन पुरुष माने जाते हैं। वृन्दावनदास ने यदि अपनी माता और नानाओं से सुन कर "चैतन्य भागवत" की रचना की है, तो श्रीमद्भागवत के रचयिता शुकदेव जी श्री व्यास के पुत्र थे। क्या इन्हें कृष्णलीला की बातें अपने पिता से ज्ञात नहीं हुई होंगी।

यदि आधुनिक पद्धति से श्रीगौराङ्ग की लीलाएं लिखी गई हैं, तो उन ग्रन्थों की रचना भी तत्कालीन 'आधुनिक" प्रणाली से ही हुई है। उस समय की वेही आधुनिक प्रणालियां थीं।

रहा प्रमाण। तो राम तथा कृष्ण के उदय और उन की लीलाओं के अकाट्य प्रमाण तो स्वयं गौराङ्ग महाप्रभु तथा लेखक महाशय ही हैं।

श्री गौराङ्ग भक्तों के कथनानुसार आप इसी कारण प्रादुर्भूत हुए थे कि स्वयम् राधाभाव धारण कर वे उस रस का अनुभव और आस्वादन करें जिस के कारण श्री राधा इन पर ऐसी अनुरक्ता रहा करती थीं, इत्यादि ; एवम् जीवों के उद्धार की जो आपने श्री राधा से प्रतिज्ञा की थी, उसका पालन करें। उक्त लेखक ने कई स्थानों में कहा है कि भागवतकथित कान्तारस की भजनरीति को और प्रायः सभी कृष्णलीलाओं को प्रभु ने कार्य्य द्वारा जीवों को दिखलाया है।" यदि श्रीराम कृष्ण की लीलाओं की सत्यता ही का प्रमाण नहीं तब क्या महाप्रभु ने स्वकार्य्य द्वारा श्री कृष्ण की असत्य लीलाओं ही को भक्तों को दिखलाया था और उसी के निमित्त इतना क्लेश उठाया था? हम ऐसा कहने का साहस नहीं कर सकते।

प्रभु ने मुरारि को कहा था कि "हम केवल तुम्हारी परीक्षा करते थे, तुम सानन्द श्री राम का भजन करो। तुम हनुमान के अंश से हो, तुम उन्हें क्यों छोड़ोगे?" एवम् दक्षिण मथुरा में आप के प्रश्न पर एक ब्राह्मण ने अपने दुःख का कारण यह बताया था कि "जब से हमें यह ज्ञात हुआ है कि जगन्माता सीता जी को राक्षस ने स्पर्श किया था, हमारी देह दुःख से दग्ध हुआ करती है, यद्यपि प्राण प्रयाण नहीं करता।" उस समय आप ने यह कह कर उसका आश्वासन किया था कि "रामप्रिया सीता जी चिदानन्द-मूर्त्ति थीं। प्राकृत इन्द्रिय को तो उनकी ओर ताकने की शक्ति नहीं। स्पर्श की बात तो दूर रहे। वह उन्हें देख भी नहीं सकता था। माया की सीता का हरण हुआ था।" पश्चात् सेतुबन्ध रामेश्वर से कूर्म पुराण के एक पत्र की नक़ल लाकर और उसे उन ब्राह्मण देवता को दिखा कर आपने उनका चित्त शान्त किया था?

यदि श्री राम के उदय तथा लीलाओं की बातें सत्य ही नहीं, तो क्या प्रभु ने मुरारि को असत्य के ही भजन की आज्ञा दी थी?

और क्या उस ब्राह्मण से आपने असत्य की ही कथा कही थी और असत्य के ही निमित्त उन्हें सन्तुष्ट करने को दोबारा उनके पास गये थे ? " और फिर गौराङ्ग का महामंत्र तथा गौड़ीय वैष्णवों का जपमंत्र " हरे कृष्ण, हरे कृष्ण " और " हरे राम, हरे राम " कैसे हुआ था ?

प्रभु ने सार्वभौम को जो षड्भुज रूप का दर्शन कराया था, वह भी श्री राम और कृष्ण की स्थिति को प्रमाणित करता है ।

दक्षिण की यात्रा में जहां श्री राम की मूर्ति का दर्शन हुआ था वहां प्रभु ने सप्रेम प्रणाम और नृत्य किया था । यदि किसी स्थान में रामोपासक आप के प्रभाव से कृष्णोपासक हो गये, तो वह राम की उदय कथा में आपत्ति-जनक नहीं । आप कृष्णभक्ति के प्रचार के निमित्त निकले थे । लोगों को कृष्णोपासक बनाना आप का कर्तव्य ही था । परन्तु कहीं राम की निन्दा आप के मुख से नहीं निकली थी ।

शिशिर बाबू ने यह भी कहा है कि " वैष्णवों में जो वीररस द्वारा भजन करता है, उसके उपास्यदेव नृसिंह वा रामचन्द्र हैं " । यद्यपि श्री राम तथा श्री कृष्ण की लीलाओं में वीर रस की भी प्रचुरता है तथापि वीरभाव में उनकी उपासना नहीं की जाती । यदि कहीं की जाती हो तो वह नहो के ही बराबर है । श्री कृष्ण भगवान के समान ही श्री रामचन्द्र की उपासना दास्य, सख्य, वात्सल्य, तथा श्रृंगार (कान्ता) भावों से की जाती है और उनमें श्रृंगार-भावना सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है । इस भाव से श्री राम की उपासना बहुतायत से होती है और ऐसे उपासक श्री अयोध्या में बड़े २ महात्मा वर्तमान हैं । ऐसे गृहस्थ उपासक भी बहुत हैं । बंगाल में श्री रामोपासना का अधिक प्रचार और व्यवहार नहीं होने से लेखक महोदय को कदाचित् यह बात ज्ञात न होगी ।

नारद-भक्ति-सूत्र, शांडिल्य-भक्तिसूत्र और विशेषतः श्रीमद्भागवत के वर्त्तमान होते, हम यह नहीं कह सकते कि पहले भक्ति के ग्रंथ नहीं थे। विद्यानगर में प्रभु का दर्शन पाने पर रामानन्द ने प्रायः भागवत ही के अनुसार साधना की व्याख्या करके प्रभु को सन्तुष्ट किया था। उस समय गौराङ्ग के गोस्वामियों की सृष्टि भी नहीं हुई थी। उन के द्वारा वैष्णव ग्रंथ की सृष्टि की बात तो दूर रहे।

हम यह भी नहीं कह सकते कि केवल गौरांग ने ही संसार में आकर तथा मनुष्यों में मिल कर उन्हें दिखलाया कि भगवान् की प्रकृति कैसी और उनका भजन क्या है। या, भगवान् के अस्तित्व तथा प्रकृति का इस प्रकार का प्रत्यक्ष प्रमाण पूर्व में नहीं था, इसी गौर अवतार ही में जीवों को ऐसा प्रमाण प्राप्त हुआ। निश्चय राम और कृष्ण के अवतारों ने भी मनुष्यों से मिल जुल कर कार्य्य किया था तथा भगवान् के अस्तित्व आदि का परिचय और प्रमाण दिया था।

उक्त लेखक महोदय श्री गौराङ्ग के भक्त थे। भक्ति के उमङ्ग में आप ने कहीं २ अप्रयोजनीय बातें भी कह दी हैं। श्री गौराङ्ग का माहात्म्य निरूपण करने और जतलाने के लिये श्री राम और कृष्ण को छाये में बैठाने की आवश्यकता नहीं। ये तो विदेशीय धर्म्म प्रचारकों की चाल है। श्री गौराङ्ग अपनी अलौकिक प्रभा अतुल्य शक्ति, अकथनीय गुणों के कारण आप ही ईश्वरीय आसन पर शोभायमान हो रहे हैं।

साम्प्रदायिक विचार से हमें श्री राम, श्री कृष्ण, श्रीशक्ति तथा श्रीगौराङ्ग किसी से सम्बन्ध नहीं। तथापि हम भक्तों के ही समान आप लोगों के चरणकमलों में श्रद्धाभक्ति रखते हैं। इसी से अपनी समझ के अनुसार यथार्थ कहने में हम ने संकोच नहीं किया है।

—:o:—

एकादश परिच्छेद

छूआछूत



अवतार पहले भी हुआ था। धर्मप्रचार कार्य्य अन्य महापुरुषों ने भी किया था। परन्तु महाप्रभु की प्रणाली स्वतंत्र थी। आपने संकीर्तन का रंग जमाया। भक्तों को किसी विशेष नियम में आबद्ध नहीं किया। नचा नचा कर, हंसा खेला कर उनके हृदय में प्रेमभक्ति का संचार किया। "हरिबोल" की ध्वनि ऊंची की। प्रेम प्रवाह में लोगों को प्लावित किया। घर घर जा कर, अपने शिष्यों को भेज कर, हरिनाम वितरण किया और कराया। स्वाचरण द्वारा भिन्न २ भावनाओं से कृष्णभजन की शिक्षा दी। कान्ताभाव से भजन की प्रधानता दिखलाई। कृष्णविरह की छवि दरसाई। भक्तों को सिखलाया कि ईश्वर के विरह में जीवों को कैसे व्याकुल हो उस की प्राप्ति और मिलन के लिये यत्नवान होना चाहिये।

सब भावनाओं से कान्ताभाव का भजन श्रेष्ठ और कठिन भी है। इस भजन के सब अधिकारी भी नहीं हैं और न सब इस का रस अनुभव करने को समर्थ हो सकते हैं। इसी से भारतेन्दु हरिचन्द्र ने कहा है "युगलकेलिरस वल्लभियन बिनु और कहा कोउ जाने", और इसी से कतिपय अनभिज्ञ प्राणी इस भाव के भजनानन्दियों की चुटकी भी लेते हैं। किन्तु हम अंगरेजों में भी इस भजन का प्रशंसक पाते हैं। एफ० डबल्यु० नियुमैन साहब कहते हैं कि यदि तुम्हारी आत्मा उच्चावस्था का आध्यात्मिक आनन्द भोग करने की अभिलाषा रखती है तो उसे अवश्य स्त्री-भाव धारण करना होगा, तुम पुरुषों के मध्य चाहे कितना ही पौरुषमान क्यों

न हो।"(१) और उन्हों ने यह भी कहा है कि "पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां सुगमता से पवित्र धर्म्म को प्राप्त करती हैं और कर सकती हैं।

केवल राम और कृष्ण के उपासक ही कान्तादि भाव से प्रभु का भजन करने के योग्य हैं। उन्हीं लोगों ने मनुष्य रूप में आविर्भूत हो कर एवं गृहस्थाश्रम में रह कर घर के सब व्यक्तियों और सम्बन्धियों के संग तथा जगत् के संग परस्पर सुन्दर प्रीतिकी रीति रखने की शिक्षा दी है। इन भावों में उपासना अन्य देव देवियों की असम्भव है।

स्वामी विवेकानन्द ने एक बार एक अभिनन्दन पत्र के उत्तर में भाषण करते हुए कहा था कि "यह बहुत मानीदार बात है कि पुराने भारतवर्ष में जो सर्वश्रेष्ठ दो महापुरुष बुद्ध तथा श्रीकृष्ण हुए वे दोनों ही क्षत्रियवंशोद्भूत थे और इससे भी अधिक मानीदार यह बात है कि उन दोनों ही ने जाति पांति के विचार बिना सब नर नारियों के लिये ज्ञान का द्वार उन्मुक्त कर रखा था।"

महाप्रभु ने भी स्वप्रचारित वैष्णव धर्म्म का द्वार सब के लिये मुक्त कर दिया था। एक बार प्रकाशावस्था में आपने कहा था "हम इस बार शुद्ध भक्ति और प्रेमदान कर के सब का दुःख दूर करेंगे।" और आप ने नित्यानन्द से कहा था कि "भाई तुम अपने गणों को ले कर गौड़ देश जाओ और चंडालों तक का उद्धार करो। मूर्ख, नीच, पण्डित, विद्यार्थी, दुर्मति, पापी किसी को न छोड़ना सब का उद्धार करना जिस में सब सहज में हरिकीर्त्तन कर के सुखी हो सकें।" और आपने अद्वैताचार्य्य को भी सब को

(१)—" If thy soul is to go on into higher spiritual blessedness, it must become *woman*, yes, however manly you may be among men."

F. W. Newman.

कृष्णभक्ति की शिक्षा देने की सम्मति दी थी। सचमुच वैसा ही हुआ भी।

जो मन्दिरों के द्वारों में झांकने नहीं पाते थे, जिन्हें देवालयों के द्वारों पर खड़े हो कर देवदर्शन करना दुर्लभ और दुष्कर था, जिन की छाया पड़ने से परम पवित्र और सब को पवित्र करने वाला देवस्थान भी अपवित्र हो जाता था, वे इनके ब्राह्मण, कायस्थ प्रभृति भक्तों के संकीर्त्तन में सम्मिलित हो आनन्द लेने लगे तथा प्रसाद पाने लगे।

जैसे आज कल सब जगहों के ब्राह्मण देवता धर्मपरायण शूद्रों की दक्षिणा ग्रहण करने तथा उनके अन्नों और द्रव्यों से मोटा होने में तो नहीं हिचकते, परन्तु उनके मन्दिरों में देव दर्शन के निमित्त जाने की चेष्टा करने पर चट दरवाजों पर खड़े हो जाते हैं जिस में देवता अपवित्र न होने पावें, वैसे ही रूप और सनातन के द्वारा पेट पोसने में विद्याभिमानी नवद्वीपीय पण्डितों को तो संकोच नहीं होता था, पर उनके उद्धार के उपाय करनेवाले कोइ नहीं दीखते थे। भूतपूर्व गौड़ेश्वर सुबुद्धि राय से न जाने लोगों को कितना धन प्राप्त हुआ होगा। किन्तु बलात्कार उनके मुंह में यवना का पानी डाल दिये जाने से, लोगों ने उनके उद्धार का उपाय भी वतलाया तो प्राणघातक।

प्रभु ने उन सबों पर दया की, और ऐसी दया, कि उनके चरणों को बड़े २ विद्वानों और दिल्ली-दरबार से भी पूजित बनाया।

नवद्वीपीय समाज में सब से घृणित स्वर्णवणिकों को नित्यानन्द ने वैष्णवमंडली में मिलाया—और उस जाति का सर्वप्रधान धनिक व्यक्ति धर्म प्रचार करने लगा।

हम यहां जाति पांति का आलोचन और यह विवेचना नहीं करेंगे कि किसी जाति की श्रेष्ठता के लिते जन्म प्रधान है या कर्म प्रधान। न हम किसीको कुल धर्म पर लातही मारने को कहेंगे। हम

इसका प्रचार किसी न किसी रूप में सर्वत्र पाते हैं। एक ही धर्म्म-माननेवाले और सभ्यता की डींग लेने वाले भी इससे ख़ाली नहीं हैं। हमने किसी लार्ड को अपने "बटलर" या "गुरूम्" (ख़ानसामां और साईस) के साथ या सैयद साहब को अपने बावर्ची या ख़िद-मतगार के एकही साथ मेज़ और दस्तरख़ान पर बैठ कर भोजन करते न सुना है और न देखा ही है।

परन्तु कोई काम हद से ज़्यादा होना सर्वथा अनुचित कहा जायगा। किसी विशेष जाति के किसी सड़क पर चलने से वह ऐसी अपवित्र नहीं हो सकती कि श्रेष्ठ जाति के मनुष्य उस मार्ग से गमनागमन करने से धर्म्मभ्रष्ट हो जायं, जब कि हवा अछूतों को छूती हुई सर्वदा उन के अङ्गों को छूआ करती है। हम किसी के स्पर्श करने से पतित न होजायेंगे और न नरक में ढकेले जायंगे जब कि रेल के डब्बों में महा नीच जातियों से हमारी देह सदा रगड़ खाया करती है। स्कूलों में, कचहरियों में, हाट बाज़ारों के लेन देन में हमें नित्य प्रति अहिन्दुओं से संसर्ग और स्पर्श हुआ करता है, वहां हमारा धर्म क्यों नहीं अधोगति को प्राप्त होता? हमारे विद्याध्ययन के समय हमारा एक सहपाठी "बसफोर" (डोम की श्रेणी का) था और रजिस्टर की नामावली के अनुसार प्रतिदिन वह सुहमारे बगल ही में बैठता था। उससे स्कूल के सब लड़कों को स्पर्श हुआ कर-ता था, तो वहां कोई क्या कर सकता था? ऐसी दशा में जो हमारे ही हिन्दू धर्म्म के देवदेवियों के माननेवाले और हमारी ही नीति रीति पर चलनेवाले हैं, चाहे वे किसी श्रेणी या जाति के हों, उन के स्पर्श से तो हमारी धर्म्महानि कदापि हो नहीं सकती। भार-तेन्दु हरिश्चन्द्र के कथनानुसार क्या हमारा धर्म ऐसा निर्बल वा पतला हो गया है कि केवल स्पर्श से वा एक चिल्लू पानी से मर जाता है? कच्चे गले सड़े सूत वा चींटी की दशा हमारे धर्म की हो गई है।। यदि ऐसा है तो उस का होना और न होना दोनों समान

ही है। किसी व्यक्ति के मन्दिर में जाने से देव, या देवालय क्या अप-वित्र होगा ? वह तो अपवित्रों को पवित्र करनेवाला हैं, पतितपावन है। उस के दर्शन मात्र से तो महापतितों का उद्धार हो जाता है। कोई पतित या नीच उसे क्या अपवित्र कर सकेगा ? किन्तु वे देव-स्थान हैं। चाहे कोई हो, शरीर और मन से शुद्ध होकर ही ऐसे स्थानों में जाना धर्म्म है। वह होटल, या भट्टीखाना नहीं, कि जो जैसे चाहे घुस पड़े। ये सब विचार आवश्यक हैं।

सामयिक अवस्था पर दृष्टि रख कर कार्य्य करना सर्वदा उचित और सराहनीय समझा जाता है। इसी विचार से पूर्व में सदैव काम लिया गया है। हमारे प्रातःस्मरणीय अवतार तथा महापुरुष सदा ऐसा ही करते आये हैं। हमारे धर्म्मग्रन्थ यही कह रहे हैं। स्मृतियों में विभिन्नता यही प्रमाणित कर रही है।

देखिये मर्यादापुरुष श्रीभगवान रामचन्द्र ने बन्धु भावसे नीच निषाद को अङ्क में लगाया था। उसने लेह्य पेय सब प्रकार का भक्ष्य पदार्थ भी प्रस्तुत किया था। परन्तु व्रतभंग के कारण आप ने उन्हें ग्रहण नहीं किया। किन्तु विपिनवासिनी तपस्विनी साध्वी शबरी प्रदत्त पदार्थों को आपने भोजन भी किया। श्री राम के मनाने के लिये जाने के समय श्री वशिष्ठ जी ने भी निषाद को अङ्क में लगाया था।

श्रीकृष्ण भगवान ने दुर्योधनके घर उत्तम भोजन, मेवा मिठाई, त्याग कर दासीपुत्र विदुर के घर उन के शुद्ध मन और पवित्रता के कारण, स्वच्छ सुन्दर भोजन ग्रहण किया। वैदिक ब्राह्मणों में भी दक्षिणासहित वह अन्न वितरण किया गया था। विचार कर देखिये भीष्म, व्यास, धृतराष्ट्र, पांडु, विदुर, कर्ण, पाण्डवगण, बाल्मीकि, घटयोनि तथा नारद कैसे और क्या थे। प्रत्येक भारत का मस्तक उन्नत करने वाले और गौरव बढ़ानेवाले हुए। यदि आज की तरह समाज इन्हें समाजच्युत कर देती, इनसे छूआछूत न करती, कोई

संसर्ग नहीं रखती, तो समाज की कितनी गौरवहानि हुई होती।

जाजली ऋषि ने तुलाधर (माल-विक्रेता) को अपना गुरु बनाया और श्रीभाष्य के कर्त्ता श्री १०८ रामानुज स्वामी के गुरुपरम्परा में शठकोप जी थे। अब क्या चाहते हैं?

श्री १०८ रामानन्द स्वामी के मुख्य बारह शिष्यों में कबीर, रई-दास सदन, और धन्ना की गणना है। इन लोगों को देखिये कैसे भक्त हुए और क्या थे?

जब कविवर रसखान मुसलमान होने के कारण श्रीनाथ जी के मन्दिर में जाने नहीं पाये थे, तब वे गोविन्द कुंड पर तीन दिनों तक निराहार पड़े रहे। फिर श्री विट्ठलनाथ जी ने, शुद्ध कराकर उन्हें मन्दिर में प्रवेश कराया। पीछे उनकी गणना गोस्वामियों में होने लगी।

एक हत्यारे का रामनामोच्चारण से पापमोचन होने की बात श्री गोस्वामी तुलसीदास जी की जीवनी में देखाही होगा।

महाप्रभु गौराङ्ग को चाहे ईश्वर स्वीकार कीजिये, चाहे महापुरुष मानिये, आपने भी इन्हीं प्रथाओं का अवलम्बनकर पतितों के उत्थान का प्रयत्न किया, योग्य हरिप्रेमियों का मान किया और जाति पांति पर विशेष ध्यान नहीं दिया।

आप ने कायस्थकुलोद्भूत श्री ईश्वरपुरी संन्यासी को गुरु बनाया और हरिनाम-परायण मुसलमान हरिदास को अपनी मण्डली में भुक्त किया।

भक्तगण उनका चरणोदक लेते थे। उनके श्राद्ध में सबों ने प्रसाद पाया था।

नवद्वीप के चान्द काज़ी को आपने नाम दान किया था। उनकी समाधि पर आज भी वैष्णववृन्द दंड प्रणाम और लोट पोट करते हैं। आपने पठान वैष्णवों की भी सृष्टि की। जग-न्नाथ से गौड़ जाते समय मुसलमान सीमाधिकारी को अपने

हाथ से प्रसाद देकर उसे परम भागवत और जगन्मान्य वैष्णव बनाया।

आप के वृन्दावन के मुख्य छः गोस्वामियों में तीन अर्ध मुसलमान और एक कायस्थ आपके अन्तरंग सेवकों में से थे।

अपने गुरु ईश्वरपुरी के रसोइया गोविन्द के विषय में आप ने सार्वभौम से कहा ही था कि "महापुरुष माहात्म्य देख कर विचार करते हैं, जाति देख कर नहीं।"

सच है, गोस्वामी तुलसीदास ने भी कहा है:—

"जाति पांति पूछे ना कोई। हरि को भजे सो हरि का होई॥"

और पांचवें सिक्ख गुरु का कथन है:—

"राम नाम रंग मन नहिं हेता। जो कछु कीन्हो सोउ अनेता॥
या तें उत्तम गनिय चँडाला। नानक जिह मन बसहि गोपाला॥

सिक्ख गुरुओं ने भी पतितों के उत्थान का बहुत उद्योग किया है, जिस का प्रमाण दसवें गुरु के वाक्यों में प्रत्यक्ष वर्त्तमान है। श्री गुरुनानक-धर्म्म में श्रद्धा करनेवाले मुसल्मान भी बहुत थे।

केवल आन्तरिक प्रेम और भक्ति का विचार कर श्रीगौराङ्ग ने शुक्लाम्बर के घर खाया था, एवं मुरारी गुप्त के पात्र का तथा सर्व-घृणित दरिद्र श्रीधर के वर्त्तन का जल पान किया था और कहा था कि हमारा आज कलेवर शुद्ध हुआ।"

श्री रामचन्द्र ने निषाद को अंक में लगाया था और प्रभु ने कुष्ट रोगग्रस्त वासुदेव तथा सनातन को अंक में लगा लगा कर लोगों को दिखलाया था कि हरिभक्त किसी अवस्था में नीच और घृणित नहीं। कोढ़ी भी प्रेमपात्र है। भजन में जाति विचार नहीं इसी से "चैतन्य भागवत" में कहा है:—

" चंडालव मोहार शरण यदि लय।
सेइ मोर मुइ तार जानिह निश्चय॥ "

हीन जाति ही को तो भजन अधिक सुलभ होता है। श्रेष्ठ तो अपने अभिमान ही में अकड़े रहते हैं। उनसे यथार्थ भजन क्या बन आवेगा। मनुष्य में वस्तुतः कोई नीच नहीं। ब्राह्मण का दम्भ व्यर्थ एवं शूद्र मोची आदि का क्षोभ भ्रम। ब्राह्मणों को उनसे घृणा करनी नहीं चाहिये और शूद्रों को ब्राह्मणों का गुणगान, और उनका कृतज्ञ होना उचित है। क्योंकि ब्राह्मणों ने अपना जन्म प्रभु के मुखारविन्द से माना है और शूद्र की उत्पत्ति चरणों से बताई है। प्रभु के मुख कमल से पद पंकज की महिमा अधिक है। कोई भी आपके मुख की सेवा नहीं करता, मुखदर्शन का अभिलाषी और प्रार्थी नहीं होता। सभी पादपद्मों की सेवा चाहते और करते हैं। एवं उसी के दर्शन के लिये लालायित रहते हैं।

देखिये एक परम पूजनीय महात्मा कहते हैं:—

" जिहि चरनन सों निकसो सुरसरि संकर सीस चढ़ाई ।
जिहि चरनन के चरनपादुका भरत रहे लव लाई ॥ "

फिर:—

सोइ चरनन सों सूद्र जनम भयो पोथिन माँझ बताई ।
तब तिन सन हम घृणा करत किमि सोचहु तो कछु भाई ॥
राम, कृष्ण, गौराङ्ग कथा सुनि सब कुविचार बिहाई ।
लावहु अंक निसंक हरषि हिय जिमि भाई कहँ भाई ॥
याही ते हिन्दू हित ह्वैगो अरु यह देस भलाई ।
शिवनन्दन सम्मति यह मानहु नातरु काज नसाई ॥

द्वादश परिच्छेद

समीक्षा



यद्यपि श्री गौराङ्ग के जीवनी-लेखकों ने इनके जन्मकाल से ही इनका महत्व प्रदर्शन किया है, इन के शैशवावस्था में ही इनके मुख से कई बार गूढ़ तत्वों की बातें कहलवाई हैं, एवम् इनकी बाललीलाओं में, इन की उद्दण्डताओं में वृन्दावनविहारी की लीलाओं की छवि दरसाई है, इनके आविर्भाव के अवसरपर ग्रहण के उपलक्ष में धर्मानुशासनानुसार जनसमुदाय तथा तत्कालीन वैष्णवों और भक्तों के स्नानदानादि का सम्बन्ध भी इनसे जोड़ने की चेष्टा की है, किन्तु साधारण समालोचकवृन्द, इन्हें परम आदरणीय महापुरुष मानते एवं इन्हें प्रेम और भक्ति के भाजन स्वीकार करते हुए भी, इन के आदिम काल में, इनकी बुद्धि विचक्षणता और पाण्डित्य विलक्षणता को ही इनका महत्व-सूचक गुण पाते है।

उस समय इनके मन में हिन्दू धर्म्म तथा देवदेवियों में जो कुछ श्रद्धा भक्ति हो, परन्तु उस पर पाण्डित्य और विद्यागर्व का परदा पड़ा हुआ था। इसीसे ये अपने को गंगादेवी का पिता कहते वैष्णवों से उलझते फिरते, और भक्तों को चढ़काया करते थे। वे लोग भी इन्हें केवल एक उद्दण्ड महान पंडित ही मानते थे।

पर गयागमन ने इनके जीवन की जवनिका परिवर्तित कर दी (१) श्री विष्णुपद के दर्शन ने वैष्णव-धर्म्म की ओर इनका

१, चूड़ामणिदास ने "चैतन्य चरित" में इन के विद्याभ्यास के पूर्व की एक घटना लिखी है। हां! यदि वह सत्य हो तो वहीं से इनके भावीजीवन का सूत्रपात्र और विकाश माना जायगा। परन्तु इस घटना की चर्चा हमें अन्य प्रामाणिक पुस्तकों में देखने में नहीं आई है। घटना इस प्रकार से वर्णित हुई है:—

चित्त आकर्पित किया। एवं कन्हाई-नाट्यशाला की घटना ने उस पर और रंग चढ़ा कर इन्हें पक्का वैष्णव बना दिया।

उपर्युक्त समय आने ही पर किसी कारणविशेष से—चाहे वह तुच्छ हो या महान—महा पुरुषों का महत्व प्रस्फुटित, विकसित और प्रदर्शित होता है।

ईसा को स्वर्गीय कपोत का दर्शन हुआ था। महात्मा महम्मद ने गिरि शृंग पर अपने प्रभु का दर्शन पाकर सिद्धता प्राप्त की। एवम् बुद्धदेव कठोर तपस्या के अनन्तर दिव्य दृष्टि से अभीष्ट का दर्शन लाभ कर कृतार्थ हुए।

ऐसे ही उक्त नाट्यशाला में मुरलीधर का मनोहर दर्शन पाकर पहले उनके मन में आश्चर्यजनक भक्तिभाव का उदय हुआ। पीछे लगभग २४ वर्ष के वय में आप प्रत्यक्ष भाव से अवतार रूप में प्रकाशित हुए अर्थात् आप में भगवान का आवेश होने लगा। उसी समय से आप ने वस्तुतः अपना कार्य्य भी आरम्भ किया।

अद्वितीय पंडित होने पर भी आप धर्मप्रचार में वक्तृता या तर्क-वितर्क से काम नहीं लेते थे। यद्यपि गया-यात्रा के पूर्व बाल्य-काल ही से सबों के साथ शास्त्रार्थ में उलझने का आप को व्यसन सा हो गया था; एवम् बड़े बड़े नैयायिकों और शास्त्रज्ञों को आप

इन्हों ने सोचा था कि विद्या पढ़ कर जगत का कुछ उपकार अवश्य कर सकेंगे। परन्तु अपने अध्ययन के विषय में अपनी माता के प्रस्ताव को पिता द्वारा अस्वीकृत होते देख इनको महा खेद हुआ। फिर यह विचार कर कि धर्म्मशास्त्रानुसार जिस व्यक्ति की अस्थि गंगा में पड़ती है वह मुक्ति लाभ करता है, बालकों का एक दल एकत्र कर मृतकों की हड्डियों को गंगा में फेंकने और इस प्रकार उद्धार करने में आप जी-जान से प्रवृत्त हुए। गंगाजल अस्थिमय हो गया। लोगों के पूजापाठ और स्नान ध्यान में विघ्न पड़ने लगा। किसी के मना करने पर ये माननेवाले कब थे? पिता को इस की खबर मिलने से वे स्वयं गंगा किनारे गये और इनकी करनी देख दंग हो गये। उनके भय दिखाने पर इन्होंने रोते २ अपना मनोभाव व्यक्त कर दिया। बालक निमाई का ऐसा महान उद्देश्य जान सब लोग महानन्दित हुए और तब ये टोल में भेजे गये।

के सामने खड़ा होने का साहस नहीं होता था। धर्मप्रचार में आप शास्त्रार्थ प्रायः बचाते थे। जो लोग इसके लिये कमर कस कर आते थे, उन्हें भी इनकी बातें सुन कर और इनके भावों को देख कर पेटी खोलनी पड़ती थी और इनके चरणों में सिर झुकाना पड़ता था। ये हंस कर कहते "महाराज! आप महान पंडित हैं, आप के सामने हम बच्चे हैं। हम आप से क्या तर्क करेंगे? हम यों ही आप को जयपत्र लिख देते हैं। आप एक बार कृष्ण कृष्ण तो उच्चारण—कीजिये।" दक्षिण की यात्रा में अनेक स्थानों में ऐसा ही रंग देखने में आता है। हां! जहां पाण्डित्य-प्रदर्शन बिना कार्य्य साधन सर्वथा असम्भव हुआ है, वहां आपने उस का भी रंग जमाया है। वह भी ऐसा कि लोगों की बुद्धि चकरा गई है, और दांत खट्टे हो गये हैं।

संन्यास ग्रहण करने पर आप माता की आज्ञा शिरोधार्य्य कर नीलाचल में रहने लगे थे। दो तीन बार जगदुद्धार के विचार से इधर उधर भ्रमण को भी निकल पड़े थे। पुरी में आप कटकाधिप प्रताप रुद्र समर्पित सिन्धु तटस्थ एवं श्री पुरुषोत्तम मन्दिर के निकटस्थ कुसुम-कानन-सुशोभित एक परम निर्जन निकेतन में निवास करते थे। वन, पर्वत पवित्र सरित् और एकान्त स्थान ईश्वर ध्यान तथा आत्मबल-वर्द्धन के लिये बहुत उपयोगी तथा परम सहायक होते हैं। इसी से प्रायः सभी महापुरुष एकान्तवास नितान्त पसन्द करते हैं। सदा नहीं, तो कुछ काल ऐसी जगहों में अपनी इच्छा और आवश्यकता के अनुसार अवश्य निवास करते हैं। श्री बुद्धदेव के हृदय में धर्मज्ञान कपिलवस्तु में ही कई घटनाओं को देखकर उदय हो चुका था; तो भी साधना की कुछ आवश्यकता समझ आपने नैरंजन (लीलाजान) के तट पर बोधिवृक्ष के तले छः वर्ष व्यतीत किया था।

आदि गुरु श्रीनानक जी आदि ही से एकान्तवास पसन्द करते थे। जिससे आपके पिता को भ्रमवश एक बार वैद्य बुलाने

की भी सूझी थी। उस समय आपने हँसकर वैद्य से कहा था कि "जब आप अपने रोग की औषधि न करते तब मेरी पीड़ा का क्या निर्णय कीजियेगा।" और एक बार आप ने ऐसा भी कहा था "जाहु वैद घर आपने मेरो आहि न लेहु। हम राते रङ्ग एक के तू किमि दारू देहु।"

श्री दसवें गुरु भी कुछ दिन मौनभाव से सबसे विलग निर्जन में समय व्यतीत करते थे, जिससे आप के निज के लोग महाचिन्तित एवं विरोधी वर्ग प्रफुल्लित हो रहे थे कि अब तो आपके पागल हो जाने में तनिक भी सन्देह नहीं है। इसके बाद ही ब्रह्मदर्शन से आपने अपने शिष्यों से पूछा था कि उनमें से भगवती के आगे बलि हो कर देशहित-साधन के लिये कितने प्रस्तुत हैं और पाँच प्यारों ने अपना सीस समर्पण करने में कुछ भी संकोच नहीं किया था।

वीरभूमि ज़िलान्तर्गत बोलपुरनिवासी महर्षि देवेन्द्रनाथ अजयनदी के तट पर वन के निकट प्रायः ध्यान लगाते थे। उन्होंने हिमालय के निर्जन स्थानों में भी बहुत काल बिताया था।

जार्डन के तीर जोहन से दीक्षित होने पर हज़रत ईसा ने चालीस दिन किसी निर्जन स्थान में व्यतीत किये थे, एवं चौदह वर्ष से तीस वर्ष के वयस से वे कहाँ रहे इसका पता बाइबिल पुस्तक से नहीं चलता। सम्भवतः वह काल भी आपने किसी एकान्त-स्थान में परमात्मा के चिन्तन में अतीत किया हो अथवा लोगों के कथनानुसार आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्ति के निमित्त वे भारत में आकर रहे हों।

भारतीय ऋषिगण सदा अरण्यों में ईश्वरध्यान एवं प्रभु गुणगान में कालक्षेप किया ही करते थे और कितने अब भी करते हैं यह बात सभी जानते हैं।

परमहंस श्रीरामकृष्ण जी ने कहा है कि "एकाग्र चित्त हो" निर्जन में मीठे स्वर से गाकर ईश्वर-नाम-कीर्तन करना चाहिये। निश्चय चित्त पर इसका अधिक प्रभाव पड़ेगा।

यह दूसरी बात है कि बन वा निर्जन में भी रागी होने से दोष होता है और भवन में ही रहकर इन्द्रियनिग्रह तप के तुल्य है। यह कथन एकान्तवास का विरोधी नहीं। और पुस्तकों में तो यही देखा जाता है कि विपिनवासी योगी और तपस्वी आदि जब भ्रष्टाचार हुए हैं तब देवराज की कुटिलता ही की कृपा से।

"काहे रे बन खोजन जाही" का लक्ष्य उन लोगों पर है जो समझते हैं कि केवल गृहत्यागी होने से ही प्रभु की प्राप्ति होगी, अन्यथा नहीं। यह निश्चय भूल है; क्योंकि वह बन में छिपा बैठा नहीं है कि कोई उसे वहाँ खोज कर धर लेगा। गौराङ्ग के शिष्यों में विरले ही ऐसे देखे जाते हैं, जो हरि की खोज में बन बन भ्रमण किये हों। इसके बिना ही उनका कल्याणसाधन हुआ है। धोबी घाट के पाट पर कपड़ा पीटते पीटते ही "हरिबोल" में मस्त हो गया और उसी के द्वारा उसका गांव और सारा जवार उसी रँग में रँग गया।

आपकी दक्खिन-यात्रा में सर्वत्र ऐसा ही दृश्य देखा जाता है, कि कभी आप ऊर्द्ध बाहु किये माला जपते; कभी कृष्ण कृष्ण कहते नाचते गाते; कभी खड़े हो जाते और कभी सहसा बैठ जाते; कभी देह में धूलि मलते कभी रोते हँसते; पुनः उठ कर धीरे धीरे चलने लगते और कभी लम्बी दौड़ लगाते। जब द्रुतवेग से गमन करने लगते थे तब बेचारे भृत्य की जान पर पड़ जाती थी।

आप की सुख्याति तो आपसे कोसों आगे दौड़ती जाती थी. और लोग पहले ही से मार्ग में दर्शन के लिये खड़े रहते थे। जब आप वनपथ से जाते तब चिन्ता नहीं। किन्तु आबादी होकर जाने के समय जिधर जाते आपके साथ जनता लग

जाती थी। बालकवृन्द पागल समझ "हरिबोल" कहते पीछे दौड़ते और समझदार कोई महापुरुष समझ आप के चरणों में नमस्कार कर संग लग जाते और कीर्त्तन में साथ देने लगते। जैसे कमल की सुवास पा झुंड के झुंड भ्रमर आ पहुंचते हैं, आपके मार्ग में कहीं बैठ जाने पर एक एक कर अनेक लोग एकत्र हो आपके दर्शन मात्र से "हरि,हरि" करते नृत्य करने लगते थे। जिस गांव के समीप रात को ठहरते वहां के और उसके आसपास के लोग हरिप्रेम में सदा के लिये मस्त हो जाते थे।

मार्ग में कहीं आप किसीको सम्बोधन कर हरिबोलने की आज्ञा करते किसीकी ओर केवल दृष्टिनिक्षेप कर उसका कल्याण साधन करते; किसी को स्पर्श, किसी को आलिङ्गन कर कृतार्थ करते। किन्तु सब का फल एक ही होता था—हरिभक्ति में अनुरक्ति और सब के द्वारा गांव गांव में एवम् एक गांव से दूसरे गांव में भक्ति का प्रचार। "चैतन्य चरितामृत" में इस अचिन्तनीय शक्तिसञ्चार का वर्णन इस प्रकार हुआ है :—

× × × ×

"लोक देखि पथे कहे बल हरि हरि॥
सेइ लोक प्रेम मस्त बले हरि कृष्ण।
प्रभु पाछे संगे जाय दर्शन सतृष्ण॥
कत क्षण रहि प्रभु तारे आलिङ्गिया।
विदाय करिल तारे शक्ति संचारिया॥
सेइ जन निज ग्रामे करिया गमन।
कृष्ण बले हांसे कांदे नाचे अनुक्षण॥
जारे देखे तारे कहे बल कृष्णनाम।
एइ मत 'वैष्णव कैला सब निज ग्राम॥
ग्रामान्तर हैते देखिते आइल जत जन।
तार दर्शन कृपाय हय ताहारि सम॥

सेइ ग्राइ ग्रामेर लोक वैष्णव करय।
अन्य ग्रामे आसि तारे देखि वैष्णव हय॥
सेइ जाय अन्य ग्रामे करे उपदेश।
एइ मत वैष्णव हैल सब दक्षिणदेश॥ (२)

आप का कोई द्रव्य छूने से अथवा आप ही आप किसी प्रकार आपका अङ्ग स्पर्श हो जाने से भी लोगों की दशा परिवर्तित हो जाती थी; जैसे कि मल्लाह की हो गई थी। इसीसे प्रबोधानन्द ने स्व-प्रणीत "चैतन्य-चन्द्रामृत" पुस्तक में कहा है:—

"दृष्टः स्पृष्टः कीर्त्तितः संस्मृतो वा
दूरस्थैरप्यानतो वादृतो वा।
प्रेम्णः सारं दातुमीशो य एकः
श्रीचैतन्यं नौमि देवं दयालुम्॥"

आप ने शक्ति-संचार का भिन्न भिन्न ढंग क्यों अवलम्बन किया, यह तो वही जानें। किन्तु अनुमान विशेष विशेष व्यक्ति के पूर्व संस्कार तथा अधिकार की ओर निर्देश करता है जगत में सब का अधिकार समान नहीं होता। अधिकारविरुद्ध कार्य्य होने से फल भी विपरीत होता है। इसीसे आदम और हवा को भी वशेषवृक्ष के फल खाने का निषेध किया गया था और उन के अधिकार-विरुद्ध कार्य्य करने तथा आज्ञा के उल्लंघन का यह फल हुआ कि आज तक उनकी सन्तति कष्टभागी और क्लेशभोगी हो रही है।

महाप्रभु के शक्तिसंचार और उससे लोगों के प्रभावान्वित होने में कोई सन्देह का कारण नहीं है। महापुरुषों के वाक्य दृष्टि,

२. ये छन्द तथा दूसरे अनेक छन्द जो उद्धृत किये गये हैं स्पष्ट दिखला रहे हैं कि पुरातन बंगभाषा और हिन्दी में कितना सादृश्य है तथा उससे आधुनिक बंगभाषा में कितना प्रभेद है। अब हमारी हिन्दी भी आज की बंगभाषा का अनुसरण कर रही है। सरलता का ह्रास होता जाता है।

भावभंगी एवम् स्पर्शादि में निश्चय शक्तिसंचार की शक्ति होती है। यही क्यों ? उनके पवित्र वासस्थान की धरती, वहाँ की जलवायु और तरु-लताओं में भी मनुष्यों के चित्तशुद्धि की शक्ति आ जाती है। इसका प्रायः सबको अनुभव होगा कि तीर्थस्थानों, देव-मन्दिरों, पुनीत सरिताओं तथा महान महात्माओं के दर्शन से, थोड़े ही काल के लिये क्यों न हो, चित्त का भाव अवश्य बदल जाता है।

हमारे उपदेशक या लेकचरर क्या वाक्य द्वारा शक्तिसंचार नहीं करते ? अवश्य करते हैं किन्तु उनका आत्मबल स्वयं सबल न होने के कारण उसका प्रभाव चिरस्थायी नहीं होता। तथापि आज भी विशुद्ध हृदय, ईश्वरावलम्बी, कुछ शक्ति सम्पन्न महाजन चित्त पर पूरा प्रभाव डालने तथा पूर्णरूपेण काम कर दिखलाने की योग्यता रखते हैं। चतुर्दिक दृष्टि घुमाने से आप लोग स्वयम् ऐसे महात्माओं को देख सकते हैं और उनका प्रभाव समझ सकते हैं। क्या अवधनिवासी महात्मा कायस्थ कुल-भूषण श्री सीताराम-शरण भगवान प्रसाद जी किसीसे छिपे हैं ? जाइये, दर्शन कीजिये। देखियेगा, थोड़ी साधारण बातों से ही आपके चित्त का रंग कैसा बदल जाता है। हम पटना मुहल्ला बाकरगंज के श्री वेणीदास जी की ठाकुरबारी के स्वर्गीय महंथ महात्मा श्री भीष्मदास जी (३) को जानते हैं जिनकी अल्पकालीन सङ्गति का वहीं के एक सुप्रसिद्ध वकील ब्रजेन्द्र मोहन बाबू (४) के चित्त पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे कुछ दिनों के बाद काम धन्धा छोड़ श्रीवृन्दावन चले गये और आज केशी घाट पर केशीनिकन्दन के ध्यान और नामकीर्तन में मग्न रहते हैं।

फिर गान-वाद्य क्या शक्तिसंचार नहीं करता ? नज़र का निशाना बन कर कितने ही अपना सर्वस्व खो न बैठते ? परन्तु उस दृष्टि-

३ इस समय इस गद्दी पर बाबा बदरीदास जी विराजमान हैं।

४ पटना के मुहल्ला पीर बहोर में "ब्रजेन्द्र मोहनदासलेन" नाम की एक गली आप के नाम की घोषणा कर रही है।

बल और महात्माओं की दृष्टि द्वारा शक्तिसंचार में बड़ा अन्तर है। वह सर्वथा नाशकारक और यह परम कल्याणसाधक है।

और महाप्रभु तो मूर्त्तिमान भक्तिदेवी हो रहे थे। आपके स्वरूप दर्शन, कथन, और आलिङ्गनादि का प्रभाव लोक जन पर क्यों न पड़े? आप के किसी प्रकार शक्ति संचार में पूर्ण बल क्यों न हो? इसी से जनता आप के दर्शन मात्र से प्रेमोन्मत्त हो उच्चस्वर से हरिकीर्त्तन करने लगती थी। एवं प्रेमतरंग के तरंगित होने से आपकी भी यही दशा हो जाती थी। यह रंग इनमें बराबर देखा गया है।

मूर्त्तियों में भी शक्ति-संचार की शक्ति होती है, वे भी ईश्वरभक्ति की साधिकाएं हैं। इसीसे कहा है "बुत को बिठा कर सामने, यादे खुदा करूं"

विहार शहर के निकटस्थ बड़गांव में बुद्ध देव की मूर्त्ति देख कर हमे ऐसा प्रतीत हुआ था कि यदि एकाग्रचित्त हो कोई उसे दो घंटे तक देखता रहे तो मन पर उसका निश्चय बड़ा प्रभाव पड़े। बहुत से लोगों को ऐसी मूर्त्तियों तथा विग्रहों के देखने का संयोग हुआ होगा।

चित्त स्थिर करने एवम् ईश्वर के चरणों में अनुराग उत्पादन और वर्द्धन ही के लिये मूर्त्तिपूजा का व्यवहार किया जाता है। ईश्वराराधना में सब बाह्य अवलम्बनों को परित्याग कर देने से कार्य्यसाधन सर्वथा असम्भव न हो तो दुष्कर तो अवश्य है। बड़े बड़े विज्ञ पुरुषों का बिना इसके काम नहीं चल सकता। तब अल्पज्ञों और मूर्खों की बात कौन कहे। इसीसे पुराणों में ईश्वर को निराकार, अपार, अलख, अगम, अनन्तादि गुणविशिष्ट बताते हुए, सब जीवों के कल्याणार्थ उनका अनेक आकार भी निरूपण किया है। इससे ईश्वरज्ञान और हरिप्रेम प्राप्ति में मूर्त्तिपूजा बाधिका नहीं। श्रीमान् स्वामी विवेकानन्दजी ने भी एक बार एक व्याख्यान में

में इसी प्रकार का आशय प्रकट किया था। लार्ड बेकन का यह कथन कि अन्धविश्वास (अर्थात् मूर्तिपूजन) से नास्तिकता उत्तम है, सर्वथा भ्रममूलक है।

नास्तिक ईश्वरीय कार्यों के समझने में असमर्थ हो कर ईश्वर का अस्तित्व अस्वीकार करता है। मूर्तिपूजक उसके जानने ही के लिये उसका एक विशेष रूप कल्पना कर के उसकी आराधना कर सफलमनोरथ होता है। और जब सारी सृष्टि की इसी से उत्पत्ति है और वही सब का बीज स्वरूप है, तो उस का कोई रूप निरूपण करलेने में कोई दोष भी नहीं दीखता।

भक्तों का तो बिना इसके काम ही नहीं चल सकता, चाहे आँखों के सामने मूर्ति स्थापित कीजिये, चाहे चित्त के सिंहासन पर उसे विराजमान कराइये। जैसे आप के कार्य्यों की सिद्धि हो वही कीजिये। महाप्रभु ने भी प्रतिमापूजन को भक्ति का एक अङ्ग माना है।

यदि कहें "कि जब आप दक्षिण के उद्धार के लिये निकले थे, तब ऐसे पागलपने के ढंग से जाना क्या था? शान्तभाव से जा कर उपदेश करते" तो यह ढंग नक़ली नहीं था कि आप कोई और स्वांग सज लेते। आप आदि ही से कृष्णभक्ति के गाढ़े रंग में रंगे हुए थे। उसका नशा चढ़ने पर यही दशा हो जाती है। इसीसे आप नावों पर नाचने लगते थे, जिससे नौका के डूब जाने का भय हो जाता था। एक बार एक सरोवर में, दो तीन बार यमुना में और एक बार सागर में कूद पड़े थे जिन घटनाओं का हाल पाठक जानते ही हैं। प्रेमावेश में बेसुध हो नहीं समझते थे कि क्या कर रहे हैं। यह प्रेम की पराकाष्ठा है कि प्रेमी पागल हो जाता है। ऐसे ही पुरुषों के सम्बन्ध में "नारद—भक्तिसूत्र" में कहा है "ॐ यज्ज्ञानान्मत्तो भवति स्तब्धोभवत्यात्मारामो भवति" और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कहते हैं:—"कोउ मोहि हँसत करत कोउ

निन्दा नहिं समुझत कोउ प्रेम परेखे। मेरे लेखे जगत बावरा, मैं बावरी जगत के लेखे॥"

फिर सर्वत्र और सब काल यही बात भी नहीं देखी जाती। कतिपय अन्यधर्म्मावलम्बियों के एवं सार्वभौम प्रभृति के हृदय को तो आप ने उपदेश और पाण्डित्य ही द्वारा भक्ति प्रेम से पूरित किया था। विविध स्थानों से, विशेषतः बंगाल और व्रज से, जो भक्तगण वा धर्म्मजिज्ञासु आते थे, उन के चित्तों के कलुषों को तो आप अपने उपदेशों एवं सद्भावों के प्रभाव से ही विनाश कर उनमें सदाशय और प्रेमाभक्ति का भाव भरते थे। वे आप के अलौकिक सौंदर्य्य, मधुरालाप, सुखद उपदेश और कृपाकटाक्ष से कृतार्थ हो स्वकल्याण साधन करते तथा अन्य लोगों का कल्याण करने को समर्थ हो जाते थे। आप जिससे बातचीत करते उसे यही प्रतीत होता था कि वही इनका सब से अधिक स्नेही है। लोगों के साथ वार्त्तालाप करते समय भी आपका मन अपनी लगन में मग्न रहा करता था।

"लबश बा खल्क़ दर गुफ़्तार मेबूद।
वले जानो दिलश बा यार मेबूद॥"

इनकी नम्रता और सरलता इन के योग्य ही थी। आपका विद्याबल तो ऐसा कि इन की छोटी ही अवस्था में दिग्विजयी पण्डित को भी इनसे हार मानना पड़ा था। परन्तु जब सार्वभौम ने ज्ञान अर्जन एवम् इन्द्रियदमन की शक्ति वर्द्धन के निमित्त इन्हें वेद सुनने को कहा, तब ये उनसे सहर्ष वेद सुनने लगे। किन्तु इन के वेद सुनाने का जो फल हुआ, वह पाठकों पर अविदित नहीं। उन्हें स्वयम् ऐसी शिक्षा मिली कि वे तभी से इन्हें ईश्वर-भाव से देखने लगे।

दक्षिण से लौटने पर इन्होंने सार्वभौम से कहा था कि "साधकगण श्रीहरि की प्राप्ति के निमित्त अनेक पंथों का अवलम्बन करने

हैं किन्तु रामानन्द का मत सर्वोत्तम जान कर हमने उसीको ग्रहण किया है।" वास्तविक घटना यह हुई कि इन के दर्शन तथा अल्प सत्सङ्ग से वे काम-धन्धा सब छोड़ इन के चरणों के निकट नीलाचल में आ चले। इससे यदि कोई इन्हें मिथ्यावादी कह बैठे, तो यह उसकी बुद्धि की बलिहारी है।

प्रकाशावस्था के अतिरिक्त ये कभी कोई ऐसी बात नहीं कहते थे जिससे इन का ईश्वरत्व प्रगट हो और न अपने सम्बन्ध में किसी दूसरे का ऐसा कहना इन्हें अच्छा लगता था।

कोई महापुरुष या अवतार यह नहीं कहते फिरते कि वे ऐसे हैं। बुद्धिमान उनमें महत्व वा ईश्वरत्व का लक्षण देखते हैं। जैसे महात्मा गान्धी में कुछ गुणगरिमा पाकर पादड़ी जे० एच० होम्स (Holmes) ने एक धर्मोपदेश में महात्मा मसीह से उनकी तुलना की थी और राबर्ट साहब के उसका विरोध करने पर उन की बातों का निराकरण कर के अपने कथन का पुनः समर्थन किया था। (५) वैसे ही गौराङ्ग में भी लोग सन्तोषदायक लक्षण देख इन्हें अवतार मानने लगे थे। नहीं तो बड़े बड़े विद्या दिग्गज और बड़े बड़े बुद्धिमान जो राज काज, घर द्वार, बन्धु परिवार—त्याग परलोक सुधारने के लिये जगत से न्यारे और इनके शरणापन्न हुए थे। ऐसी बातें क्यों कहने लगते ? क्या असत्य-भाषण ही के लिये वे, गृहत्यागी और भक्तिपरायण हुए थे ?

कवि कर्णपूर ने स्वप्रणीत "चैतन्यचन्द्रोदय" नाटक के अन्त में लिखा है कि "यदि सत्य कहते हो तो श्री कृष्ण हम से सन्तुष्ट होंगे।" अर्थात् असत्य कहने से सन्तुष्ट न हो कर कुपित होंगे। तब वे अपने जानते कोई असत्य बात लिखने का कैसे साहस करते ?

५. २६ वीं नवम्बर १९२२ का पटना से प्रकाशित "सर्चलाइट" पत्र देखिये।

अलौकिक घटनाओं के विषय में यही कहना अलम् है कि महात्माबुद्धदेव, मसीह, मूसा, महम्मद प्रभृति सब के जीवनचरित्रों में अनैसर्गिक बातें देखी जाती हैं। अवतार की बात तो दूर रहे इस के विना कोई किसी को महात्मा ही न मानेगा, चाहे कैसा ही महापुरुष क्यों न हो। जो हो, इन के अनुगत भक्तगण तभी से इन्हें कृष्ण का अवतार ही नहीं, वरन् अवतारी मानने लगे थे।

हमारे हिन्दू भाई तो इसमें अवश्य विश्वास करते हैं कि जब जब धर्म का ह्रास होता है ईश्वर मनुजशरीर धारण कर उसका सुधार करते हैं। इस विचार से उस समय बंगाल में अवतार की सम्भावना थी। वहां धर्म की दशा बिगड़ गई थी। तंत्र तथा शक्ति पूजा का भी वास्तविक रंग बदल रहा था। कृष्णभक्ति मानो विलुप्त होगई थी। जो गिनेगिनाये वैष्णव थे वे घृणा व्यंग तथा कटाक्ष के पात्र बने हुए थे। अन्य प्रान्तों में भी धर्म पर धक्का पहुंच चुका था। देश को शुद्ध पवित्रता तथा प्रेमशिक्षा की विशेष आवश्यकता थी। किन्तु जैसा कि प्रथम खंड में एक स्थान में कहा गया है, बंगाली वैष्णव श्री गौराङ्ग के अवतार का मुख्य कारण यह मानते हैं कि उन में (अर्थात् श्री कृष्ण में) कौन सी ऐसी माधुरी थी जिसके रस को श्री राधा इतने प्रेम से पान करती थीं, इसीको स्वयं, राधाभाव धारण कर अनुभव करने के लिये आप इस जगत में प्रादुर्भूत हुए थे। (६)

६ "स्वप्नविलास" के अनुसार श्री कृष्ण के एक बार यह कहने पर कि गोपियों के अहैतुक प्रेम के ऋण से वे दबे जारहे हैं, उसे वे कैसे परिशोध करें। राधाजी ने कहा था कि "आप जीवों को हरिनाम दीजिये, हम लोग ऋण से उद्धार कर देंगे" तब कृष्ण ने एक दसखती कागज लिख दिया था कि कलियुग में घर घर घूम कर वे हरिनाम वितरण करेंगे। उसी कारण से वे गौरांग रूप में आविर्भूत हुए।

"दसखती कागज इस कहानी का गौरव नष्ट कर देता है। जुबानी एकरार उतना सन्देह जनक नहीं होता। आश्चर्य है, कि इस कहानी के लेखक को रजिष्टरी कराने और अंगूठे का चिन्ह लेने की बातें क्यों भूल गई।

इस काम के साधन में आप को कितनी सफलता हुई, यह तो कोई नहीं जान सकता या कह सकता, किन्तु आपने प्रेमभक्ति के प्रवाह में भारत-भूमि को और विशेषतः बंग प्रान्त को प्लावित कर दिया, यह बात सब को स्वीकार करना पड़ेगा।

"भारतीय महापुरुषगण (Sages of India) सम्बन्धी व्याख्यान में श्रीमान स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि "इन्हों ने गोपियों के उन्मत्त प्रेम का रंग दिखाया। जगत के बड़े सुप्रसिद्ध प्रेमाभक्ति के शिक्षकों में से ये एक महान पुरुष हैं। इनकी भक्ति ने सारी बंग-भूमि को प्लावित कर दिया। प्रत्येक जन को ठाढ़स और शान्ति प्रदान की। इन का प्रेम अपरिमित था। पुण्यी पापी, हिन्दू मुसलमान, पवित्र अपवित्र, वाराङ्गनाएं और गली कूचों के फिरने वाले सभी इन के प्रेम और दया के भागी हुए। आज भी दारिद्र्य-पद-दलित, जातिभ्रष्ट, निर्बल तथा समाजपरित्यक्त सब जीव इनके सम्प्रदाय में शरण पाते हैं।"

ब्रजविहारी मुरलीलकुटधारी यशोदानन्दन कृष्णचन्द्र ने अपनी ललित लीलाओं से वृन्दावनभूमि को पवित्र किया और नवद्वीप विहारी दंड कमंडलुधारी शचीनन्दन गौरचन्द्र ने अपने भक्तों के द्वारा ब्रजचन्द्र के लीला-स्थानों की खोज और प्रतिष्ठा करा उन का पुनरुद्धार किया। सच पूछिये तो वर्त्तमान वृन्दावन की सृष्टि में बंगाली वैष्णवों ने विशेष योग दान किया है। इसमें उनका हाथ सुस्पष्ट देखा जाता है। बंगदेशीय वहां बहुत जाते हैं और वहां वास कर कृष्णभजन में मग्न रहते हैं। उनकी मण्डली आज भी संकीर्त्तन करते सड़कों पर निकलती है। गान वाद्य एवं "हरिबोल" की सुखद ध्वनि से लोगों के मन में कृष्णप्रेम का संचार करती है। कितने नाचते, कितने धूलि में लोटते और उछल कूद कर आनन्द लेते हैं। कृष्ण भगवान की जय! गौराङ्ग की जय! और भक्तभूषणों की जय!!!

जो गौराङ्ग के भक्त हैं और इन्हें अवतार मानते हैं उनकी तो बात ही नहीं, जो उस सीमा तक जाना नहीं चाहते उन्हें आपको एक महान असाधारण भक्त मानकर आपके चरणों में श्रद्धा भक्ति और अनुराग करके निज कल्याण साधन करना अवश्य उचित है। क्योंकि महापुरुषों का वाक्य है कि भक्त और भगवान एवं सन्त भगवन्त में भेद नहीं :—

"भक्ति भक्त भगवन्त गुरु, चतुर नाम वपु एक।
इनके पद वन्दन किये विनसहि विघ्न अनेक॥"

एवम्—श्री गुरु नानक जी कहते हैं—"नानक साधु प्रभु भेद न भाई" (शब्द महल पांच) और "चैतन्य भागवत" के प्रणेता भी भक्त को कृष्ण का विग्रह ही बतलाते हैं। यथाः—

"भागवत तुलसी गङ्गाय भक्त जने।
चतुर्द्धा विग्रह कृष्ण एइ चारि सने॥"

त्रयोदश परिच्छेद

चैतन्य सम्प्रदाय



स वैष्णव सम्प्रदाय के प्रवर्तक चैतन्य महाप्रभु हैं। आप इसके प्रवर्तक ही नहीं, इस के उपास्यदेव भी हैं। आप श्रीकृष्ण के पूर्ण-अवतार और अद्वैत तथा नित्यानन्द अंशावतार माने जाते हैं। इस सम्प्रदाय के वैष्णव श्री कृष्ण की उपासना करते हैं। वही वृन्दावन विहारी कृष्ण गौराङ्ग रूप से अवतीर्ण हुए। अतएव आप भी भक्तों के उपास्य हैं। आप की तथा विष्णुप्रिया जी की मूर्तियां मन्दिरों में प्रतिष्ठित कर भक्तगण उनकी पूजा आराधना करते हैं। चैतन्य सम्प्रदाय तथा वल्लभीय सम्प्रदाय के भक्तों की उपासनाएं मिलती जुलती हैं। नामकीर्त्तन ही इस सम्प्रदाय का प्रधान साधन है। गुरुदेव सर्व-प्रथम पूजयनीय हैं और गोस्वामीगण इस गुरुत्व पद के अधिकारी हैं। इस सम्प्रदाय के मत सम्बन्धी तथा गौर गुण-गान के संस्कृत और बंगलादि में अनेक ग्रंथ हैं जिनका वर्णन यथास्थान पहले होता गया है।

इस सम्प्रदाय के वैष्णव नासिका की जड़ से केश पर्यन्त गोपी चन्दन का ऊर्द्ध्वपुण्ड तिलक कर के उसे नासाग्र के साथ मिला देते है। युगल भुजाओं तथा वक्षस्थल पर और ललाट के उभय पार्श्वों में राधाकृष्ण नाम की छाप लगाते एवम् तुलसी की त्रिकंठी माला धारण करते हैं। सहस्र-संख्यक तुलसी-माला से इष्टमंत्र जपना इन का परम कर्त्तव्य है।

ईशान संहिता के मतानुसार ये कई गौरमंत्र कहे जाते हैं:—
"ॐ गौराय नमः। ह्रीं ॐ गौराय नमः ह्रीं। ह्रीं गौरचन्द्राय ह्रीं। ह्रीं श्री गौरचन्द्राय नमः।"

गौरचन्द्र का ध्यान इस श्लोक द्वारा किया जाता है।

"द्विभुजं सुन्दरं स्वच्छं वराभयकरं विभुम्।
सुहास्यं पुण्डरीकाक्षं दधानं सितवाससी॥
कृष्ण कृष्णेति भाषन्तं सुस्वरं सुमनोहरम्।
यतिवेषधरं सौम्यं वनमालाविभूषितम्॥
तारयन्तं जनान् सर्वान् भवाम्भोधेर्दयानिधिम्।

—:o:—

चतुर्दश परिच्छेद

चैतन्य का धर्म्ममत

चैतन्य प्रणीत कोई धर्म्मग्रंथ की बात नहीं सुनी जाती। इन्होंने समय समय पर जो लोगों को उपदेश दिया है उनसे इनका धर्म्ममत ज्ञात होता है।

इन्होंने कोई दर्शन या दार्शनिक मत का उद्भावन नहीं किया। इन्होंने प्राचीन हिन्दू धर्म के आर्ष ग्रंथों की समालोचना कर उसी पर अपना मत स्थापित किया। इसी समालोचना ने इनके मत में नवीनता का रंग जमाया। इन्होंने विष्णुपुराण, गीता, भागवत, ब्रह्मपुराण, वृहन्नारदीय, ब्रह्मसंहितादि ग्रन्थों के प्रमाणों का सहारा लिया। आप वेद, उपनिषदों तथा वेदान्तसूत्रों का बहुत आदर करते थे एवम् इन ग्रंथों के तथा अन्य ऋषिप्रणीत ग्रन्थों के सहज अर्थों को ग्रहण करते थे, गौण-अर्थों का नहीं। "चैतन्य-चरितामृत" में उल्लिखित सार्वभौम के साथ शास्त्रार्थ, रामानन्द की धर्ममीमांसा तथा रूप और सनातन को दी गई शिक्षा और उपदेश से इन के मत का ज्ञान हो सकता है।

इन के मत में ईश्वर सर्वव्यापक, सर्वैश्वर्य्यपूर्ण और साकार है। जिन श्रुतियों में ईश्वर को निर्विशेष कहा है, उसका अभिप्राय प्राकृतत्व-निषेध से है। श्रुतिकथित ब्रह्म शब्द का अर्थ ईश्वर है। ईश्वर और कृष्ण एक ही हैं। कृष्ण स्वयं सुखमय हो कर भी भक्तों को सुखी करने के लिये ह्लादिनी शक्ति द्वारा सुखास्वादन करते हैं। ह्लादिनी के सारांश को प्रेम और उस के सारांश को महाभाव कहते हैं।

श्री राधा महाभाव-स्वरूपा हैं। उनका शरीर प्रेमस्वरूप है। राधाकृष्ण के स्वरूप-निर्णय का नाम तत्त्वनिर्णय है।

इस मत में दो प्रकार की सद्गतियां मानी गई हैं। ऐश्वरिक ऐश्वर्य्य लाभपूर्वक चिरन्तन स्वर्गभोग और आनन्दमय गोलोक में श्री कृष्ण के साथ एकत्र वास। कान्ताभाव प्रेम सर्वश्रेष्ठ है और सखीभाव ही से इसकी प्राप्ति होती है। कलिकाल में हरिनाम-कीर्त्तन ही जीव की एकमात्र गति है। महानम्र सहिष्णु और अहंकारशून्य पुरुष एवं सभी जाति के लोग भी इस के अधिकारी हैं।

परहिंसा, परद्वेष, परस्त्री-संसर्ग सर्वथा परित्याज्य है।

——

पञ्चदश परिच्छेद ।

श्री गौराङ्ग के उपदेश ।



भी कहा गया है कि श्री गौराङ्ग के चरित्र और धर्म वर्णनमें कई भाषाओं में अनेक ग्रंथ रचे गये हैं। "श्री गौराङ्ग स्मरण मङ्गल" में केदारनाथ दत्त भक्ति-विनोद महोदय ने "चैतन्य चरितामृत" आदि के आधार पर आपके उपदेशों का सारांश दिया है। उसी का कुछ अंश इस परिच्छेद में उल्लेख कर के इस पुस्तक की समाप्ति की जाती है।

उन्होंने लिखा है कि "ईश्वर अगम है। युक्ति से समझा नहीं जा सकता। धार्मिक रुचि द्वारा उसका कुछ ज्ञान हो सकता है। केवल ईश्वर प्रेरणा से आध्यात्मिक विचारों की ज्योति स्फुरित होती है। विशुद्ध तथा पवित्र सौभाग्यवान ऋषियों के मुख से स्फुरित ईश्वरवाक्य वेदों में प्रगट हुए हैं और धार्मिक विषयों के एकमात्र प्रमाण वेद, इन के सहज भाष्य पुराण समूह और अन्य आर्ष ग्रंथ हैं। पठित सत्य कथन सर्वमान्य हैं। युक्ति बुद्धि केवल सहायक मात्र है।

श्री चैतन्य के अनुसार वेदों से नौ मुख्य बातें जानी जाती हैं:—(१) ईश्वर अद्वितीय है; (२) वह सर्व शक्तिमान है; (३) वह निखिल-रस-समुद्र है; (४) जीव उस का विभिन्नांश है; (५) कोई जीव प्रकृति (माया) से आबद्ध है; (६) कोई उस से मुक्त है (७) सचराचर विश्व उस के भेदाभेद का प्रकाशमात्र है; (८) आध्यात्मिक जीवन के अन्तिम उद्देश्य प्राप्ति का उपाय केवल भक्ति है, (९) वह अन्तिम उद्देश्य केवल कृष्णप्रेम है। दत्त महाशय ने इन सबों की व्याख्या भी अपनी पुस्तक में की है।

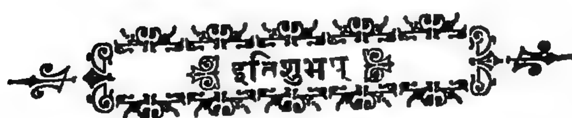
उपदेश—कृष्ण को विस्मरण करने से ही मनुष्य का चित्त और बाक्य विषयों की ओर दौड़ता है। कृष्णप्राप्ति का एकमात्र उपाय विश्वास है। सब कामनाओं तथा ज्ञान, कर्म आदि से मुंह मोड़ कृष्णभक्ति साधन में अङ्ग प्रत्यङ्ग से प्रवृत्त होना यही शुद्ध धर्म और विश्वास का लक्षण है। प्रेम का फल धन वा मुक्ति नहीं है। इस का मुख्योद्देश्य प्रेम के स्वर्गीय सुख का आनन्द लेते रहना है। जैसे धन प्राप्ति से आनन्द होता है और दुःख आप ही आप भाग जाता है, वैसे ही भक्ति द्वारा कृष्णानुराग प्रदीप्त होने से मनुष्य-संसार बन्धन से मुक्त हो जाता है। भक्तिद्वारा ईश्वर का पूरा अनुभव होता है। भक्ति के बिना अन्य साधनों से कृष्णप्राप्ति दुर्लभ है। भक्ति तथा गुरु की सेवा से जीव मायाजाल से छूट कर प्रभु के पादपद्मों को प्राप्त होता है। अन्य कामना से भी प्रभु में भक्ति करने से वे बिना मांगे अपने चरणकमलों में शरण देते हैं।" विचारते हैं कि यह तो अज्ञानवश सांसारिक सुखकी कामना करता है, हम इसे उस में क्यों फंसावें? अपना चरणामृत क्यों न प्रदान कर इसका यथार्थ कल्याण करें? जब सत्संगति से हरिभक्ति में रुचि उत्पन्न होती है तब भक्ति का फल—ईश्वरप्रेम प्राप्त होता है। सत्संगति से ही सब बातों में सफलता होती है। इत्यादि।

भक्ति की रीतियां:—गुरुदीक्षा-ग्रहण, उन के चरणों की शरण, गुरु सेवा, धर्म्म-जिज्ञासु होना, महात्माओं का अनुगम और संगम, हरिप्रेम में सुख भोगादि का त्याग, पुण्य स्थानों में वास, शुक्ला एकादशी व्रत, उपमाताओं का आदर, गोब्राह्मण और सन्त महन्तों का सेवा-सत्कार' हानि-लाभ तथा दुःख-सुख में समान बुद्धि, विविध वासनाओं का दमन, अन्य देवताओं तथा अन्य धर्म-ग्रंथों की निन्दा का परित्याग, मनसा वाचा कर्मणा किसी जीव को किसी प्रकार' कष्ट न पहुंचाना और उसका हृदय न दुखाना; हरिस्मरण भजन, पूजन, मौखिक अर्चा, प्रतिमासेवन तीर्थाटन इत्यादि ६४

रीतियाँ कही गई हैं। इन में सत्संगति, नामकीर्तन, भागवत श्रवण और पठन, मथुरागमन और सेवन एवम् सम्मानपूर्वक प्रतिमापूजन ये सब मुख्य माने गये हैं।

वैष्णव लक्षणः—यों तो जिसकी जिह्वा पर कृष्ण नाम नृत्य करता हो, बिना जाति पाँति या अन्य कोई विचार के वही वैष्णव है; तथापि उन के कुछ और भी लक्षण हैं। उन्हें दयालु, वैर-विद्वेष-विवर्जित, सत्यवादी, सरल स्वभावी, सच्चरित्र, पवित्र, नम्र दानशील सर्वोपकारी, ईश्वरावलम्बी, इन्द्रियजित, आत्मसंयमी, कामना रहित, अन्यमानवर्द्धक, गर्वहीन, दीन, कोमलहृदय, स्थिर-चित्त, सर्वहित विद्वान, शान्त, मौन (अल्प-भाषी) और अल्प-भोजी इत्यादि होना चाहिये।

गृहस्थ और भिखमंगे वैष्णवों की बात विलग रखिये। आज मठाधिकारी महन्त कितने इन गुणों से भूषित पाये जाते हैं? अल्प भोजन के बदले मालपूआ भक्षण विद्वत्ता की जगह मूर्खता, महंती का गर्व तथा मोक़द्दमाबाज़ी चरित्र की चर्चा न चलाइये। वे शान्त और मौन नहीं, तो आप मौन धारण कीजिये। आइये शुद्ध हृदय से हम लोग श्रीगौराङ्ग के पादपद्मों में तथा वैष्णव महात्माओं के चरणकमलों में नित्य प्रति अनेक नमस्कार और देशहित के निमित्त वारम्वार विनय करते रहें।



परिशिष्ट।

इस पुस्तक के अधिकांश छपने के अनन्तर जो नवीन, या पूर्ववर्णित बातों से विभिन्न, बातें ज्ञात हुई हैं, वे इस परिशिष्ट में समावेशित की गई हैं।

१ इसपुस्तक के २२ वें पृष्ठ में चैतन्यदेव के पितामह उपेन्द्र मिश्र के सात पुत्रों में से केवल पाँच ही के नाम दिये गये हैं, और उसमें भी क्रमभङ्ग है। वंशावली के अनुसार सातों के नाम इस क्रम से पाये जाते हैं:—कंसारि परमानन्द, जगन्नाथ, सर्वेश्वर, पद्मनाभ, जनार्दन तथा त्रैलोक्य।

२ चूड़ामणिदास-कृत "चैतन्य-चरित" कहता है कि शची ने तेरह मास गर्भ धारण नहीं किया। दस ही महीना पूर्ण होने पर गौराङ्ग का प्रादुर्भाव हुआ। यह कथन सब से न्यारा है।

३ "चैतन्य-चरितामृत" में सिंह राशि, सिंह लग्न तथा पूर्व फाल्गुनि नक्षत्र में इनका जन्म कहा है। और उक्त चूड़ामणिदास जन्मराशि वृष तथा जन्म-नक्षत्र रोहिणी होना और उसी राशि के अनुसार गणक का इनका नाम विश्वम्भर रखना बताते हैं। उन्होंने इन की जन्मपत्रिका भी दी है। उसे "विश्वकोष" के रचयिता अद्भुत बताते हैं और कहते हैं कि "वैष्णवों का विश्वास है कि चैतन्य देव असम्भव को सम्भवकर सकते थे। इसी लिये वे ऐसी जन्मपत्री की अवतारणा करने में साहसी हुए हैं। चैतन्य ने रोहिणी नक्षत्र में जन्म नहीं लिया। यदि उस दिन रोहिणी नक्षत्र होता, तो चन्द्रग्रहण कदापि नहीं होता।"

४ इस पुस्तक के २५-२६ वें पृष्ठ में प्रभु के निमाई कहलाने का कारण लिखा हुआ है। कोई कोई कहते हैं कि अद्वैताचार्य्य की सहधर्मिणी ने इन का यह नाम रखा था। उपर्युक्त

"चैतन्य चरित" के अनुसार प्रभु के ज्येष्ठ भ्राता विश्वरूप ने यह नामकरण किया और प्रभु के चचेरे भाई प्रद्युम्न मिश्र ने स्वरचित "श्री कृष्णचैतन्योदयावली" में इन के जन्म के पहले ही विश्वरूप को संन्यासी बनाया है। अन्य सभी लोगों ने इन के जन्म के बाद उनका संन्यासी होना लिखा है।

५ चैतन्य भागवत" के अनुसार पिता के परलोक-गमन के पश्चात् घर का आर्थिक हाल जानने पर गौराङ्ग ने अपनी अद्भुत शक्ति से गंगातट से कई बार सोना लाकर माता को दिया था जिस से उन के मन में भय भी होता था कि उसके कारण कुछ अन्य दुःख न भोगना पड़े।

६ गया से फिरते समय एक दिन गम्भीर निशा में आप चुपचाप वृन्दावन चल पड़े थे। परन्तु मार्ग में देववाणी सुन कर लौट आये।

७ इस ग्रंथ के ८७ वें पृष्ठ में अद्वैताचार्य्य का चन्दनादि द्वारा इन की पूजा करने की बात कही गई है। किसी किसी के मत से उस समय इन्हों ने "अद्वैताष्टक" पाठ किया था। "चैतन्य चरित" में वे श्लोक देखे जाते हैं।

८ इन के संन्यास ग्रहण करने का प्रकरण लेखकों ने भिन्न भिन्न ढंग से वर्णन किया है। एक तो वह है, जिस का इस ग्रंथ में उल्लेख हुआ है।

दूसरा यह कि जब आप कृष्ण नाम छोड़ कर गोपियों का नाम जपने लगे थे, उस समय, कृष्णानन्द नहीं, वरन एक छात्र आकर इन्हें कृष्णभजन का उपदेश देने लगा था और उसी को आप बांस लेकर मारने दौड़े थे जिस से सब छात्र-मण्डली तथा अध्यापक-मण्डली इन से बिगड़ गई। तब इन्हों ने संन्यास लेने का संकल्प किया।

"चैतन्य-भागवत" तथा "चैतन्य-मङ्गल" से विदित होता है कि शची को इन के गृह त्यागने का दिन ज्ञात था। इसलिये उस रात को उन्हें नींद न आई थी। गदाधर और हरिदास भी बाहर ले घर में सोये थे। शकाब्द १४३१ के उत्तरायण संक्रांति के दिन चार दंड रात रहे गौराङ्ग द्वार खोल कर बाहर हुए। इनके पांव की आहट सुन कर उन लोगों ने भी उठ कर साथ चलने की इच्छा प्रगट की। किन्तु ये इस में सहमत नहीं हुए। शची द्वार पर बैठी थीं। आप ने वहीं बैठ कर उन्हें बहुत कुछ उपदेश दिया। वे रोती हुई इनका मुंह ताकती रहीं और ये उन की प्रदक्षिणा कर और उनकी पदधूलि मस्तक पर रख वहां से चल दिये। वे मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ीं। विष्णुप्रिया की निन्द्रा भङ्ग नहीं हुई। निषेध करने पर भी नित्यानन्द, गदाधर मुकुन्द चन्द्रशेखराचार्य्य और ब्रह्मानन्द ये पांच आदमी इन के संग लग गये।

कवि कर्णपूर का कथन है कि इन्हों ने संन्यासी होने की बात किसी से नहीं कही थी। केवल शची को इतना कहा था कि "हम तीर्थाटन को जायंगे, घबड़ाना मत।" इन के गृहत्याग की रात को शची ने समझा कि ये श्रीवास के घर कीर्त्तन करते होंगे और भक्तों ने समझा कि अपने घर होंगे वस्तुतः कीर्त्तन समाप्त होने पर ये घर आने का बहाना कर के बाहर निकले और आचार्य्य रत्न के साथ गंगा की ओर चले। रास्ता में नित्यानन्द से भेंट हुई। गंगा पार हो तीनो काटोया चले गये।

इस पुस्तक में एक जगह, शची के स्वप्न देखने की बात कही गई हैं। वह स्वप्नवृत्तान्त वृन्दावनदास के अनुसार यह है, कि एक रात शची ने देखा कि निमाई और निताई दोनों पांच वर्ष के बालक के रूप में परस्पर मारपीट करते ठाकुर के घर में घुस कर वहां से कृष्णमूर्ति को निताई और बलराम की मूर्ति को निमाई लिये-

प बाहर आये और चारों में मारपीट होने लगी और एक
सरे के हाथ से छीन कर और मुंह से निकाल कर खाने की
ीजें खाने लगे। फिर अन्त में निताई ने शची को पुकार कर
छु खाने को मांगा। इतने में उन की नींद टूट गई।

निमाई के सम्मत्यानुसार दूसरे दिन शची माता निताई को
ला कर सब के संग उन्हें खिलाने लगीं। उसी समय निमाई
ार निताई को वही स्वप्न वाले दशवर्षीय रूप में शंखचक्रादि
ये देख वे अचेत हो गिर पड़ीं और पुनः संज्ञालाभ करने
र उन्होंने अपनी बेहोशी का कारण बताया।

अन्य लोगों ने लिखा है कि गौराङ्ग के संन्यासी होने के बाद
त्यानन्द गंगा को यमुना बता कर और भुलावा देकर इन्हें
टोया से शान्तिपुर फेर लाये थे। परन्तु "चैतन्य भागवत"
ज्ञात होता है कि वे जानबूझ कर वहां से फिरे थे और मार्ग
लोगों से पूछा था, कि गंगा कितनी दूर है।

"प्रभु बोले गंगा कत दूर पथा इहते।" और इन्हों ने गंगा की
न्दना भी की थी।

११-इसी ग्रंथ के अनुसार ये स्वयं जगन्नाथ गये थे और इन्होंने
ाप ही सार्वभौम को उपदेश देने को कहा और उन्होंने
क्तियोग का उपदेश किया।

जगन्नाथ से गौड़ देश आने पर ये सीधे वाचस्पति के घर
ये थे और वहीं जनता को इन का दर्शन मिला और फिर ये
ीड़ के कारण कुलिया चले गये।

रूप और सनातन स्वयं गौड़ में इन के पास नहीं गये थे,
रन् राजदरबार के सज्जनों ने एक ब्राह्मण के द्वारा इन को
हला भेजा था कि इतने लोगों के साथ वहां ठहरना अच्छा
होगा।

लोगों ने इन के जन्मकाल से इनके नाम से गौराब्द का भी
चार किया है।

इति।

ग्रंथकर्त्ता का परिचय।

दोहा।

आरा तें पच्छिम निकट, अख़तियार पुर ग्राम।
नदी फुंहेसर पर बसत, सोभा लसत ललाम॥
पुष्पवाटिका बाग त्यों, बहु देवन को धाम।
संत समागम तें जहां, चित पावत बिश्राम॥
सब रितु सहज सुहावनी, छवि चहुँ दिसि दरसात।
गेह खेत आराम मों, सुखानन्द सरसात॥
इत पच्छी कलरव करत, उत पशु चरत स्वच्छन्द।
डारि हिंडोरा पेड़ मों, झूलत बालक वृन्द॥
कृषी निरावत गावहीं, कजरी अरु मलार।
दांवत सस खलिहान मों, घांटो चहइ बहार॥
अहै पुरातन गांव यह, कायथ कँर अस्थान।
जंह श्रीवास्तव दूसरे, बसत प्रसिद्ध महान।
"छौसैया" * पदवी अहै, दिल्लीपती प्रदत्त।
कोउ कोउ कानुनगोय पुनि, भे कछु काल बिगत्त॥
महा मान्य भगवान सिंह, रहे तहां गुनवान।
नगर जवन पुर मों हुते, करत वकालत काम॥

---

* यह एक बादशाही मनसब था। इस मनसबदार को ६०० सवार रखना पड़ता था और लड़ाइयों के अवसर पर उन्हें भेजना, या उन्हें लेकर स्वयं युद्ध क्षेत्र में जाना होता था। इसी से वह "शशसदी" (छौसैया) कहलाता था।

. उसे १५ हाथी ३८ घोड़े १४ कतार ऊंट, दो कतार खच्चर, २१ गाड़ी अपने जलूस और बारबर्दारी के लिये रखना पड़ता था। इन सब का खर्च बादशाह से जुदा मिलता था। हाथियों और घोड़ों की तफ़सीलें भी थीं, यानेः—

हाथी शेरगीर ४. सादा ३. मंझोला ५, करहर २, फन्दर १=१५. घोडा इराकी ५ मुजन्नस ७, तुर्की ६, टट्टू ६, ताजी [illegible], जंगला ४=३८ "हरिश्चन्द्र" नामक पुस्तक के द्वितीय संस्करण में इस का विशेष रूप से वर्णन हुआ है।

गुरु-सहाय तिन के तनय, ताहू कालि-सहाय।
पूज्यपाद सो मम पिता, कहत चित्त हरषाय॥
द्विये सुवन जो दास को, सानुकूल हरि होई।
करत वकीली कहत तिहि, व्रजनन्दन सब कोइ॥

सवैया।

तिन को जगदीस कृपा करिकै दिय पांच तनै तनया इक मानिये। सुरमेश, दिनेश, सुरेश अरु मदनेश, धनेशहिं को डर आनिये॥ इन शब्दन को युत नन्दन कै सब कै पुनि पूरन नाम सुजानिये। अरु लीलावती कनया धनया सब हीं प्रीत मीत अलोल बखानिये॥

दोहा। *

काल बसु ग्रह अरु ससी, विक्रम फागुन मास।
कवि बासर तिथि पूर्निमा, जिहि दिन पूर्न प्रकास॥
"जीवनि" श्रीगौराङ्ग की, किरपा श्री गौराङ्ग।
भक्त सुजन सुखदाइनी, भइ पूरन सरवाङ्ग॥
भयो अनुग्रह गुरुचरन, अरु सब संत महंथ।
साढ़े छयासठ वयस मो, रच्यो गयो यह ग्रन्थ॥
सिवनन्दन बिनती करत, सब पँह वारहिंबार।
या को पढ़ब सनेह सों, सुद्ध असुद्ध सुधार॥

---

* विक्रमसम्वत १९८१

उपसंहार

(८)

यह बात अन्यत्र लिखी गई है कि विष्णु-सहस्रनाम के समान गौराङ्ग-सहस्र-नाम होने की भी सम्भावना है। यह तो हमें कहीं देखने में नहीं आया, किन्तु प्रागुक्त सार्वभौम-प्रणीत श्री-"गौराङ्गाष्टोत्तरशतनाम स्तोत्र "श्रीवृन्दावन वाटिका" नाम की पुस्तिका के पृ० १७१६ में प्रकाशित हुआ है। वह यहां उद्धृत कर दिया जाता है।

श्री श्री गौराङ्गाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं प्रारभ्यते।

"नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि देवदेवं जगद्गुरुम्।
नाम्ना—मष्टोत्तरशतं चैतन्यस्य महात्मनः॥
विश्वम्भरो जितक्रोधो मायामानुषविग्रहः।
अमायो मायिनां श्रेष्ठो वरदेशो द्विजोत्तमः॥
जगन्नाथ—प्रियसुतः पितृभक्तो महामनाः।
लक्ष्मीकान्तः शचीपुत्रः प्रेमदो भक्तवत्सलः॥
द्विजप्रियो द्विजवरो वैष्णवप्राणनायकः।
द्विजातिपूजकः शान्तः श्रीवासप्रिय ईश्वरः॥
तप्तकांचनगौराङ्गः सिंहग्रीवो महाभुजः।
द्विभुजश्च गदापाणिः चक्री पद्मधरोऽमलः॥
पाञ्चजन्यधरः शार्ङ्गी वेणुपाणिः सुरोत्तमः।
कमलाक्षेश्वरः प्रीतो गोपीलीलाधरो युवा॥
नीलरत्नधरो रूप्यहारी कौस्तुभ-भूषणः।
श्रीवत्सलाञ्छनो भास्वन्मणिधृक् कंजलोचनः॥
ताटङ्क नीलश्रीः रुद्रलीलाकारी गुरुप्रियः।
स्वनाम-गुणवक्ता च नामोपदेशदायकः॥

14595

आचण्डालप्रियः शुद्धः सर्वप्राणिहिते रतः ।
विश्वरूपानुजः सन्ध्यावतारः शीतलाशयः ॥
निःसीम करुणो गुप्त आत्म भक्तिप्रवर्त्तकः ।
महानन्दो नटो नृत्यगीतनामप्रियः कविः ॥
आर्त्तिप्रियः शुचिः शुद्धो भावदो भगवत्प्रियः ।
इन्द्रादि सर्वलोकेश वन्दितश्रीपदाम्बुजः ॥
न्यासिचूडामणिः कृष्णः सन्यासाश्रमपावनः ।
चैतन्यः कृष्णचैतन्यो दंडधृक् न्यस्तदंडकः ॥
अवधूतप्रियो नित्यानन्द षड्भुज-दर्शकः ।
मुकुन्दः सिद्धिदो दीनो वासुदेवामृतप्रदः ॥
गदाधर प्राणनाथ आर्तिहा शरणप्रदः ।
अकिंचन-प्रियः प्राणो गुणग्राही जितेन्द्रियः ॥
अदोषदर्शी सुमुखो मधुरः प्रियदर्शनः ।
प्रतापरुद्र संत्राता रामानन्द-प्रियो गुरुः ॥
अनन्त गुण सम्पन्नः सर्वतीर्थैकपावनः ।
वैकुण्ठनाथो लोकेशो भक्ताभिमतरूपधृक् ॥

—:o:—

यः पठेत्प्रातरुत्थाय चैतन्यस्य महात्मनः ।
श्रद्धया परयोपेतः स्तोत्रं सर्वाघनाशनम् ॥
प्रेमभक्तिहरौ तस्य जायते नात्र संशयः ।
असाध्यरोगयुक्तोपि मुच्यते रोगसंकटात् ॥
सर्वापराधयुक्तोपि सोपराधात्प्रमुच्यते ।
फाल्गुनी पौर्णमास्यांतु चैतन्य-जन्मवासरे ॥
श्रद्धया परया भक्त्या महास्तोत्रं जपन्पुरः ।
यद्यत्प्रकुरुते कामं तत्त देवाचिराल्लभेत् ॥
अपुत्रो वैष्णवं पुत्रं लभेन्नास्त्यत्र संशयः ।
अन्ते चैतन्यदेवस्य स्मृतिर्भवति शाश्वती ॥"

उपसंहार

(ख)

श्री चैतन्य के मुख्य १४ परिषदों की और ६४ महन्तों की नामावलियां हमें कहीं नहीं मिलीं। हां! "चैतन्य-चरितामृत" के आदि खंड के दशम परिच्छेद में इन के धर्म्मवृक्ष की शाखाओं और उपशाखाओं का विवरण अवश्य दिया हुआ है। परन्तु उस में ५० शाखा संस्थापकों के नाम स्पष्टरूप से दिए हुये हैं। पीछे कविराज महाराज ने वर्णन-शैली कुछ ऐसी कर दी है, उस से शेष लोगों का नाम निश्चयपूर्वक चुनना और संग्रह करना दुष्कर प्रतीत होताहै।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने स्वरचित "वैष्णव-सर्वस्व" में इन के पारिषदों तथा महन्तों की नामावलियां दी हैं, जो यथातथ्य नीचे उद्धृत की जाती हैं किन्तु इन के ठीक होने में भी हमें सन्देह हो रहा है।

एक तो "चैतन्य चरितामृत" के नामों से इन सूचियों के नाम कम मिलते हैं। दूसरे भारतेन्दु ने केशवपुरी को इन का विद्यागुरु लिखा है, यह नाम हम ने प्राचीन अथवा अर्वाचीन किसी पुस्तक में नहीं पाया है। हां! केशव भारती नाम अवश्य है। पर वे इन के विद्यागुरु नहीं हैं। उन्हीं से इन्होंने संन्यास ग्रहण किया था। पं० गंगादास इन के विद्यागुरु थे। उन के निकट विद्याध्ययन के पूर्व इन्हों ने कुछ काल सुदर्शन तथा विष्णु पंडित से पढ़ा था और ये बहुत थोड़े दिन सार्वभौम के नवद्वीपीय टोल में भी थे।

फिर भारतेन्दु जी माधवेन्द्र पुरी के केवल तीन ही शिष्य का नाम बताते हैं। उन के और भी शिष्य थे, यथा, रामचन्द्रपुरी।

(चैतन्यसम्प्रादयपर-परा)

श्री कृष्ण ब्रह्मा नारद व्यास मध्व पद्मनाभ नृहरि माधव अक्षोभ्य जयतीर्थ ज्ञानसिंधु दयानिधि-विद्यानिधि राजेन्द्र जयधर्म्मा पुरुषोत्तम ब्रह्मण्य व्यासतीर्थ लक्ष्मीपति माधवेन्द्र-उन के तीन शिष्यः-- ईश्वर (पुरी) अद्वैत और नित्यानन्द ईश्वर के श्री कृष्ण चैतन्य,उन के गोपाल भट्ट, उन के गोस्वामी गोपीनाथ जिनका वंश अब प्रसिद्ध है। श्री कृष्ण चैतन्य के मुख्य चौदह पार्षद और चौंसठ महन्तो के नाम नीचे लिखे के अनुसार जानो। और श्री कृष्णचैतन्य विद्या में केशव पुरी के शिष्य थे।

मुख्य पार्षद।

१ अद्वैत, २ अभिराम, ३ नित्यानन्द, ४ सुन्दर ठक्कुर, ५ धनञ्जय ६ कमलाकर, ७ सारंग पंडित, ८ पुरुषोत्तम, ९ श्रीधर, १० हलायुध, ११ गौरीदास, १२ उद्धारण, १३ परमेश्वर, १४ कृष्ण।

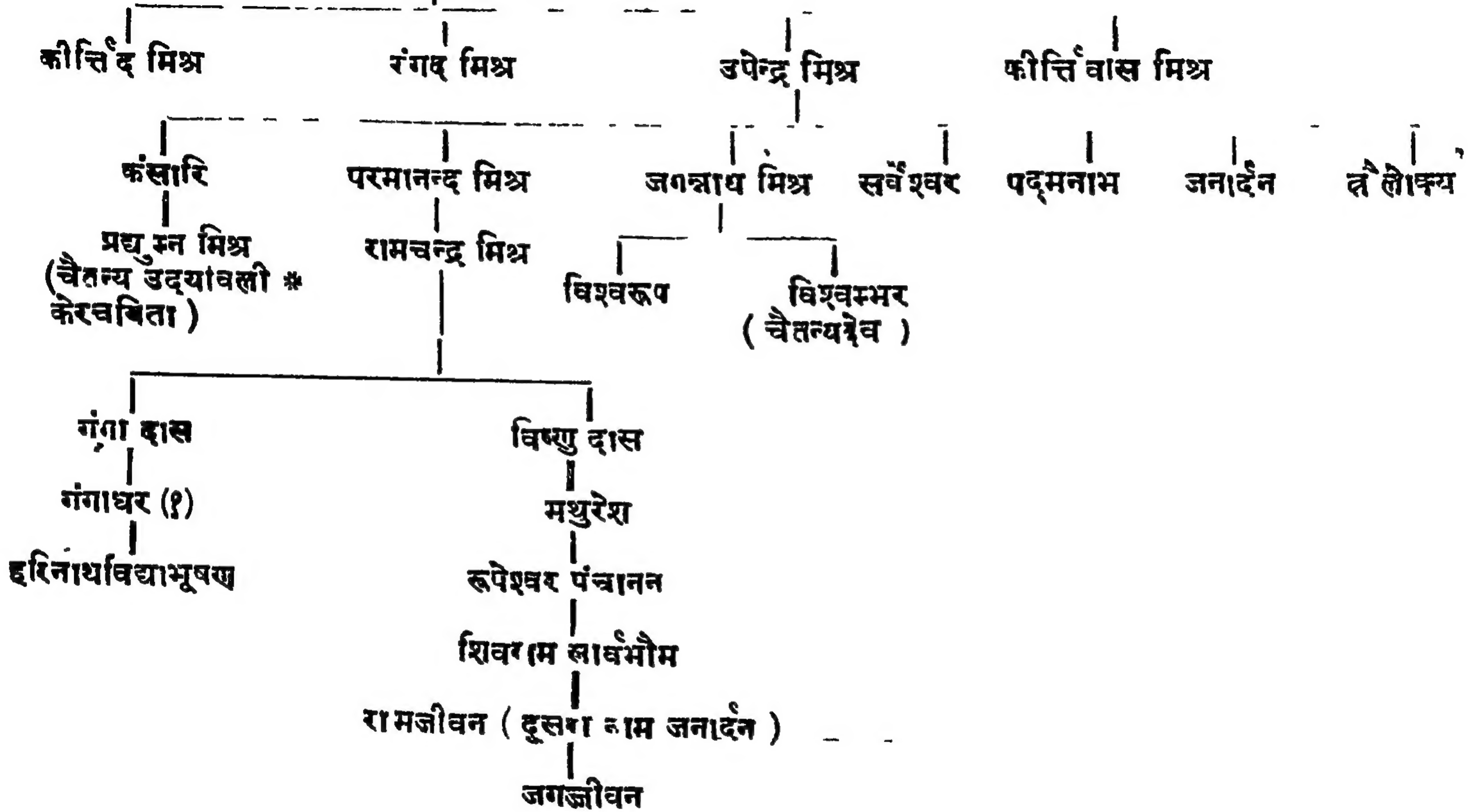
चौंसठ महन्त।

१ नीलाम्बर चक्रवर्त्ती, २ गदाधर, पंडित, ३ गदाधर ठक्कुर, ४ नरहरी, ५ मुकुन्द ६ सदाशिव कविराज, ७ जगदानन्द पंडित, ८ दामोदर, ९ वनमाली, १० रघुनाथ भट्ट, ११ गदाधर भट्ट, १२ प्रबोधानन्द, १३ सनातन गोस्वामी, १४ भूगर्भ गोस्वामी, १५ काशी- मिश्र, १६ रूप गोस्वामी, १७ सनातन गोस्वामी, १८ रघुनाथदास, १९ रघुनाथ भट्ट, २० गोपाल भट्ट, २१ लोकनाथ, २२ दूसरे गदाधर भट्ट, २३ ज़ीव गोस्वामी, २४ गोविन्द, २५ माधव, २६ वासु घोष, २७ नित्यानन्द की स्त्री, २८ परमानन्द पुरी, २९ राघवदास, ३० शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी, ३१ जगदीश पंडित, ३२ श्री आचार्य्य, ३३ गरुड, ३४ गोपीनाथ सिंह, ३५ शंकर, ३६ गुणसागर राय, ३७ माधव,

३८ भास्कर, ३९ वनमाली, ४० सार्वभौम, ४१ सिंहानन्द, ४२ लोकनाथ कविचन्द्र, ४३ श्रीनाथ, ४३ रामनाथ, ४५ काशीमिश्र, ४६ रामानन्द, ४७ प्रतापरुद्र, ४८ कालीदास ठाकुर, ४९ माकी स्त्री, ५० गोपीनाथाचार्य्य, ५१ शार्ङ्ग दास, ५२ विश्वेश्वर, ५३ सत्यराज, ५४ रामानन्द, ५५ गोविन्द, ५६ गरुड ५७ आचार्य्य-रत्न, ५८ श्री वल्लभ, ५९ वृन्दावन, ६० शिवनन्द, ६१ जगन्नाथ पंडित, ६२ अनल, ६३ हरिदास, ६४ हृदयानन्द।



श्री गौराङ्ग (चैतन्य देव) महाप्रभु की वंशावली ।



* (मनः संतोषिणी के रचयिता)
यह " चैतन्योदयावली " का
बंगला अनुवाद है ।